ISSN 2231-0460

प्रगतिशील
वसुधा 91

प्रगतिशील लेखक संघ का प्रकाशन
अप्रैल-जून 2012

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

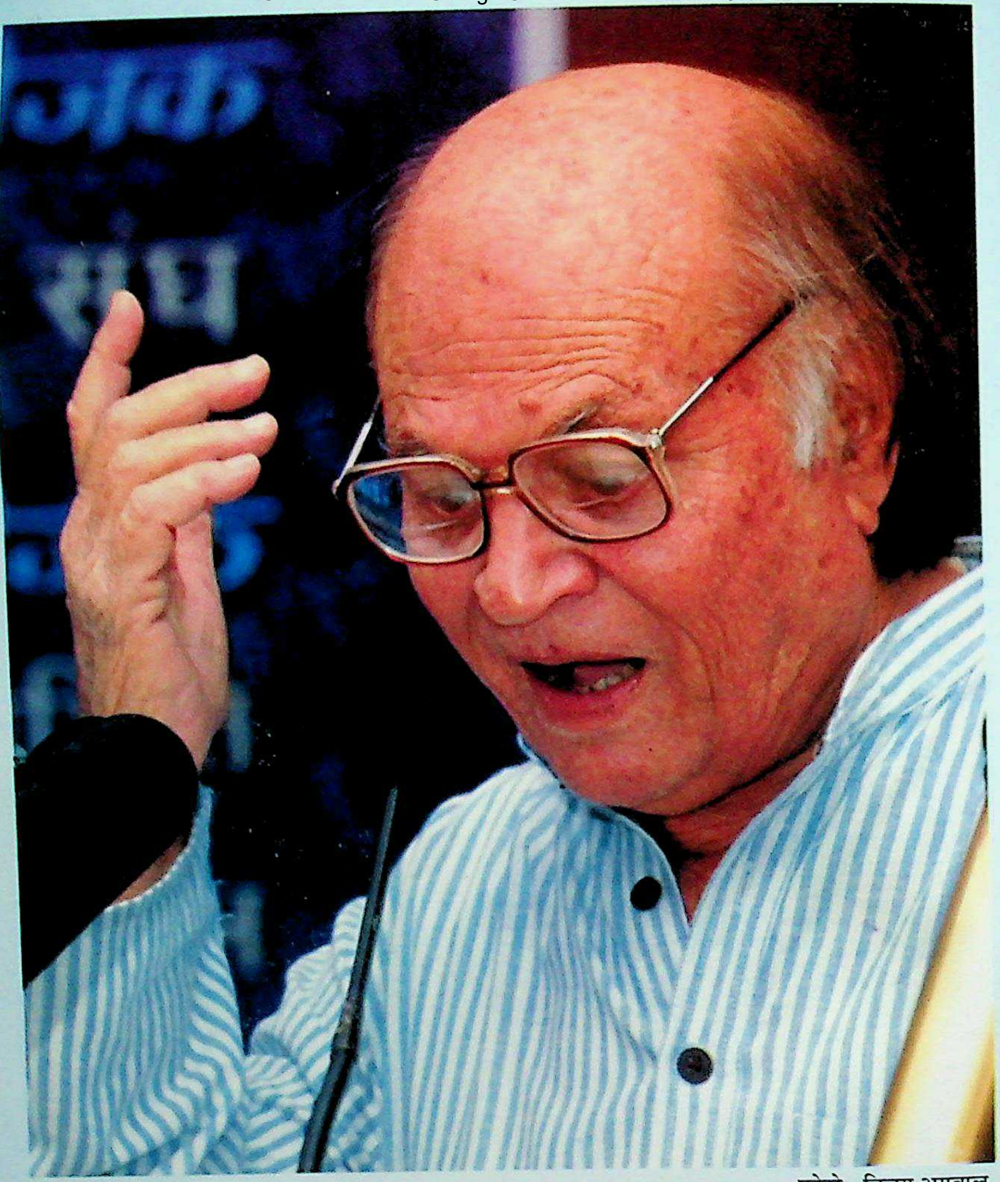

फोटो : विजय अग्रवाल

धरी रह जायेंगी सारी की सारी
घृणाएँ, कटुताएँ
जलकर राख हो जायेंगी
रस्सी की तरह ऐंठी हुई
सारी की सारी
ईर्ष्याएँ, अहम्मन्यताएँ

बचा रहेगा
सिर्फ एक
प्यार के लिए पछाड़ें खाता
उठता गिरता स्मृतियों का समुद्र

–भगवत रावत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रगतिशील

वसुधा -91

वर्ष-8 संख्या-3

MPHIN/2005/14693

ISSN 2231-0460

संस्थापक सम्पादक

हरिशंकर परसाई

सम्पादक

स्वयं प्रकाश

राजेंद्र शर्मा

सहयोग

ओम भारती

भीतरी रेखांकन

अमृतलाल वेगड़

कार्यालय

प्रगतिशील वसुधा

मायाराम सुरजन स्मृति भवन

शास्त्री नगर, पी.एण्ड.टी. चौराहा, भोपाल (म.प्र.) 462003

टेलीफैक्स : 0755-2773290, मोबाइल : 09425392954, 09425018290

ई-मेल : vasudha.hindi@gmail.com

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc. No. 4857
Dated 26.12.2023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादकीय सम्पर्क

स्वयं प्रकाश
3/33, ग्रीन सिटी, ई-8 अरेरा कॉलोनी भोपाल,
फोन-2562960 मो. 94250-18290

राजेन्द्र शर्मा
एम-24, निराला नगर, दुष्यंत मार्ग, भदभदा रोड, भोपाल-462003
फोन : 2761253 मो. 94253-92954

vasudha.hindi@gmail.com

शब्दांकन : राजेश प्रजापति मो. 99936-11459
मुद्रक : महेन्द्र गगन, पहले पहल प्रिंटरी, भोपाल, फोन 2555789

निवेदन

प्रगतिशील वसुधा के एक वर्ष में चार संकलन प्रकाशित होते हैं। व्यक्तिगत ग्राहक इन चारों संकलनों को डाक द्वारा प्राप्त करने के लिए 250/- रुपये तथा संस्थाएं 450/- रुपये की सहयोग राशि का भुगतान 'प्रगतिशील वसुधा' भोपाल के नाम से देय डिमांड ड्राफ्ट के रूप में ही करें। चैक भेजने की दशा में बैंक चार्ज 35/- रु. अतिरिक्त शामिल करें। बिना नाम पते के कोरे संदेश कूपन वाले मनिआर्डर से हमें व्यवस्थापकीय और अन्य शहरों के चेक से हमें आर्थिक असुविधा होती है।

नमूने की प्रति या किसी विशेष अंक को मँगाने के लिए पत्र के साथ पचास रुपए के डाक टिकिट अवश्य भेजें। पुराने अंक उपलब्धता के आधार पर ही भेजे जा सकेंगे। माँग के अनुरूप अंक उपलब्ध न होने पर अगला अंक भेज दिया जायेगा।

'वसुधा' का एक बचत बैंक खाता इलाहाबाद बैंक, टी.टी. नगर ब्रांच भोपाल में है। हमारे सहयोगी अन्य शहरों से भी इलाहाबाद बैंक में हमारे खाते में अपनी सहयोग राशि सीधे जमा कर सकते हैं। खाता क्र. 20437443131 है। राशि जमा करने के उपरांत कृपया एक पोस्ट कार्ड से हमें सूचना अवश्य दें।

कृपया सभी पत्र व्यवहार सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही करें तो हमें सुविधा होगी। सहयोग बनाए रखें।

एक प्रति का मूल्य : 50/- रुपये मात्र

विदेश में : $ 10

प्रगतिशील वसुधा का यह अंक अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
इस तकनीकी सहयोग के लिए हम युवा कथाकार पंकज सुबीर के आभारी हैं।
http://pragatisheelvasudha.blogspot.in

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

प्रकाशकीय
राजेंद्र शर्मा – 5
सम्पादकीय
स्वयं प्रकाश – 7
श्रद्धांजलि स्मरण
महाप्रस्थान: भगवत रावत: ओम भारती – 13
धीरे-धीरे उठकर (एक गीत): माहेश्वर तिवारी – 16
भागीरथी के बेटे थे विद्यासागर नौटियाल: एस. राजेन टोडरिया – 17
जिन्होंने कैमरे से राजनीतिक कार्य किया: विनीत तिवारी – 32
अरुण का मेरापन: लीलाधर मण्डलोई – 26
समझ आलोचक की, मन कथाकार का: नीरज कुमार – 29
शताब्दी स्मरण
बलराज साहनी: एक जीवन एक अभिनय: डॉ. करनजीत सिंह – 38
गैरफिल्मी, फिल्मी-कथा : प्रहलाद अग्रवाल – 46
गर्म हवा के निर्देश एम.एस. सथ्यू से पवन मेराज़ की बातचीत – 49
रवीन्द्रनाथ ठाकुर: कुछ यादें: बलराज साहनी – 53
पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी: बलराज साहनी – 62
अंतर्पाठ
सोन के बालू में बाणभट्ट की तलाश: गजेंद्र पाठक – 64
कविताएँ
मलय – 75, सुधीर सक्सेना – 78, शैलेय – 82, आशुतोष कुमार झा – 84,
विपिन चौधरी – 86, ऋषिकेश राय – 88
अंतर्पाठ
भाषा के मर्म का उत्खनन करती एक छोटी कविता: सवाई सिंह शेखावत – 89
मुर्दहिया पर विशेष
प्रो. तुलसीराम से डॉ. वंदना चौबे और सुचिता त्रिपाठी की बातचीत – 92
संघर्ष और स्वप्न की कथा: रमाकांत श्रीवास्तव – 105
दलित आत्मकथा में दलित स्त्री: कृपाशंकर चौबे – 114
शोध आलेख
स्त्री संघर्ष की गाथा: थेरीगाथा: डॉ. नीलिमा पाण्डेय – 117
थेरीगाथा – 123

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंजाबी कहानी

समकालीन पंजाबी कहानी: जसविन्दर कौर बिन्द्रा - 126
बदलते समीकरण: गुरमीत कडियालवी - 133
ज़ख़्म: जिंदर - 140
आदि डंका: भगवंत रसूलपुरी - 150

कविताएँ

बद्रीनारायण - 167, कुलजीत सिंह - 168, प्रतापराव कदम-अनिल मिश्र -169, प्रभात त्रिपाठी - 170, मिथिलेश श्रीवास्तव - 171

कहानी

चेंग-चुई : पुरुषोत्तम अग्रवाल - 172

साहित्यिकी

रामचन्द्र शुक्ल और रस-मीमांसा: डॉ. सविता भार्गव - 176

सामयिकी

सामाजिक चिंतन का वर्तमान आयाम: डॉ. राखी रॉय हल्दर - 180
आर्थिक संवृद्धि पर टिका असंतुलित विकास: डॉ. कृष्ण कुमार - 185

परसाई का पुनर्पाठ

काइयांपन के रूप (एक लड़की पांच दीवाने): वेद प्रकाश - 190

किताब के बहाने

कमला प्रसाद: काम की धुन में रमा आदमी: मधुरेश - 205
समय के सत्य की पहचान: नवलकिशोर - 215

कुछ अपनों से कुछ अपनी सी

कैसी आगी लगायी के नैरेटर साजिद के नाम एक ख़त: सुल्तान अहमद - 217

किताब चर्चा

ग़मखाने में रूहानियत की रौशनी: मुकेश वर्मा - 223
भेद खोलेगी बात ही का मिज़ाज: अभिजीत सिंह - 229
क़िस्सा कोताह: डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल - 233
बाई हिम्मत मत हारिओ उर्फ़ एक कस्बे के नोट्स: पल्लव - 236
लहर, संगीत और भावों की कविता: शैलेन्द्र चौहान - 239
दो कविता पुस्तकें: दो वयस्क कवि: कमल जैन - 241
रंगों और कूचियों से बना चित्र संसार: ओम भारती - 245
पाठकों की सांसों मे हस्तक्षेप करती हुई कविताएँ: मोहन कुमार डेहरिया - 247
आम लोक की कहानियों का लोकतंत्र: डॉ. अनंत भटनागर - 249
बोधिसत्व कभी नहीं आयेंगे!: माताचरण मिश्र - 252
भूमण्डलीकरण का परिदृश्य और कहानी का सच: डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी - 254

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकाशकीय

'ओफ़्फ़ मैं तो भूल ही गया
मुझे एक छट्ठी में जाना है
और एक श्राद्ध में.... '

अरुण कमल की इन पंक्तियों को पढ़ते हुए जाने क्यों ऐसा लगा कि हमारी साहित्यिक दुनिया अचानक प्रौढ़ हो गयी है। अब हमें अपने महान पूर्वजों की जन्म-शताब्दियों के उत्सव में शिरकत करनी है और समकालीन अग्रजों की दुखद विदाई के क्षण एक साथ और लगातार देखने पड़ रहे हैं। यह जीवन का कठिन कार्यभार है।

बलराज साहनी, एक संवेदनशील अभिनेता थे। अभिनय के संस्कार उन्हें इप्टा से मिले थे। धरती के लाल, दो बीघा जमीन, काबुलीवाला, गर्म हवा जैसी फिल्मों में उनके अभिनय की ऊँचाईयों को देखा जा सकता है। शुरुआती दौर में वे कहानियां लिखा करते थे। गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से अंग्रेजी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने हिन्दी में कई कहानियां लिखीं। विशाल भारत, भारत मित्र जैसे पत्रों में प्रकाशित इन कहानियों ने उन्हें अपने समय के एक महत्त्वपूर्ण कथाकार के रूप में प्रतिष्ठा दिला दी थी। उन्हें कोलकाता प्रवास के दौरान अज्ञेय और शांति निकेतन में रहते हुए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का साथ मिला। शांति निकेतन से वापसी के वक्त गुरुदेव से हुई बातचीत ने उन पर कुछ ऐसा असर डाला कि उन्होंने सिर्फ़ और सिर्फ़ पंजाबी में ही लिखना शुरू कर दिया। आज वे आधुनिक पंजाबी साहित्य के महत्त्वपूर्ण प्रवर्तक स्तंभ माने जाते हैं। कहानियां, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, यात्रा वृत्तांत, डायरी लेखन (और एक अधूरा उपन्यास भी) सभी विधाओं में वे एक श्रेष्ठ गद्यकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। इप्टा के लिए उन्होंने दो नाटक लिखे और अपनी कविताओं की एक किताब भी प्रकाशित करवाई। यह सब कुछ 'बलराज-संतोष साहनी समग्र' में हिन्दी अनुवाद के रूप में उपलब्ध है जिसे बलदेव राज गुप्ता के सम्पादन में वाराणसी के हिन्दी प्रचारक संस्थान ने प्रकाशित किया। इस समग्र संकलन को तैयार करने में उनकी पत्नी संतोष साहनी और छोटे भाई भीष्म साहनी ने मदद की थी। इस समग्र सामग्री का पंजाबी से हिन्दी अनुवाद इतना सहज है कि बलराज आज हमें अपनी हिन्दी के लेखक ही लगते हैं।

शताब्दी स्मरण के सिलसिले में इस अंक में बलराज साहनी की कुछ रचनाएं इसी समग्र संकलन से साभार ली गई हैं। आधुनिक पंजाबी गद्य साहित्य में उनके योगदान को निरंतरता में देखने के लिए डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा ने समकालीन पंजाबी कहानी की दशा और दिशा को विश्लेषित करता हुआ एक आलेख हमारे लिए विशेष रूप से तैयार किया और तीन समकालीन पंजाबी कहानियों के अनुवाद भी उपलब्ध कराये।

वाराणसी की डॉ. सुचिता त्रिपाठी और डॉ. वंदना चौबे ने हमारे समय के महत्त्वपूर्ण चिंतक प्रो. तुलसीराम से उनकी आत्मकथा 'मुर्दहिया' को केन्द्र में रखकर एक जरूरी बातचीत की है। 'मुर्दहिया' के युगांतरकारी महत्त्व को देखते हुए डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव और कृपाशंकर चौबे ने उस पर हमारे लिए समीक्षात्मक आलेख तैयार किये। प्रो. तुलसीराम गौतम बुद्ध को भारतीय संदर्भों में दलित और स्त्रियों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की स्थिति पर पहला क्रांतिकारी विचारक मानते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने भी सुविचारित ढंग से धम्म की दीक्षा ली थी। संघ में स्त्रियों के प्रवेश और उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में थेरीगाथाओं पर डॉ. नीलिमा पांडेय ने विस्तार से लिखा और थेरीगाथाओं के अनुवाद भी हमें उपलब्ध कराये।

अन्य सामग्री के साथ साथ स्त्री विमर्श के संदर्भ में ही बाणभट्ट की आत्मकथा और एक लड़की पांच दीवाने का पुनर्पाठ क्रमशः गजेन्द्र पाठक और वेदप्रकाश ने प्रस्तुत किया है। टामस ट्रांस टोमर अपनी एक छोटी सी कविता के बहाने मनुष्य भाषिक व्यवहार पर जैसी तीखी टिप्पणी करते हैं, सवाई सिंह शेखावत ने उसे खोलकर देखने की कोशिश की है।

प्रख्यात समालोचक मधुरेश ने हमारे विशेष अनुरोध पर कमला प्रसाद जी अंतिम प्रकाशित आलोचना पुस्तक के बहाने कुछ जरूरी बातें की हैं। नवल किशोर जी ने भी इसी पुस्तक पर अपनी एक संक्षिप्त समालोचकीय टिप्पणी की है। खुशी की बात है कि मधुरेश जी अब वसुधा में निरंतर लिखेंगे।

यह सब तो आप पढ़ेंगे ही तब भी इसके बारे में इतनी बात करने का प्रयोजन यही है कि हम अपने लेखक मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करने के साथ-साथ इस अंक के प्रकाशन में हुए विलम्ब के बारे में आपके सामने थोड़ी सी सफाई दे लें। अयाचित सामग्री के बेतरतीब संकलन के बजाय हम आग्रह करते हुए अपने लेखकों से वांछित सहयोग मांगते हैं। सभी की अन्यत्र व्यस्तताओं के चलते इस अंक के लिए सामग्री संकलन में इस बार अनपेक्षित विलम्ब हो गया। उम्मीद है कि आप सभी इसे सहयोगी भाव से ही देखेंगे।

– राजेंद्र शर्मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादकीय

पश्चिम बंगाल में वामपंथियों का पैंतीस साल पुराना शासन उखाड़ फेंकने वाली फायर ब्रांड नेता ममता बनर्जी एक कार्टून से इतना डर गयीं कि उनहोंने कार्टूनिस्ट को जेल की सलाखों के पीछे पहुंचा दिया, उन्होंने पुस्तकालयों से कहा कि वे केवल श्रेष्ठ साहित्य ही खरीदें। उन्हें मार्क्स-एंगेल्स से भी तकलीफ हो गयी और उनहोंने फ़रमाया कि इन्हें पाठ्यपुस्तकों से निकाल बाहर किया जाए। इतना ही नहीं, इस भद्र कलाप्रेमी और सुसंस्कृत महिला ने सुना है कलकत्ता में ऐसे होर्डिंग्स लगवाए हैं जिन पर लिखा है कि कम्युनिस्टों से कोई सम्बन्ध नहीं रखा जाए, उनकी सभाओं में न जाया जाए और उन्हें शादी-ब्याह आदि में भी न बुलाया जाए। इससे पहले वह राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के लिए अपनी मर्जी से दो सज्जनों को उम्मीदवार बताकर मुंह की खा चुकी है और जाओ, मैं तुम्हारे घर खाना खाने नहीं आऊँगी टाइप के नाटक कर चुकी हैं। केन्द्रीय रेलमंत्री श्री त्रिवेदी को जिस तरह हटाया गया वैसा तो पहले कभी नहीं हुआ। कायदे से होना तो यह चाहिए था कि यदि ममता रेलमंत्री से खुश नहीं थीं तो पहले वह उन्हें पार्टी विरोधी गतिविधियों के लिए पार्टी से निष्कासित करतीं और प्रधानमंत्री को इसकी सूचना देतीं। फिर प्रधानमंत्री उनसे इस्तीफ़ा मांगते और ममताजी से पूछते कि क्या वह इनके स्थान पर किसी और पार्टी सांसद को रेल मंत्री के लिए नामज़द करना चाहेंगी ? वह एक नया नाम सुझातीं, उन्हें नियुक्त किया जाता, वह पद और गोपनीयता की शपथ लेते..और जब तक यह सब होता, रेल राज्य मंत्री रेल मंत्रालय का सारा कामकाज (जिसमें बजट पास करवाना भी शामिल है) सम्हालते।

इसे एक अनुभवहीन क्षेत्रीय नेता की नगरपालिका स्तरीय हरक़त मानकर दरगुज़र नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसी ही विवेकपूर्ण हरकतें और संग्रहणीय सुभाषित और जगहों से भी देखने-सुनने को मिल रहे हैं।

मसलन एन सी ई आर टी की एक पाठ्यपुस्तक में प्रकाशित आंबेडकर के एक कार्टून को देखकर कुछ लोगों की भावनाएं इस कदर आहत हो गयीं कि वे सरकार से इस पुस्तक को ही हटाने की मांग करने लगे। शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ने तीन लोगों की एक कमिटी बैठा दी। कमिटी ने कहा कि हाँ, ऐसे कार्टूनों को हटा दिया जाना चाहिए। लेकिन कमिटी के एक सदस्य श्री पांडियन इस फैसले से सहमत नहीं थे। उन्होंने अपनी असहमति ज़ाहिर भी कर दी और छपवा भी दी। (द हिन्दू, 4 जुलाई) श्री पांडियन के अपने तर्क थे और उनमें वज़न भी था, लेकिन जहाँ पहाड़ उड़ रहे हों वहां रूई का भाव कौन पूछे!! कल ही सुप्रीम कोर्ट के एक जज ने कहा है कि कोर्ट में वकीलों की हिंसा इसी तरह बढ़ती रही तो वो दिन दूर नहीं जब जजों को हेलमेट पहनकर कोर्ट आना पड़ेगा। इसके एक दिन पहले यानी परसों उत्तर प्रदेश के एक माननीय मंत्री महोदय ने कहा था कि अच्छी पढाई के लिए बच्चों की पिटाई ज़रूरी है। इससे एक दिन पहले छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्री रमन सिंह ने कहा था कि बेटा बलात्कार भी करे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
तो उसे निर्दोष माना जाना चाहिए और उसके बाप को दोषी माना जाना चाहिए, क्योंकि डी एन ए तो उसे बाप ने ही दिया है!! पूछा जा सकता है कि ऐसा गन्दा डी.एन ए देने के लिए यदि अपराधी के बाप को दोषी माना जा सकता है तो बाप के बाप को या उनके भी बाप को क्यों नहीं। सुना है रमन सिंह जी डाक्टर हैं! खैर ..इसके एक दिन पहले गुवाहटी में अनेक होनहार चिरंजीवियों द्वारा बीच सड़क पर एक बच्ची को पीटने और उसके कपड़े फाड़ने के दृश्य अनेक चैनलों पर बार बार दिखाए गए और दिमाग यह सुनकर खराब हुआ कि यह सब एक चैनल द्वारा अपनी टी आर पी बढ़ाने के लिए प्रायोजित किया गया था। इससे कुछ ही दिन पहले बागपत की एक पंचायत ने....क्षमा कीजियेगा...महापंचायत ने, सर्वसम्मति से एक फैसला सुनाया था कि लड़कियां मोबाईल नहीं रखेंगी, चालीस साल से छोटी उम्र की जनानियाँ अकेली हाट-बाज़ार नहीं जायेंगी औए जो प्रेम विवाह करेगा उसे गाँव से निकाल दिया जाएगा। इस फैसले का समर्थन करने वाले पढ़े-लिखे भी कम नहीं थे। आपको याद होगा पिछले साल जब अरविन्द केजरीवाल ने कहा था कि अनेक सांसद भ्रष्ट हैं तो कई सांसद बुरी तरह भड़क गए थे। उनका कहना था कि हमारे बारे में कुछ भी कहना है तो चुनाव लड़कर संसद में आओ (जहाँ की कार्रवाई पर कोर्ट भी कुछ नहीं कर सकती) खैर...केजरीवाल जो बात खुलकर नहीं कह सके वह तिग्मांशु धूलिया ने कह दी। उन्होंने अपनी फिल्म पानसिंह तोमर में कहलवा दिया बीहड़ में तो बागी रहते हैं...डकैत तो पार्लिआमेंट में मिलेंगे। और शान्ति निकेतन में जो कुछ हुआ उसे देखकर तो रविंद्रनाथ की आत्मा रो पड़ी होगी। एक बच्ची ने नींद में बिस्तर गीला कर दिया। दंडस्वरूप उसकी वार्डेन ने उससे अपना पेशाब चाटने को कहा। हैरानी की बात है कि स्वमूत्र पान को एक चिकित्सा बताते हुए स्वामी अग्निवेश ने नेशनल टेलीविज़न पर वार्डेन के इस कृत्य का समर्थन किया।

हमारे समाज में बढ़ती इस संवेदनहीनता और असहिष्णुता को हमें रोड रेज, ऑनर किलिंग और कन्या भ्रूण हत्या से भी जोड़ कर देखना चाहिए। आप चाहें तो इसमें छोटी-मोटी चोरी के लिए भीड़ द्वारा सड़क पर चोर की पिटाई, कूड़े में या ट्रेन में छोड़ दिए गए नवजात बच्चे और स्टेशन पर या अस्पताल में बूढ़े माँ-बाप को बैठाकर गायब हो गए सुपुत्रों को भी जोड़ सकते हैं।

इस दृश्य से अनेक चीज़ें साफ हो जाती हैं। पहली तो यह कि संस्थाएं यथा पुलिस, प्रशासन आदि अपनी विश्वसनीयता पूरी तरह खो चुकी हैं दूसरी यह कि विकास दर या जी.डी.पी. देश की समृद्धि का पैमाना नहीं है। यह समृद्धि हमारे लिए सुख-शांति और स्वस्ति लेकर नहीं आने वाली है क्योंकि यह भयंकर आर्थिक असमानता को जन्म दे रही है जिसका परिणाम विद्रोह और अराजकता ही हो सकता है। तीसरी यह कि अनियोजित-असंतुलित और अनियंत्रित विकास, समाज में आर्थिक अनिश्चितता, सामाजिक असुरक्षा की भावना और लूट-खसोट क़ी जीवन शैली को जन्म देता है जिससे अंततः देश और समाज टूट जाता है। चौथे पूंजीवाद हमारे यहाँ अपने सबसे विकृत रूप में -अपनी समस्त अच्छाइयां-यथा समय की पाबंदी, श्रम क़ी प्रतिष्ठा, नियम-कायदों का पालन, असहायों विकलांगों और मूक पशुओं के लिए सहानुभूति की भावना, प्रत्येक व्यक्ति की निजता का सम्मान, परस्पर संवेदनशीलता और नागरिक सभ्यता आदि-छोड़कर-आया है। इसने सामंतवाद से लड़ने का ज़रूरी काम करने की बजाय उससे समझौता कर लिया है और देश को अनंतकालीन आर्थिक अनिश्चितता की दलदल में लाकर पटक दिया है। यह सांस्कृतिक विनाश, स्मृतिलोप, लूटपाट और बर्बरता बिलकुल उसी तरह बढ़ रही है जैसी कि वे चाहते थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो क्या पूंजीवाद हमें असभ्य, उजड्ड और हिंसक बना रहा है ?

लेकिन सवाल यह है कि क्या हम असभ्य, उजड्ड और हिंसक बनने से इनकार कर सकते हैं ? क्या इसे जीने और बचे रहने की आवश्यक अर्हता के रूप में स्वीकार नहीं करवा लिया गया है ? क्या सर्वाइवल ऑफ़ द फिटेस्ट का सिद्धांत अपने सबसे अधिक विकृत और जंगली रूप में हमारे गले नहीं उतारा जा रहा है ? क्या शिक्षा-स्वास्थ्य और नागरिक सुविधाओं को अमीरों के लिए सुरक्षित नहीं किया जा रहा है ? क्या आदिवासियों, किसानों, असंगठित मजदूरों और हाशिये के समाजों को भूल जाने के लिए हमें प्रेरित नहीं किया जा रहा है ? क्या लम्पटता, कुटिलता, क्षण जीविता और आत्मकेन्द्रीयता को जीवन दर्शन के रूप में प्रतिपादित नहीं किया जा रहा है ? क्या ईमानदारी को बेवकूफी, पर दुःख कातरता को बेकार की भावुकता और वफादारी को मूर्खता साबित नहीं किया जा रहा है ? विश्वास न हो तो हू मूव्ड माय चीज़ से लेकर रिच डेड पूअर डेड तक वे किताबें एक नज़र देख लीजिये जो आपके-हमारे बच्चों को मेनेजमेंट की कक्षाओं में तथा जीवन जीना सिखाने वाली किताबों के माध्यम से पढ़ाई जा रही हैं। यदि आपका बेटा आपके साथ दुश्मन, बॉस या अजनबी की तरह व्यवहार करने लगा है और आपकी बेटी अपनी माँ को मूर्ख, पिछड़ी हुई या हंसने की चीज़ समझने लगी है ..तो वह अपने मन से ऐसा नहीं कर रही है... उसे ऐसा करने के लिए बाकायदा तैयार किया गया है।

विडम्बना यह है कि जो लोग इसे समझ रहे हैं और आर-पार देख पा रहे हैं वे भी इसे विकल्पहीन मान बैठे हैं न जाने क्यों हमने मान लिया है कि इस स्थिति का प्रतिकार और परिवर्तन राजनीति ही कर सकती है और राजनीति चूंकि पूंजी की क्रीतदास हो चुकी है इसलिए अब कुछ नहीं हो सकता। जनशक्ति पर से हमारा विश्वास पूरी तरह उठ चुका है। कई लोग तो कुछ अजब नहीं जो मन ही मन किसी अवतार की प्रतीक्षा करने लगे हों!!

विडम्बना यह भी है कि जनशत्रु पहले कभी भी से अधिक संगठित हैं और जनपक्ष बुरी तरह विखंडित। अकेला वाम टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त होकर हाशिये पर पहुँच चुका है, अनेक विधानसभाओं में उसका एक भी प्रतिनिधि नहीं है। वह दिन भी आ सकता है जब उसे कुल्हड़ या फूल या ऐसे ही किसी चुनाव चिन्ह पर चुनाव लड़ना पड़े। अस्मितावादी दर्शन ने वर्गवादी विचारधारा को चलन से बाहर कर दिया है हिंदी साहित्य की नयी पीढ़ी से वैचारिक प्रतिबद्धता लगभग विलुप्त हो चुकी है। हिंदी में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श को चलते लगभग पच्चीस साल हो चुके हैं। समय आ गया है जब इनकी उपलब्धियों अथवा योगदान की समीक्षा की जानी चाहिए।

प्रतिरोध के हमारे बहुत सारे औज़ार भोंथरे और निष्प्रभावी हो चुके हैं। हमारी सोच को भी समय-समय पर ओवर हौलिंग की ज़रुरत होती है। कितनी आसानी से हम कह देते थे सामाजिक परिवर्तन या सामाजिक चेतना या सामाजिक प्रतिबद्धता या सामाजिक हित। जिस समाज की हम बात करते थे वह कहाँ है ? किसी भी स्थानीय समाचार पत्र का तीसरा पृष्ठ खोलकर देख लीजिये। वहां आपको बहुत सारे समाज नज़र आयेंगे -- कोली समाज, खंडेलवाल समाज, कायस्थ समाज, औदित्त्व ब्राह्मण समाज, तेरापंथी जैन समाज, माली समाज, मेघवाल समाज .....इनमें से किस समाज की बात कर रहे थे आप ?? हम जिस समाज की बात कर रहे थे वह कहाँ है ?

उस समाज को बाज़ार ने नष्ट किया है। लेकिन हम फिर से उस समाज को बना सकते हैं। बाज़ार ने हमें वस्तुमोही, आत्मकेंद्रित और क्षणजीवी बनाया है तो हम सहकार, सहयोग और साझेदारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वारा अपना खोया हुआ समाज दोबारा हासिल कर सकते हैं। बाज़ार ने हमें एक ऐसी जीवन शैली में अनुकूलित किया है जिसने हमें अकेला, असहाय और अवसादग्रस्त बनाया है। तो जवाब में हम एक ऐसा जीवन रच सकते हैं जिसमें यार-दोस्तों -प्रेमियों -भले लोगों और हम ख्यालों के लिए पर्याप्त से ज्यादा जगह हो। पहले मोहल्ले में कोई आये तो सारे मोहल्ले को मालूम हो जाता था, अब पड़ौस के फ्लेट में कोई मर भी जाए तो पता तब चलता है जब जनाज़ा बाहर निकलता है। पहले अतिथि का आगमन प्रसन्नता लाता था, अब तीन कमरों के मकान हैं, माँ -बाबूजी भी आ जाएँ तो बच्चों को असुविधा होने लगती है। चार लोगों के बैठने लायक गाड़ी है। मेहमान या मित्र आ जाए तो बच्चों से कहना पड़ता है तुम ऑटो करके आ जाना। यह सब हम बदल सकते हैं। हम रेल से यात्रा करते हैं तो पत्रिका खोलकर बैठ जाते हैं, सहयात्रियों से बातचीत नहीं करते। और 'आइये साहब! खाना खाइए' तो इतिहास की बात हो गयी है रेलवे खुद हमें सावधान रहने को कहती है- हो सकता है खाने में ज़हर मिला हो। परस्पर अविश्वास की इस भंगिमा को हम झटक सकते हैं। हम बच्चों को कह सकते हैं कि वे जब चाहें अपने दोस्तों को (और प्रेमी या प्रेमिका को भी) घर बुला लें। हम उन्हें ट्वीटर, फेस बुक या अन्य किसी साईट पर अपने पुराने संपर्क ताज़ा करने या बनाये रखने को अनुमोदित कर सकते हैं। एक कटोरी चीनी देना बहनजी अब मुमकिन नहीं तो कोई बात नहीं पड़ोसनों के साथ बीसी, सावन की तीज और वार-त्यौहार अब भी मुमकिन हैं।

किसी ज़माने में सरिता नामक पत्रिका कहती थी जब आप मांग कर खाते नहीं, मांग कर पहनते नहीं तो पत्रिका मांग कर क्यों पढ़ते हैं? जबकि ब्लिट्ज कहता था अपना ब्लिट्ज मिल-बाँट कर पढ़िए। हम आपसे कहते हैं अपनी वसुधा मिल-बाँट कर पढ़िए, पुराने अंकों क़ी बहुत फरमाइश हमारे पास आती है जिसे हम पूरा नहीं कर पाते। किताबें ऐसी जगह रखिये जहाँ सबको दिखाई दें। कोई पुस्तक चोरी हो जाए तो दुखी होने की बजाय खुश हों। आपने जो भी बढ़िया और महत्त्वपूर्ण पढ़ा हो उसे नेट पर डाल दें। फेसबुक आदि पर मित्रों के साथ उसके गुण-दोष पर चर्चा करें। पड़ोसियों या सहकर्मियों के साथ पूल डिनर या गोंठ के आयोजन अवश्य करें। एक बार हमारे मित्र शम्भुनाथ जी ने कलकत्ता में एक साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन किया। वह चाहते तो बड़े मज़े से बाज़ार से स्वल्पाहार की व्यवस्था कर सकते थे लेकिन उन्होंने प्रतिभागियों और आमंत्रित श्रोताओं से कहा कि अपने-अपने घर से आलू की सूखी सब्जी और आठ -आठ पूड़ियाँ लेकर आयें। प्रतिभागियों और श्रोताओं द्वारा लायी गयी पूड़ी-सब्जी को मिला लिया गया और कार्यक्रम के बाद इसे सबने साथ बैठकर मिल-बांटकर खाया। सेठाश्रयी या सत्तापोषित पांच सितारा आतिथ्य के अभ्यर्थी मर भी जाएँ तो उन्हें ऐसा आनंद नहीं आएगा। छोटी-छोटी बातें कभी-कभी जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को पूरी तरह बदल देती हैं और युगधारा को भी बदलने में सहायक हो सकती हैं। यदि गिलहरियाँ सोच लेतीं कि हमारे एक कंकड़ ले जाने-न ले जाने से क्या फर्क पड़ेगा तो शायद रामचंद्र जी का सेतु कभी नहीं बन पाता।

और जहाँ तक राजनीति की बात है, यह विचारणीय है कि क्या पश्चिमी शैली की पार्टी राजनीति भारत जैसे देश में कारगर हो सकती है? पिछले साठ साल का अनुभव तो यही बताता है कि इस प्रकार की राजनीति हमारे लोगों के दिलों में जगह नहीं बना पाती। कोरी संसदीय राजनीति न त्वरित परिवर्तन का माध्यम बन सकती है न जनाकांक्षा को ठीक से समझ सकती है। वह मात्र पश्चिम की नक़ल कर सकती है। नकलची विकास, नकलची शिक्षा, नकलची प्रशासन व्यवस्था, नकलची नगर नियोजन और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ तक कि कला-संस्कृति भी नकलची वर्ना भला बताइये भारत जैसे गरम देश में जहाँ पानी की हमेशा कमी रहती है, प्रदर्शनकारियों पर वाटर कैनोन छोड़ने का क्या मतलब है? विचारणीय है कि औद्योगिक युग समाप्त हो चुका है। श्रमशक्ति अब सिर्फ ठेके पर-दिहाड़ी पर या असंगठित रह गयी है। औद्योगिक सर्वहारा का मध्यवर्गीकरण हो चुका है और मध्यवर्ग का अपार विस्तार हो चुका है, उसकी क्रयशक्ति को बाज़ार की ज़रुरत के मुताबिक बढ़ाया जा चुका है और उसे पूरी तरह सुविधाजीवी और वस्तुमोही बनाया जा चुका है। छोटे किसान अपने अस्तित्व के लिए और आदिवासी अपने जीवन के लिए एक हारी हुई लड़ाई लड़ रहे हैं। बड़े किसान और उद्योगपति सत्ता पर काबिज हैं राष्ट्रीय स्तर के पूंजीपति विदेशी कम्पनियों का अधिग्रहण कर रहे हैं।

ऐसी सूरत में जैसे हमने सर्वहारा की तानाशाही को छोड़ दिया, हमें इस धारणा को भी छोड़ देना चाहिए कि सुधार क्रांति का दुश्मन होता है। इस समय शायद भारत में वही राजनीति कामयाब हो सकती है जो राजनीति के साथ एक सामाजिक आन्दोलन भी हो। हमने खुद अपनी जनसम्बद्धता को राजनीतिक सवालों तक सीमित कर लिया है। जनता को पता ही नहीं है कि हम उनके लिए जीवन उत्सर्ग करने निकल पड़े हैं। उन्हें पता चलेगा तो वे पूछेंगे- 'आपने किससे पूछकर ऐसा किया? क्या हमने आपसे ऐसा करने के लिए कहा था? एक बार पूछ तो लेते!!' निस्वार्थ उत्सर्ग की जैसी भावना कम्युनिस्टों में है और किसी में नहीं। और लोग राजनीति को पेशा या कैरियर समझते हैं, हम दुनिया को बेहतर बनाने का साधन! हम ही हैं जो 'थिंक ग्लोबल, एक्ट ग्लोबल' पर अमल कर सकते हैं।

हमें गाँधी को याद करना चाहिए। स्वराज से सफाई तक और अर्थशास्त्र से विदेश नीति तक हर विषय पर उनकी एक निश्चित राय थी--वह किसी को अच्छी लगे या नहीं। लोग अपनी समस्या लेकर उनके पास आते थे और समाधान पाकर जाते थे। लोगों ने उन्हें बापू कहा। वह एक स्वतंत्र और निर्भीक चिन्तक थे। उनके पास विकल्प था। क्या हमारे पास है?

यदि हम भी मुक्त व्यापार, प्रतिरक्षा खर्च, परमाणु ऊर्जा, पूंजीवादी विकास, आई एम एफ़, वर्ल्ड बेंक, एलोपेथिक चिकित्सा अंग्रेज़ी की अनिवार्यता, सेज और मुक्त प्रतिस्पर्धा को उचित मानते हैं तो फिर हमारी ज़रुरत ही क्या है? फिर हम आलोचना किसकी कर रहे हैं? हमें शिक्षा, विकास, योजना, नागरिक प्रशासन, विदेश नीति, भाषा, जाति-धर्म-अस्मिता ..सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में वैकल्पिक नक़्शे तैयार करने चाहिए और जनता को बताना चाहिए। जब हम कहें यह गलत है तो जनता ज़रूर पूछेगी कि फिर सही क्या है? हमारे पास इस सवाल का जवाब होना चाहिए। कायल कर देने वाला जवाब। क्या हम ऐसा नहीं कर सकते? क्या यह असंभव है? क्या भारत के वामपंथी चिन्तक, विचारक, बुद्धिजीवी इतने निस्तेज और निर्वीर्य हो चुके है कि यह ज़रूरी काम नहीं कर सकते ?

• • •

भगवत रावत भोपाल की साहित्यिक बिरादरी के लिए एक सर्व प्रणम्य बुजुर्ग जैसे थे। उनके दोनों गुर्दे खराब हो चुके थे, लेकिन उनकी जिजीविषा अदभुत थी। उनकी रचनाशीलता अथक थी। वह हर चीज़ की खबर रखते थे। कमलाप्रसाद जी के बाद भगवत रावत का जाना भोपाल को और खाली कर गया। हिंदी कविता के घर से एक अद्भुत जनकवि घर छोड़कर चला गया।

अरुण प्रकाश अपनी कहानियों-भैया एक्सप्रेस, जल प्रांतर, बेला एक्का लौट रही है आदि के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए तो याद किये ही जायेंगे, उनका आलोचनात्मक कार्य (वसुधा में प्रकाशित, और अब पुस्तक रूप में भी उपलब्ध 'गद्य की पहचान', अंतिका प्रकाशन) भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। आशा है इसका उचित मूल्यांकन होगा।

इस बीच मृणाल गोरे, कप्तान लक्ष्मी सहगल, मेंहदी हसन, दारासिंह और राजेश खन्ना भी चले गए। हमारी श्रद्धांजली।

प्रसिद्ध चिन्तक और 'अकथ कहानी प्रेम की' के यशस्वी लेखक पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपनी पहली कहानी हिंदी संसार के सामने लाने के लिए 'वसुधा' को चुना--हमें ख़ुशी है। गल्प की दुनिया में खुशामदीद।

और अंत में...

अपनी जोहरा सहगल सौ साल की हो गयीं मानो शरारत से मुस्कराते हुए कहती हों --जीवेत शरदः शतम्??। ओ के, आय डोन्ट माइन्ड!

- स्वयं प्रकाश

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाप्रस्थानः भगवत रावत

ओम भारती

कुछ माह पहले मेरे अग्रज और बड़े कवि भगवत रावत ने मुझे उनकी नयी कविता-पुस्तक '**कवि ने कहा**' (स्वयं कवि द्वारा चयनित कविताएं) दी थी, तो मैंने कहा था कि 'अभी तो आपसे आपका नया संग्रह भी लेना है। उसकी तैयारी कीजिये, जल्दी।' लेकिन उस रोज लेश मात्र आशंका भी नहीं थी कि वे हमें छोड़कर इतने शीघ्र महाप्रस्थान कर जायेंगे। अद्‌भुत-अपूर्व जीवट के साथ वे जी रहे थे, और मृत्यु से डटकर लोहा ले रहे थे। बरसों से प्रतिदिन अपने हाथों 'डायलिसिस' करके वे अपनी उम्र का 'स्पान' लम्बा कर रहे होते। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि नाकाम किडनियों वाली देह में उनका जीवित रहा आना देखकर चिकित्सक भी चकित थे। डायलिसिस हेतु जरूरी द्रव्य-औषधि-उपादान उन तक पहुंचाने वाला युवक मुझसे कहता था कि अंकल तो 'बोनस लाइफ' 'अवेल' कर रहे हैं। लगभग चार दशकों पूर्व इंजीनियरिंग के छात्र-जीवन में मैंने इयान फ्लेमिंग का एक अंग्रेजी उपन्यास पढ़ा था-'यू ओनली लिव ट्वाइस'। (बाद में इसी नाम की फिल्म भी आई थी।) इस 'नावेल' का बीज-वाक्य था- *'यू ओनली लिव ट्वाइस। वन्स, वेन यू आर बोर्न-एंड अगेन वेन यू सी डेथ इन योर फेस'*। रावत जी अपनी मृत्यु का चेहरा निरखकर वापस आ गये थे। मुम्बई अस्पताल में उनसे मात खाकर, खिसियाकर पलट गई थी मौत, ताकि वे एक और बार जी लें। इस पच्चीस मई को सुबह साढ़े सात बजे उन्होंने तीसरी बार जीवन जिया, और तत्क्षण मृत्यु के गले में हाथ डाले चले गये। निष्प्राण हो गया उनका रेत-सा तन। जीवन के आंदोलित और सफेन समुद्र में सिर्फ जीवट या हौसले के बूते एक जीर्ण नौका को इतनी दूर तक खे लेने वाले इस अद्वितीय मल्लाह को अंततः एक स्याह विवर में डूब ही जाना पड़ा। वे देह के दुखों के धुंधलके में मानवीय जिजीविषा के प्रकाश की रेखाएं खींचते रहे, और उसी के स्पर्श से प्रस्फुटित रचनाएं हमें देते रहे। हिन्दी कविता-आलोचना के नये अभिमानों को एक तरह से चुनौती देकर वे चले गये। आज उनकी स्मृतियां और उनकी काव्य-रचनाओं के देह-प्राण ही हमारे साथ हैं।

कवि भगवत रावत की स्वयं द्वारा चुनी गयी कविताओं का एक संग्रह 'कवि ने कहा' हाल ही में छपकर आया है। यही उनकी अंतिम कविता पुस्तक है। एक भाषिक विशिष्टता और खुली संवादधर्मिता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के चलते वे आम पाठक के प्रियतम कवि हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनकी कविताओं के अनुवाद उन भाषाओं के लोगों के द्वारा स्वत:स्फूर्त ढंग से खूब किए जाते रहे हैं।

1977 में उनकी पहली कविता-पुस्तिका आई थी, तब वे लिखने के दो दशक पूरे कर रहे थे। पुस्तिका का नाम था। *'समुद के बारे में'* इसमें वे अपनी पैंतीस कविताओं के साथ आए थे, जो समुद्र के बारे में नहीं थीं। पहली ही कविता 'आदमी पर' में उन्होंने अपना सुनिश्चित इरादा रख दिया था- सीधा आदमी पर आना चाहता हूँ।' जब प्रकृति के पास पहुंचे बिना लोग कविता नहीं बना पाते थे, तब यह अटपटा बीड़ा भगवत उठा रहे थे। आदमी में काव्यार्थ था नहीं, उसके पुरुष वीरगाथा काल में सराहे जा चुके थे, स्त्रियाँ रीतिकाल में नापी जा चुकी थीं। पर भगवत रावत ठान चुके थे कि जनसमुद्र एवं उसकी लहरों-हलचलों को बनाने वाले सामान्यजन को ही अपनी कविता का नायकत्व सौंपेंगे। उनका यह संकल्प कभी टूटा नहीं। अगली ही कविता में भगवत रावत काम पर जा रहे बाल श्रमिक पर आए 'अलख सुबह/काम पर जाता हुआ बच्चा/कोहरे में डूबी हुई सड़क/पार कर रहा है।' सड़क यहाँ धुंध में छुपे हुए भविष्य का अनिश्चित-सा रास्ता है, जिस पर कच्ची उम्र ने मजबूरी में अपने पैर बढ़ाए हैं। तुरन्त बाद की कविता 'कटोरदान' में भी वही काम पर जाता हुआ बच्चा है, उसका अलमुनियम का दो डिब्बों वाला कटोरदान सड़क पर गिर गया है जिसमें रूखी रोटियाँ, प्याज की एक गाँठ और दो मिर्चें ही हैं।' यह बच्चे के वर्ग का खुलासा है। उसके अभावों का भी। बहुत कम बोलती कविता है यह, मगर संकेत में कितना कुछ कहती हुई। इसमें जीवन के प्रति संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है, जो अपनी ताज़गी, नएपन और वस्तु से एक जीवित सम्पर्क के बूते भावक के उर में गहरे तक पैठ जाती है। यहाँ असुन्दर में सुन्दर की खोज भी नहीं है। खास बात यह है कि, वंचितों के दैनिक संघर्ष की भाषा को कवि ने पकड़ा, और उसी को बाद में भी अपनी अभिव्यक्तियों का वाहक बनाया, यह सोचे बगैर कि उसमें कविता की गुंजाइश कितनी है! *'अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यं अर्थवत्'* की आदि- कवि की सीख पर चलते हुए वे बेहिचक सामान्य आदमी की भाषा, उसके बोल, उसके अर्थवान वाक्य ही अपनी कविता में बोलते रहे। अभिधा से कविता में इस तरह काम लेना हरेक के वश में नहीं होता। उन्हें पढ़ते हुए भवानी प्रसाद मिश्र का स्मरण हो जाना भी लाज़िमी है।

1981 में रावत का दूसरा कविता-संकलन आ सका, जब वे 42 वर्ष के थे-'दी हुई दुनिया', उसके सात साल बाद आया 'हुआ कुछ इस तरह'। फिर 1991 में 'सुनो हिरामन' और अगले बरस 'अथ रूप कुमार कथा'-ये लम्बी कविताएँ आईं। 'सच पूछो तो' 1996 में, 'बिथा कथा' 1997 में, 2001 में 'हमने उनके घर देखे' और 2004 में 'ऐसी कैसी नींद'-ये कविता-किताबें छपीं। चुनी हुई कविताओं का संचयन 'निर्वाचित कविताएँ 2004 का है। 2007 में लम्बी कविता की पुस्तिका 'कहते हैं कि दिल्ली की है कुछ आबोहवा और' एवं 2008 में 'अम्मा से बातें और अन्य लम्बी कविताएँ' प्रकाशित हुईं। 'दी हुई दुनिया' (1981) की कविता 'वह काम आएगा' में रावत ने किसी दूर तक का अनागत देख लिया था, उसका पूर्वानुमान कर लिया था। लिखा था- *'देखता रहेगा/दूसरों की आँखों में/ अपनी मौत का भय/और अपनी नज़रों में साबुत बच जाएगा'*। हाल ही के कुछ वर्षों में ये पंक्तियाँ 'टाइम-स्क्रीन' पर, काल के पर्दे पर बड़े फोंट्स में, स्थूल छापे में उभरती रही हैं। लेकिन कवि आश्वस्त था कि वह मरेगा नहीं, इसी जन्म में दूसरा जन्म भी जियेगा वह। जो भी 'देश एक राग है' की कविताओं से रूबरू होंगे, 'एक और जीवन' कविता पर ठिठकेंगे जरूर!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रावत ने तो नींद में गाफ़िल हो गए लोगों के नाम 'ऐसी कैसी नींद' जैसा कविता संग्रह भी दिया है। वे वामपंथी नेतृत्व के विपथित होने पर उसकी ख़बर भी लेते हैं। आत्ममुग्ध 'लेफ्ट' को सम्बोधित उनकी कविता 'हे कामरेड' पर ध्यान देना चाहिए। इसमें वे अवाम से कटकर 'अ-वाम' रह गए कामरेडों की खिंचाई करते हैं- *'लगता है क्रान्ति का आपका सपना पूरा हो चुका है/देखिए न अपना बिगुल/आप ही सुन रहे हैं/आप ही बजा रहे हैं'*। सोवियत संघ के विघटन के दो दशक पूरे होते न होते सिंगूर-नन्दग्राम के आसमानों से परिवर्तकामी मनुष्य के स्वप्नों पर फिर गाज गिरी है। यूटोपिया का, जितनी भी वह बची रह गई थी, उसका भी यह ख़ात्मा है। मौजूदा हालात में जिधर भी सार्थक एवं दिशावान जनान्दोलन है, उसी को कवि का समर्थन है।

'खुशफ़हमियाँ' कविता इस लिहाज से गहन अभिप्राय रखती है। इसका यह अंश देखिए- *'आज भी मैं बहुत सारी खुशफ़हमियों में जी रहा हूँ/जैसे यही कि एक न एक दिन/मैं वह कविता ज़रूर लिख पाऊँगा/जो कोई इतिहास रचे न रचे/ लेकिन मेरे बाद चोट खाए लोगों के लिए/बिना कुछ बोले मरहम की तरह काम आए'*।काम आना अर्थात् सार्थकता साबित कर देना रावत की कविताओं में बार-बार आता है। वे अपनी कविता को ऐसा बनाना चाहते हैं, जो उत्पीड़ितों के लिए काम की हो। कम अज कम इतना तो हो ही कि वह उनकी पीड़ा को हल्का कर सके। इस लक्ष्य को लेकर वे निरन्तर सक्रिय थे और इस विश्वास से अनुप्राणित कि *'एक हारे हुए आदमी की तरह/मुझे यह दुनिया नहीं छोड़ना पड़ेगी'*।

भगवत रावत लिखने के प्रेम में पड़े कवि हैं, भीतर-बाहर यक-साँ कवि हैं, और ज़िन्दगी ऐसे कवि को पराजित नहीं करती। वह तो उसे पोषण देती है, क्योंकि यथार्थतः जिन्दगी ही है कवि की आमरण प्रेयसी। आकर्षक, तप्त शीतल निर्मम, धोखेबाज, लेकिन सतत प्रेमिका। यूँ भी लेखक से तात्पर्य ऐसे हर उससे नहीं है, जो मेज-कुर्सी लगाकर बैठता और लिखता है। वास्तविक लेखक स्वयं को जोखिमों में ले जाता है, अपने लिए आक्रमण-आपदाएँ खरीदता है। जब भी वह अपनी कोई कृति पूरी करता है, हर बार, हाँ मैं कहता हूँ, हर बार उसकी स्वयं की रचना-संरचना-निर्मिति दाँव पर लगी होती है। 'वह मारा नहीं जा सकता' कविता में भगवत रावत लिखते हैं- *'दुनिया का सबसे कठिन काम है जीना/और उससे भी कठिन उसे शब्द के अर्थ की तरह रचकर दिखा पाना'*।यह जो शब्द के अर्थ की तरह वाला मामला है, बेहद मुश्किल है। भगवत अपनी कविता में हर साँस को जिस प्रकार से सीते-सिलते हैं, वह बस उन्हीं के बस का है।

एक वक्त वह था जब उन्हें उनका शरीर हताशा के अतल में गड़प्प कर देना चाहता था। परिजन ही नहीं, मित्र भी आशंकित रहते थे। पर तब भी भगवत सोचते थे- 'दिखाऊँगा तमाशा दी अगर फुरसत ज़माने ने'। और, यह फुरसत उन्होंने ली। इस दूसरे जीवन में। इसी फुरसत में उन्होंने 'सुनो हिरामन' के बाद की यह दिल्ली वाली लम्बी कविता लिखी। 'बम्बई नहीं, मुम्बई रेसकोर्स' और 'जे. अल्फ्रेड प्रूफॉक से एक बातचीत' जैसी कविताएँ भी रच डाली। गम्भीर रुग्णावस्था में भी वे अपने एक और जन्म की धुन में थे। 'एक और जीवन' की ये पंक्तियाँ हैं-

'इसी जन्म में यदि एक और जन्म हुआ हो आपका/ तो यह दूसरा जन्मदिन किस तरह मनाते हैं आप ?.../ पर सच तो यही है कि इसी जन्म में कभी न कभी/ होता जरूर है एक और जन्म आपका/ और उसी के सहारे आप जीते हैं एक और जीवन'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमें भी पाठकों के इस लाड़ले कवि का महत्त्व समझने बाँचने-जाँचने के बाद भी एक बार और, और और, अनेक बार आँकना होगा। एक जरूरी कवि अन्ततः चर्चा के केन्द्र में रहने के लिये ही होता है। जब लोग कवि होने के, या प्रगतिशील होने के स्वांग से ही सन्तुष्ट हों, तब भगवत रावत जैसे 'जेनुइन' कवि का 'लिखने के नक्षत्र' (यह मलयजी का शब्द-पद है) पर होना बहुत आश्वस्त करता था। अब वे नहीं हैं तो मानो समकालीन कविता में एक जगह ही नहीं, एक दिशा भी अब नहीं रही। जिस दिशा में मात्र भगवत रावत की कविता घर बनाती है, वह दिशा ही अब नहीं रही। एक्स्ल बड़े के चले जाने से उपजा सूनापन भी तो उतना ही बड़ा होता है। कोई भी तो नहीं है अब आज के परिदृश्य में, जो वह कविता लिख रहा हो, और उस तरह से पाठकों तथा श्रोताओं के समक्ष आत्मीय भरोसे के साथ जा रहा हो, जैसे रावत जी जा सकते थे, जा रहे थे। समकालीनों में नहीं, युवाओं-युवतरों में भी नहीं। दूसरे 'ओरिजनल' कवियों की भांति ही भगवत रावत एक खतरनाक 'मॉडल' है, एक मुश्किल आदर्श व प्रादर्श, जिसका अनुसरण कमतर प्रतिभा जोखिम उठाकर भी नहीं कर सकती। केवल भगवत रावत के कवि की पारी ही ख़त्म नहीं हुई, एक तरह की सजीव कविता का दौर ही उनकी साँसों के थमने के साथ थम गया है। अब वैसी कविता नहीं लिखी जायेगी, और यह बड़े नुकसान और सदमे की तरह है।

द्वारा: इलाहाबाद बैंक
मंडलीय कार्यालय, गौतम नगर
भोपाल (म.प्र.)-462023
मो. 9425678579

माहेश्वर तिवारी

धीरे-धीरे उठकर

साथ-साथ बढ़ता है उम्र के
अकेलापन

धीरे-धीरे उठ कर जाते हैं भीतर-बाहर बैठे लोग
कितना सूनापन भर जाते हैं मन में गहरे पैठे लोग

जीने पर चढ़ता है उम्र के
अकेलापन

एक प्रश्न कौंध-कौंध जाता है उठ कर अब और कहाँ जाएँ
शब्दहीन लोगों की भीड़ में हम किससे बोलें बतियाएँ

फ्रेमों में मढ़ता है उम्र के
अकेलापन

'हरसिंगार'
ब/म-48, नवीन नगर, काँठ रोड,
मुरादाबाद-244001 (उ.प्र.)
मो. 09456689998

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भागीरथी के बागी बेटे थे विद्यासागर नौटियाल

एस.राजेन टोडरिया

देहरादून में घंटाघर से ऐन पहले दर्शनलाल चौक है। इससे पल्टन बाजार को जाती सड़क के पीछे घोसी गली की एक संकरी दुनिया है जो खुद तो बीसवीं सदी के पूर्वार्ध की निशानी है पर इसका बाजार 21 वीं सदी का है। पल्टन बाजार को जाती यह सड़क बैलगाड़ी की तरह रेंगती नजर आती है। इस सड़क पर वक्त भले ही थम जाता हो, घड़ी की सुईयां सुस्त पड़ जाती हों पर इसका जीवन और बाजार इसे 21 वीं सदी का बनाते हैं। इसी सड़क पर पंचायती मंदिर से सटा हुआ एक जर्जर उजाड़ और उदास मकान है, समय के आगे घुटनों के बल झुका हुआ। पल्टन बाजार के इर्दगिर्द उग आए भव्य भवनों के बीच यह मकान निपट अकेला है। इसका एकाकीपन उदासी से भर देता है। मकान की पहली मंजिल पर ताले लगे हैं। दीवारों और छत पर उग आए पौधों के झुरमुट बता रहे हैं कि इस मकान का सफर पूरा होने वाला है। मकड़ियों के जालों से भरी इसकी पहली मंजिल साठ के दशक की भुतहा फिल्मों के खंडहरों का सेट लगती है। लगता है कि हाथ में लालटेन लिए ''कहीं दीप जले कहीं दिल'' गाता हुआ भूत इसी हवेली में रहता होगा। इसी की दूसरी मंजिल पर पंचायती मंदिर का सभाकक्ष है। बीसवीं सदी के पांचवे दशक में ठहरा हुआ सभाकक्ष! जंग लगे लोहे के जंगले,प्लास्टर किसी भी वक्त गिरने को तैयार ! वक्त से लड़ रही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने इतिहास के सबसे चमकदार लेखक और कम्युनिस्ट योद्धा विद्यासागर नौटियाल को याद करने के लिए जब माकूल जगह खोजी तो उसके क्रांतिकारी दस्तों के कदम इस खंडहर होते मकान पर आकर ठिठक गए।

विद्यासागर नौटियाल हमें पांचवें से लेकर आखिरी दशक तक के टिहरी को समझने में ही मदद नहीं करते बल्कि एक जननेता के जीवन के चढ़ाव और उतार को भी समझने का भी मौका देते हैं। कामरेड विद्यासागर नौटियाल ने 14 साल की उम्र में 15 अगस्त 1947 को जब प्रताप इंटर कॉलेज में तिरंगा फहराया था तब टिहरी का इतिहास करवट ले रहा था। टिहरी बदल रहा था। उसके भीतर लगभग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1100 सालों से बंधी चली आ रही बेड़ियों को तोड़ने की ललक जाग चुकी थी। यह केवल टिहरी शहर तक नहीं थी बल्कि हिमालय के बीहड़ इलाकों सकलाना से लेकर सुदूर कीर्तिनगर में कड़ाकोट तक आजादी की मशालें पहुंच चुकी थी। इधर भारत आजाद हो रहा था उधर टिहरी में एक 14 साल का किशोर जिसने ठीक से पाजामा पहनना भी नहीं सीखा था, तिरंगा फहराकर 132 साल पुरानी राजशाही को चुनौती दे रहा था। 18 अगस्त 1947 को राजा की पुलिस ने विद्यासागर को गिरफ्तार कर लिया। यह टिहरी की राजनीति के दरवाजे पर विद्यासागर की दस्तक थी।1 जनवरी 1948 को जब टिहरी में जब विद्रोही ग्रामीणों की भीड़ उमड़ रही थी तब यह 15 साल का किशोर उसमें शामिल था। वह इस अद्भुत जनक्रांति का दर्शक नहीं था बल्कि इसका एक हिस्सा बनकर आजाद हिंद फौज के सैनिकों के साथ-साथ चलते हुए राजशाही के तख्तापलट को अंजाम दे रहा था। टिहरी के इतिहास के सबसे चमकदार समय में उस किशोर ने जनता की ताकत का जलवा भी देखा और फैज अहमद फैज की इंकलाबी गजल''जब तख्त गिराए जायेंगे,जब ताज उछाले जायेंगे'' को टिहरी की सरजमीं पर एक हकीकत के रुप में मंचित होते हुए देखा। जनता की ताकत का ऐसा साक्षात्कार किसी को भी इंकलाबी बना सकता था। विद्यासागर की दुबली-पतली काया के भीतर तो बचपन में ही क्रांतिकारी प्रवेश कर गया था। टिहरी की इस आग को लेकर जब विद्यासागर नौटियाल 1952 में काशी विश्वविद्यालय पहुंचे तो इसकी तपिश बीएचयू के भीतर ही नहीं बल्कि उसकी हदों से बाहर बनारस शहर तक महसूस की जाने लगी। जल्द ही नौजवान विद्यासागर छात्रनेता बन बैठे। आजादी के बाद का वह ऐसा कालखंड था जब सत्तारूढ़ दल के भीतर ही नहीं बल्कि प्रतिपक्ष की राजनीति में भी नायकों का दौर चल रहा था। भारतीय राजनीति में एक ही समय-पक्ष और प्रतिपक्ष- में एक से बढ़कर एक महान राजनेता एक दूसरे को चुनौती दे रहे थे। सबके पास देश के लिए अपना सपना था और वे सब अपने रंग की क्रांति के लिए संघर्ष कर रहे थे। उस समय तक विश्वविद्यालयों में अपने कैरियर के लिए चिंतित और चिड़चिड़े नौजवानों की नस्लें नहीं पहुची थी। बदलाव के सपनों और जनसंघर्षों की सबसे बेहतरीन पौधशालाओं से विश्वविद्यालय लहलहा रहे थे। विश्वविद्यालयों में थार और सहारा के वैचारिक मरुस्थलों का युग आने में अभी काफी देर थी। वह उन नौजवानों का समय था जो आजादी आने से उम्मीदों से भरे हुए थे तो उनका भी जो कांग्रेस के रंगढ़ंग से असंतुष्ट थे। वामपंथी और समाजवादी युवाओं के गुस्से से तब विश्वविद्यालय दहकते रहते थे। वह उन नाराज नौजवानों का दौर भी था जो बदलाव की बात कर रहे थे। ऐसे नौजवानों के पीछे चलने वाले छात्रों की तादाद कम नहीं थी। तब तक एंग्री यंगमैन वास्तविक जिंदगी से विदा होकर सेल्युलॉयड के पर्दे पर नहीं गया था। उससे साक्षात्कार करने को सिनेमा हॉलों की अंधेरी दुनिया में नहीं जाना पड़ता था। वे सारे नाराज नौजवान देश के विश्वविद्यालयों के परिसरों में तकरीरें करते नजर आ सकते थे। वे अपने संघर्षों की पूंजी और भाषण कला से छात्र-छात्राओं की जवान भीड़ को मुग्ध कर रहे थे। ऐसे ही समय में विद्यासागर बनारस आए । काया को छोड़कर उनमें नायक होने के सारे गुण थे। महज 14 साल की उम्र में जेल जाने का साहस! एक लेखक की संवेदनशीलता,विरोधियों की धज्जियां उड़ाने वाली दहाड़ और शब्दों का अद्भुत खेल और बोलने का निराला अंदाज! इन सबसे मिलकर बनता था विद्यासागर का वह जादू जिसमें बंधकर बीएचयू के छात्रों ने उन्हे छात्रसंघ अध्यक्ष भी बनाया और कम्युनिस्ट पार्टी ने पहाड़ से गए इस लड़के को महज 25 साल की उम्र में ऑल इंडिया स्टूडेंट फेडरेशन का राष्टीय अध्यक्ष भी चुन लिया। वह आज भी बीएचयू के इतिहास के विरले छात्र नेताओं की पांत में शामिल हैं। वह 1952 से 1959 तक बनारस रहे। इसी दौरान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनके भीतर के रचनाकार ने अंगड़ाईयां लेनी शुरु की। नामवर सिंह से लेकर कई नामी साहित्यकारों की संगत ने विद्यासागर के भीतर ठाठें मार रहे सर्जना के सागर को खोज निकाला। इसी दौर में कल्पना में छपी ''भैंस का कट्या'' कहानी ने एक महान कहानीकार के आगमन की सूचना दे दी थी।

पीसी जोशी के हुक्म और पहाड़ से अपने लगाव के चलते वह 1959 में टिहरी चले आए। इस बार उन्हे गढ़वाल में कम्युनिस्ट पार्टी को स्थापित करने के मिशन पर भेजा गया था। उन्हे पहाड़ में कम्युनिस्ट पार्टी का पहला पूर्णकालिक कार्यकर्ता बनाकर भेजा गया था। वह जब टिहरी पहुंचे तब टिहरी शहर में कम्युनिस्ट होना किसी कुफ्र से कम न था। यह उस जिले का हाल था जिसे आजाद करने के लिए एक जवान कम्युनिस्ट नागेंद्र सकलानी ने शहादत दे दी थी। जिसे रियासती राज से मुक्ति दिलाने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं ने असह्य यातनायें सहीं थीं। जब वह टिहरी आए तो शहर में कोई कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर के लिए कमरा देने को तैयार नहीं हुआ। आखिरकार उन्हे एक भुतहा हवेली मिली। जिसमें कम्युनिस्ट पार्टी का ऑफिस खोला।

टिहरी के शाहजहां चिंदरू मियां ने अपनी बला की खूबसूरत बेगम के लिए यह भव्य हवेली बनाई थी। विवाह के बाद अपनी हवेली का हर्ष वह ढ़ंग से देख भी नहीं पाई थी कि चल बसी। वह चली तो गई पर दिल तो जैसे हवेली के भीतर ही रह गया। बस उसकी अतृप्त रूह हर रात इस हवेली में चहलकदमी करती रहती थी। दरवाजे खोलती बंद करती वह रातभर बेचैन होकर हवेली के हर कमरे में आती जाती रहती थी। पूरी टिहरी को यह खबर थी इसीलिए उस हवेली में कोई रहने को तैयार नहीं था। भूत के साथ रहने के लिए भाकपा के अलावा भला कौन तैयार होता ? भूत के साथ भविष्य की पार्टी ! दिन में बेचैन कम्युनिस्ट और रात को बेचैन रूहें ! जहां कम्युनिस्टों को एक वर्जित प्रजाति माना जाता हो वहीं विद्यासागर को एक व्यापक जनाधार वाली पार्टी खड़ी करनी थी। अकेले आदमी के लिए यह सफर कितना मुश्किल और चुनौतियों से भरा रहा होगा,यह कल्पना ही की जा सकती है। यह रेगिस्तान में फूलों की खेती करने जैसा काम था। लेकिन विद्यासागर एक किसान भी थे वे जानते थे कि मरुस्थल दिखने वाली टिहरी की जमीन में ही जनसंघर्षों का वह पानी छुपा है जिससे जनक्रांति का एक सैलाब आया था। संयोग से वह समय टिहरी के इतिहास का सबसे चमकदार समय था। पीठ पर पिट्ठू लादे विद्यासागर उस टिहरी को जगाने निकल पड़े जिसने इतिहास के सबसे लंबे राजवंशों में से एक को इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिया था। दो साल में ही टिहरी की राजनीति का व्याकरण बदलने लगा। संघर्षों का सिलसिला शुरु होने लगा। टीचर्स आंदोलन, बस मजदूरों का आंदोलन, पी डब्लूडी मजदूरों का आंदोलन। चिंदरू मियां की भुतहा हवेली पर लहराने वाला लाल झंडा अब जुलूसों,जनसभाओं और नारों के साथ लहराने लगा था।

यह टिहरी के इतिहास का अद्भुत समय था जब एक ओर जनकवि गुणानंद पथिक अपने गीतों के जरिये क्रांति की अलख जगा रहे थे तो दूसरी ओर विद्यासागर नौटियाल की अगुआई में लंगोटी पहने ग्रामीण नंगे पैरों के साथ टिहरी शहर में दस्तक देने लगे थे। 133 साल की गुलामी के बाद टिहरी की धरती जनांदोलनों की धमक से हिल रही थी। टिहरी में ''रात अंधेरी छंटकर रहेगी/धन और धरती बंटके रहेगी'' जैसे परिवर्तनकामी नारे गूंज रहे थे। यह बहुत बड़ा राजनीतिक बदलाव था।

सन् साठ और सत्तर के दशक के टिहरी को समझे बगैर विद्यासागर को नहीं समझा जा सकता। उस दौर के टिहरी की मनोदशा लंबी कैद भुगत कर खुली हवा में आए कैदी जैसी थी। लोग अपने बूते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर जगह-जगह स्कूल कॉलेज खोल रहे थे। एक असंभव आजादी का अहसास और खुली हवा में सांस लेने का रोमांच उनकी नसों में जैसे समा नहीं पा रहा था। वे कुलांचे भरना चाहते थे। 133 सालों से रुकी वह नदी रियासती बांध की गुलामी तोड़कर अपनी सतह से काफी ऊपर बह रही थी। टिहरी चेतना और आकांक्षाओं के नए आसमानों की खोज में था। उसके पीछे एक तख्ता पलट का गौरवशाली इतिहास था लेकिन सामने कांग्रेस की एक औसत सरकार थी जो उसकी आकांक्षाओं के साथ तालमेल बिठाने में बहुत कामयाब नहीं हो पा रही थी। लोगों के एक हिस्से के पास कांग्रेस का रास्ता था लेकिन जो इस रास्ते से असंतुष्ट थे वे अलग रास्ते की तलाश में थे। उनकी छाया से भी परहेज करने वाले टिहरी शहर से जब वह ऐसे लोगों की तलाश में निकले तो नितांत अकेले थे। वह पीठ पर पिट्ठू लादे असली भारत को खोजने निकल पड़े। दरिद्रता का भारत, बीमारियों के आगे पस्त भारत! सरकारी हुक्कामों से डरा भारत !संकटों से निजात पाने के लिए कुलदेवताओं के आगे गिड़गिड़ाता भारत!! ऐसे ही भारत के हाथों में वह लाल झंडा थमाने की जिद लिए चल पड़े तो फिर उन्होने पीछे नहीं देखा तब भी नहीं जब उन्हे चीन हमले के दौरान देश की सुरक्षा के लिए खतरा बता कर गिरफ्तार कर लिया गया।यह वही देश था जिसके लिए उन्होने तिरंगा फहराया और इस जुर्म में जेल भी भुगती। सातवें और आठवें दशक में वह टिहरी में लाल प्रतिरोध के सबसे बड़े प्रतीक थे। सन् साठ से लेकर अस्सी तक के समय पर उनके आंदोलनों और गर्जनाओं की जो अमिट छाप है उसने उन्हे दंतकथाओं के नायक जैसा रूतबा दिया। इसी दौर में वह देवप्रयाग से विधायक भी चुने गए। उत्तरप्रदेश विधानसभा भी उनके तीखे हमलों, शब्दों की मारक जादूगरी का साक्षी बनी।

विद्यासागर नौटियाल टिहरी के इतिहास के सबसे जुझारू योद्धा,सार्वजनिक जीवन में असंदिग्ध ईमानदार और सर्वाधिक संवेदनशील नेता बने रहे। अपनी विचारधारा के लिए गरीबी और अभावों की जो पीड़ा उन्होने झेली वह शायद ही किसी और ने झेली हो। वह बीसवीं सदी के भारत में राजनीति और साहित्य का अद्भुत संगम थे। टिहरी यदि आज इस मुकाम पर पहुंचा है तो इसमें विद्यासागर उन आधा दर्जन लोगों में हैं जिन्होने अपने भविष्य को मिटाकर टिहरी का भविष्य बनाया। गरीबी और भुखमरी के उस अंधेरे इतिहास में पिट्ठू लादे विद्यासागर नौटियाल लालटेन की तरह नजर आते रहेंगे। वह ऐसे सागर थे जिसके भीतर एक हिमालय रहता था। धरती के शुरुआती सालों वाले उस बेचैन टिथलिक सागर की तरह जिसने आज के हिमालय को जन्म दिया। ऐसा सागर जिसमें अथाह गहराई भी थी और दैत्याकार जहाजों को झकझोरने वाली प्रलयंकारी लहरें भी। लहरों का संगीत भी और तटों से टकराने का जज्बा भी। उनका न होना ऐसे ही सागर के न होने से उपजा रीतापन है। उनकी आक्रामकता में वह टिहरी बोलता था जो सदियों के भूगर्भीय जनअसंतोष के जमा होने से बेचैन रहा करता था।

इसे इतिहास की विडंबना ही कहिए कि 1959 में विद्यासागर नौटियाल ने टिहरी में भुतहा हवेली से भाकपा की यात्रा की शुरुआत की। इसके ठीक 63 साल बाद जब भाकपा ने उनके निधन के लिए शोकसभा के लिए जगह चुनी तो वह भी किसी भूतबंगले से कम नहीं था। इतिहास जैसे खुद को दोहरा रहा हो। इन साठ सालों में इतिहास का चक्का पूरी तरह से घूम चुका है और भाकपा सन् साठ में खड़ी है।

साभारः जनपक्ष टुडे, देहरादून

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिन्होंने कैमरे से राजनीतिक कार्य किया

विनीत तिवारी

यह 2010 के नवंबर की बात रही होगी जब कॉमरेड बर्धन के प्रोत्साहन से हम लोगों ने औरंगाबाद में 9 से 13 दिसंबर 2010 के दौरान होने वाले अखिल भारतीय किसान सभा के सम्मेलन के लिए आसान जुबान में खेती के अध्ययन के अपने नतीजों को एक पुस्तिका की शक़्ल में लिखना शुरू किया।

उसी दौरान किताब के कवर के लिए तस्वीरें खोजते-खोजते गूगल पर एक काली-सफ़ेद तस्वीर पर निगाह ठहर गई। बोलती हुई तस्वीर थी। थी तो काली-सफ़ेद लेकिन क्या शानदार तस्वीर थी कि मन की निगाह फ़ोटोग्राफ़र के भीतर गहरे तक शरीक लाल रंग को साफ़ पहचान सकती थी। तस्वीर 1945 की थी। पंजाब के झण्डीवालाँ गाँव के किसान झण्डा लेकर किसान सभा की कॉन्फ्रेंस के लिए जा रहे हैं। कुछ बुजुर्ग हैं कुछ जवान हैं। कुछ के पैरों में चप्पल है कुछ नंगे पैर हैं लेकिन सबके पैरों, हाथों, चेहरों पर गजब का आत्मविश्वास है, मजबूती है।

वह तस्वीर सुनील जाना ने ली थी जो 1940 के दशक में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के

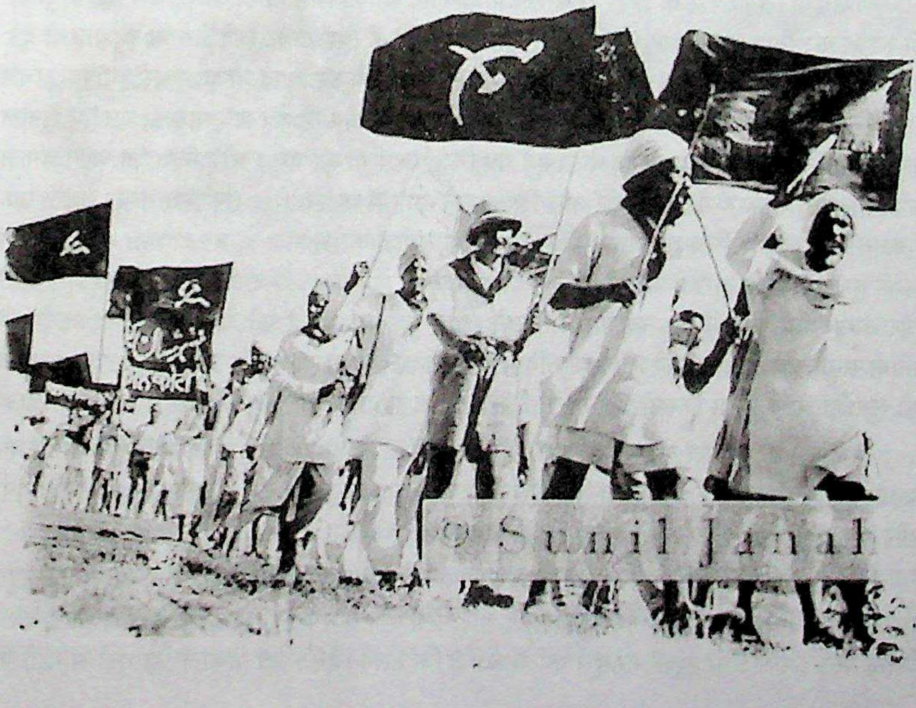

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फोटोग्राफ़र थे। उनकी तस्वीरों की एक वेबसाइट मिली जिसे 1998 में सुनील जाना के चित्रों की न्यूयॉर्क में लगी एक प्रदर्शनी के वक़्त बड़ी मेहनत से उनके बेटे अर्जुन जाना ने तैयार किया था। उससे पता चला कि वह कई मायनों में दुनिया के अद्वितीय फ़ोटोग्राफ़र हैं। वेबसाइट से ही मिला एक ईमेल पता। मैंने थरथराते हाथों से एक ईमेल टाइप किया। एक वरिष्ठ कलाकार कॉमरेड को जो किसी दौर में एक किंवदंती हुआ करते थे, यह अनुरोध करते हुए कि आपकी खींची 65 वर्ष पुरानी एक तस्वीर हम एक छोटी सी पुस्तिका के लिए इस्तेमाल करने की अनुमति चाहते हैं, मुझे रोमांच हो रहा था।

जया को बताया। वह भी बहुत खुश हुई। अगले दिन अजय भवन की मेस में लंच के दौरान कॉमरेड बर्धन को बताया कि सुनील जाना का एक चित्र मिला है और हम उसे पुस्तिका में इस्तेमाल करना चाहते हैं। सुनकर वह बोले, 'अरे, मैं भी उनसे मिला हूँ। वे बहुत ज़बर्दस्त फोटोग्राफ़र थे। पी. सी. जोशी उन्हें लाये थे। कहाँ रहते हैं वे ?...'

एक सप्ताह तक फिर कोई जवाब नहीं आया। मैंने फिर अर्जुन को मेल किया कि अब सम्मेलन के लिए वक्त कम बचा है और किताब छपने के लिए चंद रोज़ में तैयार हो जाएगी। आप अपने पिता से फ़ोन पर ही अनुमति लेकर हमें ईमेल कर दें तो अच्छा होगा। इसके जवाब में अर्जुन का मेल आया कि उनके माँ-पिता के साथ-साथ वे खुद भी स्वास्थ्य संबंधी काफ़ी तक़लीफ़ों से गुज़र रहे हैं लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि चूँकि आप लोगों की पुस्तिका का व्यावसायिक उपयोग नहीं होना है अत: उन्हें लगता है कि उनके पिता को इस पर आपत्ति नहीं होगी। उन्होंने वेबसाइट पर उपलब्ध तस्वीरों में से किसी भी तस्वीर के इस्तेमाल की अनुमति हमें दे दी।

उनके बंगाल के अकाल के चित्र 'पीपुल्स वार' में छपे जो उस वक्त भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का अख़बार था। उन चित्रों के छपने से बंगाल के अकाल की जो विभीषिका उभरी, उसने सारी दुनिया को स्तब्ध कर दिया। बंगाल में लाखों लोग भूख से मर रहे हैं, यह ख़बर विदेशों तक पहुँचना तो दूर, भारत के भी दीगर हिस्सों में नहीं पहुँच पा रही थी। अख़बार, जो उस वक़्त मौजूद सबसे व्यापक संचार माध्यम थे, वे भी ब्रिटिश सरकार के हुक्म के मुताबिक ख़बर छाप रहे थे। जब पीपुल्स वार' में सुनील जाना के खींचे गए और चित्तप्रसाद के बनाये गए चित्र प्रकाशित हुए तब सारी दुनिया का ध्यान बंगाल के अकाल की तरफ़ गया। वे तस्वीरें और चित्र अपने आप में कहानी थे - हक़ीक़त बयान करती एक ताक़तवर कहानी। वे चित्र यह बताने में सक्षम थे कि बंगाल का अकाल केवल अवर्षा, अति वर्षा या किसी क़ुदरती क़हर का नतीजा नहीं, बल्कि दूसरे विश्वयुद्ध में शरीक अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जमाखोरी और अमानवीय नीतियों का नतीजा था जिसने ग़रीब भारतीय जनता की साढ़े तीन लाख जानों को अपनी साम्राज्यवादी हवस की बलि चढ़ा दिया था। उन तस्वीरों से दुनिया के सामने बंगाल के अकाल का भयानक सच आया जिससे अंग्रेजों के ख़िलाफ़ देश में और देश के बाहर भी ग़ुस्सा उमड़ पड़ा।

बंगाल के अकाल की उन तस्वीरों और चित्रों में जर्जर इंसानों की, कंकाल हो चुके लोगों की कतारें की कतारें नज़र आती हैं। उन चित्रों के पोस्टकार्ड बनाकर उस ज़माने में दुनिया भर में भेजा गया और बंगाल के भुखमरी से जूझते लोगों को मदद मुहैया की गई।

बंगाल के अकाल के चित्रों ने सुनील जाना को दुनियाभर में प्रसिद्धि दिला दी लेकिन खुद सुनील जाना के लिए वह अनुभव बहुत त्रासद था। भला एक वामपंथी दिमाग और विचार रखने वाला व्यक्ति कैसे इस बात पर ख़ुशी महसूस कर सकता है कि उसने जिन ज़िंदा कंकालों या भूख से मरते या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मर चुके लोगों के फोटो खींचे हैं, उसने उन्हें प्रसिद्धि दिला दी। बाद में 1998 में एक इंटरव्यू के दौरान उन्होंने कहा कि मेरे लिए यह बहुत मुश्किल था कि मैं भूख से मरते लोगों की मदद करने के बजाय उन्हें कैमरे में उतारूँ। मुझे उन कॉमरेड्स और लोगों से रश्क होता था जो अपना आगा-पीछा न सोचकर दुर्भिक्ष पीड़ित लोगों की मदद और राहत के काम में लगे थे। मेरा मन होता कि मैं भी कैमरा छोड़कर वही करूँ। लेकिन पी. सी. जोशी, जो मुझे अपने साथ बंगाल के गाँवों में लेकर आये थे और जो मेरे शिक्षक, शुभचिंतक, सलाहकार थे, उन्होंने मुझे समझाया कि जो हो रहा है उसका दस्तावेज़ बनाना ज़रूरी है ताकि लोग जानें कि यहाँ दरअसल हालात क्या हैं। मैंने दिल पर पत्थर रखकर कैमरा सँभाला और फोटो खींचता रहा।

बाद में सुनील जाना के खींचे गए गाँधी, नेहरू, जिन्ना, शेख अब्दुल्ला, फ़ैज़, जे. कृष्णमूर्ति, आदि ख्यात लोगों के चित्र भी बहुत प्रसिद्ध हुए। देश के विभाजन के उनके खींचे अनेक चित्र अपने आप में इतिहास के अध्याय हैं। एनसीईआरटी की स्कूली किताबों में भी उनके अनेक चित्रों का इस्तेमाल किया गया है।

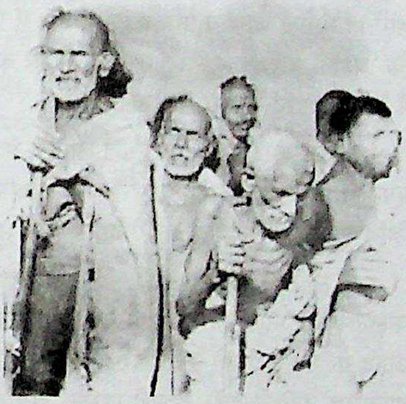

सुनील जाना 1918 में 17 अप्रैल को डिब्रूगढ़, आसाम में पैदा हुए थे। उनके पिता कलकत्ता के नामी वकील थे और सुनील जाना की पढ़ाई-लिखाई भी कलकत्ते में ही हुई। सेंट ज़ेवियर और प्रेसिडेंसी कॉलेज में अपनी पढ़ाई के दौरान ही वे वामपंथी राजनीति के संपर्क में आ गए थे और बाद में 1943 में पी. सी. जोशी के संपर्क में आने पर उन्होंने पढ़ाई अधूरी ही छोड़कर पूरी तरह वामपंथ का रास्ता अपना लिया। पी. सी. जोशी उन दिनों अकाल के हालात का जायजा लेने बंगाल के भीतरी ग्रामीण इलाक़ों में जा रहे थे। उनके साथ चित्रकार चित्तप्रसाद भी जा रहे थे। दोनों ने सुनील जाना को भी साथ ले लिया। सुनील जाना बताते हैं 'पी. सी. जोशी लिखते थे और मैं तस्वीरें खींचता था। उनके पास बिल्कुल साधारण सा एक कोडक कैमरा था। बस, वहीं से मेरी ज़िंदगी बदल गई।' उधर पी.सी. जोशी कलकत्ता से वापस लौटे, उधर सुनील जाना उड़ीसा के अकाल पीड़ितों की तस्वीरें लेने चले गए। उधर पी.सी. जोशी की रिपोर्ट और सुनील जाना की खींचीं तस्वीरें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अख़बार 'पीपुल्स वार' में छपीं तो सारी दुनिया के कम्युनिस्ट देशों की प्रेस ने उन्हें छापा और सुनील जाना अचानक ही भारत के बेहतरीन फोटोग्राफ़र के तौर पर स्थापित हो गए। पी. सी. जोशी ने उनकी फोटोग्राफ़ी और विचारधारा के प्रति उनकी समझ को देखते हुए उन्हें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का फोटोग्राफ़र बनाया।

उसके बाद पार्टी उनसे जहाँ जाने को कहती, वहाँ जाते, तस्वीरें खींचते। धरनों, सभाओं, आंदोलनों, गिरफ़्तारियों, दमन, नौसेना विद्रोह, किसान विद्रोह, काँग्रेस, मुस्लिम लीग, बांग्लादेश युद्ध.......तमाम नेताओं और आंदोलनों के साथ-साथ वे आम मेहनतकश लोगों के गौरवपूर्ण जीवन को भी दर्ज करते चलते। उनके मुताबिक वे आम लोगों और आम दृश्यों की ख़ास तस्वीरें लेकर यह बताना चाहते थे कि कम्युनिस्ट पार्टी किन लोगों के लिए है। ज़ाहिर है सुनील जाना को इतनी स्वतंत्रता के साथ काम करने का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवसर देने में पी. सी. जोशी की गहरी सांगठनिक सूझ और कला की पारखी दृष्टि का विशेष महत्त्व था।

'पीपुल्स वार' और बाद में 'पीपुल्स एज' में उन्हें एक पन्ना ही फोटो फीचर के लिए दिया गया जिसमें सुनील जाना ने आम लोगों की ज़िंदगियों, उनके संघर्षों, काम करते हुए मेहनकश लोगों के सौंदर्य, नाव खेते, घानी चलाते, मछली पकड़ते, कोयला खदानों में, घरों-खेतों में मेहनत करते स्त्री-पुरुषों से लेकर तीर-कमान थामे आदिवासियों, मोर्चे पर जाते किसान-मज़दूरों, तेलंगाना के क्रांतिकारियों तक के बेहतरीन फोटोग्राफ्स से कम्युनिस्ट पार्टी के विचार और प्रतिबद्धता को लोगों के बीच स्थापित किया।

जब सुनील जाना, उनके चित्र और उस ज़रिये बंगाल के अकाल पर दुनियाभर की नज़र गई तो उस ज़माने की बेहद प्रसिद्ध पत्रिका 'लाइफ़' की अत्यंत प्रसिद्ध फोटोग्राफ़र मार्गरिट ब्रुक व्हाइट हिंदुस्तान के अकाल को कवर करने के लिए हिंदुस्तान आई।

मार्गरिट ब्रुक व्हाइट को भारत में अपना कोई रास्ता दिखाने वाला और मददगार चाहिए था। इत्तफ़ाक से सुनील जाना पहले ही वहाँ जाने की योजना बना चुके थे। तय हुआ कि दोनों साथ-साथ जाएँगे। सुनील जाना ने फ्रंटलाइन पत्रिका में प्रकाशित वी. के रामचंद्रन को दिए एक इंटरव्यू में बताया कि 'पहली बार, कम्युनिस्ट पार्टी के हिस्से का ख़र्च 'लाइफ़' पत्रिका ने उठाया ....और पहली ही बार मैं रेल के फ़र्स्ट क्लास में बैठा।'

उस दौर के बारे में सुनील जाना ने बताया है, ''मैं अपनी पार्टी और राजनीतिक विचारधारा का एक प्रतिबद्ध कार्यकर्त्ता था। मैं एक समर्पित कम्युनिस्ट था। साथ ही इतने सौंदर्य से भरे इतनी विविधताओं वाले देश में फोटोग्राफ़र होना, मुझे लगता था कि मुझ पर देश की विशेष कृपा रही है।''...

सुनील जाना ने 1947-48 में कलकत्ते में अपना एक फ़ोटो स्टूडियो खोला और उन्होंने कलात्मक फोटोग्राफ़ी के काम को जारी रखते हुए उन्होंने देश भर में बिखरे प्राचीन स्मारकों, मंदिरों आदि के स्थापत्य को और विभिन्न भारतीय नृत्यों की तस्वीरें खींच उन्हें दस्तावेज़ बनाना शुरू किया। शांताराव, रागिनी देवी, इंद्राणी रहमान, बड़े ग़ुलाम अली ख़ान जैसे उस वक़्त के महान कलाकारों की उन्होंने यादगार तस्वीरें खींचीं। उन्होंने 1949 में कलकत्ता फ़िल्म सोसायटी की स्थापना की जिनमें चिदानंद दागुप्ता, हरि दासगुप्ता और अन्य लोगों के साथ-साथ सत्यजित राय भी शरीक थे। सुनील जाना की पहली किताब 'दि सेकंड क्रिएचर' का कवर सत्यजित राय ने ही डिज़ाइन किया था। उसके बाद उनकी 'डांसेज़ ऑफ़ दि गोल्डन हॉल' और 'दि ट्राइबल्स ऑफ इंडिया' शीर्षक से दो किताबें और आयीं। 'दि ट्राइबल्स ऑफ़ इंडिया' किताब पर उनका काम प्रसिद्ध नृतत्वविज्ञानी वेरियर एल्विन के साथ था। उनकी एक किताब 'फोटोग्राफ़िंग इंडिया' प्रकाशित होने के पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। यह किताब जल्द ही ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित होगी जिसमें सुनील जाना ने न केवल छः दशकों में फैले अपने चित्रों को समेटा है बल्कि इसमें आत्मकथात्मकता भी है और साथ ही 9/11 के बाद अमेरिका में रहने के अपने अनुभव भी उन्होंने लिखे हैं। अर्जुन ने अपने पिता की तस्वीरों के बारे में कहा है कि उनके चित्रों में एक कविता जैसा गठन होता है।

कम लोग ही यह बात जानते हैं कि कैमरे की आँख से दुनिया को पूरी तीव्रता के साथ पकड़ने वाले सुनील जाना की सिर्फ़ एक आँख ही दुरुस्त थी। दूसरी कभी बचपन में ही ग्लॉकोमा की शिकार हो गई थी। इसके बावजूद सुनील जाना अपने निगेटिव्स को खुद ही डेवलप किया करते थे। आख़िरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्षों में उनकी दूसरी आँख ने भी उनका साथ छोड़ दिया था। उन्होंने फोटोग्राफ़ी का कोई विधिवत ज्ञान हासिल नहीं किया था। जो सीखा, करके सीखा और उस ज़माने के जो उस्ताद फोटोग्राफ़र माने जाते थे, उनके पास जाकर सीखा। तीस के दशक से 90 के दशक तक, साठ वर्ष तक वे फोटोग्राफ़ी करते रहे। इन साठ वर्षों में उन्होंने किसान-मज़दूरों के संघर्षों, आज़ादी के आंदोलन, भारत के प्राचीन स्थापत्य से लेकर आज़ाद भारत के तीर्थ कहे जाने वाले उद्योगों, बाँधों, कल-कारखानों, रेलवे लाइनों तक के निर्माण को, राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक-वैज्ञानिक विभूतियों से लेकर देश के विभिन्न आदिवासी समुदायों, दंगों, अकाल, लाशों के ढेर, विद्रोह, विभाजन, विस्थापन से लेकर मनुष्य के श्रम और उन्मुक्त जीवन सौंदर्य को उन्होंने तस्वीरों में दर्ज किया।

सत्तर के दशक तक उनकी प्रदर्शनियाँ देश-विदेश में अनेक जगह लगती रहीं। योरप के पूर्व समाजवादी देशों में अनेक जगह उनके चित्र प्रदर्शित हुए। बाद में, 1978 में वे लंदन जा बसे जहाँ उनकी पत्नी शोभा डॉक्टर थीं। वहाँ उनके चित्रों की अनेक प्रदर्शनियाँ लगीं, उन्हें अनेक सम्मान मिले। लंदन में 1992 में नेहरू सेंटर के खुलने के तत्काल बाद उसमें सुनील जाना की तस्वीरों पर केन्द्रित कार्यक्रम हुआ। उनके काम और जीवन पर बीबीसी टीवी और आईटीवी ने दो डॉक्युमेंट्री फ़िल्में बनायीं। उनकी खींची तस्वीरों के बड़े-बड़े प्रदर्शन दिल्ली, मुंबई, कोलकाता में हुए। हवाना महोत्सव में उनकी तस्वीरें दिखायीं गईं। विश्वविख्यात नृत्यांगना इंद्राणी रहमान के बेटे राम रहमान ने, जो स्वयं एक प्रसिद्ध फोटोग्राफ़र भी हैं, 1998 में सुनील जाना की तस्वीरों की एक प्रदर्शनी न्यूयॉर्क की कला वीथिका में आयोजित की थी जिसे गजब की सराहना मिली। लंदन से 2002 में जाना दंपति अमेरिका आ गए और तब से वहीं रह रहे थे।

आख़िरी वक़्त तक उन्होंने जीवन और समाजवाद में अपना विश्वास नहीं डिगने दिया। वे एक दृश्य इतिहास अपने पीछे छोड़ कर गए हैं। इस खजाने और इसे बनाने वाले, दोनों की अनेक दशकों से देखभाल करने का काम चुपचाप करती आ रहीं थीं उनकी पत्नी शोभा। शोभा जाना का निधन 86 वर्ष की उम्र में 18 मई 2012 को ही हुआ था। वे पेशे से डॉक्टर थीं। उनके निधन के बाद सुनील जाना बमुश्किल एक महीना ही अपनी साँसें खींच पाये। 21 जून 2012 को उन्होंने आखिरी सांस ली।

सुनील जाना भले कम्युनिस्ट पार्टी के बाद में सदस्य न रहे हों लेकिन उनका आदर्श आजीवन समाजवाद ही बना रहा। उन्होंने 1998 में इंटरव्यू में कहा था,''बेशक आज भी मेरा यक़ीन समाजवाद में ही है। पूँजीवाद एक असभ्य और पाशविक व्यवस्था है जिसकी बुनियाद लालच है।'' राम रहमान ने उनके बारे में सही कहा है कि ''सुनील जाना बाक़ी फोटोग्राफ़रों से अलग थे। वे एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता थे और उनका राजनीतिक कार्य ही फोटोग्राफ़ी था।''

दूसरी बात यह कि मुझे अर्जुन का अकेलापन अच्छा नहीं लगता। दुनिया कई मायनों में बहुत छोटी हो गई है लेकिन इतनी भी नहीं कि हम तमाम इप्टा-प्रलेसं के दोस्त उसके पास पहुँच सकें और कहें कि हम सब तुम्हारे साथ ही हैं। फिर भी, यह तो हम सब कहना ही चाहते हैं कि सुनील जाना हमारे परिवार के हिस्से थे और रहेंगे और इस नाते अर्जुन भी अकेला नहीं है।

2, चिनार अपार्टमेंट, 172, श्रीनगर एक्सटेंशन, इंदौर-452018
मोबाइल: 09818175205/09893192740

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रद्धांजलि स्मरण : अरुण प्रकाश

अरुण का 'मेरापन'

लीलाधर मंडलोई

अरुण प्रकाश के सामाजिक-सांस्कृतिक समाज में होना उपलब्धि भरा सुख है। एक आला आदमकद इंसान जो अपने जीवन और साहित्य में उपेक्षितों-शोषितों के लोक गायक थे। अरुण का प्रकाश एक खास पृष्ठभूमि से जन्म लेता है। पिता और माता स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। स्वाभिमानी इतने कि सरकार की पेंशन ठुकरा दी। पिता ने शिक्षक के काम को अपनाया ताकि आजादी के संघर्षों की कहानी को छात्रों तक पहुंचा सकें। बिहार के बैकग्राउंड में उनका होना था। उनका जीवन वहीं से रस ग्रहण करता रहा। जीवन और लेखकीय रस। अरुण प्रकाश के सरोकार के केन्द्र में निम्नवर्गीय कामगार जीवन था। उस जीवन से मजूर-किसान और अन्य तलछट के लोग। याद करना प्रासंगिक होगा कि वे ट्रेड यूनियन के हिस्से भी रहे। शायद इसलिए उनकी रचनाओं में आदिवासी, दलित समाज के हस्ताक्षर, महिलाओं और संघर्षशील दबे-कुचले लोगों की उपस्थिति जीवंत है। उनका मानना था कि लेखक का फोकस हाशिए के जीवन पर अधिक एकाग्र होना चाहिए। जों अदृश्य या अनुपस्थिति की कगार पर है, साहित्य में वहीं केन्द्रीय होना चाहिए और लेखक का विचार आरोपित नहीं बल्कि कथ्य के भीतर प्रवहमान होना चाहिए। अरुण प्रकाश को जो अतरंगता के दायरे में जानते हैं, उन्हें मालूम होगा कि वे छोटी-छोटी अनुगूंजों, संदर्भों को पकड़ने वाले इंसान थे। इसलिए वे बिहार के अलावा महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, पंजाब, दिल्ली, तमिलनाडु के जीवन को विश्वनीयता के साथ पकड़ने में माहिर थे। उन्हें नई बनती स्थिति-परिस्थितियों की गहरी समझ थी। उनकी कहानियों में भारतीय मनुष्य की आवाजों का एक कोरस चलता है। आवाजें जिनमें बैचेनी, उम्मीद और संघर्ष है। झुग्गी-झोपड़ी के रहवासी भी जिंदगी के राग-रंग में डूबे लेकिन अदम्य जिजीविषा के साथ। तकलीफों में भी परास्त न होने वाले अरुण प्रकाश का खुद का जीवन इससे अलग कहां था। बीमारी से इतनी जबर्दस्त लड़ाई किं आक्सीजन के सहारे भी हिलना-डुलना मुहाल। तिस पर दोस्तों के साथ गप्पें और बातचीत, पीने-पिलाने और मछली खिलाने की जिद। संगत-सत्संग की इच्छा अंत तक बनी रही। मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व जब मैं सपत्नीक अस्पताल गया तो आक्सीजन ट्यूब से जीवन के लिए सांसें अबेरते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने पत्नी के हाथ से खाना खाया और प्रसन्न थे। मुझे दो लोगों ने 'लीला' नाम से पुकारा एक पिता और दूसरे अरुण प्रकाश ने। इस संबोधन ने मुझे ऐसा जोड़ रखा था कि कहना मुश्किल। जाने कौन सी टेर थी, इस संबोधन में कि बस गूंज रही है। इस गूंज में जीने और लिखने-पढ़ने की अनेक ताकीदें हैं। सृष्टि को चीन्हने के अमर नुस्खे। कम लोग जानते हैं कि मेरी आलोचना किताब 'कविता के तिर्यक' का शीर्षक उन्हीं का दिया हुआ था। वो भी पांडुलिपि पढ़ने के बाद। उनका एक वाक्य याद आ रहा है-'लीला तुम्हारा गद्य एफर्टलैस और सच्चा है। सच्चाई की यह लय हर किसी को नहीं मिलतीं। मैं इसका अर्थ उनकी कहानी 'भैय्या एक्सप्रेस' और 'जलप्रांतर' को दुबारा पढ़कर कुछ-कुछ जान पाया। वैसे इन चर्चित कहानियों के साथ 'बेला एक्का लौट रही है', मेरी प्रिय कहानी है जिस पर मैं एक टेलीफिल्म बनवा सका। अरुण प्रकाश अपना 'मेरापन' ढूंढने वाले कथाकार थे, जो उनकी तमाम कहानियों से गुजरते हुए पता चलता है। कदाचित इसलिए उन्होंने अपने कथा संग्रह 'विषमराग' में दादा माखनलाल चतुर्वेदी की इन पंक्तियों को शुरूआत में प्रकाशित करवाया है-

ढूंढने चलें चलों मधुबन
मुझे लाना है मेरापन।

इस 'मेरापन' को पाने की एक सतत तलाश थी अरुण प्रकाश की उस मनुष्यता में, जो उनकी अकेली बड़ी पूंजी थी। उनकी कहानी 'ना' की मामी (सुंदरी) में हम, उसी मनुष्यता से उपजे 'मेरापन' में होते हैं जब वह पति की मृत्यु के बाद 'बच्चों का बाप' बन दुकान पर बैठकर पैसा कमाती है और अम्मा को भी स्वयं पालने का संकल्प पूरा करती है। इस तरह कथाकार का 'मेरापन' उसके कथापात्रों में ट्रांसफार्म होता है। बेला एक्का का किरदार भी 'मेरापन' की सच्ची अभिव्यक्ति है। बेला का कथन 'सहना मरना है' में यही रंग है निजता का। यह रंग कथा के साथ भाषा में देखिए। भाषा का उनका स्वायत्त व्यक्तित्व जिसमें आंतरिक ताप और गतिमयता, लोकेल का विरल स्वभाव और प्राकृतिक चमक, संवादों में स्वाभिमान पगा बैलोसपन। 'बहुत अच्छी लड़की' की अनिता को याद करें। व्यावहारिकता की मिसाल सीधी बात और विचार सुस्पष्ट। उसका संवाद पढ़ें 'शादी सिर्फ भावनात्मक जरूरत ही नहीं, एक सामाजिक बीमा भी है।' अरूण प्रकाश की कहानियों में कई तरह के समाज से आई स्त्रियों हैं जो थकती-हारती नहीं, जीतने के नये हुनर ईज़ाद करती हैं। उनके भीतर अपूर्व आत्मविश्वास है, अद्‌भुत प्रेम और गहरी करुणा। 'भैय्या एक्सप्रेस' की मनजीत कौर को याद करें। बिशनदेव के लिए प्रेम से अधिक मातृत्व और अंतर्द्वन्द के बाद वह संवेदनाजगत, जहां से वह बोलती है तो एक मां-'मेरे भी बेटे हैं....ये फंस जाने के डर से बात छिपा रहे थे। कल रात हम दोनों झगड़ते रहे-छिपाना क्या, यह भी किसी का बेटा है, भाई है। कल मैं झूठ बोली-हमें माफ करो सरपंच जी।' अधिकांश चरित्रों में अरुण प्रकाश की 'मेरापन' वाली गंध मिलेगी, जो क्षेत्रीय नहीं अपितु सार्वदेशिक है। उनकी कहानियां सिर्फ बिहार तक सीमित नहीं वे अन्य राज्यों में आवाजाही करती हैं। यदि देखा जाए तो वे दो लेखकों को अपने सर्वाधिक करीब पाते थे। नागार्जुन और भीष्म साहनी। भीष्म जी को वे अपना गुरू मानते थे। अपनी अंतिम बातचीत के लिए मैंने उन्हें दूरदर्शन के लिए तैयार किया तब वे बहुत अस्वस्थ थे। नाक में आक्सीजन की ट्यूब लगी थी और बड़ी मुश्किल से बैठ पा रहे थे। उनके कंधे झुके थे। चेहरा लगभग सूख गया था। हड्डियां साफ दिख रही थी। कुल मिलाकर उन्हें देखना भी पीड़ादायक था। लेकिन उनकी बातों में वही तापमान और ओज था जो उन जैसे कमिटेड लेखकों में होता है। नागार्जुन और बेनीपुरी के साहित्य और व्यक्तित्व पर बोलते हुए उन्होंने कहा था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि मैं नागार्जुन के अधिक करीब इसलिए खुद को पाता हूं या पाना चाहता रहा हूं कि उनमें और उनके (नागार्जुन) लिखे में कोई संशय कोई हिचक नहीं। जबकि बेनीपुरी में हिचक बनी रही। उनका आशय था कि संशय या हिचक में लिखना लेखक का धर्म नहीं। इस तरह अरुण प्रकाश जहां अपनी परंपरा को रेखांकित करते हैं वहीं अपनी साफगोई की कुवव्त को भी खोलकर सामने रख देते हैं। अरुण प्रकाश की कहानियों में पटकथा लेखन की प्रविधियां विन्यस्त हैं। दरअसल उनकी कहानियों में सिनेमेटिक ड्रामा हैं। यह इसलिए भी कि रोजी-रोटी के फेर में उन्होंने पटकथाओं वाला काम काफी किया। ‸ ‸ स्वभावके कारण उनके भीतर कथालेखन में प्रयोगशीलता का गुण दिखता है। 'स्वप्नघर' कहानी में इसे देखा जा सकता है। कुमार विकल की इसी शीर्षक की कविता है। यह एक प्रेम कथा है जो फिल्म के भी मुआफिक है। वे कविता के टुकड़ों का प्रयोग कहानी में करते हैं। टुकड़ों में फिल्म की दृश्य भाषा और कथा संकेत है। कहानी में अंतर्भूत फिल्म को देखा जा सकता है। कहना न होगा इस प्रेमकथा में कहीं न कहीं कुमार विकल की कथा भी छिपी है। 'स्वप्नघर' में कई बार अंजलि और बसंत की मन:स्थिति काव्य अंशों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। जैसे कि फिल्मी गानो के उपयोग से संभव किया जाता है। विकल की कविता के इस अंश से कहानी समाप्त होती है-

मुझे लौटा दो बस
इस विशाल पृथ्वी पर
मैंने जो बसाया था
एक छोटा सा स्वप्नघर

यदि अरुण की सिनेमेटिक भाषा को पढ़ा जा सके जो आपको वह ड्रामा भी दिखेगा जो मुझे 'भैया एक्सप्रेस', 'जल प्रांतर', 'अथ टपना कथा', 'बेला एक्का लौट रही है', 'मंझदार क़िनारे', 'बहुत अच्छी लड़की', विषमराग आदि में साफ दिखता है। अन्य कहानियों में भी फिल्म प्रापर्टीज है। उनकी अनेक कहानियों में सिनेमेटिक ड्रामा था इसलिए इन कहानियों में नाटक के गुण भी समाविष्ट हैं।

एक बात 'गद्य की पहचान' किताब पर कहूंगा। अरुण प्रकाश की चिंता में कथेतर गद्य की विधाओं का क्रमश: मरना था। कथेतर गद्य की विधाओं पर कुछ भी संगठित होकर नहीं लिखा गया। कोई सैद्धांतिकी भी छात्रों,पाठकों और युवा लेखकों के लिए नहीं है। सो उन्होंने पूरे मनोयोग से यह काम किया। यह कृति आलोचना के इतिहास में कोई जगह बनाए न बनाए किंतु इसे न केवल याद किया जाएगा। बल्कि ढूंढ-ढूंढ कर पढ़ा जाएगा। साहित्य के छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी है और लेखकों के लिए यह एक संदर्भ पुस्तक बनी रहेगी। यह मेरी प्रिय किताब है।

अपनी बात को समाप्त करते हुए, मैं यह याद करना चाहता हूं कि अरुण प्रकाश का जाना एक व्यक्ति का नहीं लेकिन लेखकों की परंपरा में एक ऐसे लेखक का जाना है, जिसने लेखक की अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा की। इसलिए मैं उनके साथ की स्मृतियों अपनी मूल्यवान पूंजी मानता हूं।

11-बी, टाइप 5 स्पेशल
हुडको प्लेस, एन्ड्रयूज गंज, नई दिल्ली
मो. 09818291188

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरुण प्रकाश : गद्य की पहचान/अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली

यह आलेख मैंने 17 जून 2012 को शाम 6.30 बजे के करीब समाप्त किया था। इसका अंतिम वाक्य था- 'फिलहाल तो इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के लिए अरुण प्रकाश जी को इस इसरार के साथ बधाई दी जा सकती है कि जल्द स्वस्थ होकर हिन्दी गद्य पर अगली पुस्तक की तैयार करें।' 18 जून दोपहर में इस आलेख को फेयर कर रहा था कि तकरीबन 2.15 बजे वेदप्रकाश का फोन आया। उन्होंने बताया कि अरुण प्रकाश जी अब हमारे बीच नहीं हैं। मैं सन्न रह गया। पिछले कुछ वर्षों से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। बीमारी की हालत में ही उनकी यह किताब आई है। लेकिन वे इतनी जल्दी हमसे रूठ जाएंगे-इसका गुमान न था। हमसे उम्र में वे काफी बड़े थे। हमारे प्रति उनका व्यवहार दोस्ताना था। हमारा ध्यान रखते थे। यह उनका बड़प्पन था। हम तो सीख रहे थे कि अपूर्व जीवन के धनी अरुण जी इस बीमारी को भी पछाड़ देंगे और अगली किताब की तैयारी करेंगे। लेकिन योद्धा का घाव शायद इस बार ज़्यादा था। उनके जीवनकाल में लिखे गए इस आलेख को वे पढ़ते तो इसरार और बधाई का कुछ अर्थ होता। अब इस आलेख की प्रतिबद्ध अप्रतिम कथाकार और ललित आलोचक अरुण प्रकाश के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि समझा जाए तो बेहतर होगा।

समझ आलोचक की, मन कथाकार का

नीरज कुमार

यशस्वी कथाकार-कवि-चिंतक अरुण प्रकाश की पुस्तक 'गद्य की पहचान' इस वर्ष (2012 ई.) में प्रकाशित हुई है। जो ऐतिहासिक विकासक्रम के संदर्भ में आधुनिक हिन्दी गद्य के रूपबंधों का विश्लेषणात्मक पाठ तैयार करती है। यह आलोचनात्मक पुस्तक है मात्र आलोचना नहीं। सृजनकर्मी द्वंद्वात्मक दृष्टि सम्पन्न तलस्पर्शी आलोचना। पुस्तक में कुल आठ आलोचनात्मक निबंध हैं। ये निबंध समय-समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में छपते रहे हैं (अधिकांश 'वसुधा' में ही)। निबंधों को अलग-अलग पढ़ने पर पाठक के सामने आलोच्य गद्य-विधाओं को पहचानने का नया ज्ञान-झरोखा खुलता है। गहन पड़ताल के बाद लिखे गए निबंधों से पाठक न केवल चमत्कृत महसूस करता है, बल्कि उपकृत भी होता है। पुस्तक में संकलित निबंधों को एक साथ पढ़ने पर एक अलग अनुभव होता है। हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं के परस्पर सम्बन्धों की नई दुनिया पाठकों के सामने खुलती है। विधाओं की परस्पर आवाजाही से निर्मित रूपबंधों अथवा विधाओं की अनिवार्य लेखकीय परिणति का तार्किक आधार पाठकों के सामने स्पष्ट होता है।

'गद्य की पहचान' पुस्तक बताती है कि-मनुष्य की ही राजनीति नहीं होती। रूपबंधों की भी राजनीति होती है। राजनीति मनुष्य के जीवन को प्रभावित करती है। इस प्रभाव को समझने का काम राजनीति-विज्ञानी अथवा समाज-विज्ञानी करते हैं। इसी तरह रूपबंधों की राजनीति, साहित्य अथवा लेखकीय गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन्हें कौन समझेगा? आलोचक या फिर साहित्य-विज्ञानी। पुस्तक में अरुण प्रकाश जी का यह साहित्य-विज्ञानी टेम्परामेंट आद्योपांत दीख पड़ता है।

गद्य की पहचान करने की ज़रूरत क्यों पड़ती है? जब गद्य की पहचान धुंधलाने लगे या फिर नए गद्य रूप दस्तक देने लगें। पिछली शताब्दी इस मायने में बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। उस शताब्दी के अंतिम तीन-चार दशकों में अनेकानेक गद्य विधाएँ हिन्दी साहित्य में आ उपस्थित होती हैं। बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में इनके रूप स्थिर होने लगते हैं। बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन गद्य विधाओं की न केवल पड़ताल करते हैं, बल्कि काफी हद तक इन इनके मानक रूप भी निर्धारित करते हैं। लेकिन बीसवीं सदी के तीसरे दशक के समाप्त होते-होते गद्य-रूपबंधों की राजनीति आरंभ हो जाती है। समय सीमा को एकाध दशक आगे-पीछे किया जा सकता है। महादेवी वर्मा के रेखाचित्र संस्मरणात्मक होने लगते हैं। संस्मरण, रेखाचित्रात्मक हो जाते हैं। चौथे दशक के मध्य में आने वाला 'गोदान' ग्रामीण जीवन का महाकाव्य है। कहानी भी रूप बदल लेती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा चल निकलती है। निबंध कई रूप बदलकर ललित निबंध के रूप में प्रतिष्ठित होने लगता है। पाँचवें दशक में आने वाला 'शेखर एक जीवनी' भी उपन्यास है और 'बाणभट्ट की आत्मकथा भी। 'ज़िंदगीनामा' उपन्यास कविता से शुरू होता है। 'अंधा युग' गीति नाट्य है। बीसवीं सदी का अंत आते-आते विनोद कुमार शुक्ल को लगता है कि उपन्यास में एक कविता रहती है।

भारतेन्दु ने सरयूपार की यात्रा की थी। निर्मल वर्मा बीयर के मग के साथ चीड़ों पर छिटकती चाँदनी की यात्रा करते हैं। एक गंभीर ऐन्द्रिक अनुभूति के साथ गगन गिल मानसरोवर के रास्तों से गुजरती हैं। वैयक्तिक पत्र और डायरियां सार्वजनिक हो जाते हैं। पत्र बक्सों-अलमारियों से निकलकर पत्र-पत्रिकाओं से होते हुए पुस्तकाकार हो गए हैं। डायरियां अपने गोपन कक्षों से निकलकर ड्राईंग रूम के सेंटर टेबल की शोभा बन गई है। ज़ाहिर है इसके लिए उन्हें पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों पर उतरना पड़ा है। संस्मरण अतीव रचनात्मकता के साथ अपना हक़ अदा करने लगे हैं। संस्मरण-रेखा चित्र की सर्जनाभूमि से गुजरते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी प्राचीन रूपबंध वार्ता तक पहुंचते हैं। 'गंगा स्नान करने चलोगे' पुस्तक में फ़िराक गोरखपुरी पर संस्मरण फ़िराकवार्ता शीर्षक से संकलित है तो कथादेश पत्रिका में 'कवियन की वार्ता' स्तंभ में हँसमुख गद्य के सजीव टुकड़े छप रहे हैं।

विगत शताब्दी के मध्य में गये रूपबंधों में जो मामूली हेर-फेर शुरू हुआ था, उसने सदी का अंत आते तक तोड़- फोड़ का रूप धारण कर लिया। कहानी, उपन्यास-नाटक- संस्मरण-निबंध इत्यादि के जो नए रूप सामने आए, उन्होंने पाठक को चकाचौंध कर दिया। परिवर्तन, रूप और वस्तु दोनों स्तरों पर हुए। वस्तु से मन को जोड़ेंगे तो रूप हाथ से फिसला जाता है। रूप में बंधने लगेंगे तो वस्तु छूट जाती है। फलतः गद्य की पहचान का संकट खड़ा हो जाता है। पाठक के सामने अनेकानेक सवाल खड़े हो जाते हैं। 'गद्य की पहचान' पुस्तक रूपबंधों की पहचान के संकट का माकूल हल है। पुस्तक में ऐसे बहुत से सवालों का जवाब अरुण प्रकाश ने दिया है जो आज पाठक के सामने खड़े हो गए हैं। जवाब बहुधा अच्छे बन पड़े हैं। पुस्तक शुद्ध रूप में आलोचनात्मक है। लेखक शुद्ध रूप में आलोचक नहीं है। इसलिए विश्लेषण काफी हद तक नए ढब का है। मौलिक है। विश्लेषण में अरुण प्रकाश का रचनाकार भाव हमेशा जाग्रत रहा है। इसलिए विश्लेषण तथ्य बहुल होने पर भी रोचक और पठनीय बन पड़ा है। पुस्तक में एक जगह उन्होंने लिखा है- कथाकार डायरी लिखेगा तो कहानी डॉमिनेट करेगी- ('गद्य की पहचान- पृ.-148') उनसे पूछना चाहिए- अगर कथाकार आलोचनात्मक निबंध लिखेगा तो क्या कहानी -आख्यान डॉमिनेट नहीं करेगी। अरुण प्रकाश पुस्तक में रूपबंधों-विधाओं की जीवन यात्रा का आख्यान कहते चलते हैं। तथ्यों की प्लेसमेंट इतनी सधी हुई और मौजू है कि नीरस इतिहास रसपूर्ण सजीव हो उठा है। वक्त की जरूरतों से उपजे रूपबंध सहज- स्वाभाविक और प्रामाणिक महसूस होने लगते हैं। वर्णन कथारस का सुख देता है। पॉलिमिक्स से अछूता विश्लेषण तार्किक और युक्तियुक्त लगता है। इस क्रम में पुस्तक के कई वाक्य, सूक्तियों के कलेवर में बदलने लगते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक सजग पाठक की हैसियत से अरुण प्रकाश रूपबंधों-विधाओं की पड़ताल करते चलते हैं। रूपबंधों पर विचार करते समय उनके सामने बहुत सी बातें रहती हैं। पाठक हैं तो रचनाकार भी हैं। समय है तो समाज भी है। इतिहास- परम्परा- जीवन मूल्यों के साथ सांस्कृतिक- साहित्यिक परिघटनाएं उनके सामने रहती है। इसलिए रूपबंधों का समग्र मूल्यांकन हो पाया है। रूपबंधों- विधाओं का ऐतिहासिक- सामाजिक- सांस्कृतिक परिवेश सजीव- साकार हो उठा है। दरअसल यह पुस्तक हिन्दी को गद्यात्मक रूपबंधों का संक्षिप्त एनसाइकलोपीड़िया है। अरुण प्रकाश का मानना है कि रूपबंधों की निर्मिति पर तो उपर्युक्त स्थितियों- संस्थानों के दबाव रहते ही हैं,रूपबंधों के भीतर जन्म लेने वाली विधाएं तो लगभग इन दबावों का ही प्रतिफल होती है। पुस्तक में उन्होंने रूपबंध और विधा दोनों को अलग माना है। फार्म के लिए रूपबंध और जेनर के लिए विधा शब्द का इस्तेमाल किया है।

पुस्तक में अरुण प्रकाश ने अपना लक्ष्य साफतौर पर निर्धारित कर लिया है कि रूपबंध तथा विधा का स्वरूप क्या है? वर्तमान समय में विधागत फ़्यूजन को वे बुरा नहीं मानते। रूपबंध परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। नए रूपबंध-विधाएं जन्म लेती हैं। इसका कारण वे नवाचार को मानते हैं। नवाचार क्या है? आचरण की नई पद्धति। नवाचार जीवन के दबाव से उपजते हैं। अरुण प्रकाश लिखते हैं- विराट जीवन में इतनी विविधता समाई है कि संरचना की जड़ीभूत धारण हर अंतर्वस्तु में छिन्न-भिन्न हो जाती है। नए रूपबंध, नई विधा की उत्पत्ति का यही रहस्य है। (वही पृ.-18) संरचना की जड़ीभूत धारणा यानी रूपबंध का परम्परागत स्वरूप। सामाजिक-सांस्थानिक दबाव जीवन की एकरूपता को तोड़ते हैं। नई जीवन स्थितियाँ निर्मित होती हैं। यह स्थितियाँ बहुधा असंभावित होती है। जीवन से प्रभाव ग्रहण करने वाले रचनाकार को अंतर्वस्तु की निर्मिति नए ढंग से करनी पड़ती है। जैसे मॉनोटॉनस जीवन के संकटों से निबटने के लिए प्रयोगशीलता (नवाचार) की ज़रूरत होती है, उसी तरह ऐसे जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए रूपबंधों की मॉनोटॉनी को तोड़ना जरूरी है। रूपबंधों पर बात करते हुए प्रो. नित्यानंद तिवारी अक्सर कहते हैं- जीवन की आँच में विधाओं की सीमाएँ पिघलने लगती हैं- इसी कारण उपन्यास आत्मकथात्मक हो जाते हैं- जैसे कस्तूरी कुंडल बसे- (वही-पृ. 138) और स्मृति आख्यान में औपन्यासिक विन्यास आ जाता है- जैसे 'नंगातलाई का गाँव' (वही-पृ. 139)

शास्त्रीय आलोचना इस नवाचार अथवा प्रगतिशीलता का विरोध करती है। 'नंगातलाई का गाँव' कृति पर बोलते हुए एक बड़े विद्वान ने कृति को 'असफल आत्मकथ्य' कहा था। रूपबंध को जड़ या स्थिर मान लेने पर ऐसी फतवेबाज़ी होती है। अरुण प्रकाश ने रूपबंधों पर बात करते हुए यह स्पष्ट किया है कि न तो कोई रूपबंध या विधा हमेशा के लिए समाप्त होती है और न ही अंतिम रूप में स्थिर (वही पृ.18)। वे रूपबंधों के लचीलेपन के हिमायती हैं। हाँ, यह लचीलापन ज़रूरी और तार्किक होना चाहिए। ज़िंदगी के द्वारा सर्टिफाईड। अरुण प्रकाश लिखते हैं- रूपबंध को जड़ मानने में ख़तरा यह है कि आलोचना नवाचार की अनदेखी कर बैठेगी। ऐसी आलोचना को पिछड़ी अकादमिक कहा जाए तो बचाव में तर्क क्या है? रूपबंध या विधा, मार्गदर्शक सिद्धांत हैं, नियम नहीं। (वही पृ.18)

'गद्य की पहचान' पुस्तक 'अकादमिक' आलोचना नहीं है। अरुण प्रकाश रूपबंध को केवल फार्म या रूप नहीं मानते। उसे बाहरी आकार या रूप के साथ भीतरी योजना का हिस्सा भी मानते हैं। उनके कुछ निष्कर्ष देखिए-आत्मकथा रूप की कम अंतर्वस्तु वाली विधा अधिक है। (वही पृ.135)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यानी अंतर्वस्तु ही आत्मकथा के रूप को निर्धारित करती है। रिपोर्ताज के संदर्भ में डेनियल डेफ्रो की कृति--'जर्नल ऑफ द प्लेग ईयर' का विश्लेषण करते हुए कहते हैं- तथ्यों को काल्पनिक कथा और चरित्रों की पृष्ठभूमि में रखने की बजाय उसे सीधे, सच्चे, नुकीले और चुभने वाले 'रूप' में रखना जरूरी समझा। (वही पृ. 169) लेखक तथ्यों से रूप का निर्धारण करता है। हालाँकि यह रूप अभिव्यक्ति का है। लेकिन लेखक रिपोर्ताज के ढाँचे के भीतर ऐसा करता है। डायरी के बारे में वे कहते हैं- डायरी में निरंतरता और धारावाहिकता का प्रवाह नहीं होता तो इस तरह कथात्मकता में पानी की तरह घुल जाना संभव न होता। (वही-173)

डायरी की अंतर्वस्तु की निरंतरता और धारावाहिकता उसके रूप में कथात्मकता का प्रवेश कराती है। पुस्तक में ऐसे अनेकानेक तथ्य हैं। ऐसे में अरुण प्रकाश रूपबंधों-विधाओं को मार्गदर्शक सिद्धांत ही कह सकते हैं- नियम नहीं। यह विश्लेषण पद्धति बने-बनाए नियम कायदों की बिना पर फैसले नहीं सुनाती। उपलब्ध पाठ के आधार पर विश्लेषण पद्धति विकसित करती है। यह विचारणीय है कि पूरी पुस्तक में अरुण प्रकाश अनेक लब्धप्रतिष्ठित आलोचकों के हवाले देते हैं। सैद्धांतिक विवेचन की चर्चा करते हैं। लेकिन विश्लेषण के स्तर पर आमतौर पर किसी से टकराते नहीं हैं। दरअसल उनके विश्लेषण का रास्ता रूपबंध की राह से होकर गुजरता है। इसलिए बहुत हद तक मौलिक है। कहीं-कहीं भावसिक्त भी है। बालकृष्ण भट्ट और राममनोहर लोहिया के निबंधों पर वे लहालोट हो जाते हैं।

अरुण प्रकाश का मानना है- रचना को खोलने के लिए रचनाकार को खोलना आवश्यक है। (वही पृ. 25) इसका मतलब रचना स्वतंत्र पाठ नहीं है। लेखक का अंत नहीं हुआ है। नवीनतम पश्चिमी थियरी के उलट भारतीय पद्धति से रूपबंधों को समझा जा सकता है। वे दुनियाभर में होने वाले विचारों को जानना ज़रूरी समझते हैं। लेकिन वह विचार अपनी बात के समर्थन में होने चाहिए न कि विचारों की रोशनी में अपनी बात समझी जाए। अरुण प्रकाश का यह विचार पश्चिमी और पूर्वी दोनों विचारों के लिए है। उनका मानना है कि अलग-अलग रचनाकार एक ही रूपबंध का अलग-अलग ढंग से इस्तेमाल करते हैं। इसे ही शैली कहते हैं। क्योंकि उनकी प्राथमिकताएँ अलग-अलग होती हैं। ऐसे में विश्लेषण की शैली एक कैसे हो सकती है। इसलिए गद्य की पहचान नए सिरे से करनी ज़रूरी है। यह ज़रूरी काम अरुण प्रकाश इस पुस्तक में करते हैं।

'गद्य की पहचान' पुस्तक में संकलित निबंध बहुत ठहरकर लिखे गए हैं। धैर्यपूर्वक। जैसे कहानी-उपन्यासकार किसी स्थिति पर विचार करते समय अपनी कल्पना को कई दिशाओं में जाने देते हैं। वैसे ही अरुण प्रकाश अपने चिंतन को कई दिशाओं में जाने देते हैं। हालाँकि इस तरीके से भटकाव या विषयांतर की स्थिति पैदा हो सकती है। लेकिन अरुण प्रकाश अत्यंत सावधानी से अपने चिंतन की दिशाओं को निर्धारित करते हैं, ताकि चिंतनीय विषय के सभी ज़रूरी पहलू उभरकर सामने आ जाएं।

निबंध पर उन्होंने विस्तार से लिखा है। दायरा उनका बहुत विस्तृत है। अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य से होते हुए वे राष्ट्रीय संदर्भ तक आते हैं। फिर हिन्दी पर आकर ठहरते हैं। अध्ययन उनका विशद् है। समझ तार्किक, तथ्यान्वेषी, उद्धरण बहुला, निष्कर्षधर्मी है। निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए अरुण प्रकाश समय लेते हैं। एक बार निष्कर्ष पर पहुंचकर वे जमते हैं। आग्रही हो जाते हैं। तर्क उनके इतने ठोस और साक्ष्य सम्पन्न होते हैं कि पाठक अपने आपको उनके आग्रहों के साथ पाता है। इस विश्लेषण पद्धति का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस्तेमाल पुस्तक में विश्लेषित आठों रूपबंधों के लिए करते हैं। इसलिए विवेचित रूपबंधों का आरंभ-इतिहास-विकास और वर्तमान पाठक के सामने खुलता चला जाता है। किसी रूपबंध अथवा विधा के आरंभ और वर्तमान को एक साथ देखना-समझना पाठक के लिए अति ज्ञानवर्धक तो है ही रोचक और रोमांचकारी है।

वे मानवीय संस्पर्श के साथ निबंध लिखने वाले 16वीं शती के मोंतेन के साथ जब हिन्दी के ललित निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी को खड़ा करते हैं और बौद्धिकता का आग्रह रखने वाले बेकन के साथ वैचारिक निबंध लिखने वाले रामचन्द्र शुक्ल को, तो पाठक के सामने रूपबंधों के विकासक्रम की एक नई दुनिया खुल जाती है। अरुण प्रकाश निबंध को यूरोपीय पुनर्जागण की उपज मानते हैं। लेकिन पश्चिम और पूरब दोनों में- निबंध की शुरुआत ही वर्चस्वशाली वर्ग के विरुद्ध उठी एक आवाज़ के रूप में होती है (वही-पृ.32) वे औपनिवेशिक काल में निबंध की ऐतिहासिक भूमिका निर्धारित करते हुए यह मानते हैं कि हिन्दी भाषी समाज के ज्ञानोदय और औपनिवेशिक सत्ता के टकराव की मानसिक तैयारी में हिन्दी निबंध वाहक बना। पूरी पुस्तक में अरुण प्रकाश की जनतांत्रिक समझ विश्लेषण के पीछे मौजूद है रही है। इससे रूपबंधों की जनतांत्रिकता भी समझ में आती है।

निबंध की बनावट और शैलियों को कई तरह से समझाने की कोशिश अरुण प्रकाश करते हैं। इस क्रम में भातेन्दुयुगीन निबंधों से शुरू करते वे राजकिशोर और रामशरण जोशी तक आते हैं। औपचारिक (वैचारिक) और अनौपचारिक (ललित) निबंधों का फर्क करते हुए लेखक इतिहास-सभ्यता और संस्कृति के कई पहलुओं का जिक्र करता है। ललित निबंधकारों का अंतर किस तरह स्पष्ट करते हैं- 'बानगी देखिए- 'वैसे तो ऊपरी तौर पर विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय भी सांस्कृतिक धरोहर के आलंब के चलते इस धारा (ललित निबंध) के अंग लग सकते हैं पर वे प्राचीन संस्कृति की समीक्षा नहीं, गुणगान करते हैं। हमारे समाज का तार्किक मन हजारी प्रसाद द्विवेदी को नायक बना देता है। तो मिश्र और राय पाठ्यक्रम के निष्प्राण संसार में सीमित हो जाते हैं।' (वही पृ. 39)

सधी हुई भाषा भेद की शैली- ललित निबंध और निबंधकारों की ललित आलोचना। यही लेखक की निजता है। मौलिकता है। शिकंजी की मिठास और तीन तार की बताशा बनाने वाली चाशनी की मिठास के फर्क के माध्यम से ललित तत्व का विवेचन करने वाली आलोचना का पूरा अनुभव पुस्तक पढ़ने पर ही मिल सकता है। ललित तत्व का कचूमर निकालने वाले परसाई का विश्लेषण भी बहुत बढ़िया है।

दुनिया के कई बड़े निबंधकारों का ज़िक्र अरुण प्रकाश ने किया है। आधा निबंध आधी कहानी लिखने वाले बोर्ख़ेस भी उनमें शामिल हैं। निबंध को शुद्ध साहित्यिक कोटि से निकाल कर अरुण प्रकाश राजनीति (राम मनोहर लोहिया- सच्चिदानंद सिन्हा) पत्रकारिता (प्रभाष जोशी राजेन्द्र माथुर-राजकिशोर-रामशरण जोशी) में ले जाते हैं। निबंध पर लिखा गया आलेख रोलांबार्थ के उद्धरण से शुरू होता है और सुकांत भट्टाचार्य की कविता पर समाप्त होता है। अपनी कविता में सुकांत पद्य के स्थान पर गद्य की ज़ोरदार वकालत करते हैं।

भूख के राज में पृथ्वी ऐसी गद्यमय हो गई है
कि पूर्णिमा का चाँद
झुलसी हुई रोटी नज़र आता है -(वही-पृ.63)

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी निबंध भी कई दशकों का सफ़र तय करते हुए 21वीं सदी के दूसरे दशक में झुलसी हुई रोटी की तरह हो गया है। जीवन के यथार्थ से दग्ध निबंध अपनी सम्पूर्ण अर्थवत्ता के साथ पुस्तक में मौजूद है।

यात्रावृतांत पर लिखे निबंध का शीर्षक इस्माइल मेरठी के शेर से लिया गया है-सैर कर दुनिया की ग़ाफिल....।

पुस्तक के अधिकांश शीर्षक काव्यांश हैं। आलोचना की रचनात्मकता दर्शाते मानीखेज़ शीर्षक। निबंध का आरंभ सर्वेश्वर की कविता से होता है।

इब्नबतूता पहन के जूता

निकल पड़े तूफान में

थोड़ी हवा नाक में घुस गई

घुस गई थोड़ी कान में-

यह भी एक विस्तृत निबंध है। 15वीं-16वीं सदी के इतिहास प्रसिद्ध यात्रियों का उल्लेख है। व्यापार-साम्राज्य विस्तार और राजनीतिक उद्देश्यों से की गई यात्राओं की राजनीति-सामाजिकी और आर्थिकी को अरुण प्रकाश स्पष्ट करते हैं। प्रसिद्ध यात्रियों के अलावा भारत आए कुछ महत्त्वपूर्ण यात्रियों के आख्यान शामिल किए गए। अल्पज्ञात यात्रा आख्यानों पर विशेष ध्यान देने की कोशिश की गई है। (वही-पृ. 70)

यात्रा आख्यान को नए ढंग से समझने के लिए अरुण प्रकाश ने कई ऐसी चीज़ों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है, जिनकी तरफ पहले संभवत: देखा नहीं गया। जैसे वे कहते हैं- यात्रा आख्यान लेखक अनुवादक की तरह ही उपलब्ध तथ्य को इस तरह प्रस्तुत करता है कि पाठक उस तक पहुंच सके। यात्रा आख्यान की बुनियाद परायापन है। इसमें घर और परदेश का द्वंद्वात्मक सम्बन्ध चलता रहता है। (वही-पृ.73)

उपलब्ध तथ्यों को पाठक तक पहुंचाने का अर्थ है यात्रा के दौरान अपने अनुभूत संसार को शब्दबद्ध करना। सांस्कृतिक पराएपन को आत्मसात करना। यात्रा आख्यान लोगों की ज़िंदगी में झाँकने की खिड़की है। यह लेखक के अंतरंग को बहिरंग बना देता है। इसलिए अरुण प्रकाश का मानना है कि यात्रा आख्यान की व्याख्या में लेखक को जानना ज़रूरी है। लेखक ही नहीं उसकी आँख को भी।

आँख यानी दृष्टि-दृष्टिकोण-सौंदर्यबोध। चीज़ों को हम कैसे देखते हैं। कैसे महसूस करते हैं। अरुण प्रकाश कहते हैं- असली यात्रा तादात्म्यवादी होती है जो यात्री के सौंदर्यबोध-विजन को बदल देती है। जहाज़ियों की लॉगबुक से निकलने वाला यात्रा वृतांत वी.एस. नॉयपॉल जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक के यहाँ क्या रूप ले लेता है। इसका विस्तृत उद्धरण और बहुत तथ्यात्मक ब्यौरा पुस्तक में मौजूद है। कई उपशीर्षकों के तहत व्यापारिक-ग़ैर व्यापारिक-वैज्ञानिक अभियान-जिज्ञासापरक यात्रा-वृतांतों का विवेचन अरुण प्रकाश ने किया है। तीर्थ यात्राओं पर विस्तार से विचार किया है। हिन्दी के लगभग सभी महत्वपूर्ण यात्रा-आख्यान स्त्री-पुरुष लेखकों की चर्चा पुस्तक में है।

जीवनी-आत्मकथा-डायरी-संस्मरण और रिपोर्ताज पर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण विश्लेषण परक निबंध पुस्तक में संकलित है। आत्मकथा से संबंधित आलेख एक भाषण का रूपांतर है। इस आलेख

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के मूल में हिन्दी आत्मकथाओं की कमज़ोरी आधी हक़ीक़त आधा फसाना है- (वही-पृ.134) इसलिए अरुण प्रकाश प्रकाश इस आलेख में इस बात पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं कि आत्मकथा को कैसा होना चाहिए। उन्हें लगता है कि आत्मकथा में लेखक की स्वीकारोक्ति होनी चाहिए। लेखक का निष्कवच होना ज़रूरी है। बिना शर्त आत्मउद्घाटन अपनी कमजोरियों का मुक्त स्वीकार आत्मकथा लेखन को और ऊँचा उठाता है। क्योंकि आत्मकथा की छवि सत्यवादी है। इसका मूलाधार आत्मसंघर्ष है। (वही-पृ. 133-134-135)

हक़ीक़त बयान करने वाले निष्कवच-आत्म उद्घाटक जीवन संघर्ष में मन-प्राण से जुटे आत्मकथा लेखकों की पहचान अरुण प्रकाश करते हैं। जीवन के उन दवाबों को चीन्हने की कोशिश करते हैं जिनसे वास्तविक आत्मकथा बनती है। इस संदर्भ में देशी-विदेशी आत्मकथा लेखकों के हवाले देते हैं। नेताओं और कलाकारों की आत्मकथाओं को श्रेष्ठ मानते हैं और 'मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता' की गुहार लगाने वाले आत्मकथा लेखकों का वे ज़िक्र भी नहीं करते। बातचीत वे हिन्दी की पहली आत्मकथा 'अर्धकथानक' से प्रारंभ करते हैं। 'बाबरनामा' और चीन के आखिरी बादशाह की आत्मकथा- 'फ्राम इम्परर टू सिटीजन' से होते हुए हिन्दी मराठी की अनेक आत्मकथाओं से गुजरते हैं। महिला और दलित आत्मकथा लेखन को वे सभ्यता-समीक्षा कहते हैं।

आत्मकथा लेखन में सजगता की ओर संकेत करते हुए अरुण प्रकाश कहते हैं- आत्मकथा के खलनायक लेखक के विरोधी नहीं होते बल्कि आत्मप्रशंसा और परनिंदा होते हैं- (वही-पृ.136) आत्मकथा निजी सम्पत्ति नहीं होती। इसमें मनमानी नहीं की जा सकती। आत्मालोचना आत्मकथा को सही रास्ते पर ले जा सकती है। वस्तुपरकता आत्मकथा का अनिवार्य गुण है।

आत्मकथा लेखन के सिद्धांत निरूपण की दृष्टि से संकलित व्याख्यान महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक दृष्टि से इसे लेख बनाने की ज़रूरत थी। हिन्दी की कई चर्चित-विवादास्पद आत्मकथाओं का ज़िक्र ज़रूरी था। पाठकों की सूचना के लिए उपयोगी होता। लेख के कलेवर में गुंजाइश भी थी।

आत्मकथा की तरह जीवनी की सैद्धांतिकी पर भी अरुण प्रकाश ने विचार किया है। पुराणों में वर्णित वंश-वर्णन से लेकर वर्तमान में बायोग्राफी चैनल पर दिखाई जाने वाली जीवनियों के संदर्भ में जीवनी रूपबंध को समझने का प्रयास किया गया है। दण्डी के 'दशकुमार चरित' को अरुण जी पहली गध्यात्मक जीवनी मानते हैं। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' अश्वघोष के 'बुद्ध चरित', विद्यापति की 'कीर्तिलता' से होते हुए वे उर्दू में कायदे की पहली जीवनी 'हयाते सादी' (1888) तक आते हैं। निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं-जीवनी की हमेशा दो रचना प्रवृत्तियां रही हैं, बलात् और स्वैच्छिक। बलात् जो आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखी गई। स्वैच्छिक जो चरित्र के गुणों को देखकर स्वेच्छा से लिखी जाती है। चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासों को वे पहली कोटि में रखते हैं और नाभादास के भक्तमाल को दूसरी कोटि में शामिल करते हैं। इस संदर्भ में एक बड़ा सवाल खड़ा करते हैं-रचनाकार अपने संरक्षक के जीवन की आलोचना कैसे करता है?- (पृ. 108)

वास्तविक जीवनीकार चरितनायक की सिर्फ प्रशंसा ही नहीं करता। उसे सत्य और ईमानदारी के मार्ग पर चलना चाहिए। तथ्य जुटाने चाहिए। उजले पक्षों के साथ अंध पक्षों पर रोशनी डालनी चाहिए। जीवनी में यदि कार्य और कारण, समय और अंतराल, व्यवहार और इतिहास में विश्वनीय सम्बंध दर्शाया गया हो तो वही काफी है। (वही-पृ.125) मिथक बन चुके चरित्रों को इतिहास सिद्ध

eGangotri - Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी करना चाहिए। हिन्दी क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण प्रकृति की तरफ इशारा करते हैं कि- हिन्दी क्षेत्र इतिहास विदग्ध नहीं, मिथक विदग्ध क्षेत्र है। (वही-पृ.114) नायक-पूजा से बाहर निकलना होगा। सारी दुनिया में जीवनी की दो धाराएँ रही हैं। जीवनी योग्य व्यक्ति या तो इतिहास में अवस्थित है या साहित्य में।

अरुण प्रकाश यह सवाल खड़ा करते हैं-जो न इतिहास न साहित्य में थे, उनका क्या होगा। (वही पृ.115) जीवनी विषयक निबंध का द्वंद्व यही है। इसी द्वंद्व ने संसार में जीवनी की तीसरी धारा का रास्ता बनाया। उनका मानना है कि यह तीसरी धारा पहली बार हिन्दी में प्रकट हुई। (वही-पृ.115) इस संदर्भ में निराला जी की कृति कुल्ली भाट को वे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अनुभव आधारित जीवनी 'कुल्ली भाट' में अरुण प्रकाश साधारण की जीवनी का सौन्दर्यशास्त्र देखते हैं। इस प्रकार 'महानों' की चरितगाथाओं से साधारणों के जीवन संघर्ष तक पहुंचने वाली जीवनी की जीवन यात्रा पाठक के सामने खुलती चली जाती है।

आत्मकथा और जीवनी से मिलता जुलता रूपबंध है-डायरी। अरुण प्रकाश मानते हैं-डायरी एक अधूरी विधा है। उसमें कोई भी चीज़ राउंडअप नहीं होती। (वही-पृ.147) फिर भी विश्व प्रसिद्ध डायरी लेखकों की उन्होंने चर्चा की है। आज डायरी एक फैशनेबुल रूपबंध बनता जा रहा है। प्रकाशित करवाने के लिए डायरी लिखने का क्या मतलब है। लैटिन में डायरियम का अर्थ गतिविधियों और चिंतन को दर्ज करना है। दिनचर्या प्रायोजित नहीं होती। चिंतन भी सहज और स्वाभाविक होता है। खुद को आईने में देखना एक बात है। जब दूसरे हमें देखते हैं तो और बात होती है। आईने के सामने हम नंगे होते हैं। दूसरों के सामने हम सज-संवर के जाते हैं। प्रकाशन के लिए लिखी डायरी में कितनी निजता रह जाती है? खैर.... अरुण प्रकाश कहते हैं-डायरी में निष्कपटता और रंजकता, चटपटापन और आत्म का बैलोसपन होना चाहिए। डायरी शत-प्रतिशत लेखक के व्यक्तित्व-आकांक्षा, विफलता के बीच झूलता हुआ स्पेस है। (वही-पृ.144)

डायरी को अरुण प्रकाश आत्मकथात्मक रूपबंध मानते हैं तो संस्मरण को भी आत्मकथा ही कहते हैं। डायरी में जैसे कोई चीज़ पूरी नहीं होती वैसे ही संस्मरण में किसी का सम्पूर्ण जीवन नहीं आता बल्कि जीवन समय के टुकड़े आते हैं। (वही पृ.152) अतीत और वर्तमान के बीच पुल का काम करने वाली स्मृति संस्मरण का आधार होती है। अरुण प्रकाश यह भी जानते हैं कि स्मृति तथ्य को धूमिल करती है। संस्मरण की तथ्यात्मकता पर भी वे संदेह करते हैं। फिर भी वे मानते हैं-संस्मरण में आए व्यक्तियों, घटनाओं और उसके परिणामों का पुनर्सृजन आत्मीय और जीवंत तरीके से किया जाता है। विश्वनाथ त्रिपाठी के नामवर जी पर लिखे संस्मरण 'हक़ अदा न हुआ' से वे हिन्दी में संस्मरण विधा का पुनर्प्रकटीकरण मानते हैं।

संसार भर में आई संस्मरणों की बहार का हवाला देते हुए हिन्दी के चर्चित संस्मरणकारों का उल्लेख पुस्तक में है। विदेशी संस्मरणकार भी विश्लेषण में शामिल हैं। जीवनी की तरह संस्मरण भी साधारण लोगों पर लिखे जा सकते हैं। परसाई जी की पुस्तक में मामूली लोग भरे पड़े हैं। वाराणसी के सामान्यजनों पर संस्मरण लिखने वाले काशीनाथ सिंह का उल्लेख भी पुस्तक में है। संस्मरण के बहाने दूसरों पर आलेख करने वाले लेखकों को अरुण प्रकाश सचेत करते हैं-पर निंदा परोक्ष रूप से आत्मप्रशंसा है- (वही-पृ. 151)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुस्तक का अंतिम निबंध रिपोर्ताज पर है। इस निबंध में 2500 वर्ष पहले रिपोर्ताज लिखने वाले यूनानी लेखन हिरोडोरस से लेकर हिन्दी की नवपत्रकारिता में लिखे जाने वाले आत्मपरक रिपोर्ताज का ब्यौरा है। अरुण प्रकाश रिपोर्ताज को ऐसी विधा मानते हैं जिसमें राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय-ऐतिहासिक अनुभव कठोर यथार्थ के साथ प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। उनका मानना है रिपोर्ताज समाज सत्य की अभिव्यक्ति है, राष्ट्र एवं उसके सामूहिक तथा सामाजिक शक्तियों के पहचान का रूपबंध है। (वही पृ.176) ज्ञान के इस रूपबंध को उन्होंने रिपोर्ट का विस्तार ही माना है। हिन्दी के अप्रतिम रिपोर्ताज लेखकों रेणु और रांगेय राघव के साथ शिवदान सिंह चौहान, धर्मवीर भारती, रामशरण जोशी और नंदीग्राम की डायरी लिखने वाले पुष्पराज के रिपोर्ताज का विश्लेषण पुस्तक में है। भीष्म साहनी और रघुवीर सहाय ने रिपोर्ताज को एक विधा के रूप में स्वीकार करने पर जो बल दिया है, वह उद्धरण सहित उल्लिखित है।

'गद्य की पहचान' पुस्तक में अरुण प्रकाश ने जिस भी विधा पर बात की है उसके बारे में अधिकतम जानकारियाँ हासिल करने का प्रयास किया है। देश-विदेश में उपलब्ध स्रोतों तक पहुंचने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अपूर्व धैर्य और समझ के साथ लिखी इस पुस्तक में कई ऐसी जानकारियाँ हैं, जो हिन्दी समाज के सामने पहली बार आई हैं। ऐसे तथ्य जिनकी तरफ पहले ध्यान नहीं दिया गया। पुस्तक के लगभग हर दूसरे पृष्ठ पर नई जानकारियाँ हैं। पुस्तक की एक बड़ी खूबी है-वहीं लेखक की निजता और मौलिकता भी है, कि लेखक की समझ आलोचक की है और मन कथाकार का। बरसों पुराना पापी मन एकाएक नमाजी तो हो नहीं सकता। नतीजा, पुस्तक के सभी निबंध रोचक, जिज्ञासापूर्ण और कथात्मक बन पड़े हैं। इसलिए पुस्तक में पठनीयता बहुत है। आलोचना के इस रूप को ललित आलोचना कहा जाए तो क्या बुरा है।

अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के रूपबंधों के जातीय स्वरूप को स्पष्ट करने वाली यह पुस्तक सिर्फ हिन्दी गद्य की पहचान नहीं करती, हिन्दी के जातीय गद्य को अत्यंत दृढ़ता से प्रतिष्ठित भी करती है। शताब्दियों में बिखरे हिन्दी गद्य के सूत्रों को जोड़ने वाली इस पुंस्तक को हिन्दी की जातीय आलोचना दृष्टि का नवीनतम रूप समझना चाहिए।

पुस्तक में कुछ कमियाँ रह गई हैं। हो सकता है उनका कारण छपाई या प्रूफ रीडिंग रहा हो। कई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से अटपटे लगते हैं। कई शब्दों की वर्तनी सुधारी जानी बाक़ी है। आत्मकथा से सम्बंधित आलेख में कई महत्वपूर्ण लेखक छूट गए हैं। 'अर्धकथानक' का प्रकाशन वर्ष 1841 ई. छप गया है-जबकि उसमें अकबर की मृत्यु के समय का आँखों देखा हाल है। रामायण 1300 बरस पहले लिखी गई है। विद्यापति 16वीं सदी के कवि हैं। उम्मीद है कि अगले संस्करण में इस तरह की त्रुटियों को दूर कर दिया जाएगा।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली-110025
मो. 09312225213

CC-0. Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बलराज साहनी: एक जीवन एक अभिनय

डॉ. करनजीत सिंह

'यह जो परम्परा की बात आपने की है वह बिल्कुल ठीक है। हमारी परम्परा क्रांतिकारी है उथली नहीं। हमारे गुरुओं ने, फकीरों ने जो वाणी रची है वह माँ का दूध पीकर रची है, बोतल का दूध पीकर नहीं।'

बलराज मेरे सम्मुख खड़ा कह रहा था। दरअसल वह खड़ा नहीं था बल्कि इधर-उधर कुछ ढूँढ़ रहा था। कभी वह अपनी बाईं ओर पड़ी लिखने की मेज पर हाथ मारता कभी दाईं ओर की दीवार पर लगी बुकशेल्फ पर नजर डालता। हम उसकी स्टडी से गुजर कर अभी-अभी बैठे ही थे कि बलराज ने प्रगतिशील लेखक संघ के प्रति अपना असंतोष प्रकट करना शुरू कर दिया था।

उसके दीवान पर पड़े तकिये के साथ बगल टिकाए मैं उसकी बातों को बड़े मनोयोग से सुन रहा था और मेरे सामने की कुर्सी पर सुखबीर बैठा हुआ था। कुछ देर बाद चाय आ गई। हम चाय की चुस्कियों का आनंद ले रहे थे और बलराज की बातें उस मुलाकात की पृष्ठभूमि तैयार कर रही थीं। याद नहीं आ रहा कि कौन से बिन्दु पर आकर मैंने पंजाबी साहित्य की प्रगतिशील विरासत की बात छेड़ दी थी। हमारी बातचीत अपने उद्देश्य की ओर बढ़ रही थी कि बलराज से मिलने के लिए कोई आ गया और कुछ देर के लिए उठकर वह नीचे चला गया था। कमरे में पुनः प्रवेश करते हुए विरासत की बात को आगे बढ़ाते हुए वह कह रहा था-:

'जपजी में देखो कितना उत्थान है एक ओंकार सतनाम' दीवान की पाटी पर तनिक झुककर बैठे विषय का पूरा गम्भीरता से सारतत्व बयान कर रहा था- 'निर्भय...निर्वैर...' इन शब्दों में चुनौतीपूर्ण ध्वनि है। समय के अनुकूल लहर को काटना और आदेश देना कि कब तलवार उठानी है, किसके विरुद्ध उठानी है, इसका उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान था। गुरु अर्जुन चुपचाप शहीद हो गया। अगले गुरुओं ने लगातार लड़ाईयाँ लड़ी और जीती। यह मात्र संयोग नहीं था।'

बलराज एक सुदीर्घ चिंतन में मग्न था और हम जिज्ञासु विद्यार्थियों की भाँति सुन रहे थे। बलराज की इतिहास के प्रति वैज्ञानिक सूझ एवं गुरु लहर के प्रति उतनी ही यथार्थ दृष्टि के लिए मन ही मन मैं उनकी प्रशंसा कर रहा था। उनकी विलक्षण सैद्धांतिक स्पष्टता इस प्रकार की थी कि वह अपनी ही बातों में से उठने वाले हर सम्मत प्रश्न का उत्तर देता जा रहा था जैसे वह शांति निकेतन के कॉलेज में अपनी कक्षा के लिए विशेष लैक्चर नोट्स तैयार करके लाया हो। 'उस समय न तो कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेनिन हुआ था, न कोई श्रमिक वर्ग या सर्वहारा ही थे। लेकिन जो भी श्रमिक वर्ग था, उसे गुरु ने चुनौती दी। उसमें कोई धुंधलापन नहीं था। शेष भारत में (उसका संकेत भक्ति आन्दोलन की तरफ था) भले ही कोई धुंधलापन रहा हो हमारे शहीद गुरुवाणी से प्रेरित थे। गुरुवाणी कहती है शीश अर्पित करना है तो इस ओर आओ।'

मुझे किशन सिंह का स्मरण हो आया। बलराज साहनी की गुरुवाणी की व्याख्या और किशन सिंह की गुरुवाणी की व्याख्या में अद्भुत समानता थी। बलराज साहनी ने कहीं किशन सिंह की बातों को तो नहीं दोहराया? बलराज, जसवंत सिंह कंवल का अभिन्न मित्र है और कंवल, किशन सिंह की व्याख्या का मुरीद। मेरे मस्तिष्क में एक वृत्त उभर आया था। हो सकता है इस प्रकार की सोच क्षुद्रता का प्रमाण हो। मैंने बलराज की बौद्धिक चेतना एवं व्यक्तित्व को जानबूझ कर छोटा करने के लिए ऐसा नहीं सोचा था। सोच का बंधन भी तो नहीं होता, किन्तु यह महज संयोग ही था कि गुरुवाणी संबंधी और फिर हीर वारिस शाह संबंधी बलराज के विचार किशन सिंह से मेल खाते थे। 'मेरा पाकिस्तानी सफर नामा' में बलराज ने लिखा है:-

'हमारे महापुरुषों की शिक्षा प्रगतिशीलों का साथ देने के लिए प्रेरित करती है किन्तु उनसे उपेक्षित होने पर वह पाखण्डियों और संस्थागत गुर्गों के हाथों में जा पहुँची है। परिणाम यह है कि जनता के मस्तिष्क तो प्रगतिशीलों की ओर आकर्षित होते किन्तु उसके दिल प्रगतिशीलों के अधीन नहीं रह जाते हैं। इस प्रकार की सांझ मजबूत कैसे रह सकती है जिसका सम्बन्ध दिल से न हो....।' (पृष्ठ 45)

पृष्ठ 57 पर वह लिखता है- 'वारिस शाह की हीर संसार की सर्वोत्तम कलाकृतियों में से एक है। कविता का कोई भी मानदण्ड लें तो वारिस शाह की हीर इन कसौटियों पर खरी उतरेगी।'

'बलराज जी आज के हालात में क्या करना चाहिए? क्या प्रगतिशील लेखक की कोई भूमिका है?'

'जो कुछ मैंने कहा है उसका अर्थ यह नहीं कि हम आज भी वहीं खड़े हैं। प्रगतिशील क्षेत्रों की सहायता से आज सर्वहारा ही नेतृत्व दे सकता है।' बलराज ने मेरी आँखों में आँखें डालते हुए कहा- बलराज की आँखों में चमक थी। मुझे उसके चेहरे पर कुछ अधिक लालिमा उभरती हुई प्रतीत हुई थी। उसका आत्मविश्वास बोल रहा था। 'आज यदि कोई मानवता की सेवा के लिए आगे आना चाहता है तो उसे श्रमिक वर्ग से जुड़ना ही पड़ेगा। आज हम बुद्धिजीवियों की यह भूमिका है कि गुरुवाणी के विषय में वास्तविक एवं धर्मनिरपेक्ष सूझ लोगों को दें।' अपने दोनों हाथों का बोझ घुटनों पर डालते हुए उसने अपनी गर्दन को झटका देते हुए कहा- 'गुरुवाणी तो यह कहती है 'नीच के भीतर नीच जात'- या जैसे गुरु गोविन्द सिंह ने कहा है- 'इन्हीं की कृपा से सजे हैं' किन्तु हम मध्यवर्गीय सीमाओं से घिरे रहते हैं।

'यह रोग तभी है कि हम जीवन से अलग-थलग हैं' सुखबीर ने अपने विचार रखे- 'देखा जाए तो हमारे साहित्य में मध्यवर्गीय मूल्य, घुटन, यौन अभिव्यक्ति एवं आत्मनिर्वासन की भरमार इसीलिए है।'

'नानक सिंह एवं मोहन सिंह को हम प्रगतिशील क्यों मानते हैं?'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बलराज ने कहा- 'इसलिए कि वे नए मूल्यों से हमारा परिचय कराते हैं, किन्तु उनको वह स्थान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। उसमें निराश होने की बात नहीं है, यह आवश्यक नहीं कि लेखक अपने जीवन काल में प्रशंसा पा ले। हम जितने मैकेनिकल हो जाते हैं, लेनिन उतना मैकेनिकल यदि टॉलस्टाय के बारे में हो जाता तो उसकी प्रशंसा कभी नहीं करता। व्यक्ति की, वर्ग की, समाज की, सबकी भूमिका को समझना परम आवश्यक है।' उसकी आँखों की पुतलियां नाच रही थीं। उसकी भुजाएँ, उसके हाथों की उंगलियाँ, उसके बोलों की नकल उतार रही थी। 'हमारे आधुनिक कवि एवं साहित्यकार भले ही प्रगतिशील हों या प्रयोगवादी, पंजाबी साहित्य एवं सभ्यता की वास्तविक नींव त्याग कर अंग्रेजी मूल्यों एवं हिन्दी शब्दावली के इतना अधीन होकर लिख रहे हैं जैसे दिल के किसी कोने में पंजाबी होने की बात नकारी जा रही हो।'

'हमें क्या करना चाहिए' के प्रसंग में बलराज ने कहा- 'हिन्दी-उर्दू की बात मैं नहीं करता, पर पंजाबी में हमें यह करना चाहिए कि हर ओर संबंध बनाए जाएँ। हमारी जो परम्परा है। हमारे अपने अनुवाद हों, लेखकों को हम व्यक्तिगत रूप से मिलें, पहचानें, पंजाब आने पर हर कोई यह बताये कि मैं अपने घर आ गया हूँ।'

'यह पंजाबी ही कर सकता है।' सुखबीर ने कहा- 'पंजाबियों ने लोगों के दिल जीते हैं।'

'केन्द्रीय पंजाबी लेखक सभा का मंच दूसरी भाषाओं के लेखकों के साथ निजी सम्पर्क रखता रहा है। भारतीय ही नहीं विदेशी लेखक भी हमारे मध्य आकर बैठते रहे हैं और अपनत्व महसूस करते रहे हैं। हमें इस ओर अब अधिक ध्यान देना चाहिए।'

बलराज ने कहा- हममें सैद्धांतिक स्पष्टता भी होनी चाहिए। लोग हमारी ओर खिंचे चले आएँ जैसे गुरु की ओर आकर्षित हुए थे।

'अब हम संगठित नहीं' सुखवीर ने कहा- 'एक समय था जब हम संगठित थे उसका प्रभाव भी है।'

'वास्तव में इस आंदोलन का नेतृत्व करने वाला हमारे पास कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सके जो वास्तविक अगुआ हो सके।' मैंने अपना मत प्रकट किया।

'जोशी था-' सुखबीर उससे आगे कुछ कहने ही वाला था कि बलराज ने अलमारी से तीन गिलास निकाल कर मेज पर रखते हुए कहा- 'जोशी की क्या बात है (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी-पी.सी. जोशी) उसने इतने मूल्यवान दिन दिखाए हैं यदि आज भी कहें कि आ जा मैदान में, तो मैं चला जाऊँगा।'

मैंने पूछा-'बलराज जी आपको साहित्य रचना का शौक कब से है?'

'शौक तो मुझे शुरू से ही था, बहुत पहले 'बसंत क्या कहेगा' शीर्षक से हिन्दी में मेरा कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ था। इसमें सन् 37 से 39 तक लिखी कहानियाँ थीं। फिर मैं कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य हो गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि लिखना ही बंद हो गया। मुझसे यह उम्मीद की जाती थी कि मैं पार्टी की नीतियों के मुताबिक लिखूँ, पर मुझसे यह हो नहीं पाता था, क्योंकि जब भी हिन्दी-उर्दू के लेखकों के मध्य बहस होती थी तो हिन्दी वाले मुझे जनसंघी और उर्दू वाले मुस्लिम लीगी मालूम होते थे। इसलिए मैं साहित्य का क्षेत्र छोड़कर इप्टा की ओर चला गया। पंजाबी का शौक थोड़ा-थोड़ा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहले ही से था किन्तु विभाजन के बाद यह अहसास और भी गहरा हो गया। जुलाई 1947 में रावलपिंडी में स्वर्गीय कामरेड धनवन्तरी के साथ मिलकर मैं शांति सभाएँ करता रहा। प्रेमधवन के गीत गाकर मैं धनवन्तरी जी के लिए मजमा इकट्ठा किया करता था।'

मुझे पहली बार पता चला कि बलराज गायक भी था। मन में आया उससे एक गाने का अनुरोध करूँ किन्तु अवसर की गम्भीरता ने मुझे यह स्वतंत्रता लेने न दी।

'फिर मुझे पार्टी छोड़नी पड़ी' 'बलराज ने कहा'– क्यों छोड़नी पड़ी यह एक लम्बी कहानी है। इन्हीं दिनों मैंने मोहन सिंह की 'निक्की निक्की वाशना' (छोटी-छोटी इच्छा) पढ़ी, बहुत आनंद आया। पंजाबी का पहला उपन्यास जो मैंने पढ़ा वह 'चिट्टा लहू दा।' यह पढ़कर मेरी आँखे खुल गईं कि पंजाबी में ऐसी-ऐसी कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे गये हैं। 'चिट्टा लहू दा' पर एक समीक्षात्मक लेख लिखकर मैंने 'पंज दरिया' में भेज दिया। पंजाबी में यह मेरी पहली रचना थी।

'फिर तो आलोचक के रूप में आपने पंजाबी में प्रवेश किया?'

'हाँ'

'नहीं प्रशंसात्मक आलोचक के रूप में।' सुखबीर ने मुस्कुराते हुए कहा।

'हाँ प्रशंसक के रूप में ज्यादा ठीक है।'

उस मुलाकात के अंतिम दौर में जब स्कॉच के तीन-तीन पैग हम पी चुके तो बातें फ्री स्टाइल होने लगी और संतोष जी (संतोष साहनी) भी इस बातचीत में शामिल हो गई थी। बलराज ने पंजाबी लेखकों की प्रशंसा का प्रसंग फिर से आरंभ कर दिया था और हम तीनों इस बात पर बलराज को रोक रहे थे।

'संतोषजी आप तो मेरे पीछे ही पड़ गईं।'

बलराज पाइप के हल्के फुल्के कश लेते हुए कह रहा था– 'मैं कहता हूँ 'आदमखोर' का रिक्शा चालक वाला अध्याय पढ़े और हार्डी या संसार के किसी बड़े उपन्यासकार की रचना के साथ इसकी तुलना करें। 'मित्तर पियारें' के अंतिम 150 पृष्ठों पर खाक डालो लेकिन पहले 250 पृष्ठों को संसार के किसी मास्टरपीस के सम्मुख रखकर देखें, यदि हिन्दी वाले प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट रहते हैं तो मुझे नानकसिंह को यह कहने का अधिकार क्यों नहीं?'

'आपकी बात से यह स्पष्ट है कि हमारे उपन्यासकार कहीं- कहीं शिखर को छू लेते हैं। किन्तु आपकी ओर से समूचे तौर पर की गई प्रशंसा का लेखक पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है और कंवल पर शायद पड़ा भी है।' मैंने प्रतिक्रिया स्वरूप कहा।

'आपने आवश्यकता से अधिक प्रशंसा की है यह साहित्य और साहित्यकार दोनों के लिए हानिकारक है।' संतोषजी ने एक तरह से मेरी बात की पुष्टि करते हुए कहा।

'यह आप कह सकते हैं, हो सकता है किसी किसी पर प्रशंसा का विपरीत प्रभाव पड़ा है, किन्तु मैं निष्पक्ष हूं। मैं अंग्रेजी साहित्य पढ़ता हूं। मराठी, हिन्दी, उर्दू, गुजराती और बंगाली भी पढ़ता हूं और वहां पर बहुत अनोखी रचनाएं नहीं हैं।' बलराज पूरे जोश में बोल रहा था और कुछ- कुछ भावुक हो गया था।

'बलराज जी आप आवश्यकता से अधिक प्रशंसा करते हैं उसका प्रमुख कारण आपका भावुक

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होना ही है।' सुखबीर ने कहा।

बलराज भले ही कह रहा था कि वह भावुक कतई नही है किन्तु मैं सुखबीर की बात से सहमत था। 'मेरा पाकिस्तानी सफरनामा' जो सफरनामा होने के साथ- साथ बलराज की जीवनी भी प्रतीत होता है- जिसका अक्षर- अक्षर कहता है कि बलराज़ एक भावुक व्यक्ति है। इसके विपरीत 'मेरा रूसी सफरनामा' में भले ही बलराज बौद्धिक चेतना वाला एक संतुलित व्यक्ति प्रतीत होता है किन्तु इसके भी पग-पग पर मन में उठने वाले संशय एवं उसकी खोजी वृत्ति के पीछे उसकी भावुकता कहीं-कहीं झांकती प्रतीत होती है।

'शायद उन दिनों यह पंजाबी की ओर नए- नए आए थे इसलिए कुछ बढ़ा- चढ़ा कर प्रशंसा कर बैठे।' मैंने अपना मत रखा।

सन्तोष जी ने कहा- 'हां पंजाबी की ओर आना इनके लिए एक डिस्कवरी थी।'

'यह बिलकुल ठीक है।' स्वाभाविक बातें करते- करते वह एकदम चमक कर कहने लगा- 'हम लोगों को आधी उम्र तक तो एकदम अंधेरे में रखा गया है।'

'कुछ दिन पहले नवयुग प्रेस में विजय चौहान मिल गई थीं उसने भी हू-ब-हू यही शब्द कहे थे- 'हम लोगों को आजतक अंधेरे में ही रखा गया है कि पंजाबी में कुछ नहीं है।'

'पंजदरिया' में प्रकाशित उस प्रशंसात्मक आलोचना का निबंध पढ़कर नानक सिंह ने बलराज को पत्र लिखा- 'इस नक्कारखाने में तू कौन सी तूती है?', 'मोहन सिंह ने मुझे बहुत उत्साहित किया है, बलराज बता रहा था। 'कभी- कभी वह पुस्तकें भेज देते हैं। 56-57 में मेरी ग़ैर जज़बाती डायरी पंजदरिया में छपती रही है। उनका पत्र जब आता तो उसे पढ़ते- पढ़ते मुझे दो-दो,तीन-तीन दिन लग जाते थे। पहला पत्र जब मिला तो मैं चकित रह गया था कि यह अंग्रेजी में लिखा है या पंजाबी में? मैंने पहली बार महसूस किया कि पंजाबी इतने प्रवाह के साथ भी लिखी जा सकती है। अब दस- बारह वर्ष की मेहनत के पश्चात मैं स्वयं अच्छी तरह से पंजाबी लिख- पढ़ सकता हूं।'

'सफ़रनामा के पश्चात अब आप क्या लिख रहे हैं?'

'गैर जजबाती डायरी प्रकाशित होने वाली है फिल्मी आत्म कथा पर भी काम कर रहा हूं।'

'अभी आपने, फिल्मी आत्मकथा की बात की है बलराज जी। यहां मैं करनजीत जी से यह पूछना चाहूंगा क्या यह भी आपके इन्टरव्यू का हिस्सा है?' सुख़बीर ने मुझे संबोधित करते हुए कहा। 'क्या आप फिल्मी और इल्मी लेखक के अन्तः सम्बंधों पर प्रकाश डालेंगे। कहां किसने रूकावट डाली है कहां मदद की है?'

'सुखबीर साहब, अभिनय एक भिन्न साधना है' और बलराज चुप बैठा नीची निगाहों से कितनी देर तक फर्श की ओर देखता रहा जैसे वह सागर में गहरी डुबकी लगा रहा हो। 'मैं इसमें इतने गहरे में डूबा रहा।' खिड़की से बाहर पेड़ों के तनों के पार नज़र आती सागर की लहरों को छिन्न-भिन्न होते और पुनः क्रुद्ध होकर आगे बढ़ते देखता रहा। 'कैमरे के आगे चक्कर खाकर गिर भी चुका हूँ। कैमरे के आगे खड़े होना बहुत कठिन है। स्टेज का मेरा तजुर्बा जरूर था, किन्तु स्टेज की बात फिल्म से बिल्कुल अलग है। फिल्म वाला स्टेज पर चला जाए पर स्टेज वाले को फिल्मों में दिक्कत होती है। यहाँ पर आकर कई अपने आपको एडजस्ट नहीं कर सके।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'आपने एडजस्ट कर लिया ? यह किस प्रकार हुआ ?'

'किरदार जब बोले तो उसके अवचेतन को पकड़ना होता है। किरदार की हालत, उसकी दुनिया अपने भीतर बसानी होती है।'

'तीस-तीस फिल्मों में एक ही साथ काम करने वाले किरदार के भीतर तक नहीं जा सकते।' सुखबीर का मत था। 'हमारे नायक और नायिकाएँ भी इस कला में अधूरे थे। बलराज जी कई बार ऐसा होता है कि भीतर तल्खी है। रात को नींद नहीं आई, सोए नहीं, परेशान हैं या रास्ते में किसी ने कार रोक ली तो इन हालात में किरदार के साथ सुर से सुर कैसे मिलती है ? कोईतकनीक है या .....'

'तकनीक है-घर के झगड़े, बाहर भीख माँगने वाले, कोई सिफारिशी चिट्ठी वाला, सभी हम पर सुबह आक्रमण करते हैं। स्टूडियो जाने तक यह हालत होती है कि कैसे इस दुनिया से बच के निकल जाऊँ। स्टूडियो जाकर यह अहसास होता है कि यहाँ पर मैं सुरक्षित हूँ। यहाँ पर सात-आठ घंटे कोई छेड़ने वाला नहीं है। यह तभी हो पाएगा। यदि कोई अभिनेता है, और अभी भी ऐसे कई हैं जो वर्षों से काम कर रहे हैं और उन्हें तनाव रहता है। वे सिगरेट पर सिगरेट फूँकते रहते हैं। ब्लड प्रेशर हाई हो जाता है औरों के बारे में मैं नहीं कह सकता, किन्तु मैं ऐसे करता हूँ-एक प्याला चाय का पीता हूँ और अपने किरदार की दुनिया में दाखिल हो जाता हूँ। फिल्म में अपनी भूमिका और दूसरों के साथ अपने संबंधों का चित्रण करता हूँ। ख्यालों में ही अपने संवाद बोलता हूँ औरों को जैसे-जैसे सुनता हूँ तो मेरी सारी खीझ दूर हो जाती है। मैं तनाव मुक्त हो जाता हूँ। सैट पर जाने के लिए तैयार होता हूँ।'

'आपको इस बात पर कब से भरोसा है ?' सुखवीर ने जैसे फिल्मी आत्मकथा का पन्ना पल्टा।

'हकीकत' में पहली बार इत्मीनान हुआ था। इस फिल्म में ऐसा लगा जैसे बटेरा पकड़ लिया है, किन्त इससे पहले मैंने गिर-गिर कर ही सफर तय किया है।

'बलराज जी आपने कई फिल्मों में कई तरह के रोल किए हैं। आपको अपना कौन सा सोल सबसे ज्यादा पसंद है ?' यह प्रश्न मैंने आते समय बस में सोचा था।

'करनजीत जी यह आपने बड़ा मुश्किल सवाल पूछा है, यह इसी प्रकार है जैसे किसी कहानीकार को पूछें या किसी कवि को कहें कि वह अपनी सबसे अच्छी कहानी या कविता का नाम ले। बहुत मुश्किल है फैसला करना। रचनाकार के लिए तो सब एक समान प्यारी होती है।'

'किन्तु यदि लेखक ने कहानी संग्रह के लिए तीस में से दस या पन्द्रह कहानियाँ चुननी हो। आप इस तरह से समझ लें।' सुखवीर ने राह सुझाई।

'तब मैं कहूँगा 'दो बीघा ज़मीन', 'हक़ीकत', 'वक्त', 'हम लोग', 'काबुली वाला', इत्यादि। दो बीघा ज़मीन में मेरा रोल फिल्म में 'कमजोर' था किन्तु डायरेक्टर विमल राय ने मेरी सारी कमजोरियाँ छिपा दी। 'वक्त' की कहानी कमजोर थी किन्तु मैंने उसे ऊपर उठा दिया। उसमें अकेला कोर्ट का दृश्य ही ऐसा है कि उसने फिल्म को उठा दिया।'

'उसमें जवानी के समय का गीत जैसे आपने गाया है वह है कला का कमाल। उसे सुनकर मैं रोया हूँ। कलाकार वह है जो खुशी में भी रुला दे।' सुखबीर ने बलराज के रोल की प्रशंसा करते हुए कहा।

'मैं अपना एक विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ, हो सकता है मैं गलत होऊँ। मुझे फिल्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कला की इतनी बारीकियाँ नहीं मालूम। वह यह है बलराज जी कि मैंने आपकी जितनी भी फिल्में देखी हैं उनमें से 'दो बीघा ज़मीन' में मुझे आपका रोल सबसे अधिक पसंद है और 'वक्त' में आपका रोल देखकर मैं मायूस हुआ था।'

'मैं आपको इसकी वजह बताता हूँ। आप इसको प्रगतिशील रोल की दृष्टि से देखते हैं।'

'हाँ मैं भी यही बात कहने वाला था। कला की कामयाबी तो इस बात में देखनी चाहिए कि रोल निभाया किस तरह से गया है।' सुखबीर ने बलराज की बात की पुष्टि की।

बलराज और सुखबीर की राय से मैं सहमत था। मेरी मायूसी का कारण बलराज को एक ऐसे रोल में देखना ही था जिसके साथ उसका व्यक्तित्व मेल नहीं खाता, किन्तु कलाकार का कमाल यह है कि वह अपने रोल में मनुष्यता की छोंक लगाए। बलराज ने सफलता की चरम सीमा छू ली है और इस सफलता का रहस्य बनाने की इच्छा से सुखबीर ने पूछा- 'बलराज जी यह 'ह्यूमन टॅच' जिसका हम ज़िक्र कर रहे हैं कहाँ से आता है।'

'यदि मैं साहित्य का विद्यार्थी न होता तो मैं एक अच्छा अभिनेता नहीं हो सकता था।' बलराज ने सफलता का रहस्य खोला। 'साहित्य आपको जीवन के साथ जोड़ता है। आपकी कल्पना को विस्तार देता है। फिल्मों में आने से पहले मैं नाटक पढ़ चुका था। एक स्तर मेरे सामने था। 'दो बीघा ज़मीन' में मैंने विमल राय के जादू की बात की है, किन्तु यदि मैं लेखक न होता तो मुझसे मिनी दृष्टिकोण वाला कोई अभिनेता होता तब यह जादू भी नहीं चलना था। करनजीत जी इस प्रसंग में मैं आपको दो कहानियाँ सुनाता हूँ। अपने रोल की मैकैनिकल साइड का अध्ययन तो मैंने यहीं पर कर लिया था। गुढाई कैसे करनी है, पानी कैसे लगाना है और अपने रोल के अन्य छोटे-मोटे काम करते हुए कैसे उठना बैठना है, किन्तु किरदार के भीतर क्या हो रहा है, उसमें से भावनाएँ खोजने की मुझमें समझ नहीं थी। जब हम शूटिंग के लिए कलकत्ते गए तो मैं वहाँ पर अपने पुराने मित्रों का एक नाटक देखने के लिए चला गया। बस नाटक देख के मेरा बुरा हाल हो गया। इतने कामयाब रोल निभाए थे कलाकारों ने कि उनको देखने के बाद मेरा एक्ट करने का हौसला ही नहीं पड़ रहा था। मेरे भीतर से आत्मविश्वास ही उड़ गया था। मुझे सब ढाँढस बधाते थे कि घबराओ नहीं सब ठीक हो जाएगा पर....। एक दिन मैं एक रिक्शा पर बैठकर जा रहा था और रिक्शा वाले को यह मालूम होने पर कि हम फिल्म वाले हैं, उसने अपनी कहानी सुनानी प्रारंभ कर दी। ज्यों-ज्यों वह कहानी सुनाता जाता मेरे भीतर आत्मविश्वास जागता जाता। उसकी कथा-व्यथा हू-ब-हू 'दो बीघा ज़मीन' फिल्म की कहानी थी। कहानी सुनते-सुनते मैं रिक्शा वाले के बोलों को, हरकतों को, देखने के ढंग को अपने भीतर समाता चला गया। इसके पश्चात मैंने अभिनेताओं, निर्देशकों को ताक पर रख दिया। मैंने मन ही मन कहा- 'अभिनय क्या होता है ? मुझे नहीं बनना अभिनेता, मुझे तो बस इस रिक्शा वाले को पर्दे पर साकार करना है। मुझे जीवन में से मॉडल मिल गया था-'

बलराज का अंग-अंग जैसे अभिनय कर रहा था। उसके बोलों में एक जोश था, एक वेग था। बलराज का जीवन अभिनय नहीं, अभिनय ही उसका जीवन है। जब कलाकार जीवन के साथ जुड़ जाता है और कला उसका जीवन धर्म बन जाती है तो इस प्रकार के करिश्मे होते हैं। मैं इन्हीं विचारों में डूबा था कि उसने दूसरी कहानी आरम्भ कर दी।

'उसने बच्चे को उंगली से लगाकर चलती ट्रॉम के आगे से गुजरना और घबरा कर गिर जाना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। ट्रॉम के चालक ने आकर गाली-गलौज करना है और कैमरे वाले ने शॉट लेना है, । किन्तु जब वह गिरने का अभिनय करता है तो बहुत से कंगाल लोग उसके इर्द-गिर्द जुड़ जाते हैं, उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हैं। कोई बच्चे की कुशलता पूछता है कोई उसकी। सभी के भीतर एक तरह की पारिवारिक भावनाएँ उसको दिखाई देती हैं, किन्तु जब उन लोगों को पता चलता है कि यह अभिनय है तो वह सहानुभूतिपूर्वक नजरें उससे हज़ार मील दूर चली जाती हैं। उसे बहुत शर्म आती है। जैसे वे लोग उसे लानत भेज रहे हों- 'तुम हमारे साथ ठिठोली करते हो जिनके साथ जिन्दगी कदम-कदम पर ठिठोली कर देती है।'

वास्तव में यह बलराज के भीतर बैठे साहित्यकार की आवाज़ थी और बलराज कह रहा था- 'अभिनय केवल कला ही नहीं सुखबीर जी यह विज्ञान भी है। यह एक अपार मैदान है। लोगों से सम्बन्ध निजी मानवीय गरिमा, किरदार को भीतर समोना तो कुछ बिंदु है।'

'यह तो हमारे नायक भी नहीं करते। अन्य अभिनेता भी नहीं करते', सुखबीर ने कहा।

'यह हो भी कैसे सकता है। सभी कुछ अभिनेता पर ही तो निर्भर नहीं। निर्देशक, निर्माता, फाइनेंसर, सभी के साथ उसे समझौता करना पड़ता है। साहित्य में मुझे समझौता नहीं करना पड़ेगा इसलिए मैं सोचता हूँ कि....'

मैं सोच रहा था कि बलराज को अभी भी भ्रम है कि साहित्य में समझौता नहीं करना पड़ता। इस समाज व्यवस्था में तो हर प्रोफेशनल को अपने क्षेत्र में समझौता करना पड़ता है पर शायद बलराज को न करना पड़े, क्योंकि साहित्य उसका प्रोफेशन नहीं होगा।

'अभी तक जो कुछ आपने लिखा क्या आप उससे संतुष्ट हैं। आपकी भाषा पहले से काफी सुधर गई है किन्तु अभी....'

'आपकी यह बात सही है। लेखक को भाषा में निपुण होना ही चाहिए। शब्द लेखक के औजार होते हैं। एक शब्द की आवश्यकता हो तो बीस हजार आकर कहें 'हम तुम्हारे सेवक हैं।' लेखक को यह न सोचना पड़े कि जिस शब्द का प्रयोग वह करना चाहता है वह कहाँ है? ढूँढिए अमृतसर में है या भाषा विभाग के शब्द कोष में है। कुल मिलाकर मैं खुश हूँ। यदि मेरी तसल्ली न हो तो मैं मैटर बाहर भेजना कुफ्र समझता हूँ।'

'बलराज जी अंतिम बात।' सुखवीर ने कहा- जैसे आपकी एक्टिंग में फिनिसिंग आई है आपके साहित्य में फिनिशिंग कब आएगी?

एक पल की खामोशी के बाद बलराज बोले- 'सुखवीर जी बात यह है कि अब आप व्हिस्की की मिसाल ले लें, आपको स्कॉच पसंद है पर यह देसी व्हिस्की के आधे गिलास उठाकर हम सीढ़ियों की ओर गए।'

नीचे खाने की मेज पर पूरा परिवार हमारी राह देख रहा था। खाना खाते समय भी साहित्य, फिल्म, भाषा सम्बन्धी छोटी-मोटी बातें होती रहीं और इस बात-चीत में संतोष साहनी बलराज की बेटियां शबनम और सनोवर भी शमिल थीं।

मूल पंजाबी से अनुवादः केवल गोस्वामी
जे-363, सरिता विहार, मथुरा रोड, नई दिल्ली
मो. 09871638634

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गैरफिल्मी, फिल्मी-कथा

प्रहलाद अग्रवाल

आसमान की ओर टकटकी लगाए निहारता निरीह कृषक और कलकत्ता महानगर की सड़कों पर जी सकने की खूंरेज कोशिश में जानवरों की तरह आदमी को ढोता आदमी – इस दोहरी व्यथा की राहतें लूटता वहशतों से जूझता अ ादमी-आदमी और सिर्फ सच्चा आदमी किसी भी तरह की महानता के बोझ से सर्वथा मुक्त- कहकर थोड़ा-बहुत, लेकिन न कहकर सब कुछ कह देने वाला आदमी- इस आदमी को कौन भूल सकता है- 'दो बीघा जमीन' को कौन भूल सकता है- और 'वक्त' को भूल भी जाए लेकिन 'ओ मेरी जोहराजबीं' की उम्र को महज आंकड़ा साबित कर देने वाली मासूम शरारतों की चिरयुवा कशिश से कौन पत्थरदिल तक महकने से बचा रह सकता है। अपने वतन से बिछड़कर उसकी यादों की खुशबुओं से गमकता, बेटी की चाहतों से हुलसकर बिलखता 'काबुलीवाला' का पठान चाहत की धड़कनों में शामिल होकर स्मृतियों में हमसफर हैं।

बलराज साहनी की जिन्दगी की सच्चाई का बड़ा सबूत है उनकी आत्मकथा का शीर्षक- 'मेरी फिल्मी आत्मकथा'। वे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। साहित्य सृजन अध्यापन, प्रसारण, नाट्य निर्देशन आदि विविध क्षेत्रों में उन्हें महारत थी लेकिन उन्होंने आत्मकथा को 'फिल्मी' कहा। उनका यकीन था कि अवाम उन्हें सबसे पहले उनके द्वारा अभिनीत किरदारों के जरिए स्मृति कोष का हिस्सा बनायेगा। वे आत्मकथा में लिखते हैं कि मरने के वक्त मुझे कम से कम इस बात का संतोष रहेगा कि मैंने 'दो बीघा जमीन' में काम किया। सर्वहारा की वेदना को सार्थकता में अभिव्यक्त किया। आत्मसंतोष का अमरत्व प्रदान करने वाली फिल्म। सिर्फ यही एक काफी है। दुनिया भर की संपदा और गौरवशिखरों की संप्रप्ति से बढ़कर तृप्ति।

वे उन कठिनाइयों का जिक्र करते हैं जो इस अदना इन्सान का अक्स बन जाने की राह में पेश आई। कलकत्ता की सड़कों पर सचमुच हाथरिक्शा खींचने में उतनी मुश्किल नहीं थी, जितनी उनकी पीड़ा को जज्ब कर लेने में मुश्किल थी। इसके लिए बलराज साहनी, दिलीपकुमार और शिशिर भादुड़ी जैसे अभिनय प्रतिमानों की शरण जाते हैं लेकिन कोई मदद नहीं मिलती। एक गरीब रिक्शे वाले की जिन्दगी की व्यथा-कथा का साझीदार बनकर ही उनकी समझ आता है- कि तुम जैसा खुशनसीब कौन है जिसे इंसानी वेदना की अभिव्यक्ति बनने का मौका मिल रहा है। सो ऐसी की तैसी शिशिर भादुड़ी की, दिलीप कुमार की। तू चल उसी वेदना की शरण में जिसकी कथा सुनाने का तुझे आज मौका मिला है। चल अपने किरदार की शरण में।

बलराज साहनी ने पचासों फिल्मों में नायक, केन्द्रीय चरित्र और सहायक चरित्रों का निर्वाह किया- परन्तु वे बाकी सब को खारिज करते हुए मानते हैं कि अकेली 'दो बीघा जमीन' ही जो उनके मुकद्दर मे होती तो भी कोई अफसोस नहीं होता।

कुछ कम बेमिसाल फिल्में नहीं हैं बलराज साहनी के खाते में-अब्बास की 'धरती के लाल' (1946), रंजीत मूवीटोन की जिया सरहदी निर्देशित 'हम लोग' (1951), अमर कुमार निर्देशित राजेन्द्र सिंह बेदी और कृष्णचंदर की 'गरम कोट' (1955), अमिय चक्रवर्ती की 'सीमा' (1955),

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
नितिन बोस की 'कठपुतली' (1957), ए.वी.एम की 'भाभी' (1957), मोहन सहगल की 'लाजवंती' (1958), प्रसाद की 'छोटी बहन' (1959), शाहिद लतीफ और इस्मत चुगताई की 'सोने की चिड़िया'(1959), ऋषिकेश मुखर्जी की 'अनुराधा' (1960), सदाशिवराव कवि की 'भाभी की चूड़ियाँ' (1961), बिमलराय द्वारा निर्मित हेमेन गुप्ता निर्देशित, 'काबुलीवाला' (1961), चेतन आंनद की 'हकीकत' (1964), हरनाम सिंह रवेल की 'संघर्ष' (1969) और राजखोसला की 'दो रास्ते' (1969) – ये चंद मिसालें ही काफी हैं उनकी कूबत की। मनुष्य की असहायता की व्यथा, उससे उबरने का शक्तिमय साहस, अन्याय के प्रति आक्रोश और उसके प्रतिरोध में खुद अन्यायी न हो जाने की सजगता, वे ऐसी आसानी से जीवन्त कर देते हैं कि उनके मुकाबले मोतीलाल और संजीवकुमार ही ऐसे स्वाभाविक अभिनय में टिक सकते है।

बलराज साहनी ने राज-दिलीप-देव की स्वर्णयुग की देदीप्यमान त्रयी और गुरुदत्त की धार के साथ ही अभिनय का सफर तय किया। इनके मुकाबले तो दूर प्रदीप कुमार, भारत भूषण, राजेन्द्र कुमार जैसा सिताराशौर्य का आभामंडल उन्हें नही मिला लेकिन आज पाँच-छह दशक बाद भी वे जिस ताकत के साथ मनुष्यता की पक्षधरता में खड़े दिखाई देते हैं-वैसी ऊँचाई बड़े-बड़े सितारों को नसीब नहीं। यह उनकी इन्सानियत के प्रति जज्बाती प्रतिबद्धता ही थी जिसने उन्हें बाजार के हाथों बिकने से बचाए रखा। नरगिस, मीनाकुमारी, नूतन, वैजयंतीमाला, पद्मिनी, माला सिन्हा, आदि शीर्ष नायिकाओं के साथ उन्होंने नायक की भूमिका की। पर सब से ज्यादा वे नूतन, निरूपाराय और पंढरीबाई के साथ ही नायक के रूप् में फबे।

गुरुदत्त और राजकपूर की तरह वे भी सिनेकला की संपूर्णता में उजागर होना चाहते थे। उन्होंने नवकेतन की देवानंद, कल्पना कार्तिक, गीताबाली अभिनीत और गुरुदत्त निर्देशित 'बाजी' की पटकथा और संवाद लिखे थे और गुरुदत्त के साथ कहानी भी। राजेन्द्र सिंह बेदी की 'लाल बत्ती' का निर्देशन भी कृष्ण चोपड़ा के साथ किया था। इसके कथाकार भी वे ही थे। माला सिन्हा के साथ मुख्य भूमिका में थे। देश के विभाजन के समय ट्रेन के मुसाफिरों के एक सुनसान रेल्वे प्लेटफार्म पर रात बिताने की मजबूरी के मय और यन्त्रणा को इसमें खूबसूरती से अंकित किया गया था लेकिन फिल्म लोकप्रिय नहीं हो सकी। इसलिए उनका निर्देशक बनने का सपना अधूरा ही रह गया। उनके पास नाटकों के निर्देशन का अनुभव था। लेकिन फिल्म निर्माता के सामने जिस तरह बाजार बहुविध हस्तक्षेपी रूपों में प्रस्तुत होता है, उससे निपट पाना उनके वश की बात नहीं थी। इसीलिए 'बाजी' के निर्माण के दौरान गुरुदत्त से भी उनके गंभीर मतभेद हुए थे। उन्हें इस बात पर सख्त एतराज हुआ था कि गुरुदत्त ने उनकी पटकथा में जगह-जगह, बेवजह गीत टाँक दिए थे। परन्तु 'बाजी' सुपरहिट हुई और उसके गीत आज तक वैसे ही असरदार मनोहारी बने हुए है। इसलिए तब बलराज नवकेतन के साथ सफर में आगे नहीं चल सके।

दरसल गीत-संगीत, हिन्दी सिनेमा की अनिवार्य उपस्थिति, इसके जन्म से लेकर आजतक बने हुए हैं। इस माधुर्य आलम्बन के लिए बौद्धिकों द्वारा बारहा इसकी लानत-मलामत हुई और खासतौर से इसीलिए इसे परदेसी सिनेमा के मुकाबले दोयम दर्जे का भी ठहराया गया। इस हकीकत की सर्वथा अनदेखी कहते हुए कि गीत-संगीत हिन्दुस्तानी जिन्दगी का ही अनिवार्य हिस्सा हैं। यहाँ पैदाइश से परलोकगमन तक हर उत्सव और क्रियाकलाप में, लोकजीवन में इनकी हिस्सेदारी है। जब कलेजा फटता है तब दर्द की अभिव्यक्ति स्वरूप बहने वाले आँसू भी लयात्मकता में प्रवाहित होते हैं। पर आजादी के बाद स्वदेसी की सुमरिनी फेरने वाले तक परदेसी मानकों के आगे ऐसे साष्टांग हुए, और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज तक हैं, कि उन्हें सबकुछ अपना दो कौड़ी का और उनका प्रणम्य नजर आया। हमने औरों के खाद पानी से अपनी जंमीन पर फूल खिलाने की नाकाम कोशिशें की। हमारी असफलताओं का यह सर्वोपरि कारक है।

यदि 'लालबत्ती' में चार गीत ऐसे होते जो दिलों को छू लेते और अवाम की गुनगुनाहटो का हिस्सा बन जाते तो इसकी कामयाबी सुनिश्चित थी। सलिल चौधरी जैसा दुनियाजहान के लोकसंगीत का मर्मज्ञ संगीतकार और मजरूह सुल्तानपुरी जैसे अप्रतिम गीतकार इस फिल्म से जुड़े थे लेकिन उनकी संलग्नता का लाभ उठाने में वे नाकाम रहे। इसलिए बाद में बतौर अभिनेता ही सिनेमा के साथ संलग्नता बनाए रखना उन्हें रुचिकर लगा। अनेक बिन्दुओं पर भरपूर असहमति बनाए रखते हुए भी वे फिल्मोद्योग को मूर्खों का ठिकाना नहीं मानते थे। उन्होंने लिखा कि जितने दिलवाले, जुबान के माहिर और हुनरमंद लोग उन्होंने इस फिल्मी दुनिया में देखें, वैसे और कही नहीं।

बलराज साहनी ने आदर्शवादी--समाजसेवी (सीमा), सौतेले बेटे (दो रास्ते), बड़े भाई (छोटी बहन) और पिता (भाभी) की अनेक भूमिकाएँ की लेकिन उन भूमिकाओं में वे जिन्दगी की सच्चाई इस तरह घोल देते हैं कि वे यथार्थ की तरह चमकने लगती हैं। वे कीचड़ में भी कमल की तरह खिले रहे। अपनी निर्मल पवित्रता से दमकते हुए आदमीयता उनके लिए सर्वोपरि थी।

वे ठोस साम्यवादी थे। उन्होंने इप्टा के नाटकों और फिल्मों में तन्मय संलग्नता से काम किया था लेकिन याद कीजिए 'हकीकत' के प्लाटून कमांडर मेजर रंजीत सिंह को, जो युद्धभूमि में माओं की लाल किताब की तीव्र आलोचना करता है। कोई भी विचारधारा जो मनुष्यता की पीठ में छुरा भोंकने का काम करे कतई स्पृहणीय नहीं हो सकती। यह आलोचना विचारधारा की नहीं उस छद्म की है जो विचार को आड़ लेकर नापाक क्रूरता बनकर इंसानियत पर बरसती है। साम्यवाद उनके लिए किताबी शगल नहीं जिन्दगी में अमल आने वाली व्यावहारिक हकीकत था। इसीलिए वास्तविक जिन्दगी में भी अनेक बौद्धिकों से उनके मतभेद भी हुए और वे साम्यवादी दलों की अव्यावहारिकता से दुखी भी थे, पर अपने विचार पर वे आखिरी साँस तक दृढ़ रहे।

बलराज साहनी ने जीवन में अनेक दंश सहे थे। मात्र चौंतीस साल की उम्र में अपनी हमसफर दमयंती साहनी की जवान मौत ने उन्हें झकझोर दिया था, जो खुद विलक्षण अभिनेत्री थी। उन्होंने जिन्दगी में अपने लोगों के ढेरो फरेब भी सहे पर जिन्दगी के आखिरी पलों में वे अपनी बेटी शबनम की अकाल मौत का दर्द नहीं झेल सका और साठ साल से भी कम उम्र में, 1973 में इस दुनिया को अलविदा कह गए – अपनी आखिरी अविस्मरणीय फिल्म 'गर्म हवा' को देखे बगैर। निश्चित ही इसके प्रदर्शन के बाद इसे देखने पर वे भी यह बात जरूर कहते कि उन्हें इस फिल्म पर भी उतना ही गर्व है जितना उन्हें 'दो बीघा जमीन' पर था। सथ्यू की 'गर्म हवा' सम्प्रदायिकता के जहर को पिघलाने वाली वह अविस्मरणीय फिल्म है जिसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं। इसमें बलराज साहनी एक ऐसे मुस्लिम के किरदार में है जो विभाजन के समय अपनी जड़ों से कट कर पाकिस्तान जाने से इंकार कर देता है और सर्वधर्म समभाव के तमाम नारों के बावजूद हिन्दुस्तान में मुस्लिमों के लिए संकीर्ण होते हुए दायरों में छटपटाते हुए भी जिन्दगी की नयी राह निकालने की कोशिश में अपने जीवन की अर्थवत्ता ढूंढ़ता है।

द्वारा- उज्जवल स्टोर्स, सुभाष पार्क सतना (म.प्र.)
मो. 09827009452

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गर्म हवा के निर्देशक एम.एस. सथ्यू से पवन मेराज़ की बातचीत

पवन मेराजः गर्म हवा 1974 में रिलीज हुई, आज गर्म हवा की क्या प्रासंगिकता है ?

एम.एस. सथ्यूः कभी-कभी ऐसी फिल्में बन जाती हैं जो अपने मायने कभी नहीं खोतीं। वैसे भी आजकल हम धर्म, जाति और क्षेत्रीयता को लेकर अधिक संकीर्ण होकर सोचने लगे हैं। इन सब सच्चाईयों को देखते हुए गर्म हवा की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

पवनः ऐसे समय में कला की समाज के प्रति क्या जिम्मेदारी बनती है।

सथ्यूः समाज के यथार्थ को सामने लाना ही कला की मुख्य जिम्मेदारी है। मैं इस बात का हामी नहीं कि कला सिर्फ कला के लिए होती है। कला के सामाजिक सरोकार होते हैं।

पवनः लेकिन व्यवसायिक सिनेमा भी तो यथार्थ को अपनी तरह से सामने लाता है फिर समानांतर सिनेमा इससे अलग कैसे ?

सथ्यूः वे बेसिकली पैसा बनाते हैं। उनके लिए समस्याएं भी बिकाऊ माल हैं। गरीबी से लेकर विधवा के आंसू तक के हर सेंटीमेंट को वे एक्सप्लाइट करते हैं। समस्याओं को देखने का नजरिया, समाज के प्रति कमिटमेण्ट और समानांतर सिनेमा का ट्रीटमेंट ही इसे व्यावसायिक सिनेमा से अलग करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पवनः अपने ट्रीटमेंट में गर्म हवा कैसे अलग है?

सथ्यूः देखिए पहली बात तो हम एक विचाराधारा से जुड़े हुए लोग थे इसीलिए यह फिल्म बन पायी। पूरी फिल्म इस्मत चुगताई की एक कहानी से प्रभावित है। एक पात्र राजिंदर सिंह बेदी की कहानी से भी प्रेरित था। आपको हैरानी होगी पूरी फिल्म आगरा और फतेहपुर सीकरी में शूट की गयी। इसमें बनावटी चीज कुछ भी नहीं है। आज इस तरह सोचना भी मुश्किल है। आज की फिल्मों में बहुत बनावटीपन है। कहानी हिन्दुस्तान की होती है शूटिंग विदेश में... (हंसते हैं) शादियां तो ऐसे दिखाई जाती हैं गोया सारी शादियां पंजाबी शादियों की तरह ही होती हैं। इस फिल्म में दृश्यों की अर्थवत्ता और स्वाभाविकता को बनाये रखने के लिये कम से कम सोलह ऐसे सीन हैं जिसमें एक भी कट नहीं है। कैमरे के कलात्मक मूवमेंट द्वारा ही यह सम्भव हो सका। आज के निर्देशक ऐसा नहीं करते।

पवनः बिना कट किये पूरा सीन फिल्माना तो कलाकारों के लिए भी चुनौती रही होगी?

सथ्यूः वे सब थियेटर के मंजे हुए कलाकार थे जिन्हें डायलाग से लेकर हर छोटी से छोटी बात याद रहती थी... यहां तक भी कि कितने कदम चलना है और कब घूमना है... रंगमंच का अनुभव कलाकारों को परिपक्व बना देता है इसलिए कभी कोई दिक्कत पेश नहीं आयी।

पवनः इस फिल्म के उस मार्मिक सीन में जब नायिका मर जाती है तो पिता के रोल में बलराज साहनी की आँखों से कोई आंसू नहीं गिरता यही बात दुख को और भी बढ़ा देती है?

सथ्यूः असल में बलराज जी की जिंदगी में भी ऐसा ही कुछ हुआ था। उनकी एक बेटी ने आत्महत्या कर ली थी। बलराज उस शूटिंग से लौट कर आये थे और उन्होंने कुछ इसी तरह सीढ़ियां चढ़ीं थी जैसा फिल्म में था। बलराज उस समय इतने अवसन्न हो गये थे कि रो भी नहीं पाये। उस वक्त उनसे पारिवारिक रिश्तों के चलते मैं वहीं था। फिल्म बनाते समय मेरे जेहन में वही घटना थी पर मैं बलराज जी से सीधे-सीधे नहीं कह सकता था इसलिए मैंने सिर्फ इतना कहा कि आपको इस सीन में रोना नहीं है... बलराज समझ गये और उन्होंने जो किया वो आपके सामने है।

पवनः इस फिल्म का अंत भी बहुत सकारात्मक था?

सथ्यूः दरअसल यह भी बलराज जी का ही योगदान था। उन्होंने ही इस तरह के अंत को सुझाया। वे बहुत समर्थ कलाकार थे। 'दो बीघा जमीन', 'गर्म हवा' और दूसरी कई फिल्मों में अपने शानदार अभिनय के बावजूद उन्हें कभी नेशनल अवार्ड नहीं मिला तो सिर्फ इसलिए क्योंकि वे कम्यूनिस्ट पार्टी के मेम्बर थे। हम डेमोक्रेसी में रहते हैं फिर भी ऐसी बातें हो जाया करती हैं।

पवनः फिल्म रिलीज होने के बाद खुद बलराज जी की क्या प्रतिक्रिया थी?

सथ्यूः दुर्भाग्य से वो यह फिल्म रिलीज होने तक जिंदा नहीं रहे। फिल्म के अंत में जब वे कहते कि मैं इस तरह अब अकेला नहीं जी सकता और संघर्ष करती जनता के लाल झण्डे वाले जुलूस में शामिल हो जाते हैं यह उनके अभिनय जीवन का भी अंतिम शॉट था।

पवनः एक कलाकार की राजनैतिक भूमिका को आप किस रूप में देखते हैं?

सथ्यूः जी हाँ, बिलकुल! कोई भी चीज राजनीति से अलग नहीं है। कलाकार का भी एक राजनीतिक कमिटमेंट होता है और उसकी कला में दिखता भी है। अगर कोई यह कहता है कि उसका राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है तो वह अपनी जिम्मेदारी से भाग रहा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पवनः कला, समाज को प्रभावित करती है लेकिन समाज, कला को किस तरह प्रभावित करता है?

सथ्यूः मैं दोनों को अलग करके नहीं देखता। समाज के तत्कालीन प्रश्न ही कलाकृति का आधार बनते हैं। वे बुराईयां जिन्हें हम लंबे समय से स्वीकार करते आ रहे हैं, एक कलाकार उन्हें अपनी कला के जरिये समाज के सामने दुबारा खोलकर रखता है और अपने प्रेक्षक को उन पर सोचने को मजबूर कर देता है।

पवनः 70 के दशक में कम्युनिस्ट मूवमेंट के उभार से लगभग हर कला, साहित्य और फिल्म प्रभावित रही, 'इप्टा' जैसा सांस्कृतिक आंदोलन भी चला। लेकिन अब वह उतार पर नजर आता है। ऐसा क्यों?

सथ्यूः देखिए, जहां तक मूवमेंट का सवाल है इसने हमें एक सपना दिया- 'बेहतर दुनिया का सपना'। हम सब इससे प्रभावित थे। मैंने पहले भी कहा आंदोलन से जुड़े होने के कारण ही हम लोग 'गर्म हवा' बना सके। लेकिन यह ग्लोबलाइजेशन का दौर है और हम बदलती परिस्थितियों के हिसाब से खुद को नया नहीं बना सके, इसीलिए ऐसा हुआ। मार्क्स ने भी कहा था- यह परिवर्तन का दर्शन है। हमें इस तरफ भी सोचना होगा।

पवनः लेकिन आज आंदोलन की हर धारा इस पर विचार कर रही है और नित-नए प्रयोग हो रहे हैं। नेपाल में माओवादियों का प्रयोग आपके सामने हैं।

सथ्यूः हाँ, वहां कुछ बातें अच्छी हैं। आज कल के जमाने में माओविस्ट रेवोल्यूशन को कंडेम किया जाता है... लेफ्ट के लोगों ने भी किया है। नक्सलाइट आज भी हैं। उनकी भी एक आइडियालॉजी है। कहा जाता है कि वे काफी हिंसक भी हो जाते हैं लेकिन माओवादियों की सरकार के साथ बैठक और उसमें हिस्सा लेने से बहुत फर्क पड़ा है।

पवनः 'गर्म हवा' जैसी समानांतर धारा की फिल्में क्या आपको नहीं लगता कि एक विशेष वर्ग में सिमटकर रह जाती हैं। क्या इनका फैलाव आम जनता तक नहीं होना चाहिए?

सथ्यूः होना चाहिए, यह जरूरी है। लेकिन एक लंबे दौर तक ऐसा हो पाएगा, ऐसा कह पाना संभव नहीं है। फिलहाल ऐसा नहीं हो सकता। साहित्य में भी नहीं होता। घटिया साहित्य ज्यादा

Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
छपता और पढ़ा जाता है। मल्टीप्लैक्स में 'वैलकम' जैसी फिल्म देखने वाले ऐसी फिल्म नहीं देख सकते। फिल्म देखना भी एक कला है जिसके लिए आँखें होनी चाहिए। इसकी ट्रेनिंग शुरू से ही लोगों को दी जानी चाहिए।

पवन: समानांतर सिनेमा के सामने आज कौन सी चुनौतियाँ हैं ?

सथ्यू: फिल्म बनाना एक महंगा काम है। इसके लिये स्पॉन्सर और प्रोत्साहन की जरूरत होती है। 'लगान' की चर्चा ऑस्कर में आने की वजह से भी हुई और इसकी टीम ने फिल्म को वहां प्रदर्शित करने में करोड़ों रुपए फूंक दिए, जिसमें एक नई फिल्म बन सकती थी। मजे की बात यह है कि 'लगान' के पास ऑस्कर में नामांकन का वही सर्टीफिकेट है जो 'गर्म हवा' को उससे 30-35 साल पहले मिला था। यह फिल्म कान फेस्टिबल में भी दिखाई गई और तब ऑस्कर की चयनकर्ताओं ने इसे ऑस्कर समारोह में दिखाने को कहा। मैं सिर्फ पैसे की तंगी के चलते वहां नहीं जा सका। हां, मैंने फिल्म भेज दी और इसका सर्टीफिकेट मेरे पास पड़ा है।

पवन: क्या पैसे की तंगी ने फिल्म बनाने की प्रक्रिया में बाधा डाली ?

सथ्यू: फिल्में सिर्फ पैसे से नहीं, पैशन से बनती हैं। (मुस्कुराते हैं) लेकिन पैसा भी चाहिए। उस जमाने में 2.5 लाख निगेटिव बनने में लगा। हमारे पास साउंड रिकॉर्डिंग का सामान मुंबई से आता था और उसके साथ एक आदमी भी। इसका 150 रु. प्रतिदिन का खर्च था और हमारे पास इतने भी नहीं थे। अंततः सारी शूटिंग बिना साउंड रिकार्डिंग के ही हुई। फिल्म बाद में बंबई जाकर डब की गई। तकरीबन 9 लाख कुल खर्चा आया, पूरी फिल्म में। कई कलाकारों को मैं उनका मेहनताना भी नहीं दे सका... मेरे ऊपर बहुत सा कर्जा हो गया और नौ साल लगे इससे उबरने में।

पवन: इसके अलावा और क्या-क्या समस्याएँ आयीं ?

सथ्यू: खुद की तारीफ नहीं करना चाहिए। लेकिन कहूंगा कि बेहतरीन फिल्म बनी थी और मैं समझता हूँ कि समाज पर भी सकारात्मक प्रभाव डालती। लेकिन शुरूआत में रिलीज के लिए इसे सेंसर सर्टीफिकेट नहीं मिला। कहा गया इससे समाज में तनाव फैल सकता है... इस बकवास पर कोई माथा ही पीट सकता था क्योंकि उस समय तमाम लोग कुछ ऐसा कर रहे थे जो समाज पर बुरा प्रभाव डाल रहा था। एक साल की जद्दोजहद के बाद इंदिराजी ने जब खुद पूरी फिल्म देखी और कहा रिलीज कर दो... तब ही इसका रिलीज संभव हो पाया... लेकिन यू.पी. में नहीं। (मुस्कुराते हैं)... वहाँ चुनाव होने वाले थे। इस तरह 1973 में तैयार फिल्म 74 में सबसे पहले बंगलोर में रिलीज हो सकी।

पवन: आप रंगमंच में भी काफी सक्रिय रहे। फिल्म और रंगमंच में आप मुख्यतः क्या अंतर पाते हैं ?

सथ्यू: अपनी बात कहने की दो अलग-अलग विधाएं हैं... कैमरे की वजह से काफी सहूलियत हो जाती है लेकिन रंगमंच एक संस्कार है। यहां कलाकार और दर्शक का तादात्म्य स्थापित होता है। यह विधा बहुत पुरानी है और कभी नहीं मरेगी।

पवन: आपकी दूसरी फिल्मों को 'गर्म हवा' जितनी चर्चा नहीं मिली ?

सथ्यू: 'गर्म हवा' जैसी फिल्म कोई रोज नहीं बना सकता... ऐसी फिल्में बस बन जाती हैं कभी-कभी। 'पाथेर पांचाली, सुवर्ण रेखा' जैसी फिल्में हमेशा नहीं बन सकतीं।

पवन मेराज मो. 09179371433

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रवीन्द्रनाथ ठाकुर : कुछ याद

बलराज साहनी

गुरुदेव से मैं पहली बार जनवरी, 1837 में मिला था। उन दिनों मेरी शादी हाल में ही हुई थी और मेरी पत्नी की बहुत बड़ी लालसा थी कि हम 'हनीमून' शांतिनिकेतन में मनाएं। यह ख्याल मुझे भी पसंद आया था। मैं शांतिनिकेतन में एक सज्जन को जानता भी था, जिनका नाम था श्री गुरदयाल मल्लिक।

श्री मल्लिक का व्यक्तित्व बड़ा प्रिय और सनकी क़िस्म का था, जो अन्त तक वैसा ही रहा। उनसे होने वाली अपनी पहली मुलाकात मैं कभी भूल नहीं सकता। उन दिनों मैं लाहौर से कॉलेज की शिक्षा पूरी करने के बाद रावलपिंडी में अपने पिताजी के दफ्तर में काम करता था, जहां उनके इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट के व्यापार सम्बन्धी कार्य मेरी समझ में नहीं आ रहे थे। मैं बड़ा उलझा हुआ और परेशान रहता था। मेरे सभी दोस्त मेरी इस हालत को जानते थे और मुझसे हमदर्दी जताते थे। उनमें एक दोस्त रावलपिंडी छावनी में पुस्तकों की सबसे बड़ी दुकान का मालिक था। मैं ज्यों ही पिताजी के दफ्तर से छुट्टी पाता, अपने दोस्त की पुस्तकों की दुकान में शरण पाने के लिए भाग उठता। वह दुकान मेरे लिए स्वर्ग के समान थी, क्योंकि अंग्रेज़ी साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने का मुझे बेहद शौक था।

एक दिन दोपहर के बाद दफ्तर में मेरे पिताजी और मैं अपनी-अपनी जगह पर बैठे हुए काम कर रहे थे कि अचानक दरवाज़ा खुला और केसरी चोगा और टोपी पहने, लम्बी लहराती हुई दाढ़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाला एक व्यक्ति अन्दर आया। वह सीधा मेरे पिताजी की मेज़ के सामने गया और उसने ऊँची आवाज में कहा- 'आपने इस पक्षी को पिंजरे में क्यों डाला हुआ है?' उसने मेरी ओर संकेत किया, 'इसे पिंजरे में से निकालिए और चहकने-गाने दीजिए।

मेरे पिताजी भौंचक्के रह गए। मुझे भी हैरानी हुई, लेकिन उतनी नहीं, क्योंकि मैंने अपने दोस्त, किताबों की दुकान के मालिक को उसके पीछे दफ्तर में दाखिल होते हुए देख लिया था। वह दरवाजे के पास रुक गया था और मुस्करा रहा था।

केसरी चोग़ा पहने हुए मल्लिक जी थे। हमारी हैरानी जब किसी हद तक दूर हुई, तो हमने मल्लिक जी को बैठने के लिए कहा। मेरे दोस्त ने बताया कि मल्लिक जी शांतिनिकेतन में अध्यापक हैं और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मित्र और शिष्य हैं। यह सुनकर मेरे पिताजी का रवैया कुछ बदला। मल्लिक जी लगभग एक घंटा वहां रहे, और उन्होंने हमें भक्ति और रहस्यवाद के गीत सुनाए। फिर वे 'मरी' पहाड़ के लिए रवाना हो गए।

उसके बाद मेरे लिए पिंजरे में रहना असह्य हो उठा। मल्लिकजी के शब्दों का मेरे मन पर गहरा असर हुआ था, और लगा था कि मुझे एक ऐसी दुनिया से बुलावा आया है, जो मुझे रास आ सकती थी। दफ्तर छोड़ने की मुझमें हिम्मत नहीं थी, लेकिन मैं दिन-रात अपनी कल्पना में वहां से छुटकारा पाने के तरीके सोचता रहता था।

इस घटना के कुछ ही अरसे बाद मैंने ठाकुर का नाटक 'डाकघर' पढ़ा। मुझे लगा कि उसमें गाफ़र नाम का पात्र और कोई नहीं, बल्कि गुरुदयाल मल्लिक ही हैं। या तो ठाकुर ने मल्लिकजी को आधार बनाकर ग़ाफर के पात्र की सृष्टि की होगी, या फिर मल्लिकजी ने खुद को ग़ाफर के अनुरूप बना लिया होगा।

मल्लिकजी से मिलने के बाद, ठाकुर की रचनाओं में मेरी दिलचस्पी बढ़ी। अपने दोस्त की दुकान में ठाकुर की जो भी पुस्तक मुझे अंग्रेजी में मिली, वह मैंने पढ़ डाली। पर सच बात यह है कि मैं ठाकुर से प्रभावित न हो पाया। आज भी मैं समझता हूँ कि गुरुदेव की 'गीतांजलि' और अन्य कविता-पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद बहुत बुरी तरह पथ-भ्रष्ट करने वाले हैं। अब जब कि मैं बंगाली जानता हूँ, और ठाकुर की रचनाओं को मैंने उनके मौलिक रूप में पढ़ा है, तो विश्वस्त रूप से कह सकता हूँ कि उनके ये अनुवाद पाठक पर बिल्कुल उल्टा असर डालते हैं। लय और छंद रहित ये अनूदित कविताएँ उस भेड़ की तरह लगती हैं, जिसके बाल मूंड दिये गये हों। ठाकुर के छन्दों और शब्दों की भावात्मक सुन्दरता अवर्णनीय है। फिर, क्योंकि ठाकुर उच्चकोटि के संगीतकार भी थे, उनके शब्दों में बंगाल की आत्मा झलकती है। अगर हमारे देश के इस युग में किसी कवि ने सजगता, उन्नति और धर्म-निरपेक्षवाद का संदेश दिया है, तो वह ठाकुर ही है। लेकिन अंग्रेज़ी अनुवाद में उनके शब्द हमारे सामने बस काले और सफ़ेद रंग को ही उजागर करते हैं, और उनकी ध्वनियां हमारे कानों में उलझन सी पैदा करती हैं। अभी कुछ दिन पहले मैंने रेडियो पर 'गीतांजलि' के गीतों की धुनें सुनीं, जिन्हें कि यूरोपीय संगीतकारों ने स्वरबद्ध किया था। वे कानों को इस कद्र अखरने वाली थीं कि उन्हें सुन पाना असह्य था। वे संगीतकार शायद इस बात से अनभिज्ञ थे कि उन गीतों की धुनें स्वयं रवीन्द्र ने बनाई थीं, और किसी को यह हक नहीं है कि वह उनके शब्दों से उनकी ध्वनियों और लय को अलग करके नई धुनें बनाए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन उन दिनों मैं इस सब कुछ से अनजान था। इसके अलावा शेली, कीट्स, वर्डस्वर्थ, बायरन आदि अंग्रेजी कवियों की कविताएँ मेरे दिल में बसी हुई थीं, और उनके मुकाबले में रवीन्द्र कवि के बजाय एक रहस्यवादी दार्शनिक अधिक प्रतीत होते थे। सबसे बढ़कर, अंग्रेजी शिक्षा की बदौलत, मेरा दृष्टिकोण गुलामों का-सा बना हुआ था। मैं हर हिन्दुस्तानी चीज़ को हिक़ारत से और यूरोपीय चीज़ को इज्जत की नज़र से देखता था।

सो, हनीमून के लिए शांतिनिकेतन जाते समय मेरे सामने कोई बड़ी संभावनाएं नहीं थीं। हम दोनों वहां गेस्ट-हाउस में ठहरे। मल्लिकजी हमारे साथ बहुत अच्छी तरह पेश आए, और उन्होंने सरकारी ढंग से हमें सारा आश्रम दिखाया। जिस दिन हमें लौटना था, उस दिन गुरुदेव ने हमें मिलने का समय दिया, जो कि वहां आने वाले दर्शकों को वह दिया करते थे।

मुझे याद नहीं कि उन दिनों वह किस कुटिया में रहते थे। हम एक संकरे रास्ते से होकर उनके कमरे में दाखिल हुए। वह अपनी मेज के सामने बैठे हुए थे, और चारों ओर की उस सुन्दर सादगी में बहुत शानदार लग रहे थे। मल्लिकजी बड़ी नम्रता से एक स्टूल पर बैठ गए, और फिर जैसे अदृश्य हो गए। मेरी पत्नी और मैं रवीन्द्र के सामने कुर्सियों पर बैठ गए।

'सो, कैसा लगा शांतिनिकेतन?' महाकवि ने पूछा, 'मुझे पता लगा है कि तुम्हें यहां आए हुए कुछ दिन हो गए हैं।'

'बहुत अच्छा तो नहीं कह सकता।' मैंने नाटकीय ढंग से कहा। वास्तव में, मैं उनसे प्रभावित होने के बजाय, खुद उन्हें अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित करने के इरादे से गया था। जवानी में आदमी कितना मूर्ख होता है!

सुनकर गुरुदेव को धक्का-सा लगा। उनकी आँखों में पीड़ा दिखाई दी। लेकिन उन्होंने अपना धीरज नहीं खोया।

'क्यों, क्या बुराई है?' उन्होंने पूछा, 'मैंने तो सोचा था कि तुम लेखक हो और शांतिनिकेतन में आकर शरण पा सकोगे। तुम जानते ही हो कि हमारे देश में लेखकों, कलाकारों के लिए कोई जगह नहीं है। वे पिंजरे में पड़े किसी पक्षी की तरह चारों ओर से बंद हैं। यहां मैंने अन्य स्कूलों की तरह ही एक स्कूल खोला है।'

वह चुप हो गए, मैं भी चुप रहा। कुछ देर के बाद गुरुदेव बोले, 'हमारे देश में लोग झटपट नतीजे निकालना चाहते हैं। यह बहुत बड़ा नुक्स है हम लोगों में। आखिर तुमने यहाँ तीन-चार दिन ही तो बिताए हैं। यहां न बड़ी-बड़ी इमारतें हैं, न ही ऐसी और चीजें हैं, जो पहली नज़र में ही दर्शकों को प्रभावित कर सकें। यहां हम कुछ करना चाहते हैं, अगर उसे पूरी तरह समझना चाहो, तो तुम्हें यहां कुछ महीने रहना चाहिए। तभी तुम यहां के वातावरण को पकड़ पाओगे।'

'शायद आप ठीक कहते हैं', मैंने कहा। मैं उन्हें और अधिक दुःख पहुंचाना नहीं चाहता था।

इसके बाद वह मुलाक़ात ही खत्म हो गई। मैं वहां से अपने मन में गुनाह का एहसास लेकर आया कि मैंने उस बूढ़े व्यक्ति को दुःख पहुंचाया है। यह सोचकर मुझे और भी बेचैनी हुई कि गुरुदेव मेरे साथ बड़े धीरज से पेश आए थे। ज्यों ही मैं घर पहुंचा, मैंने उन्हें पत्र लिखकर माफ़ी मांगी, जिनके जवाब में उनके सेक्रेटरी श्री अनिल चन्दा की ओर से मुझे नम्रतापूर्ण पत्र मिला।

Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुरुदेव से उपरोक्त मुलाक़ात के बाद मुश्किल से एक साल बीता होगा कि मैं एक पत्रकार के रूप में कलकत्ता में सड़कों की खाक छानने लगा। मैं अपनी पत्नी के साथ एक छोटे-से कमरे में रहता था, जहां हमारे सामान वाले ट्रंक के सिवा और कुछ नहीं था। मेरे मित्र अज्ञेय थे, जो उन दिनों 'विशाल भारत' का सम्पादन करते थे, अपने मासिक पत्र और 'सचित्र भारत' नामक एक साप्ताहिक पत्र की ओर से लिखने का कुछ काम दिलाने में मेरी मदद की। किसी भी हफ्ते में मैं पांच रुपये से ज़्यादा नहीं कमा पाया। लेकिन मेरी पत्नी और मैं अपनी जवानी की उम्र में थे और कुछ ऐसी लापरवाही थी हममें कि दुःख और ग़म हमारे पास फटक नहीं सकते थे।

लेकिन खुश होने का भी कोई कारण नहीं था। मेरे पिताजी ने जब यह देखा कि मैं उनके साथ काम न करने का पक्का फ़ैसला कर चुका हूँ तो उन्होंने मुझे कुछ हज़ार रुपये की रक़म दी, जो हम लाहौर में ही खर्च कर बैठे और किसी मंज़िल तक पहुंच नहीं पाए। फिर, जब हमें अपनी हार दिखाई देने लगी, तो हम अपने नौकर तक को बताए बिना कलकत्ता के लिए भाग खड़े हुए। बेचारा नौकर कई महीनों तक हमारे फ्लैट और सामान की निगरानी करता रहा। आखिर एक दिन पिताजी वहां का सारा सामान वापस अपने घर ले गए।

चिन्ता और परेशानी में दिन काट रहे हमारे परिवार वालों को काफ़ी देर के बाद कहीं जाकर हमारा अता-पता लगा। सुबह मुझे पिताजी की ओर से जवाबी तार मिला, जिसमें लिखा था: 'मंगलवार तक पिंडी पहुंचो, वरना खुद शुक्रवार को कलकत्ता आऊँगा। सस्नेह-हरबंसलाल।'

साथ ही उन्होंने सफ़र के खर्च के लिए एक सौ रुपये तार से भेजे थे।

हम समझ नहीं पा रहे कि क्या करें। असफल होकर घर लौटना हमारे लिए असह्य था। लेकिन जो जिन्दगी हम बिता रहे थे, वह भी असह्य थी। हमारी सेहत खराब हो रही थी और हम अपने मित्र अज्ञेय के लिए चिन्ता का कारण बने हुए थे। उन्होंने भी सलाह दी कि हम घर लौट जाएं और वहां जाकर नये सिरे से अपने भविष्य के बारे में सोचें।

मैं निराश बना हुआ अज्ञेय के साथ डाकखाने की ओर चल दिया। तार लिखने से पहले मुझे एक ख्याल सूझा और मैंने तार में अपने पिताजी को लिखा:

'शांतिनिकेतन में नौकरी मिल गई है। पूजा की छुट्टियों में आएंगे।'

मैंने तार में जो लिखा था, वह अज्ञेय को नहीं बताया था। दोपहर के बाद जब अज्ञेय को पता लगा कि हम रावलपिंडी की बजाय बोलपुर जा रहे हैं, तो वह बेबसी में हाथ हिलाकर रह गए।

हम काफी शाम ढले शांतिनिकेतन पहुंचे और एक बार फिर उसी अतिथि-गृह में दाखिल हुए। हमने मल्लिकजी को सारी बात बताई। उन्हें सचमुच बहुत अफ़सोस हुआ होगा, क्योंकि उन्हीं ने मेने पिताजी से कहा था कि वह पंछी को आजाद कर दें।

खैर, अगले दिन वह हमें कृष्ण कृपलानी से मिलाने के लिए ले गए। कृष्ण और उनकी पत्नी नंदिता, जो कि गुरुदेव की पोती हैं, हमारे साथ बहुत ही अच्छे तरह पेश आए। जब हम चाय पी रहे थे, तो कृष्णजी बताने लगे कि शांतिनिकेतन की आर्थिक हालत किस कद्र बुरी है और वहां हमें नौकरी दिलाना मुश्किल ही नहीं, असंभव है।

लेकिन क़िस्मत मेरे हक़ में थी। जबकि हम बातें कर रहे थे, हमने गुरुदेव को कार में उधर आते हुए देखा। वे कृष्णजी और नंदिता से मिलने आ रहे थे। यह उनके लिए कुछ असाधारण चीज़ थी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन बहुत-सी अच्छी चीज़ें संयोगवश ही हो जाया करती हैं।

गुरुदेव हमारे सामने बेंत की कुर्सी पर बैठ गए। उन्होंने अपनी ऐनक के शीशे में से कुछ देर हमारी ओर देखने के बाद कहा, 'लगता है मैंने आपको पहले भी कहीं देखा है।'

मुझे लगा कि बात अब तो बिलकुल ही बिगड़ जाएगी। लेकिन मैंने हौसला किया और कहा, 'आपने कहा था कि हम अगर शांतिनिकेतन में कुछ महीने रहें, तभी यहां के वातावरण को समझ सकते हैं। सो हम आए हैं।'

और मैंने उन्हें सारी कहानी कह सुनाई। फिर कहा, 'आप मुझे इसी समय नौकरी बेशक न दें। मेरे पिताजी ने मुझे सौ रुपए भेजे हैं। मैं और मेरी पत्नी इस रक़म की बदौलत आसानी से तीन महीने निकाल सकते हैं। बस, हमें यहां रहने की इजाज़त दे दें। अगर तीन महीने के बाद यह महसूस हुआ कि हम शांति-निकेतन के लिए किसी तरह उपयोगी साबित हो सकते हैं, तो हमें नौकरी पर रख लिया जाए, वरना हम खुद ही यहां से चले जाएंगे। इस समय हमें बस सिर छिपाने-भर के लिए जगह चाहिए।'

गुरुदेव ने मेरी बातें सुनीं और कुछ देर तक चुप रहे। वे कुछ क्षण मेरे लिए बहुत बोझिल थे। आखिर गुरुदेव इस प्रकार खिलखिलाकर हंसे, जैसे कोई बहुत मज़ेदार चुटकुला सुना हो। फिर उन्होंने कहा- 'तो तुम्हारे पास सौ रुपए हैं! तुम मुझसे कहीं ज्यादा अमीर हो। खैर, कोई बात नहीं। तुम्हें यह रकम खर्च नहीं करनी पड़ेगी और न ही हम तुम्हें यहां से वापस भेजेंगे। हम इसी समय तुम्हें नौकरी देंगे।'

इस प्रकार की खुलदिली के लिए गुरुदेव के साथी उनकी कड़ी आलोचना किया करते थे। ऐसा लगता था, जैसे वह किसी को निराश नहीं कर सकते थे, जिसके फलस्वरूप शांतिनिकेतन को, जिसकी आर्थिक हालत बहुत ही खराब थी और भी बुरे दिन देखने पड़ रहे थे। लेकिन गुरुदेव शांतिनिकेतन में मानवी सम्बन्धों की कविता को नष्ट करने के बजाय, अठहत्तर वर्ष की आयु में देश-भर में घूमकर अपने प्रोग्रामों द्वारा पैसा इकट्ठा करना कहीं अच्छा समझते थे।

कई मौकों पर लोग उनकी इस खुलदिली का ग़लत फ़ायदा भी उठाते थे। गुरुदेव जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यक्ति के निकट रहने से आध्यात्मिक ही नहीं, आर्थिक लाभ भी हो सकता था। काफ़ी लोगों ने उनसे आर्थिक लाभ उठाया है। यहां तक कि मैंने भी-हालांकि मैं नहीं समझता कि मैंने कभी ग़लत फ़ायदा उठाया है-शांतिनिकेतन में उनके साथ बिताए दिनों को याद करके गर्व महसूस किया है।

जब मैं पूजा की छुट्टियों में अपने घर गया तो रावलपिंडी में मेरा शानदार स्वागत हुआ, जैसे किसी जादू की बदौलत हर चीज़ बदल गई थी। मैं किसी परी-लोक में जीने लगा। कहां तो मैं बिल्कुल असफल समझा गया था और कहां अब बहुत बड़ी सफलता के कदम चूम रहा था। बुज़ुर्ग लोग अब मेरी आलोचना न करते, न मुझे नसीहतें देते। मेरे पिताजी बड़े गर्व के साथ मुझे लेकर लोगों से मिलाने के लिए जाते। मुझसे छोटी उम्र के लोग मुझे आदर की दृष्टि से देखते और बहुत बुद्धिमान समझते। मुझे भाषण देने और सभाओं की अध्यक्षता करने के लिए बुलाया जाने लगा, क्योंकि मैं शांति निकेतन का एक अध्यापक था।

मैं शांतिनिकेतन में दो साल से कुछ ऊपर रहा। सच पूछिए तो मैंने वहां अपना समय खराब ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

किया। इसका मुझे बहुत ज़्यादा अफ़सोस है।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वास्तव में, शांतिनिकेतन में रहते हुए मुझे सबसे पहले उसके इतिहास से परिचित होना चाहिए था। मुझे गुरुदेव के जीवन, उनकी पृष्ठभूमि, उनकी शिक्षा आदि के बारे में और उस उद्देश्य के बारे में जानना चाहिए था, जिसने कि उन्हें शांतिकनेतन की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया था।

मुझे कई बार यह सोचकर हैरानी होती है कि मैंने यह क्यों नहीं किया। साधारण-सी जिज्ञासा भी मुझे यह करने के लिए प्रेरित कर सकती थी। जब मैं गुरुदेव से पहली बार मिला था, तो क्या मैंने शांतिनिकेतन को आम स्कूलों जैसा ही एक स्कूल समझकर नज़र-अंदाज़ नहीं कर दिया था? और अब मैं वहां एक साधारण-से शिक्षक के रूप में काम करने लगा था और मैंने अपने नित्य-प्रति के कामों में से निकलकर कुछ और देखने-समझने की कोशिश नहीं की थी।

इसका दोष मेरे पालन-पोषण और शिक्षा के सिर मढ़ा जा सकता है। जो नौजवान मेरी तरह अमीर घरानों में पले होते हैं, वे ज़्यादातर दिखावा करते हैं कि उन्हें जीवन-निर्वाह के लिए किसी काम की ज़रूरत नहीं है। वे महान आदर्शों की बातें करते हैं। अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति उनका असंतोष ग़लत नहीं होता। लेकिन इस अंसतोष के बावजूद वे जो कुछ भी करते हैं, सिर्फ पैसे के लिए ही करते हैं। और जब वे कोई काम करने और पैसा कमाने लगते हैं, तो फिर उस काम और पैसे की सीमाओं में ही घिरकर ज़िन्दगी बिताते हुए संतोष अनुभव करने लगते हैं। यद्यपि तब भी वे महान आदर्शों के सपने देखते हैं, लेकिन अमली तौर पर वे उन तक पहुंचने के लिए कुछ नहीं करते, जैसा कि उनके पिताओं ने कुछ नहीं किया था, जिनके खिलाफ़ कि उन्होंने बग़ावत की होती है।

लगभग एक साल की बेकारी के बाद शांतिनिकेतन की वह नौकरी मेरे लिए वरदान साबित हुई। उसने मेरे अन्दर सम्मान और आत्मविश्वास का भाव पैदा किया। उसे पाकर मैं इतना खुश हुआ कि भूल ही गया कि उसे पाने के बाद मुझे अपने शिक्षण-कार्य के अतिरिक्त कुछ और भी करना चाहिए, जिसकी कि गुरुदेव को मुझसे आशा थी। इसके उलट, मेरी सबसे बड़ी दिलचस्पी इस बात में थी कि मैं अन्य शिक्षकों की तरह नियमित रूप से अपना काम करूँ।

मेरी कॉलेज की शिक्षा मेरे रास्ते की रुकावट बनी। मैंने अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया था। मेरे लिए यह अपने आप में बहुत बड़ी बात थी, और मैं अपनी इस डिग्री को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता था। लेकिन इसका एक हानिकारक पक्ष भी था। मेरी शिक्षा ने मुझे केवल भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य से अनभिज्ञ ही नहीं रखा, मेरे अन्दर जीवन के प्रति एक आलस्य-भरा रवैया भी पैदा किया। मुझे सिखाया गया था कि कला और विज्ञान में विरोध होता है। कला का सम्बन्ध आध्यात्मिक चीज़ों से होता है, जबकि विज्ञान का सम्बन्ध केवल भौतिक चीज़ों से होता है। इसलिए विज्ञान कला से घटिया होता है। विरक्त होकर चीज़ों को देखना, शोध और प्रयोगों द्वारा सचाई का पता लगाना विज्ञान का काम है। लेकिन कला के क्षेत्र में मनुष्य सहज ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा सचाई तक पहुंचता है। उसे अपनी भावनाओं से विमुख नहीं होना चाहिए, बल्कि उनकी बदौलत अपने अनुभव को विशाल और गहरा बनाना चाहिए। उसे निश्चेष्ट होकर हर चीज़ के प्रभाव ग्रहण करने चाहिए। उसे जीवन को जानने की कोशिश करने के बजाय बस अनुभव करना चाहिए।

सो, शांतिनिकेतन को जानने-समझने के बजाय मैंने उसे मात्र 'अनुभव' करके ही संतोष कर लिया। मैंने अनुभव किया कि वहां का वातावरण बहुत मनमोहक और अपनत्वभरा था। उसमें गुरुदेव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के अतीव लयपूर्ण गीतों के स्वर गूंजते रहते और पायल के घुंघरू बजते। उन दिनों मुझे हिन्दी में कहानियाँ लिखने का शौक था। हिन्दी साहित्य-संसार में मैंने थोड़ा-सा नाम भी कमाया था। तब मैं पहले से भी ज़्यादा कहानियां लिखने लगा और किसी न किसी हिन्दी नाटक की तैयारी में भी भाग लेता। वह नाटक किसी विदेशी नाटक का अनुवाद रूपान्तर होता। मेरे लिए काफ़ी सृजनात्मक काम था।

लेकिन अगर मैंने कुछ और मेहनत और कोशिश की होती, और सही ढंग से की होती, तो मैं उन मौक़ों का कहीं ज़्यादा फ़ायदा उठा सकता था। उदाहरणार्थ, मुझे इस बात का पता लगता कि रवीन्द्र ने अंग्रेज़ी और यूरोपीय साहित्य का बहुत गहन अध्ययन किया था, और उनका ज्ञान साहित्यिक स्तर पर उन लोगों के स्तर से कहीं ऊँचा था, जो केवल हिन्दी साहित्य की सीमाओं में घिरे हुए थे। मुझे यह भी पता लगता कि जहां मैंने अपनी मातृभाषा से मुंह मोड़ा हुआ था, वहां गुरुदेव ने अपनी मातृभाषा को अपनाया था। उन्होंने जो कुछ विश्व-साहित्य से सीखा था, उसका उपयोग अपने साहित्य-सृजन में किया था। तब मुझे महसूस होता कि मैं लेखक के रूप में सही रास्ते पर आगे नहीं बढ़ रहा था। तब मैं बंगाली भाषा सीखता, रवीन्द्र साहित्य का अध्ययन करता, और मुझे अपनी कुछ बुनियादी उलझनों और गलतफ़हमियों को दूर करने में मदद मिलती।

गुरुदेव बहुत वृद्ध थे, फिर भी वह शांतिनिकेतन की सरगर्मियों में भाग लेते रहे। सो उनसे मेरी मुलाकात होती रहती और वह पूछते, 'बांग्ला सीख रहे हो न?'

मैं कहता, 'जी सीख रहा हूँ।' लेकिन यह झूठ था। मैं सच्चे दिल से बांग्ला नहीं सीख रहा था।

हर बार उनका यह प्रश्न मेरे मन में तल्खी पैदा करता था। मुझे लगता कि ठाकुर प्रान्तीयता के शिकार हैं। लेकिन दूसरी तरफ वह 'विश्वभारती' के आदर्शों की बातें करते थे। वह शांतिनिकेतन को भारतीय संस्कृति का ही नहीं, विश्व-संस्कृति का केन्द्र बनाना चाहते थे। लेकिन साथ ही अपने प्रान्त की भाषा मुझ पर थोपना चाहते थे। यह कैसा ढोंग था?

एक दिन मैं उन्हें वार्षिक हिन्दी सम्मेलन पर निमंत्रित करने के लिए गया। उन्होंने मुझे बैठने के लिए कहा और मुझसे बातें करने लगे।

'तुम यहां कुछ महीनों के लिए रहना चाहते थे। अब तुम्हें साल से ऊपर हो गया है। अब तुम जाते क्यों नहीं?'

मुझे धक्का-सा लगा। शिक्षक के तौर पर मेरा काम संतोषप्रद था, मेरे साथियों की मेरे बारे में अच्छी राय थी और विद्यार्थी मुझे चाहते थे। आखिर गुरुदेव मुझे वहां से जाने के लिए क्यों कह रहे थे?

'मैं यहां खुश हूँ। मैं यहाँ से बिलकुल जाना नहीं चाहता।' मैंने कहा।

'लेकिन यह ऐसी जगह नहीं है कि तुम हमेशा के लिए यहां टिक जाओ। अब तक तुम्हें पता लग गया होगा कि हम यहां क्या करना चाहते हैं। अब तुम्हें अपने प्रान्त में जाकर इसी विषय में सृजनात्मक काम करना चाहिए।'

'मैं यहां काफ़ी सृजनशील हूँ। मैं उसमें तबदीली नहीं लाना चाहता। मैं खुश हूँ यहाँ। मेरी पत्नी भी खुश है।'

'पढ़ाने के अलावा और यहां क्या कुछ करते हो?' उन्होंने पूछा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'मैं हिन्दी में कहानियां लिखता हूँ, जो हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में छपती हैं। मैंने यहां रहकर काफ़ी कुछ लिखा है, और काफी नाम कमाया है।'

'लेकिन तुम्हारी भाषा हिन्दी नहीं है। तुम पंजाबी हो। आखिर पंजाबी में क्यों नहीं लिखते?'

मुझे फिर लगा कि गुरुदेव संकीर्ण विचारों वाले प्रान्तीयवादी हैं। तब मैं यह नहीं जानता था कि कलाकार तभी अन्तर्राष्ट्रीय बन सकता है, अगर पहले वह सही अर्थों में राष्ट्रीय बने।

'लेकिन हिन्दी राष्ट्रभाषा है। यह पूरे देश की भाषा है। मैं किसी प्रान्तीय भाषा में क्यों लिखूँ, जबकि मैं पूरे देश के लिए लिख सकता हूँ?'

'मैं बांग्ला में लिखता हूँ, जो कि प्रान्तीय भाषा है, लेकिन सारा हिन्दुस्तान ही नहीं, सारा संसार मुझे पढ़ता है।'

'मैं आप जैसा महान लेखक नहीं, एक छोटा-सा लेखक हूँ।' मैंने कहा।

'बड़े या छोटे का सवाल नहीं है। लेखक का सम्बन्ध अपनी धरती से है, अपने लोगों और अपनी भाषा से है। वहीं तुम्हें अपनेपन का एहसास होगा।'

'शायद आपको मेरे प्रान्त के हालात की जानकारी नहीं है। पंजाब में हम या तो हिन्दी में लिखते हैं, या फिर उर्दू में। कोई भी पंजाबी में नहीं लिखता। पंजाबी बहुत पिछड़ी हुई भाषा है। सच पूछिए तो उसे भाषा नहीं कहा जा सकता। वह हिन्दी की एक उप-भाषा मात्र है।'

'मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ। पंजाबी साहित्य, बांग्ला साहित्य जितना ही पुराना है। क्या तुम उस भाषा को पिछड़ी हुई कहते हो, जिसमें गुरु नानक जैसे कवियों ने लिखा है?'

और तब उन्होंने मुझे गुरु नानक की कुछ पंक्तियां सुनायीं, जो आज मुझे जबानी याद है, लेकिन उस समय मैं उनके बारे में बिलकुल अनजान था। वे पंक्तियाँ थी-

गगन में थाल रवि चन्द दीपक बने
तारका मंडल जनक मोती।
धूप मलयानल पवन चवरो करे
सगल बनराये फूलन्त जोती।

ये पंक्तियां सुनाने के बाद गुरुदेव ने कहा- 'तुम्हें यह भी बता दूँ कि मैं गुरु नानक की महान कविता के कुछ अंशों का बांग्ला में अनुवाद करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। लेकिन मुझे लग रहा है कि उनके साथ पूरा न्याय नहीं कर पाऊँगा।'

'यह तो सिखों की धार्मिक वाणी है।' मैंने कहा, 'मैं तो ऐसे साहित्य की बात कर रहा हूँ, जो धर्म-सम्प्रदाय की संस्थाओं से ऊपर हो। ऐसा साहित्य पंजाबी में बिलकुल नहीं है। इसका कारण है कि आधुनिक पंजाबी बहुत पिछड़ी हुई भाषा है।'

'इसी प्रकार की बातें अंग्रेज़ी पढे-लिखे बंगाली बुद्धिवादी आज से सौ साल पहले बांग्ला के बारे में किया करते थे। अपनी भाषा को समृद्ध बनाना इतना कठिन नहीं है। बंकिम बाबू ने बांग्ला भाषा को बीस हजार नये शब्द दिए थे। खुद मैंने अस्सी हज़ार नये शब्द दिए हैं। मैंने बांग्ला भाषा को बनाया है।' उन्होंने गर्व से कहा, 'आज यह भाषा अपनी अभिव्यक्ति में संसार की किसी भाषा से पीछे नहीं है।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं चुप रहा, लेकिन उनकी बातों से क़ायल नहीं हुआ। जहां तक मैं जानता हूँ, अधिकांश पंजाबी लेखक हिन्दी या उर्दू में लिखते थे। पंजाबी सिर्फ गुरुमुखी थी-एक ऐसी लिपि, जिसका प्रयोग सिख ही करते थे, क्योंकि उसका उनके धर्म से सम्बन्ध था। मैं तो उसे पढ़ना-लिखना भी नहीं जानता था। और फिर, हिन्दुस्तान आज़ादी के लिए लड़ रहा था। उसे एक राष्ट्रभाषा की ज़रूरत थी। कांग्रेस उस राष्ट्रभाषा को फलने-फूलने के लिए प्रोत्साहन दे रही थी।.... मैंने बहस करना ठीक नहीं समझा। मैंने गुरुदेव को अपने आने का कारण बताया। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मैं आने के लिए उठा।

मैं अभी दरवाज़े तक पहुंचा ही था कि गुरुदेव ने मुझे बुलाया और ऐसे शब्द कहे, जो कई सालों तक मेरे दिल में चुभते रहे। लेकिन फिर एक दिन अचानक मैंने महसूस किया कि उन शब्दों में कितनी बड़ी सच्चाई थी। उन्होंने कहा था-

'एक वेश्या संसार की सारी दौलत पाकर भी इज्जतदार नहीं बन सकती। तुम पराई भाषा में चाहे ज़िन्दगी भर लिखते रहो, लेकिन न तुम्हारे अपने लोग तुम्हें अपना समझेंगे, न वे लोग, जिनकी भाषा में तुम लिख रहे हो। दूसरों का बनने के पहले तुम्हें अपने लोगों का बनना चाहिए।'

यह था गुरुदेव का तरीका। वह कभी आपे से बाहर नहीं होते थे, फिर भी वह सच्ची बात कहने से डरते नहीं थे, क्योंकि वे जानते थे कि एक न एक दिन सच्चाई जड़ पकड़कर रहेगी और फलेगी-फूलेगी।

वह समय देश और विदेश में बहुत बड़ी उथल-पुथल का था। आज़ादी के लिए हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन तेज़ी से आगे बढ़ रहा था, लेकिन उसमें अजीब क़िस्म के विरोधाभास भी जन्म ले रहे थे। चीन, जापान के चंगुल में फंसता जा रहा था। यूरोप में नाज़ीवाद अपने घिनौने रूप में उभर रहा था और एक-एक करके कई देशों की आज़ादी को हड़पता जा रहा था। युद्ध की काली छायाएँ दिखाई देने लगी थीं। मैं अभी इतना छोटा था कि इन सब चीज़ों को समझ नहीं सकता था, और इसीलिए मैं बड़ी समस्याओं के बजाय अपनी व्यक्तिगत समस्याओं में घिरा हुआ था। लेकिन गुरुदेव के भाषण और उनसे होने वाली मुलाक़ातें हमेशा मुझे सोचने के लिए मजबूर करती थीं। फिर, ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मैं देखता कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में, चाहे वे राजनीतिक हों या सांस्कृतिक, गुरुदेव बिना किसी उलझन के, स्पष्ट शब्दों में अपने विचार प्रकट करते थे। और दस में से नौ बार उनकी बातें सही साबित होती थीं। लंबे-चौड़े भाषण दिए बिना, या आपे से बाहर हुए बिना, उन्होंने जो बीज हमारे दिलों में बोये थे, वे फूटने पर हमारे अपने अनुभवों द्वारा फलने-फूलने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे मैं भी उनके बताए रास्ते पर चलने लगा। तब उनके संग बिताया हर क्षण मेरी यादों में साकार होकर अर्थवान बनने लगा। मैं महसूस करता हूँ कि रवीन्द्र केवल साहित्य और कला में ही हमेशा के लिए जीवित नहीं हैं, वह मेरे दिल में और उन लोगों के दिलों में भी जो रहे हैं, जो उनके संपर्क में आए थे। इसे शायद मेरी भावुकता समझा जाए, लेकिन यह असलियत है। मैं एक सच्चाई सामने रख रहा हूँ, जिसका सबूत उन लोगों से मिला सकता है, जो गुरुदेव के और ज़्यादा नज़दीक थे, और सौभाग्यवश लंबे अरसे तक उनके नज़दीक रहे थे।

साभार : बलराज साहनी-संतोष साहनी समग्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

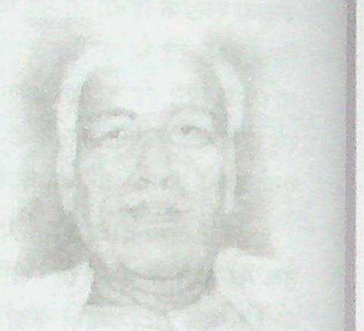

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी

बलराज साहनी

द्विवेदीजी में एक दोष है। ढीलम-ढालम रहते हैं, हजामत हफ्ते में एक बार से अधिक नहीं करते तिसपर जो व्यक्ति पहली नजर में उन्हें जॅंच जाए उसकी खैर, जो न जंचे उसे सामने बिठाकर उसके मुंह की ओर देखते रहते हैं। इसलिए कई महानुभाव शान्तिनिकेतन से यह धारणा बनाकर लौटते हैं कि द्विवेदीजी बैरागी आदमी हैं।

दूर बैठे हुए लोग द्विवेदीजी के आलोचनात्मक लेखों को पढ़कर यह अनुमान कर लेते हैं कि शास्त्राचार्य पचपन और साठ के दरमियान होंगे। प्रेमचन्द तक को यही भ्रम रहा। वास्तव में यह दोनों बातें गलत हैं।

मैं भी उन्हीं सौभाग्यशालियों में से हूं जिनकी ओर वह एकटक देखा करते हैं, किन्तु दूर-ही-दूर से मुझे यह देखने का अवसर मिला है कि वह इतने विरक्त नहीं हैं। जिस मंडली के साथ शाम को सैर करने निकल पड़ें उसका अट्टहास मील के घेरे में कान चीरता है। उनके शुभचिन्तक शान्तिनिकेतन से आने वाले बटोहियों से प्राय: यही सवाल-जवाब करके सन्तुष्ट हो जाते हैं-

'पंडित जी हॅंस रहे हैं न?

हाँ, हॅंस रहे हैं।'

देखने में छह फुट से कम नहीं। एक ऐसे बनारसी महापंडित के शिष्य रह चुके हैं जिनका सत्तर वर्ष की अवस्था में डेढ़ सौ सपाटा (डंड-बैठक) प्रात: काल का नियम था, जिन्होंने डबल निमोनिया का इलाज भी सपाटों से करने की कोशिश की और मर गए। आयु इकतीस वर्ष है। गाड़ी देखने के बेहद शौकीन हैं। दूर से आती हुई गाड़ी का शब्द सुनते ही शास्त्रार्थ व चप्पल छोड़कर लाइन की तरफ भाग खड़े होते हैं।

द्विवेदीजी जीवन से अथक प्रेम रखते हैं। एक सच्चे पारिहासिक की तरह वह उसकी क्रीड़ा को निर्लिप्त होकर देखते हैं, और अपने समेत सभी वस्तुओं पर हंस सकते हैं, किन्तु साथ ही उनमें जीवन के चरम उद्देश्य, साहित्य व कला की आर्यता के प्रति गहरी श्रद्धा है। ज्ञान और अनुभव के लिए अतोषणीय भूख है। सूई से लेकर सोशलिज्म तक सभी वस्तुओं का अनुसन्धान करने के लिए उत्सुक रहते हैं। किसी विषय पर अचल धारणाएं उनकी नहीं। बोलने के बजाय सुनना अधिक पसन्द करते हैं। इसीलिए जिस मूर्तिमान् समस्या को नहीं समझ पाते उसे सामने बिठाकर ताकते रहते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आत्म-सम्मान का उनमें एकदम अभाव है, फिर भी अपनी क्षमताओं व त्रुटियों की जांच स्वयं ही करना पंसद करते हैं। इसलिए प्रशंसात्मक पत्रों को फाड़कर फेंक देते हैं। अखबारों में तस्वीरें छपवाना बुढ़ापे पर स्थगित कर रख है। रूपए-पैसे की परवाह नहीं करते। ऐसा आदमी अगर न हंसे तो कौन हंसे।

उनकी आलोचनाओं के गम्भीर तथा सारगर्भित होने का कारण यह है कि वह साहित्य को खेल की चीज नहीं समझते। मुद्दत से, उनके विचार में, उर्दू और कुछ हद तक यूरोपियन रोमांटिक साहित्य ने, सस्ते में छूट जाने की, अर्थात् श्रृंगार और मुहावरेबाजी की प्रथा चालू कर दी है। हिन्दी-साहित्य का पहला कर्तव्य यह है कि रुके हुए विकास को अपनी पुरानी उपपन्न नींवों के बल पर उभारे। संस्कृत समृद्ध साहित्य के लिए अगाध पक्षपात रखने के कारण उन्हें आधुनिक हिन्दी-साहित्य में काफी त्रुटियां नजर आती हैं। कहानियां बहुत कम पढ़ते हैं। गद्य-कविता व अतियथार्थवाद (सुर्रियलिज्म) के प्रति उनकी उपेक्षा इस निम्नोद्धृत रचना में प्रकट हुई है:

अथ कविता

??
(कौन किसकी सुनता है-)
अनन्त का नर्तन
शंख, नीहारिका, पैराबोला,
हाइपरबोला!
(कौन, किसे सुनने देता है।)
सुदूर की आवाज कानों को खाए जाती
है।
कोई, मानो कुंडी खटखटा रहा है
खरल में पिसा करते हैं मोती।
घिसा करते हैं चन्दन

अशेष फूत्कार
विराट् नर्तन!
छप् छप्!
(कौन किसकी सुनता है-)
उफ्!
सेठों की पगड़ियां, सुन्दरियों की
साड़ियां,
पहलवानों के लंगोट, आगरे की
दालमोट
छप् छप् छप्....।
(कौन किसे सुनने देता है!)

ज्योतिष व नक्षत्र-विद्या के भी माहिर हैं। आठ साल से महाभारत पर अनुसन्धान कर रहे हैं।

बहुत लोग, इन पंक्तियों का लेखक भी उन्हीं में से है, अभिलाषा रखते हैं कि श्री हर्ष की तरह द्विवेदीजी को भी कोई हकीम उड़द की दाल और बासी भात खिला दे, ताकि अनुसन्धान-वनुसंधान को त्याग कर लगते-हाथ एक नॉवेल लिख डालें। अपनी मोहक भाषा को अपना वास्तविक काम करने दें। जहां अभी साहित्य के मान बन ही नहीं पाए, वहां आलोचक का क्या काम ? और जिसके पास लेखक होने की सामग्री विद्यमान है वह आलोचक बने क्यों ? नॉवेल न सही, कोई कटाक्षपूर्ण निबन्ध-संग्रह ही सही।

यह नहीं कि उनके प्रज्ञा-पूर्ण परिहास को उनकी कृतियों में अवसर नहीं मिला। अवश्य मिला है, लेकिन यदि उसका प्रवाह एक बार उसकी अपनी गहन अनुभूतियों में से छलककर बहे तो श्रीयुत बच्चन के लिए एक बेहतर मधुशाला हो

(1937)

मार्च 1939 के हंस से साभार

प्रतिलिपि: श्री राधागोविन्द पाण्डेय, पुरातत्व विभाग, कलकत्ता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुनर्पाठ-
बाणभट्ट की आत्मकथा/ हजारी प्रसाद द्विवेदी

स्व. कमला प्रसाद की स्मृति में, जिन्होंने अंतिम बार बक्सर में लिट्टी खाते हुए इसकी तुलना भोजपुरी मानस से की थी- 'ऊपर से कठोर, भीतर से नरम और मसालेदार' मुझे पूरा विश्वास है कि मिस कैथराइन यदि लिट्टी से परिचित होतीं तो बाणभट्ट की तुलना इसी से करतीं... तब शायद बाबा नागार्जुन का 'लिट्टी इंटरनेशनल' और खुलकर खिलता...

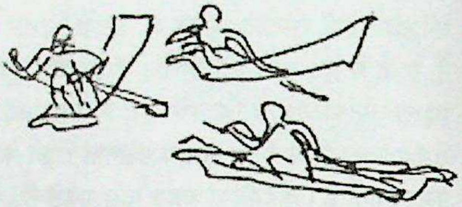

सोन के बालू में बाणभट्ट की तलाश

गजेंद्र पाठक

'बाणभट्ट की आत्मकथा' की मिस कैथराइन ने आस्ट्रिया से लिखे गए अपने आखिरी ख़त में 'प्रिय व्योम' से द्वितीय विश्वयुद्ध के विभीषिका की चर्चा की थी। लिखा था कि किस तरह नृशंस जनसंहार के चलते वे मनुष्य जाति की तथाकथित जययात्रा के प्रति संशयग्रस्त थीं। लगातार छः वर्षों तक साँस रोककर वे लाखों युवकों, युवतियों और बच्चों की हत्या के वीभत्स दृश्य देखती रहीं। यह उनका दुर्भाग्य था कि मनुष्यता के वध का दृश्य देखने के लिए वे बची रहीं। लेकिन अब जब चीजें हद के पार जाने लगीं तब उन्होंने संन्यास का रास्ता चुना और इस कठिन निर्णय पर अमल करने से पहले व्योमकेश शास्त्री को यह बताना नहीं भूलीं कि, 'बाणभट्ट की आत्मा सोन नदी के प्रत्येक बालुका कण में वर्तमान है।' उन्हें इस बात की कसक रही कि उस आत्मा की आवाज किसी को सुनाई नहीं देती।

बालू में आत्मा की आवाज ? जिस बालू से न तेल निकल सकता है न पानी, उस बालू में मनुष्य की आत्मा की खोज ? द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए जिम्मेदार लोगों के गाल पर यह मिस कैथराइन का करारा तमाचा था। जिन्होंने फूल जैसे बच्चों को भी नहीं छोड़ा, वैसे अमानवीय लोगों के बीच मिस कैथराइन को बाणभट्ट की याद आना महज संयोग नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रसंग का उल्लेख कर यह संदेश देने का काम किया था कि भारतीय ढंग का उपन्यास पश्चिम से हटकर यदि विकसित होगा तो उस विकास क्रम में अपनी स्वाधीनता की चेतना और उसकी परंपरा की स्मृति भी मददगार होगी। यूरोप की तथाकथित आधुनिकता जिन महायुद्धों को जन्म दे रही थी, उसमें भय की भूमिका सर्वप्रमुख थी। साम्राज्यवाद की होड़ ने लोभ लालच और नफरत का जो बेशर्म नृत्य शुरू किया उसने यूरोपीय 'महानता' और 'आधुनिकता' की कलई खोल दी। गाल बजाने वाले ज्ञानियों की हकीकत सतह पर आ गई। इस आधुनिकता पर जब कोई विचार नहीं कर रहा था, तब हजारी प्रसाद द्विवदी ने बाणभट्ट की आत्मकथा में मिस कैथराइन के प्रसंग का उल्लेख कर एक साथ दो काम किये। पहला तो यह कि बाणभट्ट के मध्यकालीन भारत से बीसवीं सदी के यूरोप के बीच एक लंबी यात्रा करते हुए भयानक आतंक और भय के माहौल में प्रेम की भूमिका को रेखांकित किया। जायसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
ने पद्मावत में स्पष्ट किया था कि मनुष्य से मनुष्य का प्रेम ही है जिससे यह धरती वैकुण्ठ के समान सुंदर लगती है वरना एक मुट्ठी राख के सिवा यहां बचना ही क्या है ? बाणभट्ट इस बात को जानते थे लेकिन, बीसवीं सदी के यूरोपीय महानायकों को इस बात की खबर नहीं थी। दूसरी बात यह कि भारत और यूरोप के बीच संवाद का सिलसिला पुराना है। कालिदास से कबीर तक को जानने समझने में यूरोप की ऐतिहासिक भूमिका रही है। जब तक यूरोप से प्रमाणपत्र नहीं मिलता था तब तक हम अपनी प्रतिभाओं से अनजान रहते थे। बाणभट्ट के बारे में भी शायद द्विवेदी जी के मन में यही गाँठ रही हो। मिस कैथराइन बाणभट्ट के अनुसंधान में उसी ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह यहाँ कर रही हैं।

बालू बनने की कथा, प्रकृति की विकास यात्रा का प्रतीक है। पत्थर और पानी का निरंतर संघर्ष बालू की आत्मकथा है। आसमान में सुराख लगाने का काम पत्थर कर सकते हैं लेकिन पत्थरों में सुराख लगाने का काम पानी ही कर सकता है। और यह सुराख भी कैसा ? बड़े बड़े पहाड़ों को छोटे-छोटे बालुका कणों में तब्दील करने की प्रक्रिया। प्रभु को लघु बनाने का काम। प्रभुता से लघुता और लघुता से बाणभट्ट। सोन के किनारे पैदा हुए बाणभट्ट की कथा भी तो यही है। बाबा नागार्जुन की तरह बाणभट्ट किसी अपठित कृषक कुल में पैदा नहीं हुए बल्कि एक पढ़े-लिखे पण्डित कुल में पैदा हुए थे। लेकिन, किसी कुल में पैदा होना ही पर्याप्त नहीं होता। कुल और कपड़ा बचाकर रखना सबके वश की बात नहीं होती। कबीर अपने कुल से अज्ञात थे लेकिन कपड़े की चिन्ता उन्हें अन्त तक रही। कपड़ा बनाने वाली जाति में पालन पोषण का संस्कार काम आया। अपनी चादर को साफ साफ बचा लिया। बाणभट्ट अपने कुल से परिचित थे लेकिन उसकी रक्षा को लेकर लापरवाह रहे। यह प्रसंग एक 'दुर्भाग्य' से जुड़ा हुआ है जिसकी चर्चा आगे होगी। अभी सवाल यह है कि मिस कैथराइन को बाणभट्ट की आत्मा की पुकार सोन के पानी में क्यों नहीं सुनाई पड़ी ? सोन के बालू में ही क्यों सुनाई पड़ी उन्हें बाणभट्ट की आत्मा की आवाज ?

सोन का पानी जिन्होंने देखा है वे जानते हैं कि बाढ़ के दिनों में सोन के पानी और बालू में फर्क बहुत कम होता है। बाणभट्ट के रचनाकर्म को अगर देखें तो वह जिस शिखर पर खड़े हैं उसके लिए पानी की उपमा ठीक नहीं थी। सोन अमरकंटक के शिखरों से निकलकर बाणभट्ट के जवार में आते आते पानी और पत्थर का भेद खो देती हैं। पत्थर का पानी में मिलकर पानी जैसा बन जाना जिसे मुश्किल से छानकर ही बालू कहा जा सकता है। यही बाणभट्ट हैं और इसीलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी की कल्पसृष्टि मिस कैथराइन को इसी बालू में बाणभट्ट की आत्मा की छाया दिखाई पड़ती है। निपुणिका से बाणभट्ट ने पूछा भी था कि, 'मैं क्या सचमुच जड़ पाषाण पिंड हूँ।' लेकिन निपुणिका के लिए वह जड़ पाषाण पिंड कहाँ थे ? उस बाणभट्ट के बारे में तो उसने ज्योतिषी से ही जान लिया था कि, 'वह बड़ा यशस्वी कवि होगा, परन्तु कोई रचना समाप्त नहीं कर सकेगा। जिस दिन वह कविता लिखने बैठेगा, उस दिन से उसकी आयु क्षीण होने लगेगी। वह उसके बाद सहस्र दिन तक जीवित रह सकेगा।' ज्योतिषी की इस बात से निपुणिका डर गई थी और इसका निराकरण भी पूछा था। ज्योतिषी ने सुझाव दिया था कि 'उनसे कह देना कि किसी जीवित व्यक्ति के नाम पर काव्य न लिखे।' जो लोग साहित्य में अमरत्व के पक्षधर रहे और शाश्वत समय तक अजर अमर बने रहने के लिए शाश्वत विषयों को ही काव्य का विषय बनाया वे शायद ज्योतिष की राह पर चल रहे थे। तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में बताया है कि जीवित मनुष्य पर कविता लिखने से वाणी की देवी किस प्रकार सिर धुनकर पछताती हैं। बाणभट्ट ने हर्षचरित लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि वे न तो ज्योतिष से डरते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हैं और न ही वाणी की देवी सरस्वती से। लेकिन बाण की दिलचस्पी हर्ष में ही रहती तो बाणभट्ट की आत्मकथा की कोई जरूरत नहीं थी। बाणभट्ट की आत्मकथा के बाण की आत्मकथा का महत्व जिन कारणों से हजारी प्रसाद द्विवेदी के लिए है उसका सर्वोपरि कारण उनका भट्टिनी के बारे में कविता लिखने का मन है। निपुणिका से ही सुनिए-'तुमने घृणा के कारण मेरी ओर ताका भी नहीं। नगर-प्रतिहार जरा देर के बाद आए थे और उनसे तुम कह रहे थे कि अपना लिखा हुआ प्रकरण तुमने क्षिप्रा में फेंक दिया है और जब तक निपुणिका नहीं मिल जाती, तब तक न तुम नाटक लिखोगे, न खेलोगे। मैं सुनकर आश्वस्त हो गई और मिलने का संकल्प लेकर भाग आई। आज भट्टिनी के बारे में तुमने जब कविता लिखने की बात कही, तो मेरा चित्त काँप उठा। मैं यही कहने आई हूँ भट्ट कि तुम भट्टिनी के या किसी अन्य जीवित व्यक्ति के विषय में कविता मत लिखो।'

बाणभट्ट के लिए ज्योतिष, 'यावनी पुराण-गाथा के आधार पर रचा हुआ अटकल पच्चू विधान' है। उन्हें पता है कि यह विद्या अपने देश के अशिक्षित जन समूहों से होते हुए किस तरह कुसंस्कार के रूप में राजाओं और पंडितों के बीच फैल गई है। उन्हें इस बात का भी आश्चर्य है कि क्रांतिकारी बौद्धधर्म भी इससे अछूता नहीं रह गया है।

आए दिन बाबाओं के नए अवतारों ने विज्ञान की सबसे लोकप्रिय उपलब्धि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को अपने व्यापार के गुणा गणित से तालमेल बैठाकर इस तथाकथित सूचना क्रांति के युग में जो चमत्कार पैदा किया है उसे देखकर हमारी इक्कीसवीं सदी बाणभट्ट से कितनी आगे है या कितनी पीछे आप स्वयं विचार करें। इक्कीसवीं सदी में भी ऐसे कवियों का टोटा नहीं है जिनका इतिहास बोध पुराण बोध से अलग होने का नाम ही नहीं लेता।

निपुणिका का आग्रह बाणभट्ट के इतिहास बोध को जीवित व्यक्तियों पर कविता लिखने से कुछ समय के लिए स्थगित जरूर करता है लेकिन उसका टूटना तय है क्योंकि जब धरती को लम्बे समय तक पानी में डुबाकर नहीं रखा जा सकता तब समय के सत्य को कैसे पर्दा डालकर छिपाया जा सकता है। परसाई जी का समाधान हमारे सामने है-'जो अपने समय के प्रति ईमानदार नहीं होगा उससे शाश्वत के प्रति ईमानदारी की उम्मीद कैसे की जाएगी?

सीरिया के मशहूर कवि निजार कब्बानी की एक कविता है-'कोई तर्क नहीं है/पानी पर चलता है, हमारा प्यार' - पानी का प्यार से गहरा रिश्ता है। प्यार के रूपक के रूप में पानी का उपयोग बहुतों ने किया है। बाणभट्ट जिस फक्कड़पन और यायावरी से रिश्ता रखते हैं उसको देखकर उन्हें पत्थर नहीं कहा जा सकता है। उनके लिए पत्थर, पण्डिताई का वह बोझ है जो उन्हें अपने कुल द्वारा विरासत से मिला है। उस पत्थर को वे अपनी आवारगी और यायावरी के आवेग से तोड़ना चाहते हैं। नदी के किनारे पैदा हुए लोगों को तैराकी सीखने की जरूरत नहीं होती। इसीलिए वे थलमार्ग की जगह जलमार्ग को पसंद करते हैं। याद कीजिए, जब वे भट्टिनी के साथ मगध लौटने के लिए पानी का रास्ता चुनते हैं- और पानी का यह रास्ता गंगा का रास्ता है-इलाहाबाद से आगे बढ़ते हुए बाणभट्ट विन्ध्य पर्वत पर मुग्ध हो जाते हैं। मलयज ने रामचंद्र शुक्ल पर अपनी किताब में लिखा है कि किस तरह शुक्ल जी को इस विंध्या वर्तन से गहरा लगाव था। शुक्ल जी के कवि मन पर इसकी गहरी छाया दिखाई पड़ती है। मिर्जापुर अपनी कजरी के लिए मशहूर है। जिन्होंने बिस्मिल्लाह खान और सोमा घोष की जुगलबन्दी सुनी है वे इस बात को महसूस कर सकते हैं कि कचौड़ी गली का सूना होना और मिर्जापुर का गुलजार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होना क्या होता है ? शुक्ल जी की रचनाशीलता को गुलजार करने में मिर्जापुर और उसके पास विन्ध्य की प्रकृति की गहरी भूमिका है। जो चीजें रामचंद्र शुक्ल के निर्माण में सहायक हों वे हजारी प्रसाद द्विवेदी के लिए निरर्थक कैसे हो सकती हैं ? गंगा में यात्रा करते हुए बाणभट्ट ललचाई नजरों से विन्ध्य के इस सौंदर्य को निहार रहे हैं लेकिन उस में धंस पड़ने को वे स्वतंत्र नहीं हैं। पश्चिमी शहरों से रेलगाड़ियों से बिहार लौटने वालों को विन्ध्य पर्वत का दिखना घर के पास आने का सूचक होता है। लोग अपना सामान समेटना शुरू करते हैं। बाणभट्ट भी इस बात से खुश हैं कि अब घर के पास हैं। लेकिन वे अकेले नहीं हैं और जिनके साथ हैं वे, उनकी वजह से मुश्किलें भी ज्यादा हैं। हर्ष का शासन चुनार के किले के बाद अस्त होता था। आगे व्यवस्था का अभाव है। मन में चिंता थी-'क्या फिर भट्टिनी को लेकर मैं भय स्थान की ओर अग्रसर हो रहा हूँ ? परंतु मैं तो कान्यकुब्जेश्वर के राज्य से बाहर निकल जाने के लिए ही चला हूँ। फिर डरने की क्या बात है ?' चुनार में विश्राम के बाद जो नाव चलती है वह बक्सर तक चली जाती है लेकिन वहाँ आभीर सामंत ईश्वरसेन के सैनिकों को संदेह हो जाता है और बलिया (तमसा नदी तक) तक आते आते भट्टिनी और निपुणिका नाव छोड़कर गंगा में कूद पड़ती हैं। नाव अक्सर किनारे ही डूबती है। थोड़ी देर तक ठीक ठाक रहता तो बांई तरफ द्विवेदी जी का गाँव था और दांई तरफ बाणभट्ट का। घर के सीवान पर पहुंचने के पहले ही जीवन की सबसे कठिन घड़ी आ गई। घर का चिराग भी प्रायः घर की आग से बुझता है। लेकिन इस आग को अभी बुझना नहीं है। निपुणिका की चिंता नहीं, महावराह की चिंता नहीं, भट्टिनी को बचाना है। गंगा के अथाह जल में वहाँ भी बालू का एक ढूह काम आया। हाय रे बालू ? सोन के बालू को गंगा के बालू ने अभयदान दिया। रात के अंधेरे में उसी बालू के ढूह पर बाण और भट्टिनी को एक नया जीवन मिला। और सबेरे होने पर एक कविता भी, 'भट्टिनी उठकर बैठ गई। उन्होंने केवल एक बार मेरी ओर देखा। उस दृष्टि में कोई जिज्ञासा नहीं थी, न उसमें कोई भाव था, न विभाव था, न राग था, न विराग था-केवल एक शून्य दृष्टि। सामने गंगा कलकल-नाद करती हुई बह रही थी और तीर पर अपूर्व शोभा एवं संपत्ति की मूर्त विग्रह धारिणी भट्टिनी भूली-सी, भ्रमी-सी, खोई-सी बैठी हुई थीं। स्वभाव के उद्धत प्रमथ -गणों ने केशाकर्षणपूर्वक जब दक्ष की यज्ञ क्रिया को खींचा था, तो वह कुछ इसी प्रकार भूली-भ्रमी गंगा की शरण में आई होगी, त्रिनयन के तृतीय नयन से स्फुलिंग झड़ते देख भागी हुई चंद्रकला कुछ इसी प्रकार अस्त-व्यस्त होकर गंगा के तट पर पहुंची होगी।.... थोड़ी देर तक वे गंगा के प्रवाह को एकटक देखती रहीं। यह कहना गंगा के लिए भी कठिन ही होगा कि इतनी पवित्र, इतनी निर्मल और इतनी गरिमा-भरी दृष्टि उन्होंने कभी देखी है या नहीं।' यह देखना दिलचस्प है कि बाणभट्ट पत्थर और पानी में विकल्प के समय पत्थर की चिंता नहीं करते। वह पत्थर चाहे कुल का हो, पण्डिताई का हो या वराह की मूर्ति के रूप में हो। पत्थर दिल दुनिया में सबसे बड़ा खतरा पानी के सामने है। वह पानी चाहे नदियों का हो या आँखों का। बाणभट्ट उन दोनों का महत्त्व जानते हैं क्योंकि दुनिया प्यार से चलती है और प्यार पानी पर।

सोन नदी का पानी नहरों से होकर बिहार के कई जिलों का पेट भरता है। गंगा से परलोक सुधरता होगा, लोक का पेट सोन से ही भरता है। सोन का सोने जैसा बालू सोन के पानी से भी महंगा बिकता है। सोन के बालू के लिए हर साल ठेकेदारों में जंग होती है। इन्हीं ठेकेदारों के ट्रकों पर सवार होकर बाणभट्ट की यह आत्मा पत्थर के सीमेंट और गारे में शामिल होकर इमारतों के बोझ से कराह रही हैं। यह बालू आज जिन इमारतों को घर बनाने में भ्रम में शामिल है, इसी घर की माया को तोड़कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाणभट्ट एक जमाने में बहुत दूर निकल गए थे। मगर सोन के किनारे रह गया- 'आवारगी में हमने ज़माने की सैर की'

भीषण युद्ध और नरसंहार के समय बाणभट्ट की स्मृति अजब सी लगती है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि सच और झूठ के बीच लम्बा और अंतहीन युद्ध सभ्यता के जिस तथाकथित विकास और विस्तार के क्रम में चलता है बाणभट्ट उसके साक्षी हैं। भट्टिनी के प्रति लगाव को पहली बार जुबान पर लाकर बाणभट्ट ने सच का साक्षात्कार किया था और इसी सच की मंहत्ता पर कुमार कृष्णवर्धन ने उनसे कहा कि 'तुम झूठ से शायद घृणा करते हो, मैं भी करता हूँ परन्तु जो समाज व्यवस्था मूढ़ को प्रश्रय देने के लिए ही तैयार की गई है, उसे मानकर अगर कोई कल्याण कार्य करना चाहो, तो तुम्हें झूठ का ही आश्रय लेना पड़ेगा। सत्य इस समाज व्यवस्था में प्रच्छन्न होकर वास कर रहा है। तुम उसे पहचानने में भूल न करना। इतिहास साक्षी है कि देखी-सुनी, बात को ज्यों-का-ज्यों कह देना या मान लेना सत्य नहीं है। सत्य वह है जिससे लोक का आत्यंतिक कल्याण होता है। ऊपर से वह जैसा भी झूठ क्यों न दिखाई देता हो, वही सत्य है।' इतनी बड़ी बात कहकर वे स्वयं लज्जित हो जाते हैं। अपनी लज्जा को कम करने के लिए ही वे कहते हैं कि, 'मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे ठीक-ठीक समझ रहे हो न भट्ट! लोक कल्याण प्रधान वस्तु है, वह जिससे सधता है, वही सत्य है।' सत्य के कई रूप हैं। शासक का सत्य और शासित का सत्य एक नहीं होता। शासन करने वाले जिस सत्य का प्रचार करते हैं वह कितना झूठ हो सकता है इस पर द्विवेदी जी ने एक चुटकी ली है। समाज व्यवस्था में सत्य का विष की तरह काम करना कोई नई चीज नहीं है। सच और झूठ की बहस को द्विवेदी जी ने इस उपन्यास में एक निरर्थक बहस बताया है। साथ ही ऊँची-ऊँची बातें करने वालों से सावधान रहने का संकेत किया है। गाल बजाने वाले पंडितों से तुलसीदास ने भी सावधान किया था, कबीर ने भी और सूरदास ने भी।

वैसे तो यह महज संयोग है कि कौन कहाँ और किस नदी के किनारे पैदा होता है। प्रसंगवश मुझे नामवर सिंह और मैनेजर पाण्डेय के बीच एक रोचक बातचीत याद आ रही है। नामवर जी ने पाण्डेय जी से कहा कि, पाण्डेय जी, आप चूंकि गंगा के किनारे पैदा नहीं हुए इसलिए महान नहीं बन सकते। पाण्डेय जी का जवाब हाजिर था- 'आप भी तो गंगा के किनारे पैदा नहीं हुए हैं।' बाणभट्ट का गंगा के किनारे पैदा न होकर सोन के किनारे पैदा होना, उन्हें महानता के शिखर पर पहुंचने से भले ही रोकता हो लेकिन बाणभट्ट इस महानता की परंपरा से तो शुरू से ही अलग राह का चुनाव करते रहे। सुनी सुनाई वात्स्यायन वंश की गौरवगाथा को छोड़ भी दिया जाय तो भी अपने पिता भट्ट को तो बाणभट्ट ने स्वयं देखा था- 'यदि मैं कहूँ कि सरस्वती स्वयं आकर अपने पाणि पल्लवों से मेरे पितृदेव के श्रम सीकरों कों पोंछा करती थी, तो उनमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि ऊषा काल से लेकर सूर्योदय के दो मुहूर्तों तक निरंतर हवन करने के बाद जब मेरे पिता पसीने से तर होकर उठते थे, तो सीधे अध्यापन के कुशासन पर जा बैठते थे। यही उनका विश्राम था। इसी समय विद्यार्थियों को वेदाभ्यास कराते-कराते उनके श्रमबिन्दु सूखते थे। इसे सरस्वती का पसीना पोंछना न कहूँ तो क्या कहूँ? ऐसे ही कृति पिता का मैं पुत्र था-जनम का आवारा, गप्पी, अस्थिर चित्र और घुमक्कड़।' ये चार विशेषण जिस व्यक्तित्व के साथ जुड़े हो उसकी महानता पर विचार करने की जरूरत भी नहीं। ऐसे ही अस्थिर और गप्पी चरित्र से कोई उम्मीद करे कि वह अपनी कहानी भारत का मानचित्र सामने रखकर लिखेगा तो मेरी नजर में यह ज्यादती की कही जाएगी। (देखें, भगवान सिंह, कसौटी-अंक 15, पृ. 140)।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-GRANT

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाणभट्ट की आत्मकथा पर जितनी बातें हुई हैं वह बाणभट्ट की इन मौलिक विशेषताओं को सामने रखकर नहीं हुई हैं। द्विवेदी जी को इस बात का इलहाम था इसीलिए उन्होंने उपन्यास के शुरू और अंत में दो बार स्पष्टीकरण दिया था। इतना ही नहीं उन्हें बराबर यह लगता रहा कि बाणभट्ट पर अलग से विचार करने की जरूरत बनी हुई है। बाणभट्ट की आत्मकथा को यदि हिंदी में लिखा जाना था तो उसे बाणभट्ट के सर्वाधिक करीब लाने वाली भाषा में ही लिखा जाना था। यह काम जटिल और खतरनाक था। द्विवेदी जी जैसा व्यक्ति ही इस काम को अपने हाथ में ले सकता था। हर्ष चरित और कादम्बरी से बार-बार तुलना करने का कारण भी यही था। हिंदी आलोचना इस प्रयास को कितना समझ पाई यह तो आप भली भांति जानते हैं लेकिन मुझे लगता है कि द्विवेदी जी के मन में इसे भोजपुरी में लिखे जाने की जो कसक रह गई थी इसके पीछे हिन्दी में इस उपन्यास को लेकर द्वन्द्व और दुविधा की ही स्थिति रही होगी। शायद भोजपुरी या मगही उतनी ही पुरानी बोलियाँ हैं जितने पुराने बाणभट्ट या उनसे भी ज्यादा पुरानी। इसलिए कम से कम भाषा को लेकर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पर जो आरोप लगा वह समय और मन:स्थिति को न समझ पाने का ही परिणाम कहा जाएगा। बाणभट्ट अगर भोजपुरी या मगही में अपनी बात कह सकते तो शायद 'हिंदी' को इससे कोई परेशानी नहीं होती। 'तुम्हारी हिंदी' और 'हमारी हिंदी' की लड़ाई शायद यहीं पर खत्म हो जाती।

II

'बैल' भारतीय कृषि व्यवस्था का आधार पशु था। सिन्धु घाटी सभ्यता की समृद्धि का एक प्रमाण उसकी खुदाई से प्राप्त हृष्ट-पुष्ट बैल वाला सिक्का भी है। समय के साथ जैसे-जैसे कृषि और किसान हाशिए पर चलते चले गए वैसे-वैसे कृषि जीवन के आधार इस पशु की प्रतिष्ठा भी कम होती चली गई। शंकर की सवारी होने का गौरव जिस पशु को कभी प्राप्त था उस पशु के नाम पर लोगों की खिल्ली उड़ाई गई। किसी को 'बैल' कहना उसकी मूर्खता को उद्घाटित करने का सबसे सरल और सीधा तरीका है। ऐसे ही 'बैल' का दर्जा जिस व्यक्ति को मिला हो उसे बाणभट्ट बनना पड़े तो इस कथा को सिर्फ एक रेखीय भाषा में समझना कठिन होगा। बैल भी ऐसा-वैसा नहीं, बल्कि पूँछ कटा बैल। पशुओं की सुन्दरता उनकी पूँछ से होती है। वह जो पूँछ कटवा चुका हो उसे ही बंड कहा जाता है। मतलब यह कि जो सामान्य बैल की श्रेणी में भी न हो उस व्यक्ति को अपनी पूरी पूँछ गायब कर मनुष्य बनना है और मनुष्यता की नई परिभाषा तय करनी है। मनुष्य ने अपनी पूँछ कटवाई नहीं है, छिपा ली है। कैसी विडम्बना है कि सच दिखाने वाला पशु कहा गया और सच को छुपाकर झूठ पर झूठ गढ़ने वाला मनुष्य नाम से जाना गया। बाणभट्ट ने 'बंड' का बाण नाम से संस्कार कर झूठ की पहली सीढ़ी पर चढ़ने का यत्न किया था। लेकिन यह झूठ कितने दिन चलने वाला था?

जिस समय 'बंड' 'बाण' बनने का साहस कर रहे थे वह समय व्यक्तिगत रूप से उनके लिए उन्मुक्त होने के लिए सर्वथा उपयुक्त था। 'कोई न छायादार'। संसार में पहली छाया माँ होती है। चली गई थीं। पिता दूसरी छाया। चौदह वर्ष की अवस्था में वे भी भरभराकर गिर गए। उड़ने को पूरा आकाश था लेकिन पंख रूपी पूँछ तो कटी हुई थी। ऊपर से कुल की मर्यादा और दूसरी तरफ बौद्ध धर्म की ऊष्मा। और उस में पुराण वाचक बनकर जनपदों को धोखा देना उनका प्रिय शगल बन गया। रूप सुंदर था और वाक्पटुता भी थी। परदेश में इन दोनों से काम चल जाता है। 'स्वदेश पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते'- लेकिन बाणभट्ट विद्वान कहाँ थे? न राजा, न विद्वान। लेकिन 'सौभाग्य' की कथा तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
थानेसर से शुरू होती है। बिहार से भागने वालों या रहने वालों की यह विडम्बना रही है कि उन्हें हमेशा यही भ्रम रहता है कि उनका भाग्योदय बिहार से बाहर ही होना है। इसलिए बिहार से पलायन की एक पुरानी परंपरा रही है। वैसे भी जो न राजा है, और न विद्वान उनके लिए सब धन बाइस पसेरी। क्या मगध और क्या थानेसर। और इस थानेसर में, जब बाणभट्ट ने राजा हर्ष के भाई कृष्णवर्धन के बेटे के नामकरण संस्कार पर भारी उत्सव को देखा तो उन्हें अपने नाम को लेकर टीस जरूर उठी होगी। उत्तर प्रदेश और बिहार के होनहारों के नामकरण की समस्या पर विचार करें तो हजारी प्रसाद द्विवेदी का स्वयं 'हजारी' नाम हो या 'गोबर', 'हल्कू', 'दुखी' ये सभी जिन सामाजिक विडम्बनाओं की देन हैं उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। जिनके पास बहुत कुछ है, जो राज करते हैं उनके यहाँ नामकरण पर विचार और उत्सव होता है- 'मुझे अपनी दशा याद आ गई। एक ऐसे भाग्यवान है जिनके जन्म पर इतना उत्सव मनाया जा रहा है और एक मैं अभागा हूँ जो देश-विदेश मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझे मेरा जन्म याद आया। मेरी माता जन्म के कुछ वर्ष बाद ही परलोक सिधार गई थीं। पिता उस समय वृद्ध हो चले थे। चौदह वर्ष की अवस्था में ही मुझे अनाथ करके चले गए। मेरे जीवन में जो कुछ सार है, वह मेरे पिता का स्नेह है। उसी से मैं बिगड़ा और बना भी। मुझे लगा कि मेरे पितामह गण मेरे ऊपर दुःख के अश्रु बरसा रहे हैं। कहाँ वेदाध्यायियों का यशोंशुशुक्ली कृत- सप्तविष्टय वंश और कहाँ मैं अभागा बंड़। हे धरित्री, फट जाओ, ताकि मैं छिप जाऊँ।' लेकिन धरती को यहाँ फटना नहीं था। कटना था, दुर्भाग्य के उस जाल को जो अब तक बाणभट्ट को बंड बनाए हुए था। फिर राजमहल में ब्राह्मण धर्म के अनुसार राजकुमार को आशीर्वाद देने का निर्णय और इस निर्णय में भी एक खास बात यह कि, 'यद्यपि मैं योजना बनाकर कोई कार्य नहीं कर पाया और यही कारण है कि मैं कोई भी पुस्तक समाप्त नहीं कर सका पर निश्चय करने में बिल्कुल देर नहीं करता।' इसी निर्णय के क्रम में निपुणिका का मिलना और वह भी उस रूप में मिलना। वही निपुणिका जिसकी सुंदरता का मेयार बाणभट्ट का निजी मेयार है। रीतिवाद से सर्वथा मुक्त क्योंकि 'उसकी सबसे बड़ी चारुता- संपत्ति उसकी आँखें और उंगलियां ही थीं।' उंगलियों को मैं बहुत महत्वपूर्ण सौंदर्योपादान समझता हूँ। 'नटी की प्रणामांजलि और पताक-मुद्राओं को सफल बनाने में पतली-छरहरी अंगुलियाँ अद्‌भुत प्रभाव डालती हैं।' इस निपुणिका को बाणभट्ट ने देवमंदिर समझा था। उस पर उसे सदा तरस आया। जब लम्बे समय के बाद इस बार फिर उसकी पान की दुकान पर मिलना हुआ तो निपुणिका उन्हें सावधान करती है कि यहाँ ज्यादा देर तक ठहरना ठीक नहीं क्योंकि 'यहाँ आने वाले लोग स्त्री शरीर को देवमंदिर नहीं मानते।' अपने विधवा जीवन की यातना से घर छोड़कर भाग निकली निपुणिका बरसों पहले उज्जयिनी में बाण से मिली थी। उज्जयिनी के रंग मंडल ने बाणभट्ट को निपुणिका जैसा उपहार दिया था। बरसों बाद अब यहाँ मिलने पर एक वही है बाण के जीवन में जो कह सकती है कि 'भट्ट मुझे किसी बात का पछतावा नहीं है। मैं जो हूँ उसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकती थी। परंतु तुम जो हो, उससे कहीं श्रेष्ठ हो सकते हो। इसलिए कहती हूँ तुम यहां मत रुको ।.... मैंने दुनिया कम नहीं देखी है। इस दुनिया में तुम्हारे जैसे पुरुष रत्न दुर्लभ हैं।' निपुणिका की यही अंतिम बात बाण के मन में चुभ गई और फिर राजभवन से भट्टिनी को मुक्त कराने की कथा। भट्टिनी की मुक्ति अशोक वाटिका से सीता की मुक्ति नहीं है। बाणभट्ट न तो हनुमान हैं और न ही राम। लेकिन भट्टिनी की मुक्ति के बाद जब 'बाबा' बाण की जाति को झूठ, पाखंडी और डरपोक बताते हुए सत्य बोलने के लिए ललकारते हैं और विकल्प के तौर पर महावराह की मूर्ति और भट्टिनी में से किसी एक बचाने की बात करते हैं तो अंततः बाण भट्टिनी के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पक्ष में खड़ा होता है। वाममार्गी बाबा का यह कहना है कि 'देख रे तेरे शास्त्र मुझे धोखा देते हैं। जो मेरे भीतर सत्य है, इसे दबाने को कहते हैं जो तेरे भीतर मोहन है उसे भुलाने को कहते हैं, जिसे तू पूजता है उसे छोड़ने को कहते हैं।' बचाया होगा वराह ने इस धरती को। अब वराह की मूर्ति को बचाने का समय नहीं है। ईश्वरों ने इस धरती को बचाया होगा, बनाया होगा इससे हम इनकार नहीं करते लेकिन साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि अब धरती पर ईश्वरों की मूर्तियाँ सबसे ज्यादा असुरक्षित हैं। मंदिरों की मूर्तियाँ तस्करों के निशान पर हैं या साम्प्रदायिक ताकतों के। बुद्ध ने इन मूर्तियों की निरर्थकता को बहुत पहले समझ लिया था। बाणभट्ट वराह की शक्ति पर सवाल नहीं करते लेकिन वराह की मूर्ति और जीती जागती स्त्री के बीच विकल्प का प्रश्न उठता है तो उन्हें निश्चित रूप से जीती जागती स्त्री ही ध्यान में आती है।

बाण को सबसे ज्यादा खुशी तब होती है जब भट्टिनी उनका इंतजार करती है और देर से आने पर नाराज होती है। बाण को इस बात का अनुभव ही नहीं था। उनका संकल्प है कि- 'भट्टिनी को मैं राजनीति का खिलौना नहीं बनने दूँगा। भट्टिनी मेरी राजराजेश्वरी हैं, उनके सामने महाराजाधिराज श्री हर्ष ही क्या और आभीरराज लोरिक देव ही क्या।' लेकिन अब तक बाण को भट्टिनी की कथा आधी और अधूरी ही मालूम थी। ये भट्टिनी कौन है ? माँ से दुःखवाद और पिता से भागवत अनुकंपा का आशीर्वाद पाने वाली यह स्त्री दस्युओं द्वारा उसके दो सौ विश्वस्त सैनिकों को मारकर अपहृत की गई स्त्री है। बकौल भट्टिणी, 'नगरहार से पुरुषपुर, पुरुषपुर से जालंधर और फिर जाने कहाँ-कहाँ मुझे दस्युओं के साथ घूमना पड़ा और अंत में स्थाणीश्वर के छोटे राजकुल में आश्रय मिला। जिस दिन नगरहार के मार्ग में दस्युओं ने इस अभागे शरीर का स्पर्श किया, उस दिन तक मुझे देवकन्या होने का अभिशाप था। मैं एक मास तक अपने पिता का नाम ले-लेकर रोती रही।' मिर्जा हादी रुसवा की उमरावजान अदा या हर गाँव, शहर की उन गुमनाम माताओं या अन्य बहनों को याद कीजिए जो इस गौरवशाली देश में अपहरण का शिकार हुई। इस देश की मिट्टी, खनिज, मेहनतकश बेजुबान लोग और स्त्रियाँ इस देश के अंदर और बाहर स्थित लुटेरों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। जिस देश में स्त्रियों का अपहरण किसी सम्पत्ति के रूप में हुआ हो या होता हो उस देश के गौरवशाली अतीत या वर्तमान पर सिर्फ आँसू ही बहाया जा सकता है। भट्टिनी की व्यथा क्या सुनने के बाद बाणभट्ट का यह कहना कि वह यदि कवि होता तो 'ऐसा गान लिखता कि आर्यावर्त के इस कोने से उस कोने तक देवपुत्र की नयनतारा का धवलयश फैल जाता। मैं ऐसा काव्य लिखता कि युग-युग तक इस पवित्र आर्यभूमि में नारी सौंदर्य की पूजा होती रहती और इस पवित्र देव-प्रतिमा को अपमानित करने का साहस किसी को न होता। पर देवि, मैं कवि नहीं हूँ।'

लेकिन भट्टिनी की नजर में बाणभट्ट कवि हैं। कवि भी ऐसे-वैसे, जैसे-तैसे नहीं बल्कि 'आर्यावर्त के दूसरे कालिदास' हैं। वही कालिदास जिनका काव्य द्विवेदी जी की नजर में 'भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ उदात्त है, जो कुछ हृदय है, जो कुछ महनीय है और जो कुछ लालित और मोहन है उनका प्रयत्नपूर्वक सजाया संवारा रूप' है। (कालिदास की लालित्य योजना)

मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' के आधार पर कह सकते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के बाणभट्ट और 'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास में कुछ चीजें दोनों को जोड़ती हैं। सत्ता और स्त्री का आकर्षण दोनों रचनाओं में केन्द्रीय भाव है। अष्टम एडवर्ड ने दोनों के विकल्प में स्त्री

Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को प्राथमिकता दी। प्यार के लिए सत्ता को कुर्बानी दी। लेकिन यहाँ न तो वैसी सत्ता है और न ही वैसा प्रेम। दोनों का स्वर दबा हुआ है। एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि दोनों न तो सत्ता के आदमी हैं, और न ही सत्ता के टुकड़ों पर पलकर मुग्ध होने वाले कवि हैं। कई बार मुझे लगता है कि कालिदास और बाणभट्ट दोनों को जिस तरह शुरू-शुरू में मूर्खता और जाहिली का पर्याय बताया गया था उसे देखते हुए उनका उज्जयिनी या स्थाणीश्वर की राह पकड़ना उचित ही था। राजसत्ता के प्रति आकर्षण से नहीं बल्कि अपने स्वाभाविक आत्मसम्मान की रक्षा के लिए इन दोनों कवियों ने राजदरबार का सहारा लिया होगा। स्वाभिमान और आत्मसम्मान की रक्षा यदि सत्ता के गलियारे में हुई तो मनुष्य की रक्षा प्यार के आंगन में। बाणभट्ट की दृष्टि में, 'कालिदास ने भुवनमोहिनी के गौरव को हृदयंगम किया था। वे उच्छृखंल पौरुष की निर्मर्याद महत्वाकांक्षा के दोष पहचानते थे। राज्य गठन, सैन्य-संचालन, मठ-स्थापना और निर्जनवास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, श्रृंखलाहीन महत्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियंत्रित कर सकने की एकमात्र शक्ति नारी है। कालिदास ने इस रहस्य को पहचाना था। इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं, मठ विध्वस्त हो गए हैं, ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन बुदबुद की भाँति क्षणभर में विलुप्त हो गए हैं। कहाँ कालिदास और कहाँ मैं अभागा बंड।' कालिदास को बार-बार बाणभट्ट ने याद किया है। द्विवेदी जी और बाणभट्ट इसी बिन्दु पर एक हैं।

बाणभट्ट कवि हैं लेकिन कलाओं की एक व्यापक दुनिया से वास्ता रखते हैं। कुमार कृष्ण ने भट्टिनी को काले पत्थर को काटकर बनाई गई बुद्ध की प्रतिमा दी थी। बाणभट्ट इस उपहार के 'कूरियर' हैं। उन्हें यह मूर्ति ही पसंद नहीं है क्योंकि 'शक नरपतियों ने अपनी बुद्ध-भक्ति के आवेश में इस देश में भारतीय और यावनी शिल्प की जो गंगा-यमुनी मूर्तियाँ तैयार कराई हैं, उन्हें मैं बिलकुल पसंद नहीं करता। वे न तो मूर्ति के अर्थ-पुरुष की गहराई में जाती हैं, न प्रमेय पाटव में।'

कान्यकुब्ज की नृत्य कला पर बाणभट्ट की टिप्पणी देखिए- 'कान्यकुब्ज के लोग बड़े रूढ़िप्रिय और चित्रप्रवण हैं। वे मयूर और पद्म-नृत्य जैसी कला को अब भी जिलाए हुए हैं, और उनका सम्मान करते हैं। मगध में मयूर नृत्य देखने की इतनी चंचलता नहीं हो सकती। मगध इन बातों को कब का छोड़ चुका है। मेरा अपना मत तो यह है कि मयूर नृत्य तांडव का सबसे घटिया भेद हैं।' बाणभट्ट के मन में मगध एक नोस्टाल्जिया की तरह बैठा हुआ है लेकिन उन्हें पता है कि, 'मगध अब कहने को मगध है, रहने को नहीं।'

III

606 ई. से 647 ई. तक हर्षवर्द्धन ने भारत के केंद्रीय भूभाग पर शासन किया था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह समय धीरे-धीरे पाटलिपुत्र के पतन और कन्नौज के उदय का काल है। थानेसर (हरियाणा) से कन्नौज की तरफ अपने को केन्द्रित कर हर्षवर्द्धन ने आज के राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा पर सीधा शासन किया था। कहते हैं कि उसकी सेना में एक लाख घोड़े और आठ हाथी थे लेकिन तब भी कानून और व्यवस्था की स्थिति लचर थी। ह्वेनसांग जो नालंदा विश्वविद्यालय में पढ़ने आए थे और बाद में हर्षवर्द्धन के अति करीबी भी बने उन्हें भी डकैती व राहजनी का शिकार होना पड़ा। हर्षवर्द्धन के शासन काल के बारे में जो प्रामाणिक सूचनाएँ मिलती हैं, उसके दो बड़े स्रोत ह्वेनसांग और बाणभट्ट ही हैं। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में हर्ष वर्द्धन के प्रारंभिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काल का वर्णन किया है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. रामशरण शर्मा ने हर्षवर्द्धन के बारे में दो बातें कही हैं। एक तो यह कि वे अंतिम महत्वपूर्ण हिंदू शासक थे लेकिन बौद्ध धर्म में भी उनकी गहरी आस्था थी। बौद्ध धर्म से जुड़ी संस्थाओं को उन्होंने उदारतापूर्वक दान किया। दूसरी बात यह कि वे भारत के एक बड़े भूभाग के शासक थे लेकिन उनका शासन भारत के मध्यवर्ती हिस्से तक ही सीमित था।

हर्षवर्द्धन का साहित्य और कलाओं के प्रति अनुराग था। चीन से ह्वेनसांग या मगध से बाणभट्ट का उनके पास आना उनके इस अनुराग के प्रमाण हैं। मिस कैथराइन का मानना था कि बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते। बाणभट्ट को भारत तक सीमित होना भी नहीं चाहिए। भट्टिनी को भी बाणभट्ट से यही उम्मीद थी- 'एक जाति दूसरी जाति को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को नीच समझता है, उससे बढ़कर अशांति का कारण क्या हो सकता है, भट्ट! तुम्हीं ऐसे हो जो नरलोक से लेकर किन्नरलोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंगम करा सकते हो। मनुष्य लोभ-वश, मोह वश, द्वेष-वश पशुता की ओर बढ़ता जा रहा है, तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।'

हर्ष का समय एक बड़े संक्रमण का साक्षी है जिसके एक तरफ बौद्ध धर्म है तो दूसरी तरफ इस्लाम। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बार-बार इस संक्रमण की ध्वनि सुनाई पड़ेगी। स्वयं भट्टिनी ने अनेक देश अनेक समाज और अनेक जातियाँ देखी हैं, परन्तु, 'आर्यावर्त जैसी विचित्र समाज-व्यवस्था मैंने कहीं नहीं देखी। यहाँ इतना स्वर भेद है कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं।' भारतीय समाज व्यवस्था लम्बे समय से अनेक धर्मों और अनेक विचारों की प्रयोगशाला के लिए मुफीद रही है। इसका कारण दरअसल यही है। भट्टिनी को आने वाला समय दिखाई पड़ रहा है। कहती हैं- 'यही देखो, तुम यदि किसी यवन कन्या से विवाह करो तो इस देश में यह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। परंतु यह सत्य नहीं है कि यवन कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है। महामाया जिन्हें म्लेच्छ कह रही हैं वे भी मनुष्य हैं। भेद इतना ही है कि उनमें सामाजिक ऊँच नीच का ऐसा भेद नहीं हैं। क्यों यह क्या ऐसा नहीं हो सकता कि ऊँची भारतीय साधना वहाँ तक पहुँचाई जा सके और निष्कृष्ट सामाजिक जटिलता यहाँ से हटाई जा सके? जब तक ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो जातीं तब तक शाश्वत शांति असंभव है। महामाया आधा ही देख रही है। बौद्ध संन्यासियों ने भी आधा ही देखा था। भट्ट तुम यदि इस पूर्ण सत्य का प्रचार करो तो कैसा हो!'

भट्टिनी की यह आवाज बाणभट्ट के लिए नवीन संदेश थी। एक आदेश था। यही आवाज नए भारत की प्रस्तावना थी जिस पर चलकर सूफी कविता संभव हुई। यह वही संदेश था जिसकी वजह से हजारी प्रसाद द्विवेदी को हिंदी साहित्य का इतिहास किसी खास प्रतिक्रिया की देन न होकर स्वाभाविक विकास यात्रा के रूप में दिखाई पड़ा। सभ्यताएँ ऐसे ही बनती हैं, चलती हैं। कईयों का आधा अधूरा सच मिलकर पूरा सच बनता है। इस सच का संबंध एक दूसरे के स्वीकार, सम्मान और प्रेम पर टिका हुआ है। ज्ञानियों ने दुनिया को समझाया है, बदलने का प्रयास किया है। प्रेमियों ने इसे जीने लायक बनाया है, रहने लायक बनाया है। यह वही प्रेम है जिसको पढ़कर ज्ञान की पाठशाला में भी दाखिला मिलता है और यह धरती 'वैकुंठ' जैसी सुंदर लगती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' बाणभट्ट की सारी रचनाओं की तरह अधूरी रह गई है। साथ ही अधूरा रह गया उनका भट्टिनी के साथ-साथ रहने का स्वप्न। निपुणिका के श्राद्ध के बाद आचार्य भर्वुपाद के आदेश पर बाणभट्ट को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भट्टिनी से विदा लेना होता है। भट्टिनी के चेहरे का रंग उड़ गया- 'झुकी हुई आँखों को और भी झुकाकर बोली- 'जल्दी ही लौटना।' लेकिन जाने वालों का लौटना कहाँ मुमकिन होता है ? प्यार समुद्र के पानी में चले या नदियों के पानी में, उसे तो आँखों के आँसुओं में ही दफन होना है।' मैंने कातर कंठ से वाष्प रुद्ध वाक्य को प्रयत्नपूर्वक दबा लिया। लेकिन अंतरात्मा के अतल गहराई से कोई चिल्ला उठा '-फिर क्या मिलना होगा।'

निपुणिका ने जिसे जड़ कहा था, पत्थर कहा था उसे भट्टिनी ने पानी बना दिया-भट्टिनी की आंखों में आंसू देखता हूं तो मेरा अंतस्तल विदीर्ण होने लगता है, अधरोष्ठ सूखने लगता है, मस्तक स्वेदार्द हो जाता है और श्वास प्रक्रिया विक्षुब्ध हो आती है।

स्त्री की सफलता पुरुष को बांधने में महसूस की गई थी जबकि सार्थकता उसे मुक्त करने में। निपुणिका और भट्टिनी ने बाणभट्ट को कितना बांधा और कितना मुक्त किया इसका लेखा जोखा थोड़ा कठिन है, लेकिन इतना तो तय है कि बाणभट्ट के निर्माण में इनकी भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। वे दोनों ज्ञान मार्ग पर चलने वाली स्त्रियां नहीं है, बल्कि प्रेममार्गी है, प्रेम में पगी हुई। लेकिन इनके दुख इतने गंभीर हैं कि बाणभट्ट को स्वीकार करना पड़ता है कि उनके शब्द उनके दुःखों का दशमांश भी नहीं बता सकते।

भट्टिनी उस प्रेम मार्ग पर चलते हुए भी इतना जरूर महसूस करती है कि महामाया हो या बौद्ध दोनों ने आधा सच देखा है। पूरे सच का हमेशा इन्तजार रहता है। सभ्यता के हर मोड़ पर। ज्ञानियों ने बीसवीं सदी को परमाणुबम का उपहार दिया जिसका परिणाम विश्वयुद्धों में साफ दिखाई पड़ा। ये ज्ञानी यदि मनुष्यता से प्रेम करते तो शायद दुनिया का इतिहास कुछ दूसरा होता। बाणभट्ट सचमुच केवल भारत में नहीं होते और इसीलिए बाणभट्ट की जरूरत सिर्फ भारत को नहीं है। बाणभट्ट में मौजूद नारी तत्व पूरी दुनिया के लिए जरूरी है। महामाया को याद कीजिए-जिस चीज में नारी शामिल नहीं है वह नाश का कारण बनेगा। बाण भट्ट का भी यही मानना है कि, जब तक राज्य और सैन्य संगठन रहेंगे, पौरुष दर्प का प्राचुर्य रहेगा तब तक यही होता रहेगा।

प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री की उपस्थिति को कमजोर मानते हुए जो बहस शुरू हुई थी उसमें जैनेंद्र कुमार ने रचनात्मक हस्तक्षेप किया था। यह देखना दिलचस्प होगा कि इसी कड़ी में बाणभट्ट की आत्मकथा और शेखर एक जीवनी नया मोड़ उपस्थित करते है। स्त्री और पुरुष के रिश्ते पर इन दोनों उपन्यासों ने अलग-अलग तरह से विचार किया है। परतंत्र देश में स्वाधीनता और स्वच्छंदता पर विचार करने का इससे बेहतर रूपक भी क्या हो सकता था ?

स्त्री के दुखों पर विचार करने की जो जरूरत स्वाधीनता आंदोलन के दौर में महसूस की गई थी उसकी प्रतिध्वनियां छायावाद में सुनाई पड़ती है। दूसरी तरफ प्रेमचंद और जैनेंद्र के रचनाकर्म में। धनिया और मृणाल के दुखों को अतीत के तार से जोड़ते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भट्टिनी और निपुणिका के दुखों को याद किया है। धरती पर स्त्री के दुखों का ओर छोर नहीं है। जिस दौर में कोई स्त्री हिंदी उपन्यास में नहीं थी उस दौर में पुरुष का स्त्री के दुःख पर विचार करना थोड़ा कठिन कार्य था। आज का स्त्रीवाद इसे किस रूप में देखता है इसके बारे में मेरी जानकारी सीमित है। लेकिन स्त्री के दुःख उसके शब्दों से दस गुना से भी ज्यादा है। यह स्वीकार करते हुए बाणभट्ट ने एक ऐतिहासिक सूत्र प्रदान किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्विवेदी जी ने कालिदास पर आलोचनात्मक किताब और बाणभट्ट पर उपन्यास लिखकर संस्कृत साहित्य के एक बड़े अध्याय से गुजरने का काम किया है। यह दोनों काम उन्होंने हिंदी में किये है। इसलिए ये संस्कृत के लिये नहीं हिंदी के लिये जरूरी किताबें हैं। उनकी इतिहास दृष्टि में संस्कृत और हिंदी में कोई विरोध नहीं है। एक संवाद है। एक हजार साल का भारत जानने के लिये हिंदी तो उसके पहले के हजार साल को जानने के लिए संस्कृत के पास जाना ही होगा ऐसा द्विवेदी जी का स्पष्ट विचार था। बाणभट्ट ने अपने समय तक की संस्कृत की सारी संभावनाओं का उपयोग किया था। इसीलिए पूरे संसार (संस्कृत) को बाणभट्ट की जूठन कहा जाता है। हिंदी को बाणभट्ट का इंतजार था। मेरे गुरू केदारनाथ सिंह कहते हैं कि द्विवेदी जी को बड़ी चुनौतियां पसंद थीं। वे वैसी जगह रहने को तैयार नहीं थे जहां चुनौतियां न हो। बाणभट्ट की आत्मकथा लिखकर उन्होंने हिंदी के लिए एक चुनौती पेश की। इस चुनौती का सामना करने के लिए हिंदी के पास एक बड़ी तैयारी होनी चाहिए। बाणभट्ट का इंतजार हर भाषा करती है। हर देश करता है। हिंदी को भी इसका इंतजार है...रहना चाहिए। बड़ी चुनौतियां निष्फल नहीं होती।

लघुमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस में साहीजी को नेहरूजी की आत्मकथा याद आई थी। दुनिया में हो रहे बदलाव को नेहरूजी ने टी.एस. इलियट के जरिए समझने का प्रयास किया था। नेहरूजी का सांस्कृतिक बोध अंतर्राष्ट्रीय था इसलिए यह स्वाभाविक ही था। हिंदी में जिन कारणों से आत्मकथा की संस्कृति का विकास हो रहा था उसकी फलश्रुति से हम परिचित हैं। नेहरूजी की आत्मकथा और बाणभट्ट की आत्मकथा दोनों को मिलाकर पढ़ें तो संभव है कि कुछ चकित करने वाले निष्कर्ष निकलें। टी.एस. इलियट का वेस्टलैंड विश्वयुद्ध की ऊपज है। बाणभट्ट की आत्मकथा भी विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि मे है। टीएस इलियट समाधान की तलाश में वेदों के पास गए जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी बाणभट्ट के पास। नेहरूजी की संस्कृत साहित्य में कोई गति रही हो इसके प्रमाण नहीं मिलते। नेहरूजी की आधुनिकता पश्चिम पर टिकी हुई थी। बाणभट्ट की आत्मकथा लिखकर द्विवेदी जी ने आत्मकथा की संस्कृति के लिए अनिवार्य आधुनिकता की अवधारणा को स्वाधीनता की चेतना और आत्मविश्वास की नींव पर खड़ा किया। हमें टी.एस. इलियट की ओर नहीं बाणभट्ट की ओर देखने की जरूरत है। द्विवेदी जी ने नेहरूजी की बेटी को शांति निकेतन में पढ़ाया था। अपनी माटी में भी ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनसे सीखा जा सकता है। सीखा जाना चाहिए। बाणभट्ट इसी माटी की उपज हैं। जवाहर लाल नेहरू ने पिता के पत्र पुत्री के नाम में पत्थर के एक छोटे से टुकड़े के जरिए धरती के रहस्य के पास पहुंचने का प्रयास किया था। द्विवेदी जी ने बाणभट्ट की आत्मकथा में बालू के एक कण से बाणभट्ट अर्थात मनुष्यता की निर्माण यात्रा के पास पहुंचने की कोशिश है।

बाणभट्ट की आत्मकथा जैसे उपन्यासों पर ही विचार करते हुए ग्रैबियल गार्सिया मार्खेज ने लिखा है कि मेरे लिए महत्वपूर्ण यह है कि कोई उपन्यास एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाए ताकि पिता द्वारा पढ़ा गया उपन्यास उसके बच्चे तथा पोते पोतियां भी चाव से पढ़ें। मैं समझता हूं कि साहित्य में बने रहने का सही अर्थ यही है।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
मो. 08374701410

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मलय

सजा हुआ वसंत

वसंत को
सजाने में पलाश के शरीर पर
नहीं बचते
चीथड़े भी
अपनी मजबूरियों के दबाव में
खाँकड़ होकर
जी पाना
कैसा होता है ?
वह जानता है!

संविधान को सजाना
और सूखे होकर रह लेना
यह लोकतंत्र है ?
चुनाव के घोषणा-पत्रों से
चयनित
यह सजा हुआ वसंत!

चित्रों में

अन्दर मन से बात करते
तनाव में पंख फड़फड़ाते
शब्द पक्षियों को
उड़ाकर
बाहर लाने के लिए
कलम से
कोंचकर बुलाता हूँ

बाहर
आस-पास के
दरवाजे
खुलते हैं
हल-चल से
चुप्पी से घिरे हुए
मौन के
टुकड़े
टूटकर बिखरते हैं

नये-नये रंगों के
चिथड़ाते
जीवन के चित्रों में
उभरता
थरथराता
रहता हूँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पानी की पारदर्शिता में

पानी की
पारदर्शिता में
डूबता हूँ
गहरी जड़ों तक
तलदर्शी पाताल के
नीले आकाश तक

पानी के अंदर की
मूँगा के पेड़ों की
पक्के रंगों की
झाड़ियों के बीच
मछलियाँ
तैरते तारों की तरह
राह में चमकती है
इस
सामूहिक आसमान में
झुंड के झुंड
चलकर जैसे उड़ते से
अपने व्यक्तित्व को
निखारते चलते हैं

पर क्रूरताएँ यहाँ भी
साँसत में डालती हैं
उन्हें भी
जिनसे खुद लड़ती हुईं
अपनी बलि देने से भी
पीछे नहीं हटतीं
इस हाल चाल में भी
जीकर रहने का
बखूबी विश्वास
हासिल
होता है पूरा
पानी की पारदर्शिता के
फैले आकाश में!

कितने से कितने हैं!

भूख से
पेट खलबलाता है
खाली डकार में
हवा भी गुर्राती है
अब करने को
है कुछ तो
जेल के दरवाजे
खुलते हैं

सब तरफ रास्ते
हैं
काँटों से भरे हुए

इस ज़िन्दगी में
हम हैं
और हमारे ही नहीं
कितने से
कितने हैं!
जो अनचाहे
रास्तों पर
चलते हैं!

भूख से!!
पेट खलबलाता है!!!!

शिवकुटीर
टेलीग्राफ गेट नं. 4
कमला नेहरू नगर
जबलपुर-2
मो. 9424367507

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुधीर सक्सेना

पीटर मारित्ज़बर्ग

(दक्षिण अफ्रीका में पीटर मारित्ज़बर्ग वह स्टेशन है, जहाँ मोहनदास करमचंद गांधी को प्रथम श्रेणी के रेल डिब्बे से बलात् बाहर फेंक दिया गया था)

पीटर मारित्ज़बर्ग स्टेशन पर कोई चहलपहल नहीं,
स्टेशन बेतरह खाली, बेहद उजाड़
सन्नाटा पसरा हुआ सन 1880 के प्लेटफार्म पर
प्लैक को निहारता हुआ लगातार
न शोरोगुल, न मुसाफिरों का हुजूम, न पोर्टर
पटरियां दूर तलक सीधी नहीं
थोड़ा आगे दायें बल खाकर मुड़ीं कि निगाह से ओझल
डाक पेटी में शायद ही कोई डाक
स्टेशन पर तारी बेतरह अतीत का खुमार।
प्लैक में झाँकता है स्टेशन
जैसे झिलमिल आईने में कोई बूढ़ा शख्स

अचानक रात के अँधेरे में
भाप के इंजन की छुकछुक
एक कृशकाय यात्री धकेल दिया जाता है
पहले दर्जे के डिब्बे से
ज़ेब में पहले दर्जे के टिकट के बावजूद।

कोई नहीं उठाता यात्री को
कोई नहीं झाड़ता उसकी पोशाक की धूल,
कोई नहीं बँधाता ढाँढस
उस कुली-बैरिस्टर को
कि हर हिन्दुस्तानी कुली है गोरों की निगाह में,
कि कोई भी हिन्दुस्तानी साहब नहीं,
मुसाफिर हैं सारे के सारे गोरे मालिकों की निगाह में।

जिस्म की ताकत बटोर खुद उठता है कुली,
अपने हाथों से झाड़ता है कपड़ों पर लगी गर्द,
खुद अपना सामान ढो चला आता है एकाकी
पीटर मारित्ज़बर्ग स्टेशन के प्रतीक्षालय में खामोश।

रात भर अँधेरे, सन्नाटे और अनिश्चय में
भीगता है कुली-बैरिस्टर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रात भर मोहनदास से ज़िरह करता है मोहनदास,
कलेजे में चुभता है अपमान का शूल,
सीने में फूटती है रुलाई,
बेबसी से काँपती है सारी देह
विलायत से सनद लेकर लौटे
पोरबंदर के वकील की
आत्मा भी रह नहीं पाती निष्कंप
काँपती है हवा के झोंके में लौ की तरह

हठात्
देर तलक काँपने के बाद थिर हो जाती है लौ,
न दीनता के लिये ठौर, न पलायन कहीं और

7 जून, 1893 की रात
जब सो रहा होता है सारा दक्षिण अफ्रीका
ऊँघ रहा होता है पीटर मारित्ज़बर्ग स्टेशन
कभी न सोने के लिये जागता है
युवा बैरिस्टर

इस तरह ऐन उस क्षण
शुरू होता है
दक्षिण अफ्रीका के एक शहर पीटर मारित्ज़बर्ग में
युवा मोहनदास गाँधी के महात्मा बनने का दौर।

वह गोरी स्त्री

डाएन लैंग के लिये

(दक्षिण अफ्रीका में डाएन लैंग प्रताड़ित बच्चों के लिये अनेक केयर-होम चलाती हैं। वे चाइल्ड एब्यूज पर इन दिनों दुनिया में संजीदगी से काम कर रहे जनों में अग्रणी हैं।)

वह एक गोरी स्त्री
काली रात में केप में रतजगा करती है

जगाती है रात-रात भर
कि सो सकें चैन की नींद
ढेर सारे बच्चे
और उनके सुरमयी सपनों में
नहीं हो दैत्यों का प्रवेश
बच्चों की दुनिया में दाखिल होती है
गोरी स्त्री
कि उसका दाखिल होना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बच्चों की दुनिया में
बदनीयतों और बदजातों के
दाखिले और दखल का निषेध है

गोरी स्त्री पर रात दिन
तोहमतों की बौछार
कि गोरी स्त्री की गोद में
एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं
सत्तर संतानें
गोरी स्त्री के आश्रम की दीवार पर
हिकारत से थूकते हैं पतलूनधारी ओरांगउटांग
यू द बिच!
वी विल किल यू!
चीखता है बलात्कारियों का हुजूम।

कभी गाउन के छोर,
तो कभी हथेलियों,
तो कभी पलकों से ढाँपती है
गोरी स्त्री एक साथ ढेर सारे बच्चे।

गोरी स्त्री ओरछोर नापती है दक्षिण अफ्रीका,
ढेर सारे बच्चों की साँसों की अदृश्य डोर में लिपटी हुई
गोरी स्त्री के बायें जानू पर अश्वेत,
दायें पर श्वेत और कंधे पर पीला बच्चा
और एक साँवला मटमैला बच्चा नाक पोंछता हुआ।
उसके गंदुमी ब्लाउज़ की आस्तीन से
गोरी स्त्री भागती हुई जाती है लंदन
कि ज़ेब में पौंड भरकर लौट सके
वापस केप
बच्चों को जिमाने के वास्ते
और लौटती है हाँफती हुई
कि कहीं देर न हो जाये केप पहुंचने में

उसकी बाँहों में जब-तब
अभागे प्रताड़ित बच्चे नहीं लेते हिचकी
वह खुद दम तोड़ती है फिर-फिर अपनी ही बाँहों में

वह गोरी स्त्री
कालिखभरी रात को
नहलाना चाहती है धूप के जल से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि वह उतनी ही उजली हो जाये
जितना उजला है
मंडेला के बच्चों के लिये
उसका प्रेम।

फाइन मेन सरेंडर टु ब्लैक

(दक्षिण अफ्रीका में जोहानिसबर्ग हवाई अड्डे पर लकी स्टोन्स बेच रही पेड़ी-स्त्री फिंडी चुएन्याने के लिये)

दक्षिण अफ्रीका में जोहानिसबर्ग हवाई अड्डे पर
हथेली में पत्थर भींच बुदबुदाती है काली स्त्री
देवता की प्रार्थना में मंत्र
मुस्कुराती है काली स्त्री-
काली चौखट पर उजास का दिया
स्त्री की
काली देह में काले गुलाब की महक,
काली देह में काली रात का जादू,
काली देह में काले सोने का नशा

काली स्त्री की
काली पुतलियों में उमगता है प्यार,
काली स्त्री के पुष्ट स्तनों में छलकता है दूध:
उतना ही धवल, उतना ही मीठा
जितना किसी गोरी मेम का दूध

काली स्त्री पत्थर देती है एक से
कालों, गोरों, पीलों और मिश्रितों को,
बुदबुदाती है वह सबके लिये एक ही मंत्र-
सबके दिन बहुरें, पूरा हो अभीष्ट,
विश्व में बदी पर हो नेकी की जीत

काली स्त्री प्रार्थना के चमक से
पत्थरों में बालती है लौ
मैं देखता हूँ
दिपदिपाता बड़ा सा नियोन
काली स्त्री के पीछे
और साथ-साथ बुदबुदाता हूँ:
'फाइन मेन सरेंडर टु ब्लैक।'

मो. 9425022404

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शैलेय

मुगालता नहीं

एक मुगालते में कि
मैंने जो किया
ठीक किया
मैं जीता रहा और हारी हुई लड़ाइयों की लज्जा
फजीहत से
खुद को दरकिनार करता रहा

यहां तक कि
कुत्ता भी अगर कभी काट खाया तो
मैंने उसे भी एक
बुरी बला का टल-निपट जाना ही कहा
संतोष किया कि
कुछ दर्दीले इंजेक्शन जरूर लगेंगे
पागल होने से तो बच ही जाऊंगा
जीवन रह जाएगा

नासमझी
विनम्रता कहलाती रही
पर आज
रह-रह कर मैं ही
ऊँची आवाज पुकार लगा रहा हूँ कि
कहीं कोई मुझे मुगालते में न ले
मैं हकीकत में हूं
किसी को भी हकीकत में चाहता हुआ।

रिवाज

इस मोहल्ले में भी
ऐसा जाने क्या रिवाज है
खाना-पीना होते ही
बाहर के बल्ब तक बुझा दिये जाते हैं
डर लगता है
कोई चोर-लुटेरा आ गया तो
चिल्लाऊंगा भी किसको
यहां तो
दिन में भी लोग अपनी खोह नहीं छोड़ते

रात
इतनी भारी पड़ जाती है कि
ढाढस भी
इस कालेपन में दबकर
जाने कहां बिला जाता है

तब
थका और चिढ़ा हुआ सवेरा भी
अक्सर चिरौरी करने लगता है कि
अभी और कितना
हमें शहरी बांकी है
गॉंव को हमने खुद ही दुत्कारा और
यहॉं कोई मोहल्ला रास नहीं आ रहा है

धोबी के कुत्ते
घर के
न घाट के।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मानचित्र

महंगाई चाहे जितना आसमान चढ़ रही है
भ्रष्टाचार चाहे जितने चरम पर है
बाजार में
ग्राहकों की भीड़ जैसे जलजला ही है
यानी कि
देश समृद्ध है
सच भी है
वरना
15 अगस्त 26 जनवरी को प्रधानमंत्री
लालकिले पर से भला कैसे मुस्कराते ?

लेकिन
साथ ही यह खबर भी है कि
भूख, बीमारी, भ्रष्टाचार, शोषण, कुपोषण और
दमन से
तंग लोगों के बीच
आत्महत्या की दर लगातार बढ़ती ही जा रही है और
कहीं से भी किसी प्रकार के
विद्रोह की कोई खबर नहीं है
(आशंका भी नहीं)

नीरव शान्ति
यह देश महान है
फिर भी
एक रोज जब न दिखेंगे जंगल
न गांव-शहरों में पर्याप्त घर ही
केवल कारखाने-मयखाने
दवाखाने- पुलिस थाने ही बचेंगे
दिल्ली भी
किसी सिफलिस के मरीज की तरह
भीतर ही भीतर टूट रही होगी
तब अगर कभी
विश्व मानचित्र बनेगा तो
देश मवाद का कोई बदबदाता महाकुंड
हम जैसे उसमें कुलबुलाते हुए कीड़े।

प्लीज

क्या कहा
एक मछली
सारे तालाब को गंदला कर देती है ?
लौट आना पड़ता है ? ?

निरी मूर्खता
आओ
जरा इधर आओ
मेरे पास
कभी सूरज को देखा है ?
अकेला ही
सारे संसार में उजाला करता है
इतना ही नहीं
रात के दौरान भी
वह
चांद-सितारों की टीम भेज देता है
वैसे भी
कैसी भी मछली हो
नदी तो कभी गंदी नहीं होती
पोखर बनाकर
पानी न सड़ाओ!
मछली को
अपने बहाव में बहने दो प्लीज!!

हां,
शिकार का इतना ही शौक है अगर
तो कितने ही सांप हैं
जहर भी मिटेगा
कुछ मांस भी मिलेगा!

डी 2-1/14, मेट्रो पोलिस सिटी, रुद्रपुर,
उधमसिंह नगर उत्तराखंड- 263153
मो. +919760971225

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आशुतोष कुमार झा

मेरा गाँवः कुछ नोट्स

एक अतिविराट कैनवास की तरह है
मेरा गाँव
न मेरे पास कूची है
न इतने रंग
कि दिखा सकूं
किसी को,
पूरा गाँव।

•

पूरे गाँव में
पक्का मकान
सबसे पहले पिताजी ने बनवाया
इसलिए नहीं
कि वे अमीर थे
इसलिए कि रोटी की खोज में
विस्थापित होने वाले शुरूआती व्यक्ति थे।

•

हैं अब गाँव में
सैकड़ों घर पक्के के
विस्थापितों का महाशून्य बन गया है
मेरा गाँव।

•

जिन दिनों
दिल्ली की सड़कों पर
हमारी सरकार
क्वीन्स बेटन लिए दौड़ रही थी,
प्रधानमंत्री सड़क निर्माण योजना के तहत
अलकतरे के फीते से
जुड़ रहा था मेरा गाँव
सड़क के पहले
बीयर की दुकान
टाटा स्काई और
मोबाईल के रिंगटोन
गाँव पहुँच चुके थे
पर पीने लायक पानी
उपलब्ध नहीं है अब भी
मेरे गाँव में
बिजली, अस्पताल के अलावा।

•

प्रधानमंत्री की सड़क पकड़ कर
जरा बाहर तो निकलिए आप
दस मील पर बस अड्डा
बोकारो, राँची, धनबाद, कलकत्ते की
ठसाठस भरी पड़ी बसें,
पचास मील पर रेलवे स्टेशन
हावड़ा, दिल्ली, मुंबई, पंजाब आती-जाती ट्रेनें
बेहिसाब
यदि वही सड़क वापस पकड़ कर चले आए गाँव
तो अधिकांश घरों पर लगे
तालों पर जमी धूल
बेबस कह देगी कहानी
किसी तूफान से गुजर रहा है हर गाँव अभी-अभी।

•

मुझे तो ऐसा लगता है
जब से पगड़ी वालों ने दिल्ली की गद्दी संभाली है
गाँव के लोग पगड़ी पहनने के लायक नहीं रहे।

•

दुभिया, चॉकलेटिया, लेमनचूस
अत्यंत स्वादिष्ट बीजू की प्रजातियाँ
गिर पड़े बड़े, हरे-भरे गाछ उस साल
बाबरी गिराकर वॉशिंगटन ने प्रवेश किया जिस
साल
कलमी बागीचे के अवशेष पर मंदिर
और कोला बागीचे के शेष पर सूखी हुई घास
मुझे पक्का यकीन है
जेठ की दुपहरी में कभी आम नहीं चुभला पाएँगे
मेरे बच्चे
और आँधी में दौड़ नहीं पड़ेंगे बोरा ले कर आम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चुनने।
राम को भजेंगे
और
आह ! आम को तरसेंगे
हमारे बच्चे।

•

आस्था के नाम पर
पशुबलि चढ़ाने में
अव्वल है मेरा गाँव
हर साल
देवी माँ के मेले में
काट दिए जाते हैं
सैकड़ों छाग
भक्तिपूर्ण जयघोष के साथ
जीमते हैं
सभी जातियों के लोग
दो तीन शाम
लाल-भात ।
सभ्यता की पटरी पर
मेरे गाँव की ट्रेन
बस सौ-दो सौ साल
लेट है।

•

गाँव के उत्तरी छोर पर
एक मैदान में गड़े हैं - दो पोल
जिन पर नेट बाँध कर
वॉलीबाल खेलते हैं
वृद्ध - बाल - युवा।
उम्र - जाति - आर्थिक स्थिति
की सीमाएँ
टूटती हैं हर शाम
वॉलीबाल के मैदान पर
सच कहूँ तो वॉलीबाल नेट के दोनों छोर से
दुनिया में
सबसे सुन्दर दिखता है
मेरा गाँव
सर्विस करता हुआ बालक
उछलकर चांप मारता हुआ वृद्ध।

•

गाँव की चौहद्दी से दूर
पूरब दिशा से
किसी खेत की मेड़ पर
खड़ा होकर देखता हूँ -
पच्छिम में -
किसी चित्रकार की पेंटिंग की तरह
रंगों का कोलाज दिखता है
माटी का रंग, पकी फसलों का रंग
आम के पत्तों का रंग
पकी ईंटों और खपड़ों का रंग
सुआल का रंग
डूबते सूरज का रंग
बेटी के ब्याह में गीत गाती
ग्रामीणों की साड़ी का रंग......
कुल मिलाकर इतने रंग
कि भरम में पड़ जाए रंगरेज भी
पर वह रंग
जो उड़ती गौरैया
उगते सूरज
या
मेहनतकश की तकदीर
संवारने वाली ताकतों का होता है,
मौजूद नहीं है
मेरे गाँव में
मैं वही रंग भरना चाहता हूँ।

हिन्दी विभाग
मिसेज के० एम० पी० एम० इण्टर कॉलेज
बिष्टुपुर, जमशेदपुर
पिन - 831001
मो० - 9431372098

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विपिन चौधरी

स्त्रियों के नाम सावधानी की कई परतें

कुछ धनी प्रक्रियाओं में शामिल आवाज़ों से
उनका घनत्व और भी बढ़ जाता है

घनत्व के इसी भार के भीतर नहाती हैं
ग्रामीण औरतें
खाट या चादर की ओट में
तो कभी दुपट्टे की छत्र-छाया तले
नहाने का साबुन ना होने पर
बिना किसी हो- हल्ले के
कपड़े धोने की टिकिया से भी उनका काम चल जाता है

नहान पटरी पर कमर को धनुष बना
वे व्यस्त हो जाती हैं केवल अपने लिए
पत्थर की रगड़ से जब उनकी एड़ियाँ उजली हो रही होती हैं
तो उस पल
समूचा सौंदर्य-शास्त्र उनके नाज़ुक क़दमों
तले पनाह मांगता दिखता है

पुरुष नाम के प्राणी के घर से प्रस्थान करने के बाद
इधर-उधर बिखरे
काम काज को निपटा कर
वे रसोईघर के एक शांत कोने को नहानघर में तब्दील कर देती हैं
पूरी तरह निर्वस्त्र औरत
नहाते हुए भी चौकन्नी है
कि सुई की नोक बराबर भी देह का कोना
उजागर ना हो जाये

खेल-खेल में उसके करीब आई गेंद को
अपने छः साल के गोनू की तरफ फेंक कर कहती है
बेटा इधर ना देख्यो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहाते समय संसार की हर स्त्री उतनी सुन्दर होती है
जितना सुंदर एक स्त्री को होना चाहिये
केलि क्रीड़ाएं करती रीतिकालीन नायिकाएं
खंडहर महलों के बड़े-बड़े कुंड में रानियों की जीवित-निशानियों को देखने के बाद
गांव की वे स्त्रियों याद आती हैं
जो एक बाल्टी पानी में नहाने का सोंधा काम करती है
अधजली लकड़ियों की गंधशुदा पानी
उनके देह से मिल
अपनी पुरानी सुगबुगी गंध खो बैठता है

स्त्री नहाते-नहाते सोचने लगती है
कहीं इस वक्त खुदा की आँख
खुली ना रह गयी हो
सोच की इस लहर के साथ
पानी डालता डब्बा उसके सिर से फलांग भर ऊपर थम सा जाता है
फिर कुछ सोच औरत खुद ही शर्माती है
'धत्त'

भोर होते ही
गुडुप गुडुप और छन-छन की आवाजें
बांध लेती है कुएं की मुंडेर का गोल दायरा
गांव की पुरानी बहुएँ चुपचाप नहा कर
आ जाती है अपने घर-चौखट पर
नई बहुएँ सुबह कुएं पर नहीं नहातीं
कुछ वर्षों के बाद ही वे अपनी सास और ददिया सास
का अनुकरण कर कुएं पर स्नान का लुत्फ़ उठाएंगी
तब तक सावधानी की कई परतों को वे अपने
पल्लू से बाँध चुकी होंगीं
और वे भी खुले में नहाते हुए सावधान रहेंगी
और
जब तक एक भी औरत भोर के अंधेरे में
कुएँ की मुंडेर पर स्नान का सहज आनंद उठा लेती है
तब तक इस दुनिया पर भरोसा रखा जा सकता है।

हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
म.नं. 1008 सेक्टर 15-ए
हिसार हरियाणा
मो. 09899865514

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऋषिकेश राय

सिक्के

वे कभी अध्याय थे इतिहास के
खुदी थी जिनपर सम्राटों की महिमा,
कि कौन था देवताओं का दुलारा
किसके लिए थी संतान की तरह
उसकी रियाया।

सोने चांदी से लेकर तांबे गिलट तक
आना अधेली से पाई छदाम तक
न जाने कितने थे रूप उनके देवताओं की तरह,
कभी तांबई सूरज से चमकते थे वे
लगते राहुग्रस्त चंद्रमा की तरह छिदकर
सजते तावीज और कमरधनी में,
बचाते बच्चों को हर अलाय-बलाय से

आठ सेर का घी और चौबीस का मंसूरिया चावल
सपने में भी नहीं समाता अब
खाते रहे हों भले मेरे दादा के पिता,
चवन्नी अठन्नी की कौन कहे
रुपये का सिक्का भी नहीं स्वीकारते
भिखारी यहाँ तक कि भगवान भी

सिक्के अब हैं उस झोपड़ी की तरह
जो बसी है नोटों की
अट्टालिकाओं के पड़ोस में
चलते हों भले ही सिक्के नाम के
पर खुद उनका चलना दूभर है आज
पहुंचा दिया हो बाजार ने उन्हें
भले शब्दकोशों में
गायब हो गया हो उनकी खनखनाहट का
संगीत
मिलावट वाले इस नक्काल समय में
जब सबकुछ बदलता हो हरे नोटों की
आकांक्षा में
डूब रहा हो भविष्य वर्तमान के गर्त में
लीलते जा रहे हो बड़े नोट छोटों को
जज्ब कर जाती हैं जैसे
बड़ी मछली छोटी को
कहीं ऐसा न हो अचानक किसी दिन
मुश्किल से गिनती की मिर्चों
व थोड़े से धनिए की हैसियत वाले
सिक्कों को देखकर
मुँह ही न बिचका दें उनके साथी गुल्लक

प्रार्थना

तनें तो वृक्ष की तरह
किसी उद्देश्य के लिए
कि थमी रहे जड़ों की मिट्टी
गिरें तो बीज की माफिक
कि हमें पाते ही
उमग उठे भीगी, माटी
और लहलहाने लगे
उसे फोड़कर
छोटे-छोटे अनगिनत पौधे
चुकाने को कर्ज पीढ़ियों का

उपनिदेशक (रा.भा.)
टी बोर्ड (इंडिया)
14, ब्रेबोर्न रोड, कोलकाता-700001

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

टॉमस ट्रांसटोमर

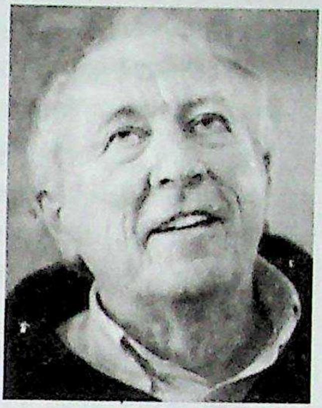

भाषा

ऊब कर जो मिलते हैं तमाम शब्दों के साथ
शब्द मगर कोई भाषा नहीं
चला जाता हूँ मैं बर्फ से ढके द्वीप पर
कोई शब्द नहीं होते आदिम लोगों के पास
सादे कागज फैले हुए हर तरफ़।

अचानक बर्फ में दिखते हैं,
हिरन के खुरों के निशान
भाषा मगर कोई शब्द नहीं।

अन्तर्पाठ

भाषा के मर्म का उत्खनन करती एक छोटी कविता

सवाई सिंह शेखावत

महज कुछ पंक्तियों की यह कविता न केवल भाषा की जड़ों तक जाती है, बल्कि अपने संक्षिप्त सुगढ़ विन्यास में भाषा के मर्म का उत्खनन भी करती है। वह मर्म जो अक्सर शब्दों के घटाटोप में इन दिनों ओझल हो रहा है। जो लोग भाषा को केवल बयान भर बनाने पर तुले हैं उनके लिए संजीदा सीख की तरह है यह कविता। हमें बताती है कि भाषा का असली मर्म उसके अन्तर्निहित संवेदन में है-वह संवेदन जो जीवन के संस्पर्श और उसकी गुनगुनी गरमास से भाषा में पैदा होता है। जीवन का वह संवेद्य जादू ही रचना में प्राण तत्व फूंकता है, उसे जिन्दगी की जरूरी जुम्बिश बख्शता है।

कविता की शुरुआती पंक्तियां, जिन्हें कविता का पहला अनुच्छेद भी कहा जा सकता है में कवि कहता है: 'ऊब कर जो मिलते हैं तमाम शब्दों के साथ/शब्द मगर कोई भाषा नहीं/चला जाता हूँ मैं बर्फ से ढके द्वीप पर/कोई शब्द नहीं होते आदिम लोगों के पास/सादे कागज फैले हुए हर तरफ। अब यदि इन काव्य-पंक्तियों का गद्य उल्था करें तो कवि का आशय कुछ इस प्रकार होगा: जो लोग भाषा के नाम पर केवल तमाम शब्दों के साथ मिलते हैं, उनसे ऊब कर मैं बर्फ से ढके द्वीप पर उन आदिम लोगों के पास चला जाता हूँ, जिनके पास अलबत्ता शब्द तो नहीं हैं, लेकिन हर तरफ़ सादे कागज फैले हैं।'

इन पंक्तियों के काव्य-आशय का मर्म जानने के लिए हमें विश्व के वर्तमान शब्दाक्रांत परिदृश्य और बर्फ से ढके आदिम लोगों के द्वीप के ध्रुवान्तों के बीच पैंठना होगा-तभी हम ट्रांसटोमर जैसे गहन जीवनानुभव वाले कवि की कविता का निगूढ़ आशय आत्मसात कर सकेंगे। निश्चय ही आज शब्द ने अकूत शक्ति हासिल कर ली है। यहाँ तक कि वह सत्ता-विमर्श होकर लगभग नियंता हो गया है। लेकिन इस उपलब्धि के बावजूद यह भी सच है कि फिलवक्त हम शब्दों के घमासान में जी रहे हैं-जहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
शब्दों के बीहड़ शोर में शमशेर की 'बात बोलेगी' जैसे खो-सी गयी है। एक राजस्थानी कहावत है 'समझ बिना बुध बापड़ी' अर्थात समझ के बिना बुद्धि बेचारी है। ठीक इसी तरह कवि का काम केवल शब्दों से नहीं चलता। कवि की असली कसौटी शब्दों के शोर में डूबी उस खामोशी को व्यक्त करना है जो जिन्दगी को तरह देती है, जीवन को जीवन बनाती है।

ट्रांसटोमर उसी जीवनधर्मी मौन को जीने, उसे आत्मसात करने वाले कवि हैं। अपनी एक कविता में उन्होंने कहा भी है: 'खूबसूरत है धड़कते दिल को महसूस करना।' पेशे में भी उन्होंने एक मनोवैज्ञानिक के रूप में अपाहिज, सजायाफ़्ता अपराधी और मादक पदार्थों के गुलाम बन गये लोगों के जीवन में सुधार लाने, उन्हें फिर से जीवन की मूल धारा में लौटाने का काम चुना। और कविताओं में अपनी मातृभूमि स्केण्डेनेविया के दृश्य-समूह, जंगल, लम्बी शरद ऋतु, बर्फ से ढके द्वीप, गुनगुनी ग्रीष्म, अस्तित्वमान विश्व, उसके परिवर्तन और निरन्तरता को वाणी दी। कवि कहता है 'जो मिलते हैं तमाम शब्दों के साथ' अर्थात वे लोग जो केवल शब्दों के अतिरेक के साथ मिलते हैं-उनसे मिलना निहायत उबाऊ है। क्योंकि जीवन का संवेद्य अहसास उनकी पकड़ से छूट चुका है। उनके पास अतिरिक्त शोर से लिथड़े बजबजाते शब्द भर हैं। जीवन की जरूरी ऊष्मा का उनमें अभाव है। जाहिर है, ऐसे लोगों से मिलना उबाऊ होगा ही।

कवि कहता है ऐसे में मैं बर्फ से ढके द्वीप पर बसे आदिम लोगों के पास जाने का विकल्प चुनता हूँ। क्योंकि उन लोगों के पास कोई शब्द भले न हो, लेकिन जिन्दा रहने का जज्बा और उस पर कविता रचने के निमित्त कवि के लिए सादा कागजात हर तरफ फैले हैं। ट्रांसटोमर के कवि आशय को अंडमान द्वीप समूह में आई सुनामी के एक उदाहरण के माध्यम से बेहतर समझा जा सकता है। समाचार था कि अंडमान के एक छोटे द्वीप पर संसार के एक दुर्लभ आदिम कबीले के कुछ परिवार निवास करते थे। सुनामी में हुए विनाश से लोगों ने अंदाज लगाया कि वह जाति हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो गयी। लेकिन पर्यावरणविद् और नृविज्ञानी कुछ दिनों बाद यह जानकर आश्चर्यचकित रह गये कि अपने जीवनधर्मी अहसास के बल पर सुनामी के खतरे को पहले ही भाँप कर उस कबीले के लोग एक दिन पूर्व ही वह टापू छोड़कर सुरक्षित स्थान पर चले गये। कथित वैज्ञानिक चेतना और संसाधनों से लैस लोग डूब मरे और उधर परम पिछड़े आदिम लोग महफूज रहे।

यह अकारण नहीं है कि रनमारो टापू पर 'नीला घर' बना कर रहने वाले कवि टॉमस ट्रांसटोमर ने यहां आध्यात्मिक अनुभवों के लिए गहरा आदर भाव है। लेकिन किसी भी तरह के धार्मिक कर्मकाण्ड से वे सर्वथा दूर हैं। उनका आध्यात्म पूरी तरह जीवन को समर्पित है। अपनी कविता 'इतिहास के बारे में' ट्रांसटोमर कहते हैं: 'जासूसी कुत्ते की तरह वहां जाओ तुम। जहां भी सच्चाई ने छोड़े हों चरण-चिन्ह'। नोबेल समिति की घोषणा में भी कहा गया है कि 'इन्सानी दिमागी रहस्यों को अपनी लेखनी में पिरोने वाले कवि टॉमस ट्रांसटोमर अपनी ठोस और स्पष्ट कल्पनाओं से यथार्थ को नया आयाम देते हैं।' यहां तक कि तितली, टिड्डे और ततैया जैसे कीट-पतंगे भी उनकी कविताओं में जीवन की जरूरी इकाइयों की तरह आते हैं और उनका संग्रह उनके घर का हिस्सा है। लेकिन फिर भी खालिस जीवन यथार्थ की माँग करने वाले लोगों की राय में ट्रांसटोमर सामाजिक सरोकारों से रहित कवि हैं।

कविता की अंतिम दो पंक्तियों में बर्फ से ढके आदिम लोगों के द्वीप और उस पर हर तरफ फैले

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सादे कागजों के बीच सार्थक भाषा की खोज करते कवि को अचानक बर्फ में हिरण के खुरों के निशान दिखाई पड़ते हैं। कवि उन्हें देखते ही 'जैसे वांछित पा लिया हो' भाव से परम प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि बर्फ पर अंकित वे खुरों के निशान जीवन और भाषा की साकार अभिव्यक्ति है। खुर जो जीवन को निरन्तर गतिमान बनाये रखने के उद्यम में संलग्न हैं। जो जीवन गति का सबसे बेहतर और मूर्त रूप हैं। अपनी एक अन्य कविता में ट्रांसटोमर कहते हैं: 'हमारे दृश्यमान होने के लिए/जिन्दा रहने के लिए/ आँखों के एक झुण्ड में/एक विशेष अभिव्यक्ति को विकसित करना होगा।' और जाहिर है इस अभिव्यक्ति का सबसे जिन्दा उदाहरण भाषा ही है-जो जीवन से जुड़कर ही अपनी अर्थवत्ता हासिल करती है। जीवन का यह जरूरी परिप्रेक्ष्य ही चीजों को सार्थक बनाता है। टॉमस ट्रांसटोमर भाषा के प्रतीक चिन्हों को खँगालते हुए उनके मूल आशय तक जाते हैं। यही वजह है कि बर्फ पर अंकित सामान्य खुरों के निशान उनके लिए संसार की सर्वाधिक विश्वसनीय भाषा बन जाते हैं। इन्हीं के जरिए वे अपनी कविता में कविता जीवन का आवश्यक स्पेस हासिल करते हैं। उनका साक्षात्कार लेते हुए टैन लिन लेविले ने लिखा था: 'उनके पास जाने से लगता है कि आप खुली हवा में आ गये हैं, जहाँ खुलकर साँस लेने का स्पेस उपलब्ध है।'

लेकिन भाषा विषयक हमारे मूढ़ जड़ दुराग्रह से ट्रांसटोमर भली भांति परिचित हैं। इसीलिए बर्फ से ढके आदिम लोगों के द्वीप पर जीवन की जरूरी जिन्दा भाषा खोज लेने के उपरान्त भी चुटीले ढंग से वे यह कहने में नहीं चूकते कि जनाबेआला भाषा को लेकर आपका सोचना दुरुस्त हो सकता है लेकिन:

'भाषा मगर कोई शब्द नहीं।'

सम्पर्क: 7/86, विधाधर नगर
जयपुर-302023

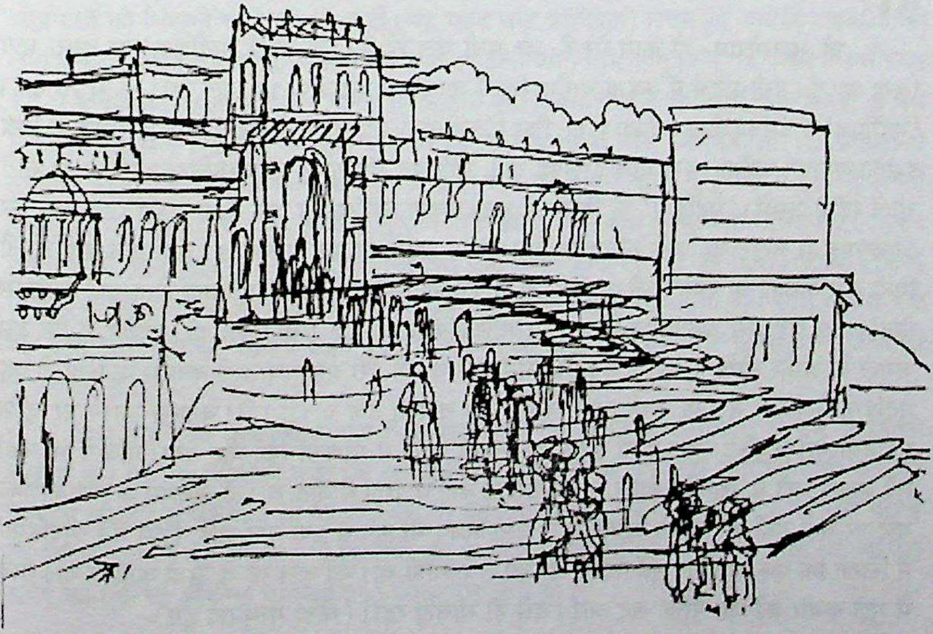

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

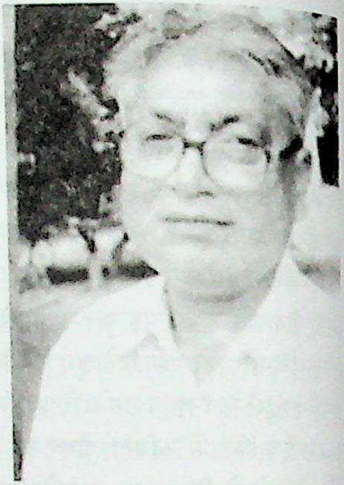

'मुर्दहिया' पर विशेष

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अंतर्राष्ट्रीय संबंध अध्ययन केन्द्र के प्रसिद्ध प्रो. तुलसीराम दलित चिंतक/लेखक के रूप में विख्यात हैं। वे दलित लेखकों में अकेले हैं जिनका मार्क्सवाद, बौद्ध दर्शन एवं साहित्य और अम्बेडकरवाद पर समान अधिकार है। पिछले कुछ महीनों से अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' के कारण भी वे ख़ासे चर्चा में रहे हैं। दलित आत्मकथाओं में अपनी विशिष्टता के कारण इसकी अलग पहचान बनी है और इसी कारण 'मुर्दहिया' का अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। प्रो. तुलसीराम जी पिछले दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अम्बेडकर जन्मशती पर आमंत्रित थे। दूसरे दिन यानी 15 अप्रैल 2012 की सुबह उन्होंने अत्यंत आत्मीयता और अनौपचारिकता के साथ हमसे बातें की।

थोथे आक्रोश से नहीं बदलता समाज

प्रो. तुलसीराम से डॉ. वंदना चौबे और सुचिता त्रिपाठी की बातचीत

वंदना- तुलसीराम जी आपका लेखन दलित विमर्श के आज के समय में बड़ा महत्वपूर्ण है। यूं तो आप अंतरराष्ट्रीय संबंध जैसे विषय और अनुशासनों से जुड़े हैं फिर भी अपने लेखन औ व्याख्यानों के माध्यम से दलित साहित्य में नई बहस की शुरुआत की है। आजकल आप क्या लिख रहे हैं?

प्रो. तुलसीराम- दो काम मेरे हैं; जो अभी चल रहे हैं। एक तो मैं 'मुर्दहिया' का दूसरा भाग लिख रहा हूँ। उसी संदर्भ में कहना चाहूँगा कि मैं बनारस में करीब 9-10 साल रहा। 66 से 76 तक 'मुर्दहिया' में उसका लेखा-जोखा होगा; फिर दिल्ली गया, दिल्ली से जे.एन.यू. तक के सफ़र के साथ इसका समापन करूँगा। इस बीच इंग्लैण्ड गया, सोवियत संघ गया, जो कम्युनिस्ट स्टेट था; ये सारी चीज़ें रहेंगी उसमें। 'मुर्दहिया' के विषय में कुछ कहना चाहूँगा कि जब मैं इण्टरमीडियट पास कर आज़मगढ़ से चला, वहीं बस स्टैण्ड के पास दुकान टाइप का एक मकान था। वहाँ एक बड़ी पुरानी मिनी बस अंग्रेज़ों के ज़माने की खड़ी रहती थी। काली-सी बस, उस पर लिखा होता था 'स्वर्गवास मेल'। रोज़ वह बस आज़मगढ़ से बनारस मणिकर्णिका घाट के लिए जाती थी। ज़ाहिर है कि उस ज़माने के अमीर लोगों के घर के मुर्दे ही उसमें जाते थे। तो मेरी बस जब चली बनारस के लिए तो वह मुर्दहिया मेल मेरी बस के कभी आगे, कभी पीछे बनारस तक चलती रही। बनारस उतरने पर चूंकि मुर्दहिया मेरा फ़ेवरिट स्थल हुआ करता था; सबसे पहले मैं मणिकर्णिका घाट गया। गाँव में भी जहा मुर्दे जलाए जाते थे, जानवर, खाल जलाए/उखाड़े जाते थे, वहां मैं जाता था। तो, बनारस के मणिकर्णिका घाट पर घंटों मुर्दों को जलता देखता रहा। उसी समय मेरे मन में एक बात आई, जिसे मैंने 'मुर्दहिया' में लिखा कि एक अनजान मुर्दे का मैं अकेला शव-यात्री था। मुर्दे जल रहे थे, बड़ा कुतूहल था। रास्ते में मुझे कबीर की वह पंक्ति याद आई। उसे ही सोचता रहा। (थोड़ा मुस्कुराते हुए)-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'चली है कुल बोरनी गंगा नहाए'

ये लिखा भी। पहले अध्याय का शीर्षक 'मणिकर्णिका' ही संभवतः होगा। ऐसा लगता है। तो एक मेरे गाँव की मुर्दहिया थी, यह बनारस का 'मुर्दहिया' है। इसी पर काम कर रहा हूँ।

वंदना- यह तो एक तरह का चिंतन है आपका जो आपकी आत्मकथा के दूसरे भाग से जुड़ता है। इस आत्मकथा में दलित चिंतन के कौन-से आयाम उभरते हैं? आपके अनुसार दलित चिंतन कहाँ से शुरू है?

प्रो. तुलसीराम- मैं राजनीति और साहित्य अलग करके नहीं देखता। दरअसल राजनीति में जो कुछ घटित होता है साहित्य में वह सब घटता है। उसका सबसे बड़ा उदाहरण है-स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श। ये दोनों मेरे प्रिय विषय रहे हैं। यही विषय गौतम बुद्ध को भी प्रिय थे। बुद्ध पहले व्यक्ति थे जिन्होंने जाति-व्यवस्था के ख़िलाफ़ पहली बार बहुत व्यवस्थित ढंग से आवाज़ उठाई। जाति-व्यवस्था के विरोध के कारण ही ब्राह्मण उनसे बहुत नाराज़ हुए, मटियामेट कर दिया 'बुद्धिज़्म' का। बौद्ध-भिक्षुओं का संहार हुआ, बौद्ध मठों को तोड़ा गया। लंबा इतिहास है इसका। बड़ी चालाकी से ब्राह्मणों ने उन्हें विष्णु का नवाँ अवतार घोषित किया लेकिन मानता कोई नहीं (व्यंग्य से मुस्कराते हुए) ज़ाहिर है मानना भी नहीं चाहिए। अवतारवाद का सिद्धांत बड़ा ख़तरनाक होता है। 'मिथिकल' है। तो अवतार की पूजा करते हैं बुद्ध की नहीं। जाति-व्यवस्था का विरोध जिसने किया, उसका मटियामेट हुआ। बुद्ध से लेकर अम्बेडकर तक पूरी परंपरा है। कबीर को ही कितना कुछ सहना पड़ा। आलोचकों ने कहा उनको भाषा नहीं आती। विधवा ब्राह्मणी से पैदा हुए- जैसी मनगढंत कहानियाँ बनाते हैं। आत्मकथा के माध्यम से दलित-विमर्श की कई सचाइयां सामने आयेंगी इसमें। तो दलित और स्त्री विमर्श दोनों की शुरुआत बुद्ध से होती है। उन्होंने स्त्री विमर्श को प्राथमिकता दी। दस 'टॉप' भिक्षुणियां थीं, पटचारा, चापा, कुंतलकेशा, उप्पलवना आदि। कई का ज़िक्र आता है विनयपिटक में। उन्होंने आम्रपाली को भिक्षुणी बनने की दीक्षा दी। यह बहुत बड़ा क्रांतिकारी क़दम था, क्योंकि वेश्याओं को लोग घृणित समझते थे। विनयपिटक में उनके लिए पहली बार नियम लागू किए गये, जिसे मैं व्यक्तिगत रूप से दुनिया का पहला संविधान मानता हूँ। उन्होंने एक नियमावलि बनाई उसमें कुछ स्त्रियों के बारे में रुचिकर दृश्य हैं। बनारस की एक बड़ी प्रसिद्ध धनाढ्य वेश्या थी- 'अड्ढकाशी'। आम्रपाली से प्रभावित होकर वह भिक्षुणी बनने के लिए श्रावस्ती जाने की तैयारी करती है। बनारस तब भी अपनी गुण्डई के लिए प्रसिद्ध था। वह श्रावस्ती न जाने पाये इसके लिए कुछ गुण्डे रास्ते में बैठ गए। लेकिन वह भिक्षुणी 'पावरफुल' थी, उसे सूचना मिल गई और उसने जाना स्थगित कर दिया। विनयपिटक में विस्तार से यह सब दर्ज़ है। उसने अपने एक दूत से बुद्ध को संदेशा भिजवाया और सारी स्थिति बता दी- इसी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए बुद्ध ने कहा कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में भी दीक्षा ली जा सकती है।

इस तरह बड़ी संख्या में वेश्याएं भिक्षुणियां बनीं। अजातशत्रु के राज्यकाल में जब आम्रपाली भिक्षुणी बन गई तब किसी ने कहा कि अब राज्य में आम्रपाली से भी सुंदर नगरवधू होनी चाहिए। नगरवधू की तलाश की गई। जो नई नगरवधू थी वह 16-17 वर्ष की थी। ध्यान देने की बात यह है कि विनयपिटक में यह भी आता है कि एक रात के लिए आम्रपाली 50 काष्यार्पण लेती थी, जो उस समय की मुद्रा थी और नई नगरवधू 250 काष्यार्पण लेती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वंदना- प्रो. साहब यह तो धर्मग्रंथ से अधिक सामाजिक दस्तावेजों का ग्रंथ लगता है, जहां इस तरह की घटनाओं का तथ्यों और आँकड़ों सहित वर्णन मिलता है।

प्रो. तुलसीराम- हाँ बिल्कुल! यह सब मैं सामाजिक आंदोलनों की पृष्ठभूमि के लिए बतला रहा हूँ। तो इन भिक्षुणियों को समाज में सम्मान, आदर भाव मिला। यह भी पता चलता है कि भिक्षुणियों की पुरानी ज़िंदगी कैसी थी? कैसे उनमें त्याग की भावना का विकास हुआ। एक 'पटचारा' थी। श्रावस्ती के बनिये की बेटी। यह युवावस्था में अपने घरेलू नौकर के साथ भाग गई। सुनने में ये बड़ी आधुनिक कहानी लगती है-बाद में उसे एक बच्चा पैदा हुआ। दूसरा बच्चा जब पेट में था, तो उसे अपने माँ-बाप की याद आई। वह अपने परिवार के साथ श्रावस्ती चली। रास्ते में अचानक बादल घिरे, अंधेरा छा गया, तूफान आ गया। उसी बीच उसे प्रसव पीड़ा हुई। प्रसव के लिए छाजन छाने के लिए पति खेत में सरपत काटने चला गया। खेत में उसे सांप ने काट लिया और वह मर गया। अब स्थिति देखिए कि पेड़ के नीचे प्रतीक्षातुर पटचारा ने अपने दूसरे बच्चे को जन्म दिया। बच्चे को वर्षा से बचाने के लिए वह छाजन की तरह उस पर झुकी रही रात भर। सुबह पेट से नवजात शिशु को चिपकाए वह पति को ढूंढने निकली। देखा खेत में वह मरा पड़ा है। रोती हुई पटचारा ने उसे वहीं दफ़न किया। आगे के रास्ते में बढियाई हुई नदी थी। उसने सोचा कि पहले वह छोटे बच्चे को उस पार घास पर लिटा देगी, फिर बडे बच्चे को पार ले जाएगी। शिशु को पत्तों पर लिटा कर वह जब नदी के बीच पहुंची, तो एक बाज झपटकर छोटे की तरफ़ बढ़ा। वह हाथ उठाकर हो-हा कर उसे भगाने लगी। इतने में बड़े बच्चे ने सोचा कि माँ उसे बुला रही है और नदी में कूद पड़ा। वह रोती-पीटती समझ नहीं पा रही थी कि नदी में डूब रहे बच्चे को बचाये या छोटे बच्चे को बाज से बचाये। नियति देखिए कि एक बच्चा डूब गया और दूसरे को बाज ले गया। एक अज़ीब सी पीड़ा को सहती हुई वह अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में पहुंच गई। चलते-चलते श्रावस्ती के रास्ते में उसने किसी व्यक्ति से अपने माँ-बाप के बारे में पूछा। उसने कहा कि रात के तूफान से उनके घर के गिरने से उनकी मौत हो गई। श्रावस्ती के श्मशान में वह विक्षिप्त अवस्था में घूमती रहती थी। नंगी घूमती थी, लोग पागल कहते थे उसे। उसी रास्ते पर बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ गुज़र रहे थे। वह उन्हें देख रो-चिल्ला रही थी। भिक्षुओं ने उसे डांटकर भगाना चाहा तो बुद्ध ने मना किया। इस पर भिक्षुओं ने अपना चीवर (वस्त्र) उस नंगी औरत पर फेंक दिया। तब उसके भीतर 'सेन्स' जगा। उसने अपना शरीर ढका। तभी से उसका नाम पटचारा पड़ा यानी वस्त्र ओढ़ी हुई। कमाल की चर्चा है विनयपिटक में। बुद्ध ने धर्म की परिभाषा ही बदल दी। उन्होंने धर्म को 'धम्म' कहा। अपने अंतिम समय में अपने भिक्षु आनंद से उन्होंने यही कहा कि जो कुछ पैदा हुआ है वही संस्कार है। संस्कार का मतलब 'रिचुअल्स' नहीं था उनका मतलब। उन्होंने कहा धम्म मार्ग पर चलना ही पूजा है। सिद्धांतों पर ही चलना। ये अंतिम शब्द हैं उनके। इसीलिए उन्हें तथागत कहा गया। तथागत यानी जो अपने बनाए सिद्धांतों पर स्वयं चले। मतलब कोई बात इसलिए मत

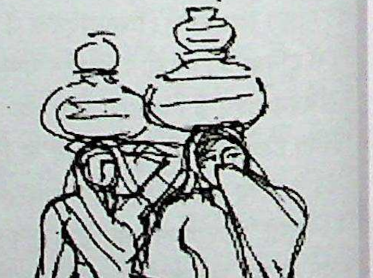

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मानो कि बहुत से लोग ऐसा करते हैं, परंपरा कहती है या फिर मैं कहता हूँ। इसलिए मानो कि वह तर्क और सत्य की कसौटी पर खरी हो। दुनिया के किसी सिद्धांतकार या पैगम्बर ने यह नहीं कहा कि मुझे भी मत मानो। हर एक ने कहा मेरी बात मानो। 'बुद्धिज़्म' में यही 'रेशनालिटी' थी, जिससे वह बड़े पैमाने पर फैला दुनिया में। उस ज़माने में शांति का उपदेश दिया युद्ध के खिलाफ़ संघर्ष ही छेड़ दिया। संक्षेप में दलित और स्त्रियों के प्रश्न गंभीरतापूर्वक यहीं से उठे। इस चर्चा के बिना ये सारे विमर्श अधूरे हैं।

वंदना- यह तो है कि दलित या स्त्री-विमर्श कोई आज के युग की देन नहीं है बल्कि पुराना प्रश्न है। इस दौर में इसे एक व्यापक विस्तार मिला है, लेकिन हिन्दी में दलित विमर्श कायदे से आत्मकथाओं के माध्यम से आया। आत्मकथाओं के अतिरिक्त बुद्ध और बुद्ध के बाद दलित साहित्य किन-किन रूपों में विकसित हुआ ?

प्रो. तुलसीराम- मैं मानता हूँ कि दलित साहित्य के तीन रूप थे- बौद्ध साहित्य के रूप में- बुद्ध काल में, संत-साहित्य के रूप में- मध्यकाल के दौरान और वर्तमान युग में दलित-विमर्श के रूप में। दलित साहित्य कोई नया नहीं है यह उतना ही पुराना है जितना आम साहित्य।

वंदना- प्रो. साहब प्रारंभिक दलित साहित्य प्रामाणिक दस्तावेज की तरह हमारे सामने हैं, लेकिन इधर का दलित साहित्य, विशेष रूप से आत्मकथाएं, अपनी गहराई और प्रामाणिकता खोती जा रही हैं। कुछ रचनाएँ बाज़ार का रुख़ देखकर दलित विमर्श की आपाधापी में लिखी जा रही हैं। इन्हें कैसे देखा-समझा जाय ?

प्रो. तुलसीराम- सही कह रही हैं आप। वैसे दलित साहित्य में आत्मकथा की शुरुआत महाराष्ट्र में हुई। दया पवार की 'बलूत' से। उन्होंने बहुत नंगी सचाई हमारे सामने रखी। जैसे उनकी मौसी जो थी वे कोठे पर जाती थी। कभी रास्ते में मिल जाती थीं तो दया जी रास्ता बदल देते थे। कई अन्य शोषणकारी घटनाएँ उनकी आत्मकथा में आती हैं। जहां तक आत्मकथा का सवाल है। 'टेक्नीकल' ढंग से यह 'बलूत' से शुरू होती है। अगर उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जाया जाय तो आत्मकथा की शुरुआत अश्वघोष के 'बुद्धचरित्' से प्रारंभ होता है जो पहली सदी में लिखी गई। इससे पहले किसी भी देश के साहित्य में आत्मकथा का यह रूप नहीं मिलता। इलियड और ओडिसी जो होमर द्वारा लिखे गए ग्रीक में- माना जाता है कि होमर बुद्ध के समकालीन थे- उसमें कई कथाएं हैं; इस तरह की कहानियां जैसे राजकुमार के अपहरण और फिर उसके लिए युद्ध लड़ा आना आदि-आदि। इसी आधार पर आर.एस.एस. के लोग कहते हैं कि यह सब रामायण की नकल है; सीता के अपहरण की कथा के आधार पर, लेकिन यह सब ग़लत है। इलियड, ओडिसी पुराना है लगभग 7वीं शताब्दी ईसा पूर्व का। ज़ाहिर है कि राजशाही तो उस समय में भी थी ही और कहानियाँ तो राजा-रानी से ही शुरू होती थीं। तो इलियड, ओडिसी की कहानियां भी आत्मकथात्मक नहीं थीं। 'बायोग्राफ़ी' या 'ऑटो बॉयोग्राफ़ी' दोनों ही संदर्भों में 'बुद्धचरित्' पहली आत्मकथा है। आत्मकथा लेखन की परंपरा, पूरी दुनिया में बौद्ध परंपरा से शुरू होती है। बाद में जो आत्मकथाएं आईं; ख़ासतौर पर यूरोप की आत्मकथाएं मध्यकाल की हैं। प्राचीन काल में नहीं थीं। विक्टोरियन राज में 'बुद्धिज़्म' पर केम्ब्रिज़ से एक किताब आई। आलमंड की। वे सीधे कहते हैं कि क्रिश्चिएनिटी के अंदर जो चर्च सिस्टम था, वह बौद्ध मठ पर आधारित था और यहाँ जो भिक्षुणियाँ थीं उसी आधार पर वहां 'नन' कहलाईं। यहाँ भिक्षुओं को 'भन्ते' कहते हैं वहां 'फ़ादर' कहलाये। फ़िलिप आलमंड ने लिखा है कि ईसा मसीह ने यह व्यवस्था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
'बुद्धिज़्म' के आधार पर बनाई। बुद्ध के काल में ही बौद्ध मठ भी बनने लगे थे। अशोक के काल में तो 84 हज़ार मठ बनाए गए थे। इसी तरह ईसाइयों में चर्च, अब्बे आदि बने। मैंने कैन्टरबरी का एक अब्बे देखा, जो अब खण्डहर है। वहीं से पहली बार क्रिश्चिएनिटी आई। मैंने देखा और मेरे दिमाग़ में बुद्ध की 'रिप्लिका' घूमने लगी। तो आत्मकथा लेखन एक तो बौद्ध धर्म से प्रारंभ होता है। ये जो थेरगाथाएं, जातक कथाएं बाद में आईं, ये सारी की सारी आत्मकथाएँ हैं। हाँ! जातक थोड़ा भिन्न है। बाद में ललित विस्तर जैसी विधा भी आई श्रीलंका से। इसमें बुद्ध के जीवन पर आधारित काव्य लिखा गया। फिर वंश साहित्य, श्रीलंका का बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें दीप वंश और महावंश महत्वपूर्ण हैं। ये आत्मकथाएं हैं।

वंदना- हाँ! बुद्धिज़्म का योगदान सिर्फ़ विमर्शों की शुरुआत में ही नहीं बल्कि भाषाओं जनभाषाओं और बोलियों के विकास के लिए भी है। पालि, मागधी.....

प्रो. तुलसीराम- लोगों का ध्यान नहीं जाता 'एंटी बुद्धिज़्म' के कारण। तटस्थ होकर पढ़ा जाए यह समूचा साहित्य 'मल्टी परपज़' था जहाँ तमाम विमर्श, समाज-सुधार, आंदोलन, भाषा, विधाएँ बहुत कुछ है। बड़े-बड़े विचारकों ने कहा है कि बुद्ध ने अपने उपदेश पालि में दिए हैं। पालि तो बहुत बाद में आई है। बुद्ध के 500 साल बाद। श्रीलंका में बौद्ध साहित्य को बचाने के लिए वहाँ पालि में अनुवाद बड़े पैमाने पर हुए, जबकि भारत में तब बौद्ध साहित्य जलाया जा रहा था। जनभाषाओं के बारे में अगर बात करें तो बुद्ध से बड़ा समर्थक नहीं मिलेगा। उन्होंने कहा कि बौद्ध भिक्षु जहां भी जायें, जनभाषा में अपना उपदेश दें।

वंदना- आज का साहित्य या आत्मकथाएँ ऐसी नहीं हैं ?

प्रो. तुलसीराम- वे आत्मकथाएँ, जैसे लक्ष्मण गायकवाड़ या महाराष्ट्र के कई लेखक शुरू में आए, जिनमें समाज 'रेफलेक्ट' तो हुआ लेकिन धीरे-धीरे.... यह वही समय था जब कांशीराम राजनीति में आए। कांशीराम ने 70 के दशक के पहले ही 'बामसेफ़' बनाया। दलित कर्मचारियों को संगठित किया, फिर उन्होंने एक उग्रवादी दलित राजनीति को जन्म देना प्रारंभ किया। जाति व्यवस्था के ख़िलाफ़ आंदोलन को दिशा देने की बजाय (जो बुद्ध से आंबेडकर तक चला) उसे जातीय आंदोलन बना दिया। बी.एस.पी. तक तो शुद्ध जातीय आंदोलन बन गया 1984 में। अलग-अलग जातियों का सम्मेलन कराना, हर जाति के जातीय गौरव को भड़काना, यही सब कुछ। तो! जब जातीय गौरव को भड़काया जायेगा तो जातिवाद ख़त्म कहाँ होगा, फिर तो जातिवाद के स्तंभ और मज़बूत ही होंगे। इस तरह की राजनीति जब समाज में आई तो उसी के 'रेफ्लेक्शंस' दलित साहित्य में आए। नतीजा दलित साहित्य ज्यादातर जातिवादी हो गया। दूसरों को भड़काना, सवर्णों को गाली देना। ये सब आज के दलित साहित्य में आने लगा है। मतलब आंदोलन भटक गया। राजनीति से साहित्य पूरा प्रभावित हुआ और उसका स्वरूप ही बदल गया।

वंदना- ऐसा है कहीं न कहीं हम सभी गाँवों कस्बों से जुड़े हुए लोग हैं। मेरे गाँवों में पहले और शायद आज भी दलितों की अलग टोलियाँ या बस्तियाँ हुआ करती थीं। मैं देखती थी कि सवर्ण उधर से कम गुज़रते थे; उन्हें हिकारत भरी नज़रों से देखते थे। आज शहरों-महानगरों में भी ऐसा क्यों है कि उनकी अलग बस्तियाँ-मुहल्ले-कॉलोनियाँ यहां तक कि दलितों के लिए अलग छात्रावास बनाए जा रहे हैं। मुझे लगता है इससे दूरियाँ-वैमनस्य और बढ़ा है। क्या इस राजनीति ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वही पुराना रूढ़िवादी, जातिवादी और अस्पृश्यतावादी समाज को और बल नहीं दिया है ? उसे कम या समाप्त करने की बजाय ?

प्रो. तुलसीराम- जहाँ तक छात्रावास की बात है यह विचार अम्बेडकर का ही था। असल में अम्बेडकर के समय में लोग दलितों को घर किराये पर नहीं देते थे। बड़ी समस्या थी। मैं खुद अपना अनुभव बता रहा हूँ कि मैं जब बनारस में आया, उस दौरान मैंने नौ मकान बदले। इसलिए बदलने पड़े कि जाति का पता लगते ही लोग निकाल देते थे। यह एक बुनियादी समस्या है। आज भी बहुत से लोग जाति पूछकर किराये पर घर देते हैं। पढ़े-लिखे आधुनिक लोग। भले ही घर ख़ाली पड़ा रहे। अंबेडकर के ज़माने में कितना भेदभाव रहा होगा। यह उन्हीं का विचार था कि शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी मकान नहीं मिलेगा तो दलित पढ़ कैसे पायेंगे। दूसरी चीज़ वे यह भी कहते थे कि एक जगह रहने पर वे मिलकर रहेंगे, क्योंकि जातिवादी दंगों के दौरान वे अक्सर 'टारगेट' होते थे। साथ मिलकर मुकाबला करने की प्रवृत्ति को बल देने के लिए यह विचार था। वैसे वे अलग बसाये भी जाते थे, गाँव के दक्षिण में। अधिकतर दलित बस्तियाँ गाँवों के दक्षिण में होती थीं। कारण यह था कि ब्राह्मणों का अंधविश्वास था, आज भी है, कि जो भी बुराई या महामारी आती है वह दक्षिण से आती है। दक्षिण अशुभता का प्रतीक है। तो दक्षिण में रहेंगे तो पहले वे ही शिकार होंगे। यही 'कॉन्सेप्ट' था।

वंदना- इसीलिए तो मतभेद बढ़ रहा है....

प्रो. तुलसीराम- हाँ। यही मैं कहने जा रहा था कि ये जो जातिवादी राजनीति चल रही है पिछले दो-ढाई दशकों से जैसे बी.एस.पी. का उदय होना, बैकवर्ड लीडरों की पार्टियों का उदय होना, जिसमें लालू, मुलायम और नितीश कुमार जैसे नेता हैं। इन सबसे जातिवाद इधर बहुत मजबूत हुआ है। आजकल चुनाव में जातिवादी तौर-तरीकों से वोट डाले जाते हैं। सांप्रदायिक पॉलीटाइज़ेशन या क्षेत्रीयतावाद इन्हीं आधारों पर चुनाव हो रहे हैं। 'पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी' में जो होना चाहिए, जिसकी कल्पना अंबेडकर ने की थी, वह नहीं हो पा रहा है। राजनीति लोगों को 'सोशल अवेयर' न करके भड़का रही है; जातिवाद को मज़बूत तो यही लोग कर रहे हैं। इसी के चलते जातीय दुर्भावना, भेदभाव बढ़ रहा है। इस तरह की राजनीति आगे के लिए भी ख़तरनाक है।

वंदना- जबकि यह आंदोलन सकारात्मक सोच के साथ चला था, इसकी दिशा जाति-व्यवस्था विरोधी थी।

प्रो. तुलसीराम- हाँ, इसीलिए इसमें समाज-सुधार की भावना भी थी।

वंदना- जॉर्ज ऑरवेल के 'एनीमल फॉर्म' में जिस आंदोलन ने शोषकों के साथ संघर्ष कर नई व्यवस्था बनाई उन्हीं में से एक नया शोषक जिस तरह से जन्म ले लेता है, वैसे ही इन दलित आंदोलनकारियों में भी एक 'ब्राह्मण' पैदा हो गया है। इस तरह किसी तरह का सकारात्मक परिवर्तन समाज में हो नहीं पा रहा है। ऊपर से परिवर्तन दिखने के बाद भी दोनों के भीतर एक दूसरे के लिए गाँठ बनती जा रही है।

प्रो. तुलसीराम- वह किताब 'कम्युनिज़्म' के संदर्भ में लिखी गई थी। स्थितियां वही हैं। मैं एक उक्ति की चर्चा करना चाहूँगा कि अंबेडकर ने एक बार गांधी जी से कहा था कि सामाजिक आंदोलनों का राजनीतिक आंदोलनों पर वर्चस्व होना चाहिए। मैं भी इसी तरह के सामाजिक आंदोलन को प्राथमिकता देता हूँ। समाज सामाजिक आंदोलनों से बदलता है राजनैतिक आंदोलनों से नहीं। सत्ता

Sanjeev Nigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
में तो लोग आते-जाते रहते हैं; इन आंदोलनों का ख़ास मतलब नहीं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मायावती सरकार है। वे सत्ता में तो कई बार आईं, कई बार मुख्यमंत्री बनीं। समाज में कहीं कुछ नहीं बदला। उनकी तो नीति ही अजीब-सी थी, मूर्तियां ही गढ़वाने लगी अपनी। आज ज़रूरत है एक बड़े सामाजिक आंदोलन की। ऐसा आंदोलन जो न सिर्फ़ दलित समस्याओं के विषय में सोचे बल्कि जो ग़ैर-दलित या सवर्ण हैं उन्हें भी नम्र बनाए। सवर्णों की जो हिंसात्मक प्रवृत्ति है, सामाजिक आंदोलन से उसमें नर्मी आती है। यह सबसे बड़ी सार्थक पहल होगी। इसलिए कबीर के दोहे हर वर्ग में लोकप्रिय है। कबीर आज इतने प्रासंगिक हैं क्योंकि उन्होंने जाति-व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज उठाई। बुद्ध-अंबेडकर ने समाज-सुधार के साथ दलित वर्ग के लिए नई राह बनाई। 'आरक्षण नीति' से उन्होंने बहुत कुछ बदला है। एक तरह से उनका सशक्तिकरण और सबलीकरण किया। सत्ता में दलितों की भागीदारी बढ़ी। इसी नीति के चलते अब संसद के साथ पंचायती राज में ग्राम सभाओं तक उनका विस्तार हुआ है। अब तो पिछड़े संप्रदाय के हर सवाल जातीय होकर रह गए हैं। ये कोई नहीं देखता कि कौन नेता कितना योग्य है; ये देखता है कि वह किस जाति का है; इसी कारण गुण्डे और हत्यारे राजनीति में आ रहे हैं। ऐसे समय में एक सामाजिक आंदोलन की ज़रूरत है जो जातिवाद के विरोध में 'पब्लिक ओपिनियन' तैयार करे और दलित उसके केन्द्र में हो। ऐसे आंदोलन दलितों को मुख्यधारा से भी जोड़ेंगे और सवर्णों की सोच में बदलाव भी लायेंगे।

वंदना- जब आपने 'मुर्दहिया' लिखा, और अब स्थितियां दूसरी हैं। दलित आरक्षण नीति पर आप किस तरह से सोचते हैं?

प्रो. तुलसीराम- आरक्षण की स्थिति यह है कि यदि इसे हटा दिया जाये तो एक दलित को नौकरी नहीं मिलेगी। यह हक़ीकत है इस देश की। कई क्षेत्र ऐसे हैं जहां यह कहकर कि योग्य अभ्यर्थी नहीं है; कई सीटें नहीं भरी जाती। चूंकि 'सोशल डिसक्रिमिनेशन' (सामाजिक भेदभाव) सब कोशिशों के बावजूद बरकरार है। यह जातिगत भेदभाव आज भी समाज में व्याप्त है इसीलिए व्यवस्था भी ज़रूरी है। आरक्षण ने इस भेदभाव को काफ़ी हद तक कम किया है और आरक्षण को समाज ने करीब-करीब स्वीकार भी कर लिया था। इसके विरोध में भावनाएँ तब भड़की जब मंडल कमीशन आया। मेरा मानना है कि पिछड़ी जातियों में बहुत सी ऐसी जनता थी, जिन्हें 'आरक्षण' नहीं मिला। सत्ता और राजनीति के चलते जिस तरह से और जितनी जल्दबाज़ी में वी.पी. सिंह ने इसे लागू किया- अपनी सत्ता बचाने के लिए- वहीं से जातिवाद की नई सोच शुरू होती है। सब छोड़ दलित और पिछड़ी जाति राजनीति में ऐसे रंग लाने लगी कि सदियों के जाति-व्यवस्था विरोधी समूचे आंदोलन का मटियामेट हो गया। जातीय सत्ता का नारा तो पहले स्वयं मायावती ने दिया। जब दलित सत्ता की बात करेंगे तो ब्राह्मण सत्ता की बात क्यों नहीं करेंगे। इस तरह तो हर जाति की जातीय सत्ता होने लगेगी।

वंदना- इसी का परिणाम है कि आज जगह-जगह हर जाति का अपना समाज या संगठन बना हुआ है; जो भीतर-भीतर जातिवाद को पाल-पोस रहे हैं।

प्रो. तुलसीराम- मेरा मानना है कि आज नियम भी बदल गए हैं संसदीय लोकतंत्र के। आज सत्ता में राजनीतिक पार्टियाँ नहीं आ रही हैं बल्कि जातिगत पार्टियाँ आ रही हैं।

वंदना- आमतौर पर यह चर्चा भी होती है कि आरक्षण की अवधारणा या नीति, आर्थिक आधार पर होनी चाहिए। एक पढ़ा-लिखा सम्पन्न और स्थापित दलित परिवार बराबर आरक्षण का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लाभ लेता रहे और वास्तव में समाज में जिन पिछड़े, निर्धन या दलित परिवार उन्हें वह लाभ नहीं मिल पा रहा। क्या यह ठीक है ?

प्रो. तुलसीराम- देखिए! यह सब कहने-सुनने में बहुत अच्छा लगता है, लेकिन हकीकत यह है कि साढ़े बाईस प्रतिशत आरक्षण एससी/एसटी के लिए लागू किया गया है। आप आंकड़े देखें कि जबसे संविधान लागू किया गया यानी 1950 से अब तक। आप पायेंगे कि हर वर्ग में (यानी क्लास-1,2,3,4,) चारों वर्गों में तथ्यों के आधार पर यदि गणना की जाय तो लाखों-लाख आरक्षण के पद 'लैप्स' हो गए हैं। वहां भरी ही नहीं सीटें। भारत सरकार का आँकड़ा है कि कुल आरक्षण का सिर्फ़ 10 प्रतिशत ही भरा है। आई.ए.एस., आई.पी.एस. में तो कड़ाई से लागू है लेकिन प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक लाखों सीटें आज भी खाली हैं। ये जो बात आप कह रही हैं कि परिवार के स्थापित हो जाने के बाद आरक्षण न मिले, यह तब ठीक है जब 100 प्रतिशत आरक्षण हो। तब कहा जा सकता है जो आरक्षण का लाभ ले चुके हैं वे इसमें ना आयें।

वैसे दलित आंदोलन का आधार जातिगत भेदभाव है; आर्थिक नहीं। ग़रीब-अमीर से फ़र्क नहीं पड़ता। जनजीवन राम 'डिफेंस मिनिस्टर' थे। यहीं संपूर्णानंद की मूर्ति का अनावरण करने आए थे। अनावरण करके गए नहीं कि पंडितों ने उसे गंगाजल और यज्ञ से शुद्ध किया। जगजीवन राम तो मामूली आदमी नहीं थे। असली चीज़ है 'सोशल डिसक्रिमिनेशन'। कोई दलित अमीर हो जाये तो उसके साथ भेदभाव नहीं होता, ऐसा नहीं है।

उसके उदाहरण आज भी मिलेंगे। जातिगत भेदभाव के आधार पर जो पूनापैक्ट लागू हुआ 1932 में उसका आधार जातिगत भेदभाव था और वह जातिगत भेदभाव हिंदू धर्म के चलते था लेकिन मंडल कमीशन में जो आरक्षण लागू किया गया वहाँ सामाजिक भेदभाव नहीं था, उनके साथ छुआछूत का व्यवहार नहीं था। ये तो चरण सिंह की राजनीति थी कि विन्धयेश्वरी प्रसाद मंडल, जो खुद भी कई सौ एकड़ के ज़मींदार थे बिहार में, उन्होंने दबंग जातियों को ही लिया, देखिए अब तो जाटों तक को आरक्षण मिल रहा है।

वंदना- मेरा मानना है कि समाज में ज़्यादातर भेदभाव ग़रीबों के साथ होता है चाहे वह ब्राह्मण हो या दलित। समाज धीरे-धीरे पैसे पर आधारित होता जा रहा है।

प्रो. तुलसीराम- आप ग़रीब ब्राह्मण की ताक़त देखिए कि एक तोता लेकर फुटपाथ पर भविष्य बताकर वह पैसे कमा लेता है। अंधविश्वास के बल पर वह काफ़ी कमाई कर लेता है। एक अनपढ़ पुजारी के मंदिर में किस तरह का चढ़ावा आता है? ये मत कहिए आप कि ग़रीब बराबर हैं। सवर्ण ग़रीबों को सामाजिक लाभ तो हैं ही।

वंदना- क्यों! आज कोई भी व्यक्ति अपनी जाति छिपाकर किसी महानगर में, शहर में अंधविश्वास के बल पर कमाई कर सकता है, कर रहा है; कहाँ तक आप उसकी जाति का पता लगायेंगे। यह तो अब व्यवसाय हो गया है। जितने भी धार्मिक गुरू या मठाधीश हैं कौन जानता है कि किसकी जाति क्या है। मैंने बड़े शहरों में कई ऐसे चोटीधारियों से बात की है जो कहते हैं इस चोटी के बड़े फ़ायदे हैं; समय पर काम आती है।

प्रो. तुलसीराम- उसके लिए ब्राह्मण स्वयं जिम्मेदार हैं कि उन्होंने ऐसी व्यवस्था बना रखी है कि जीने-खाने के लिए 'ब्राह्मण' बनना पड़ना है। जिस आरक्षण पर यह बात चल रही है। आर्थिक

CC-0. Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधार वाली बात। वह हो जायेगा; उसकी कोई दिक्कत नहीं। समस्या यह है कि जिसको आरक्षण मिला है या मिल रहा है फिर भी सीटें नहीं भर रही हैं। ऐसे में जो 'एडवांस' पढ़े-लिखे दलित परिवारों को भी 'डीबार' कर दिया जायेगा तो एक तो उन्हें सामान्य वर्ग में नौकरी नहीं मिलेगी दूसरे सीटें ख़ाली रहेगी। जो पढ़ेगा नहीं, योग्य ही नहीं होगा तो नौकरी कैसे करेगा! आर्थिक आधार से कुछ नहीं होगा।

देखिए! पहले गुरुकुल हुआ करते थे। मैं कहता हूँ आम जनता में शिक्षा को रोकने के सबसे बड़े संस्थान गुरुकुल थे। उसमें आवश्यक रूप से ब्राह्मण या राजकुमार ही पढ़ सकते थे। ब्राह्मणों में भी सभी ब्राह्मण नहीं। क्या इतिहासकार भी गुरूकुल की तारीफ़ करते हैं। आरएसएस ने तो शुरू में ही 900 गुरुकुल खोले। क्या तारीफ़ है इस प्रणाली की कि हमारे देश में शिक्षा का कितना बड़ा केन्द्र था गुरुकुल। अरे! क्या केन्द्र था साले! जनता को अशिक्षित बना रहे थे ये सब! अशिक्षा का केन्द्र था यह। जनता को शिक्षा से 'डीबार' कर दिया तुमने, और शिक्षा का केन्द्र था।

आपको बताऊँ मैं कि अंबेडकर 1947 में ढूंढने लगे कि कितने दलित स्नातक हैं देश में। उन्हें पूरे भारत से सिर्फ़ पांच स्नातक जो दलित थे मिले थे। ढूंढ के थक गये। ये हालत थी। दलित शिक्षा की। यह कहना कि जिसके पास शिक्षा है उसे आरक्षण नहीं मिलना चाहिए, उचित नहीं है। इसका मतलब आप 100 प्रतिशत आरक्षण हटाना चाहते हैं। दूसरी बात शिक्षा और पैसे से सामाजिक भेदभाव नहीं जाता। वह हमारे दिमाग़ में है। जाति व्यवस्था हटा दीजिए; किसी आरक्षण की ज़रूरत नहीं है। सब आएं अपनी योग्यता से।

वंदना- इसी संदर्भ में अभी जनगणना को लेकर काफ़ी बहसें हुईं कि जातिगत जनगणना हो कि नहीं; आप का क्या मानना है?

प्रो. तुलसीराम- इसीलिए तो विरोध कर रहे हैं लोग जातिगत जनगणना की। क्योंकि उससे 'रियल' दलितों की स्थिति का पता लग जायेगा फिर आरक्षण को और बल मिलेगा। यह विरोध भी कोई नया विरोध नहीं है। 1920 में पहला 'सेंसस' हुआ भारत में। उस समय दो कमीशन आए थे भारत में-मोंटेगो कमीशन और साउथ बेरो कमीशन। ब्रिटेन से आए थे। यहां के लोगों के 'पोलिटिकल रिप्रेज़ेंटेशन' के लिए। जिससे लोकल लोगों की भागीदारी से राजनीतिक व्यवस्था मज़बूत हो। अम्बेडकर ने 1918 में साउथबेरे कमीशन से यह मांग की कि 'सेप्रेट इलेक्ट्रेड' हो। सेप्रेट इलेक्ट्रेड की बात की और आबादी के अनुसार आरक्षण की बात की। अंग्रेज़ों ने 'सेंसस' बनाना शुरू किया, हर जाति की, आदिवासी जनता की। इसका विरोध किया ब्राह्मणों ने क्योंकि इससे शूद्र 'कम्युनिटी' का पता चल जायेगा। उससे ब्राह्मणों को नुकसान पहुंचेगा। दक्षिण भारत के ब्राह्मणों ने साउथ-बेरो कमीशन के सामने 'मेमोरेन्डम' दिया और 'सेंसस' का विरोध किया। समझ में नहीं आता, जब हमारी सोसाइटी जातिवादी है तो जातिवादी जनगणना का विरोध क्यों? जबकि यदि 'ऐन्थ्रोपॉलोजी' या समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखें तो कितने महत्त्वपूर्ण आंकड़े मिलते हैं हमें इससे। सामाजिक शोध के लिए। राजनीतिक शोध के लिए। इसे सिर्फ़ दलितों या आरक्षण के संदर्भ से ही क्यों जोड़ें? उसे ज्ञान और अनुसंधान की दृष्टि से क्यों न देखा जाये।

वंदना- मेरा मानना है कि स्त्रियां भी 'दलित' हैं। वह जो स्त्रियां भी हैं और दलित भी हैं उनकी सामाजिक स्थिति किस तरह की है और उनका लेखन किस प्रकार का रहा है?

प्रो. तुलंसीराम- उनके साथ तो अलग तरह का छुआछूत रहा है। वैसे हर वर्ग की स्त्रियां

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाशिए पर रही हैं। डॉ. अम्बेडकर हिंदू कोड बिल लाए। उन्होंने कहा जो काम मैं संविधान में लिखकर नहीं कर सका, वह हिंदू कोड बिल के माध्यम से होगा। हिंदू कोड बिल शुद्ध रूप से महिलाओं के अधिकारों के लिए था। इसका विरोध भी दकियानूसी लोगों ने किया और वह पास नहीं हो पाया। अच्छा यह रहा कि अंबेडकर जो बिल जाये थे उससे बढ़कर इस समय संवैधानिक संशोधन के तहत ये सारी चीज़ें आ गई हैं। तलाक में पिता की प्रॉपर्टी में अधिकार, 33 प्रतिशत आरक्षण और कई तरह के स्त्री सशक्तिकरण पर काफ़ी काम हो गया है। तब यह बिल पास नहीं हुआ था तो किसी दलित मुद्दे को लेकर नहीं बल्कि आम महिला मुद्दे के कारण। इसी कारण अंबेडकर ने कैबिनेट से त्यागपत्र दे दिया। इस तथ्य को भी लोग जातीय फ्रेम वर्क में देखते हैं और कोट करते हैं।

वंदना- समकालीन दलित लेखन में महिलाओं की भागीदारी कैसी है।

प्रो. तुलसीराम- एक-दो दलित महिलाएं लेखन में आ रही हैं। उनका लेखन थोड़ा भिन्न है पुरुष लेखकों से। जैसे सुशीला टाकभोरे की आत्मकथा आई है 'शिकंजे का दर्द'। उन्होंने अपने पति को खूब लताड़ा है। कौशल्या बैसंत्री का 'दुहरा अभिशाप' है। उन्होंने भी अपने पति पर तमाम आरोप लगाए हैं। जो दलित भेदभाव है वह तो 'कॉमन' है लेकिन पहली बार यह देखने में आया है कि दलित महिला दलित पुरुष के ख़िलाफ़ आवाज उठा रही है। इन दलित महिलाओं का स्त्री-विमर्श कुछ अलग ढंग का है। सवर्ण महिलाओं से भिन्न, जहां सती सावित्री और पति-परमेश्वर का 'कॉनसेप्ट' अभी भी हावी है।

वंदना- किसी व्याख्यान में आपने वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस पर विवादास्पद वक्तव्य दिया था; वह क्या था ?

प्रो. तुलसीराम- जी हाँ! वह मेरा वक्तव्य नहीं था, उसे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' पटना ने अपने ढंग से पता नहीं कहां से छाप दिया। इसके बाद इतनी गालियां लोगों ने मुझे भेजी कि आप कल्पना नहीं करेंगी। हुआ यह था कि साहित्य अकादमी ने पटना विश्वविद्यालय में एक सेमिनार रखा था। उसका उद्घाटन मुझे करना था। साहित्य की पृष्ठभूमि देते हुए जब दलित साहित्य की बात आई तो मैंने कहा कि जब अंबेडकर ने कैबिनेट से त्यागपत्र दिया तो नेहरू के प्रसिद्ध सेक्रेटरी मथाई ने अंबेडकर को चाय पर बुलाया। बंबई में बड़ी अच्छी मुलाक़ात थी वह। मथाई ने पहला प्रश्न यह किया कि आप सवर्णों का विरोध क्यों करते हैं ? तो उन्होंने कहा कि मैं सवर्णों का विरोध नहीं करता, मैं जाति-व्यवस्था का विरोध करता हूँ। उन्होंने कहा कि देखिए! साहित्य में जाति-व्यवस्था किस तरह है। हिंदू समाज ऐसा है कि जब ज़रूरत होती है तो शूद्रों का इस्तेमाल करते हैं। जब हिंदुओं को ज़रूरत थी, महाभारत की, ज़रूरत थी तो व्यास को ले आए, रामायण के लिए वाल्मीकि को ले आए और संविधान लिखने के लिए मुझे बुला लायें। यह मथाई के साथ उनकी प्रसिद्ध बातचीत है। दूसरी जो उन्होंने बात कही कि वाल्मीकि ने 'रामायण' लिखी, वे शूद्र थे और तुलसीदास ने उसी आधार पर 'रामचरित मानस' लिखी। भाषा का फ़र्क था। ब्राह्मणों ने तुलसी को श्रेय देकर 'रामचरित मानस' को खूब प्रचारित किया और मौलिक रामायण का महत्व वैसा नहीं रहा गया। यह अंबेडकर का वक्तव्य था। मैंने अंबेडकर को ही कोट किया था और कहा था कि अगर आज के ज़माने में कोई ऐसा कहता तो केस दर्ज़ हो जाता। पता नहीं क्या-क्या 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' के फ्रंट पेज पर आ गया। सबसे ज़्यादा गालियां मुझे मध्यप्रदेश से मिलीं।

CC-0. In Public Domain. Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वंदना- ऐसे कई लोग हैं गाँवों-कस्बों-नगरों में, जो दलित-विमर्श नहीं जानते, दलित साहित्य नहीं पढ़ते, लेकिन सही अर्थों में अपने स्तर पर बहुत काम करते हैं। सैद्धांतिक नहीं तो व्यावहारिक स्तर पर ही। उन्हें कोई नहीं पूछता-जानता। हम बुद्धिजीवी तमाम बहसें-गोष्ठियां करते हैं। व्यावहारिक स्तर पर हम क्या कर पा रहे हैं ?

प्रो. तुलसीराम- देखिए! मैंने कहा है कि दलित साहित्य की सबसे अच्छी परिभाषा है 'जाति-व्यवस्था विरोधी साहित्य'। यहां यह सवाल नहीं उठता कि किस जाति-संप्रदाय का व्यक्ति लिख रहा है। एक धारा दलितों की है जो महाराष्ट्र में है। इधर हिंदी क्षेत्र में भी वह हावी हो रही है कि दलित ही दलित पर लिखे। ये विचार गलत है। उसी पर नामवर सिंह ने कहा था कि घोड़े पर लिखने के लिए पहले घोड़ा बनना पड़ेगा ? दलित बड़े नाराज़ हुए थे। मुख्य यह है कि जिस तरह जातीय राजनीति हावी हो रही है उसी तरह जातीय साहित्य हावी हो रहा है। वर्ण-व्यवस्था के ख़िलाफ़ जिसने भी लिखा वह दलित साहित्य है। इसीलिए राहुल सांकृत्यायन, प्रेमचंद आदि इनका लेखन इतना लोकप्रिय है। यह कि दलित ही दलित पर लिखे, इसमें बहुत ख़तरनाक अर्थ छिपा हुआ है। ऐसे लोग ऐसा इसलिए कह रहे हैं जिससे पूरे बौद्ध साहित्य को नकारा जा सके। बौद्ध साहित्य लिखने वाले लगभग सभी ब्राह्मण थे। बुद्ध स्वयं क्षत्रिय थे। उन्होंने दलित-विमर्श शुरू किया। लेकिन बाक़ी परंपराएं देखी जायें तो पहली सदी में अश्वघोष, नागार्जुन आदि रहे। कुमारलात एक कवि थे, नहीं मालूम लोगों को। इन सभी ने जाति-व्यवस्था का विरोध किया। कुमारलात की 'मेनस्क्रिप्ट' मुझे तुर्फ़ान में मिली। 1964 में। तब पता चला इस कवि का। अश्वघोष के तीन नाटक प्रसिद्ध हैं ही' सारिपुत्र, मोदिग्गलायन। सारिपुत्र ब्राह्मण है। बुद्ध क्षत्रिय हैं। आपसे नीचे। आपने उन्हें गुरू कैसे मान लिया। सारिपुत्र कहते हैं- रोग गंभीर हो और चिकित्सक शूद्र जाति का हो तो उससे इलाज करा लेना चाहिए। ये संवाद हैं उसमें। ये तुर्फ़ान में मिला। यहां जलाया जा रहा था। उसी में राष्ट्रपाल है, वह और अधिक विरोध करता है जाति-व्यवस्था का। मगध के एक पार्क में यह नाटक खेला जा रहा था। शूद्र जाति के पात्र प्राकृत में बोलते हैं और ब्राह्मण कलाकार संस्कृत में। भाषा का भेदभाव उस नाटक में पता चलता है। स्त्रियाँ भी प्राकृत में बोलती हैं। 'लैंग्वेज डिस्क्रीमिनेशन' जानने के लिए अश्वघोष के नाटक बुनियादी दस्तावेज हैं। यह परंपरा जो बौद्धों की रही है, उनमें अधिकतर ब्राह्मण कवि थे। आजकल के उग्रवादी दलित लेखक कहते हैं दलित पर दलित ही लिखे मतलब बौद्धों की पूरी परंपरा को आप नकारते हैं। यह बहुत ही संकुचित और विद्रूप विचारधारा है। कुछ लोग इसे फैलाने की कोशिश में लगे हुए हैं।

वंदना- दलित आंदोलन के ऐसे भटकाव के समय में आपने कहा कि एक जनान्दोलन की ज़रूरत है। ऐसे में दलित साहित्य का भविष्य आप क्या देखते हैं ?

प्रो. तुलसीराम- भविष्य अभी भी जातीय ही रहेगा। जातिवादी आंदोलन ही रहेगा। इसके लिए बहुत बड़े 'अवेयरनेस' की ज़रूरत है कि जब लोग जातीय भावना, साम्प्रदायिक भावना और क्षेत्रीय भावना पर विजय हासिल कर लें। उस तरह की राजनीति हो, उस तरह के लोग सत्ता में आयें, तभी कोई परिवर्तन आ सकता है। यह बहुत लंबा जायेगा। 2-4 दिनों की बात नहीं है।

सुचिता त्रिपाठी- किसी दलित साहित्यकार का वक्तव्य हैकि शास्त्रों से मुक्ति का महाघोष है दलित साहित्य। क्या शास्त्रों से मुक्ति ही दलित की आज़ादी है ?

प्रो. तुलसीराम- नहीं। बिल्कुल नहीं। शास्त्रों को हमें 'हिस्टॉरिकल डॉक्यूमेन्ट' के रूप में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देखना चाहिए। जैसे सबसे पुराना साहित्य ऋग्वेद है। जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में उसमें दसवां मंडल है। वही वाला जो मुँह से ब्राह्मण की उत्पत्ति वाला, बावजूद इसके वेदों में जो समाज दिखाई देता है, जिस समाज का 'रेफ़्लेक्शन' है ख़ासतौर पर जिसके बारे में लोग छिपे-छिपे बात करते हैं, सेक्स के बारे में। सेक्स के बारे में ऋग्वेद का अध्ययन करें तो इतना महत्त्वपूर्ण है जिसका कोई हदो-हिसाब नहीं। वह सेक्स की ही किताब हैं। आश्चर्य होता है कितना उन्मुक्त समाज था आर्यों का, व्यवस्थित ढंग से परिभाषित किया गया है। जैसे 'कन्या' का कॉन्सेप्ट था। 'कन्या' उसे कहते हैं जिसका विवाह न हुआ हो और उस पर एक से अधिक पुरुषों का अधिकार हो। यह ऋचा के रूप में व्याख्यायित है। एक कथा आती है-बाह्मण की एक कन्या थी। उसके पास एक युवक आता रहता था। उसकी शादी हो गई। युवक आया तो ब्राह्मण ने कहा कि वह पति की हो गई है। वह कन्या नहीं रह गई। यहां से जाओ और किसी घट नितंबी को देखो और उससे ऐसे जुड़ जाओ जैसे धुरी से रथ का पहिया जुड़ जाता है। ऐसी-ऐसी उपमाएँ हैं। किसी पंडित जी से पूछिए तो वह देवी-देवताओं का ज़िक्र करेंगे। उसमें गोमांस खाने की चर्चा है। यज्ञस्थल पर 10-20 बैल काटे जाते थे और इंद्र सब खा जाता था। सब तो क्या खाते होंगे थोड़ा-थोड़ा हर बैल का मीट खाते होंगे। हर विषय पर लिखा है। यम-यमी की कहानी तो प्रसिद्ध ही है। दोनों जुड़वाँ पैदा हुए थे। यमी सेक्स के लिए अपने ही जुड़वाँ भाई से कहती है। यम कहता है हम भाई-बहन हैं। यमी कहती है कि हम लोग एक साथ जुड़ने के लिए ही माँ के पेट में जुड़े थे। इस तरह के प्रकरण ऋग्वेद में हैं। तो अपनी सोसाइटी, इतिहास, संस्कृति को जानने ऋग्वेद ज़रूरी है। ऋग्वेद को मैं ज्ञान की ख़ान मानता हूँ। पहले मंडल में देव एक 'ट्राइब' थे जिसका अध्यक्ष इंद्र था। एक ब्राह्मण इंद्र को भला-बुरा कहता है कि भूख के मारे मैंने कुत्ते की ओझड़ी खाई लेकिन इंद्र ने मेरी सहायता नहीं की। कुत्ते का मांस खा रहा है एक ब्राह्मण। मैंने इसी पर लेख लिखा, हंस में छपा। आर.एस.एस. ने जो हंगामा किया था कि उनका बस चलता तो मुझे मार ही डालते। अच्छा था कि ऋचाएँ सारी मैंने कोट की थी जिससे मैं अपने आपको 'डिफ़ेन्ड' कर पाया। जो शास्त्रों को ख़त्म करने की बात करते हैं वे महामूर्ख हैं।

सुचिता त्रिपाठी- हर साहित्य का अपना एक दर्शन होता है। दलित साहित्य का दर्शन किस तरह का है ? दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र किसी काव्यशास्त्र में नहीं ढलता या नीतिगत नहीं है ?

प्रो. तुलसीराम- वर्तमान में जो कविताएँ लिखी जा रही हैं, वही काव्यशास्त्रीय मानदण्डों पर खरी नहीं उतरती हैं। दलित साहित्य को तो छोड़ ही दीजिए। साहित्यिक मानदण्डों की बात करें तो ऋषि दाण्डायन की बात करँगा। दाण्डायन ने महाकाव्य के लिए 18 मानदण्डों को 'प्रेसक्राइब' किया- जैसे- चंद्रोदय, सूर्योदय, मद्यपान, जल क्रीड़ा, विवाह, युद्ध वर्णन, विजय वर्णन, जुआ, शैल वर्णन आदि। इस आधार पर देखा जाय तो महाभारत खरा उतरता है। 'रामचरित मानस' आदि भी। दाण्डायन ने चालाकी के साथ इन ग्रंथों को पढ़कर यह फ़ार्मूला निकाला था। फ़ॉर्मूले भी शुद्ध ब्राह्मणिक ऑर्डर पर रखे गए थे ताकि नई चीज़ न आए। सबका ध्यान रामायण, महाभारत पर रहेगा। बुद्ध उन कवियों का विरोध करते हैं जो कुछ भी देखकर तुरंत कविता लिख देते थे। इसका मतलब यह नहीं कि वे नृत्य, साहित्य, कला आदि का विरोध करते थे। वे शब्दों के मायाजाल को अस्वीकार करते हैं।

सुचिता त्रिपाठी- दलित साहित्य लिखने वालों की ऐसी मान्यता है कि दलित साहित्य लिखकर हम बहुजन समाज को शिक्षित और जागरुक बना रहे हैं लेकिन शरण कुमार लिंबाले की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आत्मकथा में कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण प्रसंग हैं जैसे यह संभव है कि [illegible] वाले कई भाई-बहन हैं और सभी भाई-बहनों के पिता अलग-अलग हों ? दूसरा यह कि नहाने के बाद का पानी ये लोग पीने के लिए इस्तेमाल करते थे; ऐसा होता था ?

प्रो. तुलसीराम- देखिए। यह सब होता तो था ही। आज भी अख़बारों में आप पढ़ती होंगी कि कई दलितों को अपना ही पेशाब या विष्ठा खाने पर मजबूर किया जाता है। दक्षिण भारत में वहां दीवार खड़ी कर दी गई थी जिधर से दलित जाते हैं। दक्षिण भारत की ही 2001 की एक घटना है गांव की कि उस गांव के सवर्ण बस्ती और दलित बस्ती में भी कुत्ते पाले जाते थे। 'इंडियन एक्सप्रेस' में यह ख़बर छपी थी दलित बस्ती के कुत्ते का सम्मेल सवर्ण बस्ती की कुतिया से हो गया। इसके बाद ब्राह्मणों ने जिसका कुत्ता था उसे तो मारा-पीटा ही और घोषणा भी की कि सारे दलित गांव छोड़कर चले जायें क्योंकि दलित बस्ती के कुत्ते ने ब्राह्मण की बस्ती की कुतिया को अपवित्र कर दिया है। आप कल्पना करेंगी इन स्थितियों की। ये मैं नहीं कह रहा हूँ कि सभी जगहों पर यही हो रहा है।

सुचिता त्रिपाठी- जय प्रकाश कर्दम कहीं लिखते हैं-

जब तक स्मृतियाँ रहेंगे
रामायण, गीता और वेद रहेंगे
अस्पृश्यता रहेगी, जातिवाद रहेगा

समाज को प्रगतिशील बनाना है
जातिवाद के ज़हर को मिटाना है
तो! इन तथाकथित धर्म ग्रंथों को
आग लगानी होगी, और नकारना होगा
वर्णित उस ईश्वर को, जो कर्मानुसार फल देता है
और मोक्ष भी।

क्या धर्मग्रंथों को जला देने से अस्पृश्यता समाप्त हो सकती है ?

प्रो. तुलसीराम- बिल्कुल नही। ये चीज़ें तो दिमाग़ में हैं ना। जब तक दिमाग़ नहीं बदलेगा, स्मृतियाँ जलाने से क्या होगा। अंबेडकर ने तो जलाई थी 1927 में लेकिन वह एक 'सिम्बॉल' था, जाति-व्यवस्था तोड़ने का। अब जलाने या ख़त्म करने से समाज अपने इतिहास से वंचित हो जायेगा। अभी इसी संदर्भ में ऋग्वेद की चर्चा की है। ये सब उग्रवादी थिकिंग है। धर्मग्रंथ जलाने से मनुवादी व्यवस्था समाप्त नहीं होने जा रही है। ऋग्वेद की एक ऋचा में है कि इंद्र ने दासों के दस लौह घर जलाए है; वैज्ञानिक ढंग से देखा जाय तो पता चलता है लोहे के घर तब बनते थे; इन्हें लौह नगरी भी कहा जाता था। यह एक अध्ययन में है। सवाल यह है कि आप सोचते किस तरह से हैं। कोई अकेले कर्दम थोड़े ही हैं; बहुत से कहते रहते हैं। थोथे आक्रोश से नहीं बदलता समाज।

प्रो. तुलसीराम
19, दक्षिणापुरम्, ज.ने.वि.
नई दिल्ली, 110067
मो. 09868249324

डॉ. वंदना चौबे एवं सुचिता त्रिपाठी
हिन्दी विभाग, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज
चेतगंज, वाराणसी
मो. 09596230756, 09797111887

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

‘मुर्दहिया’ पर विशेष-एक

संघर्ष और स्वप्न की कथा

रमाकांत श्रीवास्तव

‘मूर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी। मानवजाति का वह पहला व्यक्ति जो जैविक रूप से मेरा खानदानी पूर्वज था, उसके और मेरे बीच न जाने कितने पैदा हुए, किंतु उनमें से कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था।’

इन शब्दों से डॉ. तुलसीराम अपनी आत्मकथा ‘मुर्दहिया’ की शुरूआत करते हैं। अशिक्षा भारत के दलित समाज की दुर्दशा का मूल कारण है। इसी समस्या को वे अपनी आत्मकथा का प्रस्थान बिन्दु बनाते हैं। इन पंक्तियों को पढ़ते हुए बाबा नागार्जुन का यह कथन याद आता है कि उन्होंने संस्कृत ‘मूर्खता के विकल्प के रूप में पढ़ी थी।’ नागार्जुन सवर्ण थे इसलिये दरिद्रता के बावजूद उनके सामने कोई विकल्प था। यह भी कह सकते हैं कि संस्कृत उनकी विरासत थी। सवर्ण व्यक्ति की दरिद्रता उसके जीवन को दुश्वार बनाती थी किंतु सामाजिक जीवन में अस्पृश्यता का वह अभिशाप उसे नहीं भोगना पड़ता था जो मनुष्य को मनोवैज्ञानिक रूप से तोड़ता है, जो भविष्य की अनिश्चितता को आदमी का स्थायी भाव बनाता है और उन सुविधाओं से उसे वंचित करता है जो समाज के अन्य वर्णों को सहज ही प्राप्त होती हैं। इस सामाजिक अन्याय के चलते दलित वर्ग की महत्वाकांक्षाएं दम तोड़ती रही हैं और उसका जीवन व्यथा, आतंक, चिंता और विक्षोभ के वात्याचक्र में फंस कर रह जाता है।

राजकमल से प्रकाशित डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा ‘मुर्दहिया’ को पढ़ते हुए सहज ही भान होगा कि यह दलित आत्मकथाओं के अनुक्रम का निर्वाह भर नहीं है। एक विशेष काल के कुचक्र में पीड़ा भोगते दलित की आत्मा का आइना तो है ही, यह समय के साथ उसके द्वन्द्व की कथा भी है। यदि नामवर जी ने इसे ‘आत्मकथात्मक उपन्यास’ कहा है तो कारण शायद यह है कि बहुत बार उपन्यास समय की कथा के रूप में लिखा जाता है। मुर्दहिया में भी बीसवीं सदी के छठवें-सातवें दशक के तमाम सांस्कृतिक-राजनैतिक उतार-चढ़ाव के बीच संघर्ष करते हुए दलित व्यक्ति के जीवन के यथार्थ चित्र हैं। बहरहाल, इसे हम उपन्यास मानें या ना मानें, किंतु लेखक के संघर्ष को एक पठनीय कृति के रूप में आत्मसात करते हैं।

सन् 1957 को तुलसीराम विशेष रूप से रेखांकित करते हैं। इतिहास की दृष्टि से और लेखक के जीवन के व्यक्तिगत अनुभव के कारण भी वह महत्वपूर्ण था। 1957 में भारत का दूसरा आम चुनाव हुआ। वह 1857 की क्रांति का सौंवा वर्ष भी था। उसी साल लेखक के गांव के पास जंगल में झोपड़ी बनाकर रहने वाले ‘फक्कड़बाबा’ की हत्या हुई। इसके अलावा 1957 का भादों का महीना ‘खरमांस’ था अत: अशुभ था। अशुभ तो पूरे गांव के लिये था किंतु लेखक के जीवन पर अमिट प्रभाव डालने वाला था। लेखक के पिता जिस सुदेस्सर ब्राह्मण के यहां हलवाही करते थे उनकी माँ उसी माह में गुज़र गई। ब्राह्मणों की रीति के अनुसार उसकी लाश को एक कब्र में अस्थायी रूप से दफनाया गया ताकि खरमास बीतने पर उसका दाह संस्कार किया जा सके।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
पिता के साथ मिलकर उस [illegible] लाश को निकालकर चिता पर रखने के अनुभव ने बचपन में ही लेखक को दो कटु सत्यों से परिचित कराया। माँ की लाश से उठने वाली भीषण दुर्गन्ध से घबराकर मुँह-नाक पर कपड़ा बांधकर सुदेस्सर पांडे दूर तो भाग गये किंतु उन्हें लगातार यह चिंता थी कि लाश के कफन के भीतर जो सोने की अंगूठी रखी गई है उसे निकाल लिया जाय। लेखक के जीवन के दो सत्य उसी के शब्दों में यह हैं।

पहला यह कि 'उस दिन मेरे मन में पहली बार यह बात समझ में आई कि किसी के लिये माँ की लाश की अपेक्षा सोना कितना प्रिय था।'

दूसरा यह कि 'मुर्दहिया न जाने कितने वर्षों से अनगिनत लोगों के दुख-दर्द को जलाकर राख करती रही है, और न जाने कितने लोगों के दुख को अपनी धरती में दफना लिया था। और आगे भी जलाती-दफनाती रहेगी। उस दिन मुझे भी बड़ी गहराई से अनुभूति हुई थी कि मेरे भी अंदर एक मुर्दहिया जन्म ले चुकी थी, जिसमें भविष्य में न जाने कितने ही दुख दर्द जलने और दफन होने वाले हैं।'

इस कथन का अर्थ विस्तार इस रूप में होगा कि लेखक की आत्मा पूरे दलित समाज का अवसाद रूपी श्मशान है। एक मुर्दहिया बाहर है लेकिन आत्मा की मुर्दहिया में लेखक ने दुखों को भस्मीभूत भी किया और संजोकर भी रखा। इन दोनों ही अनुभवों से उसका व्यक्तित्व निर्मित हुआ। आत्मा की यह मुर्दहिया अतीत के इतिहास में भी दूर तक फैली है। इसका विस्तार सदियों पुराना है इसीलिये लेखक अनुभव करता है कि मनुष्य को दुखों से मुक्ति दिलाने का प्रयास करने वाले गौतम बुद्ध 'कभी न कभी मेरी मुर्दहिया से अवश्य गुजरे होंगे।'

लेखक ने भूमिका में ही संकेत किया है कि उसके गांव धरमपुर (आजमगढ़) की 'जियो पालिटिक्स' यानी भू राजनीति में 'मुर्दहिया' एक सामरिक केन्द्र थी। वहां मनुष्य और पशु दोनों के ही अंतिम संस्कार होते थे। मुर्दहिया में दफन होने वाले दलित जीवन भर के दुख दर्द को अपने अंदर छिपाये वहां मुक्ति पाते थे। यानी 'मुर्दहिया' केवल एक व्यक्ति, तुलसीराम, की आत्मकथा नहीं है। लेखक का यह वाक्य गंभीर अर्थ रखता है 'यदि उनमें (दलित) से किसी की भी आत्मकथा लिखी जाती तो उसका शीर्षक 'मुर्दहिया' ही होता।'

यह कृति केवल तुलसीराम के जीवन की कथा नहीं है। यह परिवर्तन से गुजरते हुए भारतीय समाज के भीषण त्रास में जीने वाले दलित वर्ग की जिजीविषा, संघर्ष और उम्मीदों की गाथा भी है। भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि वाले अपशकुनी तुलसीराम के पिता कहते थे- 'अधपेटवा खाना, बिरही बोल सहना किसी के लिये भी कठिन होता है।' इस कथन में हजारों वर्षों से मानवाधिकारों से वंचित दलित वर्ग के जीवन का सत्य छिपा है।

आधा पेट भोजन से उपजी एक अनंत भूख को सहते हुए जीवन गुजारने का अभिशाप तुलसीराम जैसे करोड़ों मनुष्यों को मिला है। भारतीय समाज का यह विद्रूप सवर्णों की दृष्टि में श्रम विभाजन का महान सिद्धांत था। हजारों वर्ष तक भीषण विषमता से युक्त समाज की गरिमा का गान करने वालों को संस्कृति का रक्षक माना गया। इस सत्य को रेखांकित करने वाली कई दलित आत्मकथाएं मराठी और हिन्दी में लिखी गई हैं। इन जरूरी कृतियों की सम्यक चर्चाएँ हुई हैं और इन्हें महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं का दर्जा भी दिया गया है। 'जूठन', 'अपने अपने पिंजरे', 'तिरस्कृत', 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' चर्चित कृतियों के रूप में समाहित हैं। इसे हम भारतीय चिंतन और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
सौन्दर्यशास्त्र के विकास के रूप में भी देख सकते हैं। इस विकास को एक सिरे से ख़ारिज करना भी ऐतिहासिक सत्य को अस्वीकार करना होगा। कुछ लेखकों और पत्रिकाओं ने इस अतिवाद से चर्चित होने का सरल रास्ता भी अपनाया है। तुलसीराम की सजग दृष्टि किसी अतिवाद से ग्रस्त नहीं है।

'मुर्दहिया' डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा का प्रथम खण्ड है जो सात अध्यायों में विभाजित है। भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि, मुर्दहिया तथा स्कूली जीवन, अकाल में अंध विश्वास, मुर्दहिया के गिद्ध तथा लोकजीवन, भुतनिया नागिन, चले बुद्ध की राह, आजमगढ़ में फाकाकशी- शीर्षक के सात आलेख तुलसीराम के किशोर जीवन के विभिन्न आयामों को समेटते हैं। इस पूरे परिदृश्य के केन्द्र में है एक दलित किशोर की शिक्षा प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा, उसमें उपस्थित बाधाएँ और उन बाधाओं को पार करने के लिये किया गया संघर्ष।

तुलसीराम के जीवन का द्वन्द्व दुहरा था। वर्ण-विभाजित समाज में शूद्र कुलोद्भव व्यक्ति का बाह्य द्वन्द्व शताब्दियों से यह रहा है कि उसे शेष तीन वर्णों की उपेक्षा और अपमान का शिकार होना ही था। सदियों से दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार के अभ्यस्त समाज के बीच त्रासदायक जीवन बिताते हुए अपने स्वाभिमान को पाने का स्नायु भंजक संघर्ष झेलना तो लेखक की नियति थी ही। उसका दूसरा संघर्ष अपने ही समाज की अशिक्षा और अंधविश्वास के चलते शिक्षा प्राप्ति के विरोध में उसके अपने ही परिवार का अभियान था। इस दुहरे संघर्ष को जीते हुए अपने जीवन के लक्ष्य को पाने की जद्दोजहद और साहस की भी यह कथा है। लेखक, अपनी आत्मा पर लगे घावों की चर्चा भर नहीं करता, बल्कि वह अपने विरुद्ध खड़े अपने ही समाज के विश्लेषण की ईमानदार कोशिश भी करता है।

सदियों तक अशिक्षा से उत्पन्न अंधविश्वास से घिरे अपने दलित परिवार की पृष्ठभूमि को तुलसीराम 'भुतही पृष्ठभूमि' का नाम देते हैं। हर वृक्ष, श्मशान में घूमते पशु-मनुष्य के किसी भी अजीब व्यवहार तथा बीमारी के पीछे भूत-प्रेत का हाथ मानना उनके परिवार ही नहीं पूरी दलित बस्ती का दृढ़ विश्वास होता था। यह अंधविश्वास ऐसे लौह परकोटे को निर्मित करता था जिसके उस पार विद्यमान तर्कसम्मतता तक पहुंचने का प्रयास उस समाज के लिये संभव ही नहीं था। परिवार की हर क्रिया ज्ञान और विवेक की विरोधी थी। यहां तक कि लेखक के दादा की किन्हीं अज्ञात विरोधियों द्वारा लाठियों से पीटकर की गई हत्या को किसी भूत की कारस्तानी माना गया। शिक्षा से शून्य और अंधविश्वासों से घिरा परिवार लेखक के शब्दों में एक म्यूजियम से कम नहीं था-

'इस तरह हमारा परिवार संयुक्त रूप से विशद होने के साथ-साथ वास्तव में एक अजायब घर ही था, जिसमें भूत-प्रेत, देवी-देवता, सम्पन्नता-विपन्नता, शकुन-अपशकुन, मान-अपमान, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुख आदि-आदि सब कुछ था, किंतु शिक्षा कभी नहीं थी।'

यही कारण है कि लेखक के सदियों पुराने खानदान की युगान्तरकारी घटना यह थी कि उसे प्रायमरी स्कूल में पढ़ने के लिये भेजा गया। इस विद्या प्राप्ति का लक्ष्य भी यह था कि दलित बस्ती में आने वाली चिट्टयों को पढ़ने लायक योग्यता किसी दलित को प्राप्त हो सके। निरक्षर बस्ती की चिट्ठयों को गांव के ब्राह्मणों से पढ़वाने और उनसे अपमान जनक बातें सुनने से मुक्ति पाने के लिये परिवार वालों की 'कृपा दृष्टि' लेखक पर हुई। प्रथम अध्याय का समापन इस अद्भुत मुक्ति कामना से होता है। मुर्दहिया के अंतिम अध्याय तक, विभिन्न परिस्थितियों के बीच यही चिंता व्याप्त है।

शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा की इस हद बंदी के बीच लेखक के परिवार और गांव का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विस्तृत संसार उभरता है जहां अनेकों चरित्र अपनी विचित्रताओं के साथ उपस्थित हैं। उन सभी का संघर्ष किसी न किसी रूप में तुलसीराम के संघर्षों से है। उनमें से कुछ की भूमिका सकारात्मक है और अधिकांश की नकारात्मक।

तुलसीराम समाज द्वारा अपशकुनी घोषित किये गये, जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उनके बचपन पर पड़ा। चेचक की गंभीर बीमारी ने उन पर दो निशानियां छोड़ी। पहली यह कि उनका चेहरा दागों का भंडारण क्षेत्र बन गया और दूसरी यह कि उनकी दाहिनी आंख की रोशनी चली गई। अंधविश्वासी समाज में ऐसा व्यक्ति अशुभ है। उस श्रेणी में लेखक का प्रवेश मात्र तीन वर्ष की उम्र में हो गया। 'कनवा' की उपाधि तुलसीराम की पहचान के साथ ऐसी चिपकी कि उसके असली नाम के साथ ही उसका सारा बचपन ही लुप्त हो गया। शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति के प्रति हमारा असंवेदनशील समाज उसमें किस तरह हीनता की ग्रंथि पैदा करता है, इसका मार्मिक चित्रण मुर्दहिया में किया गया है। ऐसा नहीं कि दलित एकाक्षी पर व्यंग्यबाण सवर्ण व्यक्ति ही छोड़ते थे। तुलसीराम का सर्वाधिक अपमान तो उनके सगे चाचा के पुत्रों के द्वारा होता था। उनकी बुद्धिमानी की तारीफ भी कुछ इस तरह होती थी-'कनवा एकदम सही कहत हो।' आत्मकथा का उज्जवल पक्ष यह है कि लेखक अपने आपको किसी भी तरह के पूर्वाग्रह और कुंठा से मुक्त रखते हुए अपने विक्षुब्ध जीवन की कथा कह सका है। घटनाओं को विश्लेषित करते समय वह व्यवस्था के विद्रूप को रेखांकित करता है और पीड़ाओं के सामाजिक कारणों को उजागर करता है। ऐसा कर पाने के लिये जिस निर्लिप्तता को साधना जरूरी है, उसे वह साध सका है।

यही कारण है कि तुलसीराम अपनी व्यक्तिगत सीमा से उठकर अपशकुनी होने की पीड़ा से ग्रस्त गांव के दो ब्राह्मणों का उल्लेख करते हैं। अस्सी वर्ष के जंगू पांडे को देखते ही दलित बस्ती के परिवारों में भी खलबली मच जाती थी और घर की बहुओं को भीतर भेज दिया जाता था। लोगों का विश्वास था कि जंगू पांडे की नजर पड़ने से बहू निर्वंश हो जायेगी। इसी तरह एक निर्वंश विधवा पंडिताइन को अशुभ माना जाता था। तुलसीराम लिखते हैं- 'हमारे गांव में निर्वंश जंगू पांडे, विधवा पंडिताइन, पोखरे वाला उल्लू, खो-खो करने वाली मरखड़की चिड़िया और मैं स्वयं, हम पांचों असली अपशकुन थे जिन्हें देख- सुनकर लोगों की रूह कांप जाती थीं।' इस शुभ-अशुभ प्रकरण को लेखक हमारे समय की गति को जांचने- परखने का पैमाना भी बनाता है। 'तीन वर्ष के शैशव काल में जब अशुभ अपशकुन की श्रेणी में मेरा प्रवेश हुआ तो भारत की आजादी के पांच साल बीत चुके थे, अर्थात 1952 का साल अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रहा था।

स्वतंत्र भारत की विडंबना के संकेत लेखक अपने जीवन की कथा के समानांतर करता है। 15 अगस्त, 26 जनवरी और 2 अक्टूबर को प्रायमरी शाला के बच्चों को गांधी टोपी पहनकर और कागज के तिरंगे झण्डे के साथ आना पड़ता था। शिक्षक भाषण में गांधी की याद करते हुए कहते कि वे छूआछूत मिटाना चाहते हैं जबकि शिक्षक और उनके प्रिय उम्रदराज छात्र मिसिर बाबा दलित छात्रों के प्रति असहिष्णु थे। ये वही मिसिर बाबा थे जो अधिक दिनों तक मृत्युभोज का आमंत्रण ना मिलने पर कहते थे- केतना दिन होय गयल,सरवा कौनो ना मरत हौ।

लेखक भारतीय सामाजिक इतिहास के इस तथ्य को सामने रखता है कि सवर्णों, विशेष रूप से ब्राह्मणों ने कभी भी यह नहीं चाहा कि दलित वर्ग शिक्षित होकर उनकी बराबरी कर सके। दूसरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओर दलित वर्ग स्वयं अपने बच्चों को शिक्षित करने की कल्पना नहीं कर पाता था। सदियों के संस्कारों से मिली जड़ता और हीन भाव रास्ते के रोड़ा बनते रहे। स्वयं तुलसीराम के पिता की महत्वाकांक्षा यह थी कि बेटा प्रायमरी पास होकर चिट्ठी पढ़ने लायक योग्यता हासिल करे और हलवाहा बनकर पिता का पुश्तैनी काम करे। ब्राह्मण के घर की हलवाही छोड़ने पर पाप लगेगा। एक चाहत यह थी कि बेटा पिता की तरह कुशल मछरमखा बने। मुर्दहिया के ब्राह्मणों ने यह भी समझा रखा था कि अधिक पढ़ने से बच्चे पागल हो जाते हैं- विशेष रूप से दलित बच्चे। लेखक अपनी बड़ी उपलब्धि की सूचना किताब के तीसरे अध्याय के समापन में इस तरह देता है- 'मैंने भी उस अकाल में महुवे का लाटा खाते और अमौली की सुरीली धुन बजाते पांचवीं कक्षा पास कर लिया।

तुलसीराम की आत्म कथा मुर्दहिया दलित आत्म कथाओं का अगला सोपान है, क्योंकि वह कुछ अर्थों में अन्य दलित लेखकों की कृतियों से भिन्न है। जहां तक वर्णवादी व्यवस्था की अमानवीयता के चित्रण का प्रश्न है वह मुर्दहिया में भी उसी शिद्दत से उभरी है। अपमान के गहरे दंशों और सवर्णों द्वारा उनकी शिक्षा प्राप्ति के प्रयासों में उत्पन्न किये गये अवरोधों को वे उनकी तरह ही व्यक्त करते हैं। मरे जानवरों का चमड़ा उतारना, आधा पेट भोजन करना और सवर्णों के कुओं को छूना तो दूर उनके पोखर में नहाना भी लेखक को नसीब नहीं था। पांचवीं की फाइनल परीक्षा देने अपने गाँव से सात मील दूर 'बबुरा धनहुवां' गांव में पोखर में स्नान करने के प्रयास में इसे रामचरण यादव की रौद्र मुद्रा का सामना करते हुए आदेश सुनना पड़ा- 'जल्दी से भाग चमार कहीं के। बड़कन लोगन के पोखर मैं तू नहइवे ?' ब्राह्मणों और क्षत्रियों के निरादर पूर्ण मुहावरे- 'भादो भौंसा चहत चमार इनसे कब्बुं लगे न पार' में चमारों के भर पेट खाने के मखौल को सहना दलित बस्ती की नियति थी।

तुलसीराम के लेखन की भिन्नता इस अर्थ में लक्षित होती है कि वे परिस्थितियों के कठोर पाटों में पिसकर भी अपने दिल के फफोलों को दिखलाने और सवर्णों को कोसने में अपने आपको शेष नहीं करते। वे दलितेतर समाज की गरीबी का उल्लेख पूरी सहिष्णुता से करते हैं। 1957-58 के भयंकर अकाल के दौर में वे दलितों के कठोर श्रम के मुकाबले अल्प मजदूरी की त्रासदी का चित्रण तो करते ही हैं, वे यह कहना नहीं भूलते- 'इस दौरान सबसे बुरी हालत नाइयों, धोबियों तथा नटों की होती थी।' मुर्दहिया उनके व्यक्तिगत जीवन की पीड़ाओं का दस्तावेज नहीं है बल्कि वे अपने को पूरी बस्ती की दिनचर्या और जीवन पद्धति के बीच रखकर देखते हैं।

विभिन्न ऋतुओं में दलित बस्ती के लोगों की दशा और आस-पास घटने वाली छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से अपने समाज की विशेषताओं और कमियों पर उंगली रखते हैं। दलित बस्ती के जीवन यापन-विशेष रूप से हलवाही, खेतों की मजदूरी, मृत पशुओं के चमड़े को उतारने की क्रिया और प्रयुक्त होने वाले उपकरणों का सूक्ष्म विवरण वे प्रस्तुत करते हैं। अंध विश्वास, भूत-प्रेत का भय, ओझाई के लटके-झटके, नाते-रिश्तों क्ली उठा-पटक, रूढ़ियों-परम्पराओं के बीच मैत्री और अदावतों की एक पूरी दुनिया आकार लेती है। इस दुनिया को ढेरों जीवंत पात्र आबाद करते हैं जिनमें विनयशील-निर्लज्ज परोपकारी, पथभ्रष्ट, भ्रांत, छिन्द्रावेषी और उदार व्यक्ति हैं। दादी मुसड़िया, दादा जूठन, पिता तेरसी, मांधीरजा, मुनेस्सर चाचा, नग्गर चाचा, हिंगुहारा, निरंजन पांडे, गिद्ध-प्रेमी पग्गल, नन्हकू पांडे, आशुकवि जोगीबाबा, नर्तकी नटनिया, खड़खड़िया बाबा, परमू चौबे, हीरालाल, लालबहादुर सिंह, चिंतामणि सिंह, तपसीराम और देवराज जैसे अनेक पात्र लेखक के आसपास के संसार को रचते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
संबंधों के विविध आयामी अनुभवों की यह दुनिया इकहरेपन से ऊपर उठ सकी है।

मुर्दहिया की अंतर्वस्तु के कुछ उज्जवल पक्ष उसे दलित आत्मकथाओं के अगले कदम के रूप में देखे जाने की मांग करते हैं। ये पक्ष हैं कुछ घटनाओं के माध्यम से प्रकाशित दलित वर्ग की जिजीविषा और उसकी संघर्षक्षमता। इसके अतिरिक्त लेखक समाजेतिहास के विकास और राजनीति में उभरती दलित शक्ति के तेवर की झलक भी प्रस्तुत करता है।

गुरबत, उपेक्षा, अपमान की घुटन में जीवन काटना मानवजीवन का अभिशाप है। बावजूद इसके विषम से विषम परिस्थितियों में मनुष्य का सौन्दर्यबोध ध्वस्त नहीं होता। वह अपने आसपास के माहौल, लोक के उत्सवों और अपने सुख-दुख को कलारूपों में बदल देता है। यह सौन्दर्य दृष्टि उसकी जिजीविषा का ही रूप है। दलित बस्ती में कितना ही दुख-दर्द क्यों न रहा हो लेकिन वहां का निवासी प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझता है और संगीत से प्यार करता है। तुलसीराम की मुर्दहिया में श्मशान जैसा अवसाद है तो जीवन के ताप से भी रस की बूंदों को खींच लेने की जीवनी शक्ति भी है। विषम परिस्थितियां भी वहां के निवासियों की सिसृक्षा को पराजित नहीं कर सकी। नोनिया जाति के जोगी बाबा तीन सतर वाली भावुकता के अद्‌भुत गायक थे। मसलन, किसी के मुंह से आंधी शब्द सुनते तो तुरंत गाते-

जइसन कहत बाड़ा आंधी
वइसल मारल गइल गांधी
बड़ ससतिया सहबा राम
बड़ ससतिया सहबा राम

पेशे से बांस के फट्टे चीरकर टोकरी चंगेरी, दउरी बनाने वाले बंकिया डोम का 'सिंघा' उनकी प्रसन्नता, आक्रोश, मस्ती को पूरे इलाके में बिखेरता तो अपने आंतरिक उत्साह से लेखक की सखी नटिनिया हर परिस्थिति में नृत्य करती। प्रकृति के इन लाड़ले पुत्रों का आत्मीय चित्रण इस कृति में कई स्थलों पर हुआ है। 'पूर' और 'घर्रा' के दौरान मोट 'छीलते' हुए, स्त्रियों द्वारा कुएं से पानी निकालते समय दलित मजदूर एक लोकगीत गाया करते थे-

ऊँचे ऊँचे कुअनां क नीची बा जगतिया रामा
निहुर के पनिया भरै हइ रे सांवर गोरिया
पनिया भरत कै हिनकर झुमका हेरैले रामा
रोवत घरवां आवैले रे सांवर गोरिया

लेखक की टिप्पणी दृष्टव्य है- 'इस तर्ज पर औरत के सारे आभूषणों के कुंए में गुम हो जाने का वर्णन हो जाता है। इस प्रकार श्रम के अनेक सौन्दर्य गीत भुमखरी के शिकार दलितों के जीवन के अभिन्न अंग हैं, जो किसी कालिदास या जयदेव के बस की बात नहीं थी।'

लेखक की इन टिप्पणियों में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि हमारी कलात्मक विधाओं के विकास में श्रमजीवी वर्ग का अतुलनीय योगदान है। भारतीय लोक संस्कृति के अनंत विस्तार में दलित वर्ग की सौन्दर्य दृष्टि का टटकापन उपस्थित है। जिस मानव समूह को उपेक्षा की नजरों से देखा जाता रहा है उसकी संगीत शैलियाँ, कथा गायन की अनोखी कला और नाट्यविधा समय की कसौटी पर स्वर्ण रेखा की तरह चमकती है। अधिकांश दलित आत्मकथाएं दलित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वर्ग के इस अद्‌भुत दाय का रेखांकन या तो नहीं कर सकी हैं या अल्प मात्रा में ही की हैं।

धोबियउआ नाच, चुड़िहारिनों और गोदना गोदने वालियों के, फेरी लगाते समय गाये जाने वाले व्यावसायिक गीतों में जन-मन की सहज सौन्दर्य दृष्टि पर लेखक मुग्ध होता है। टुंटवा के नाच का दिलचस्प वर्णन भारतीय लोक नाट्य की समृद्ध परंपरा की ओर संकेत करता है। लोक में हास्य-व्यंग्य के माध्यम से गंभीर कटाक्ष करने की क्षमता होती है। चुनाव के समय नेताओं की दीनता पर टुंटवा इस तरह व्यंग्य करता है-

हम्मै देदा देदा वोट भैया हम्मै देदा वोट
दउरत दउरत फटि गइली कोट
भैया हम्मै देदा वोट
ले ला दस रुपया के नोट
भैया हम्मै देदा वोट
बोलत बोलत सुखि गइलै हैं होठ
भैया हम्मै देदा वोट

कोहबर की चित्रकला की बाबत तुलसीराम लिखते हैं- 'एक विशेष बात यह थी कि इन कोहबर कलाकृतियों का प्रचलन सवर्ण जातियों में नहीं था। इन परंपराओं से जाहिर होता है कि सदियों से चला आ रहा दलितों का यह बहिष्कृत समुदाय एक अलौकिक कला एवं संगीत का ना सिर्फ संरक्षक रहा बल्कि वाहक भी रहा।'

मुर्दहिया में दलित वर्ग के आक्रोश और संघर्ष का वर्णन भी है जो राजनीति में उनकी भावी भूमिका का प्रारंभिक रूप था। दलित बस्ती के लोग जब ब्राह्मण वर्ग की अति का विरोध क ॐने के लिये लामबंद होते तो स्त्रियां उसमें बराबरी की भागीदार होतीं। वे गाय की पसलियों को तलवार की तरह पकड़ कर लड़ने के लिये तैयार होतीं जिससे ब्राह्मण बेहद डरते थे। सामान्यत: दलितों के पिटने के प्रकरण ही प्रमुखता से बयान किये जाते रहे हैं। मुर्दहिया के केन्द्र में भी यही यातना है लेकिन इतिहास के दबाव से मिली हीनता ग्रंथि से उबर कर दलितों की अपनी ताकत के अहसास के संकेत भी इसमें हैं।

बीसवीं सदी के छठवें-सातवें दशक तक दलित अस्मिता के उभार के हल्के संकेत मिलने लगे थे। 1964 में दसवीं की परीक्षा देने के लिये लेखक चंद्रेसर के जिस महाविद्यालय में गये वह ठाकुरों के लड़ाई-झगड़े के लिये बदनाम था। वहां हीरालाल ने लेखक को ना केवल झापड़ मारे बल्कि धमकी दी कि वह लेखक को परीक्षा नहीं देने देगा तब रूपराम ने, जो स्वयं दलित थे, अपनी बस्ती के साथियों के साथ लाठी के जोर पर परिस्थिति का मुकाबला किया। परिणामस्वरूप हीरालाल दुबक कर रह गये। यह दलितों के नये तेवर थे।

दलितों की 'बारह गांवा' पंचायत के प्रभाव का वर्णन भी लेखक ने किया है। सातवें दशक में उत्तर प्रदेश की राजनीति में जगजीवनराम का प्रभाव भी बढ़ा। तुलसीराम अपनी पीड़ाओं का अतिक्रमण कर अपनी स्मृति में गतिशील इतिहास की हलचलों में प्रवेश करते हैं जहां अतीत और वर्तमान की क्रमबद्धता है। इतिहास की शक्तियों की समझ के साथ वे बुद्ध, मार्क्स और आंबेडकर के पास जाते हैं। भारत-रूस मैत्री के परिणामस्वरूप नेहरू के समाजवादी रुझान और कंम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
परिचय होना दलित वस्तु के लिये नई चेतना और आशा की किरण के रूप में चित्रित है। मुन्नर चाचा सामूहिक खेती को समोही खेती बोलते थे। दलित नेता डांगे को 'डंगरिया' और नम्बूदरीपाद को 'नमरिया' कहते थे और उन्हें 'फैरबाज' नेता मानते थे।

तुलसीराम अपने जीवन की कथा को भारत के राजनैतिक-सांस्कृतिक इतिहास के संदर्भ में देखते हैं। यह ना तो त्वरित प्रतिक्रिया है और ना ही व्यक्तिगत आक्रोश। वे व्यवस्था के चरित्र की परतों को खोलने का प्रयास करते हैं। आज के भारतीय चुनाव के हर स्तर पर पैसे, शराब और बाहुबल का बेशर्मी से इस्तेमाल होता है। इसकी शुरुआत बहुत पहले हो चुकी थी। 1962 के चुनाव में लेखक के पिता को बाबा हरिहरदास ने स्वामी करपात्री की पार्टी रामराज्य परिषद को वोट देने के लिये दो रुपये दिये। ध्यातव्य है कि ये वही करपात्री हैं जो सती प्रथा और बाल विवाह को हिन्दू संस्कृति का अंग मानते थे। विधवा विवाह और विश्वनाथ मंदिर में शूद्रों के प्रवेश के वे घनघोर विरोधी थे किंतु चुनाव जीतने के लिये वे दलितों के वोट अवश्य चाहते थे।

तुलसीराम ने अपने जीवन की कई घटनाओं की तुलना बौद्ध साहित्य की कथाओं से की है। यह अपनी सांस्कृतिक परंपरा की पड़ताल तो है ही और कहीं कहीं प्रछन्न प्रश्न भी कि चेतना के विकास में हमारा समाज, हजारों वर्ष के बाद भी, किस सीढ़ी पर है। आजादी के दस वर्ष बाद भी तुलसीराम की प्रायमरी की पढ़ाई पेड़ों के नीचे बैठकर हुई। वे अपनी त्रासदी को इस रूप में गौरवान्वित करते हैं- 'वर्षों बाद यह समझकर बड़ी संतुष्टि की अनुभूति हुई कि पूरा का पूरा भारतीय दर्शन ही पेड़ों के नीचे सोचा गया था, जिनमें सर्वोपरि थे गौतम बुद्ध जिन्होंने निर्वाण यानी हमेशा के लिए दुखों से छुटकारा पाने की विधि एक पेड़ के नीचे ही ढूंढ निकाली थी।'

बबुरा घनहवा गांव में पोखर में नहाने से मना किये जाने की घटना के संदर्भ में लेखक महाकवि शूद्रक के नाटक मृच्छकटिकम के उस प्रसंग को याद करके अपनी पीड़ा का शमन करते हैं जब बौद्ध भिक्षु पोखर से नहाकर लौटता है तो शकार उसे मारते हुए कहता है-जिस तालाब को राजा ने कुत्तों और सियारों के पानी पीने के लिये खुदवाया था, उसमें तुम अपनी दुर्गन्धित काया और गंदे चीवर को धोकर आ रहे हो।' अपनी भाभी के मनोरोग की तुलना वे विनय पिटक के भैषज्य स्कंधक की कथा से करते हैं और टुंटवा के नाच का स्मरण करते हुए वे बुद्ध के समकालीन तालपुर नाटककार को याद करते हैं। मुर्दहिया से भागते समय की मन:स्थिति को तौलते हुए उन्हें लगता है कि उनके लिये नटिनिया गौतमबुद्ध की आम्रपाली की तरह थी और उनका भागना चे ग्वेवारा का क्रांति के लिये जंगलों की ओर चले जाने की तरह था। चिंतामणि सिंह के घर के बाइस जोड़ी बैलों को याद करके वे सुत्तपिटक के उस ब्राह्मण की दिलचस्प कहानी का स्मरण करते हैं जो कोसलक्षेत्र में रहता था और जिसके चौदह बैल चोरी हो गये थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज की बदलती मानसिकता के संकेतों को भी वे अपनी आप बीती में शामिल करते हैं। वे उन सवर्णों को पूरी आत्मीयता से याद करते हैं जो उनके अध्ययन के प्रयासों में सहायक बने। यदि हीरालाल जैसे आक्रामक और धुर्त व्यक्ति उनका अपमान करते थे तो दारुखोर लालबहादुर सिंह उन्हें अपने एक्का पर बैठाकर शराबखाने ले जाते थे। महेन्द्र सिंह और चिंतामणि सिंह को भी लेखक सम्मान के साथ रेखांकित करता है जो उसे सुविधाएं प्रदान करते थे और चाहते थे कि लेखक उन्हें भी पढ़ा कर किसी तरह उनके उत्तीर्ण होने का मार्ग भी प्रशस्त करे। लेखक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के ऐसे कुछ मित्र और शिक्षक कोई वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं थे। उनका मैत्रीभाव और सहानुभूति व्यक्तिगत स्तर पर थी किंतु यह समाज की बदलती हुई मानसिकता को अवश्य प्रतिबिंबित करती है।

'मुर्दहिया' का अंतिम अध्याय 'आजमगढ़ में फाकाकशी' इस मानी में महत्वपूर्ण है कि यह एक संघर्षरत दलित युवा के वृहत्तर समाज में प्रवेश करने के अथक प्रयास और ऐसे मोड़ पर आकर ठहर जाने की विवशता को दर्शाता है जहां अनिश्चय और आशंका का मंज़र है। किशोर जीवन की हलचलों से निकलकर तुलसीराम आजमगढ़ के डी.ए.वी. कालेज और अंबेडकर छात्रावास में पहुंचकर सातवें दशक के भारत के राजनैतिक रुझानों से प्रथम परिचय प्राप्त करते हैं। सही-गलत अनुभवों से गुज़र कर जीवन के विविध रूपों को देखकर हैरान होते हैं। जिस अंबेडकर छात्रावास में उन्हें स्थान मिलता है, वे पाते हैं कि उसके दलित मैनेजर 'महाभ्रष्ट' रहे हैं।

उन्हें भूखे रहने का अनुभव होता है जहां ढुक्कू की पकौड़ियां डूबते को तिनके का सहारा बनती हैं। वे कॉलेज में हिन्दुत्ववाद के उस रूप को देखते हैं जो 'हिन्दुत्व की उग्रवादी पाठशाला' थी। उन्हें डॉ. अंबेडकर के विषय में पहली बार जानकारी होती है। पहली बार बिना टिकिट यात्रा का अनुभव प्राप्त कर पहली बार बी.एच.यू. का परिसर देखते हैं और भविष्य में वहां पढ़ने का सपना मन में पालते हैं। पहली बार एक मकान की बंद खिड़की की फांक से बाई जी के नृत्य को देखने का प्रयास करते हैं और अपमानित होते हैं। वे दोस्त के कथन की सूचना देते हैं 'चालीस-पचास साल बाद सोचि के देखबा, त बड़ा मजा आई।' वे इस कथन की सचाई को स्वीकार करते हैं और 'विनय पिटक' में वर्णित 'भद्रवर्गीय कथा' में नया अर्थ तलाशते हैं। आजमगढ़ में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जुलूसों में लगाये जाने वाले नारे 'तीन पाव का राशन है, बड़ा निकम्मा शासन है' की बाबत तुलसीराम की टिप्पणी है- 'सन् 1964-65' में लगाया जाने वाला यह नारा एक बड़ी महंगाई की तरफ इशारा करता था।' वे ईसाई बनने की सोचते हैं। कमला सर्कस और गुलाब बाई की नौटंकी देखते हैं और नक्सलवादी सुखनंदन और अपने दलित मित्र तपसीराम का आश्वासन पाकर अपने सपने को जीवित रखते हैं।

तुलसीराम की इस आत्मकथा का अंतिम अध्याय, दो महत्वपूर्ण संकेतों के साथ समाप्त होता है। पहला तो यह कि तुलसीराम का गहरा विश्वास बुद्ध की करुणा में है। यह विश्वास उनकी लेखन शैली और चरित्रों का विश्लेषण एक विशेष रूप देता है। मन की कटुता और आक्रोश को जीतकर गतिमान समय में अपने हिस्से को पाने की तैयारी की कथा कहना तुलसीराम का लक्ष्य है। दलितों को मिलने वाली स्कालरशिप के रूप में लेखक को 162 रुपये मिले थे। अपने को लेखक का घनिष्ठ मित्र बतलाने वाले देवराज सिंह ने सुनसान मैदान में उसके सीने पर रामपुरी चाकू अड़ाकर आधे रुपये ले लिये। लेखक आज भी अपने मित्र के इंतजार में है- 'इस घटना को बीते 45 साल हो गये। देवराज सिंह से कभी मुलाकात नहीं हुई। कभी मिल गये तो मैं उनका स्वागत पकौड़ियों से अवश्य करूँगा।'

किताब का अंत मुझे प्रतीकात्मक लगता है।.एक साधनहीन दलित छात्र इंटर फाइनल की परीक्षा देकर उच्चशिक्षा प्राप्त करने की चिंता में बनारस की बस पकड़कर आजमगढ़ छोड़ रहा है। दूसरी ओर कचहरी के पास एक व्यक्ति डमरू बजाकर भीड़ एकत्र करके मर्दानगी की दवा बेच रहा है।

क्या यही हमारे समय का सच नहीं है?

ए-5, मैत्री विहार
महावीर नगर, रायपुर (छग)-492001
मो. 9977137809

Digitized by Sarayu-Siyam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दलित आत्मकथा में दलित स्त्री

कृपाशंकर चौबे

डा. तुलसीराम की ख्याति विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन, अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध आंदोलन, रूसी मामलों, दलित राजनीति तथा साहित्य में विलक्षण विशेषज्ञता रखने वाले विद्वान के रूप में है। वे उन मार्क्सवादी चिंतकों में हैं जो अंबेडकर को भी अपना नायक मानते हैं। त्रिपुरा के दलित कवि अनिल सरकार की तरह डा. तुलसीराम भी अंबेडकर को धरती और मार्क्स को आकाश मानते हैं। 'अंगोला का मुक्ति संघर्ष', 'सीआईए: राजनीतिक विध्वंस का अमरीकी हथियार', 'द हिस्ट्री आफ कम्युनिस्ट मूवमेंट इन ईरान' तथा 'आइडियोलाजी इन सोवियत-ईरान रिलेशंस' जैसी बहुचर्चित किताबों के लेखक तुलसीराम इन दिनों अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' के कारण चर्चा में हैं। यह आत्मकथा अब तक प्रकाशित दलित आत्मकथाओं से सर्वथा अलग और आगे की कृति है। यह सिर्फ तुलसीराम की, उनके परिवार की तथा जातिगत समाज की कथा नहीं है, बल्कि समूचे समाज की धड़कन इसमें सुनी जा सकती है। इसमें एक कालखंड का पूरा लोकजीवन अभिव्यक्त हुआ है। मुर्दहिया जितनी तुलसीराम की कथा है, उतनी ही तुकबंदी बनाकर गानेवाले जोगीबाबा, लक्कड़ ध्वनि पर नृत्य करनेवाली नटिनिया, गिद्ध प्रेमी पग्गल बाबा और सिंघा बजाते बंकिया डोम की भी।पूरी किताब में कहीं भी व्यक्तिगत अथवा सामाजिक प्रसंग एकतरफा ढंग से अभिव्यक्त नहीं हुए हैं। तीन साल की उम्र में चेचक के गहरे प्रकोप के कारण तुलसीराम के पूरे शरीर में गहरे-गहरे घाव के दाग पड़ने और विशेष रूप से उनके चेहरे के इन दागों का भंडारण क्षेत्र बनने का वृतांत शुरू में ही दिया गया है। परिवार में अंधविश्वास का विवरण भी है जिसका आलम यह था कि दादी हमेशा बालक तुलसीराम के चेहरे पर हाथ फेरकर चमरिया माई की विनती करतीं। जैसे-जैसे तुलसीराम बड़े होते गए, उनका अपमान वृहद होता गया। घर में सबसे छोटा होने के कारण उन्हें गोद में लेकर खेलाने की पहले होड़ लगी रहती थी किंतु चेचक के बाद सब कुछ बदल गया। उसी दौरान यानी बचपन में ही तुलसीराम की एक आंख की रोशनी चली गई थी। जिस आंख से वे देख सकते थे, उसे बंद कर सामने उंगलिया फैलाकर उसे गिनती करने के लिए चचेरे भाई व चाचा तुलसीराम से कहते और गिनती बताने परकहते-कनवा बड़ा तेज हौ। इस तरह तुलसी का उपहास घर के सदस्य ही उड़ाते। इससे बालक तुलसी को बड़ी मानसिक पीड़ा होती। इन पीड़ाओं में उनका सारा बचपन विलुप्त हो गया। दलित बस्ती में कोई पढ़ा-लिखा नहीं था। गांव में ब्राह्मण ही पढ़े-लिखे थे। वे दलितों की चिट्ठियां पढ़ने में आनाकानी करते। बालक तुलसीराम को चिट्ठी पढ़ने लायक बनाने के उद्देश्य से प्राइमरी स्कूल भेजा गया। 1954 में। तब तुलसी की उम्र पांच साल की थी। स्कूल में जातिगत भेदभाव से बालक का सामना हुआ। कक्षा के सभी दलित बच्चों को एक पांत पर बिठाया जाता। कोई सवर्ण बच्चा इन दलित बच्चों को छूता तक नहीं था। मुंशी मास्टर जी दलित बच्चों को चमरकिट कहकर अपना गुस्सा प्रकट करते। सवर्ण सहपाठियों में एक मात्र संकठा सिंह थे जो तुलसीराम से आत्मीयता रखते थे।

पांचवीं तक पढ़ते हुए तुलसीराम सबसे तेज गणित में थे किंतु छठवीं से अंग्रेजी में उनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिलचस्पी बढ़ गई। राहुल सांकृत्यायन के बारे में पारसनाथ पांड़े नामक शिक्षक ने दिलचस्पी पैदा की। बचपन में राहुल जी का घर से भागना, कम्युनिस्ट के रूप में रूस में रहना, गोमांस खाना, हिंदू धर्म का विरोधी होना और 'वोल्गा से गंगा' जैसी रचना लिखना आदि ऐसी जानकारियां थीं कि उनके प्रति तुलसीराम बेतरह आकृष्ट हो गए। नौवीं कक्षा में ही गौतम बुद्ध पर एक अध्याय था। बुद्ध के चरित्र ने भी तुलसीराम को बहुत प्रभावित किया जिनके ज्ञान का मुख्य निचोड़ था-दुनिया में दु:ख है, दु:ख का कारण है,दु:ख का निवारण है तथा दु:ख निवारण का मार्ग है। यही चार आर्य सत्य कहलाए। दु:ख निवारण के मार्ग के रूप में उन्होंने प्रज्ञा, शील, समाधि से जुड़े आष्टांगिक मार्ग-सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प,सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक्जीविका, सम्यक्प्रयत्न, सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि का प्रचार किया।

लालबहादुर सिंह के साथ शराब पीने, चिंतामणि सिंह द्वारा पढ़ाने के बदले भोजन का प्रबंध करने और शिक्षक सुग्रीव सिंह द्वारा हाईस्कूल के फार्म भरने के लिए तीस रुपए देने को बहुत कृतज्ञता से तुलसीराम ने याद किया है। आज समूची की समूची हिंदी पट्टी जातियों में बंटी हुई है। दलित के साथ भेदभाव और उत्पीड़न जितना बड़ा यथार्थ है, उसी के समानांतर सुग्रीव सिंह जैसे सवर्णों का दलित के प्रति सद्व्यवहार और सहयोग को जिस ढंग से तुलसीराम ने लिपिबद्ध किया है, उसी के कारण उनकी आत्मकथा कहीं भी एकांगी नहीं बनती। एक तरफ हीरालाल हैं जो हमेशा तुलसी को चमरा-चमरा कहते हैं। इसी तुलसी ने कई सवर्ण सहपाठियों को पढ़ाया और हाईस्कूल में खुद टाप किया। फिर आजमगढ़ के डीएवी कालेज से इंटर किया। तुलसीराम अपनी सीढ़ी खुद बने और उस पर ऊपर चढ़े।

इस आत्मकथा में दलित स्त्री का जो वर्णन है, वह अपनी मार्मिकता में बेजोड़ है। पहली दलित स्त्री हैं तुलसीराम की दादी, दूसरी दलित स्त्री हैं, उनकी मां और तीसरी दलित स्त्री है नटिनिया। तुलसीराम के अंग्रेजी ज्ञान से नटिनिया उनकी तरफ आकृष्ट हुई थी। नटिनिया उनसे अंग्रेजी में कुछ-कुछ बोलना सीख भी जाती है। जब तुलसीराम इंटर करने के लिए गांव छोड़कर आजमगढ़ जाने लगते हैं तो उनसे नटिनिया पूछती है-अब लौटिके ना अइबे का रे बाबू? इस सवाल में वह जो कहती है, उससे ज्यादा अनकहा रखती है। नहीं कहकर भी वह बहुत कुछ कह जाती है। दूसरा दलित चरित्र तुलसीराम की मां हैं। तुलसी जब नौवीं में पढ़ते तो उनके भोजन के लिए उनकी मां अधपेटवा खातीं और आधा खाना बेटे के लिए रखतीं। उस ममतामयी मां को कितनी तकलीफें सहनी पड़ती थीं, इसका विवरण भी तुलसीराम ने इस तरह दिया है- 'मेरी मां बस्ती के किसी भी व्यक्ति से बात करतीं तो पिताजी तुरंत उसके चरित्र पर उंगली उठाना शुरू कर देते। पिताजी अक्सर मां को फरुही से मारने दौड़ पड़ते। एक बार उन्होंने मां को मारने के लिए फरुही उठाया कि मैंने पिता को एक तमाचा मारा। उस घटना के बाद पिताजी मां को मारने से बचने लगे।' इस घटना से यह पता चलता है कि दलित परिवारों में भी स्त्री के प्रति वही सलूक होता है जो सवर्ण परिवारों में। दलित स्त्रियां हाड़तोड़ मेहनत करती हैं, खेतों में मजूरी करती हैं, घर के सारे काम करती हैं और मर्दों की मार भी उन्हें खानी पड़ती है। इस आत्मकथा में सबसे

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महत्वपूर्ण स्त्री पात्र तुलसीराम की दादी है। इस आत्मकथा से पता चलता है कि विभिन्न रोगों के इलाज का उन्हें कितना गहरा ज्ञान था। खास तौर पर वनस्पतियों से किए जानेवाले इलाज का। लेकिन वही दादी अंधविश्वासी भी थीं। उस अंधविश्वास को जस का तस तुलसीराम ने लिपिबद्ध किया है। मुर्दे पशुओं का मांस निकालने के लिए दलित स्त्रियां ही आगे आतीं। मुर्दहिया यानी गांव की मुर्दे जलाए जानेवाली जगह। मुर्दहिया मनुष्य तथा पशु में कोई फर्क नहीं करती थी। मुर्दहिया दलित बस्ती की जिंदगी थी। किसी की गाय, भैंस या बैल मर जाता तो दलित ही उसका चमड़ा निकालते और उसके बाद गंड़ासे और कुल्हाडियों से काट-काटकर उसका मांस बांस से बनी हुई टोकरियों में भरकर घर लाते। मांस काटने का काम प्रायः दलित स्त्रियां करती थीं। तुलसीराम की दादी मांस के कुछ हिस्से को आवश्यकतानुसार तुरंत पकातीं किंतु अधिकांश बचे हुए कच्चे मांस को कई दिनों तक तेज धूप में सुखातीं। खूब सूख जाने पर कच्ची मिट्टी से बनी कोठिली में रखकर बंद कर देतीं। जब खाने का टोटा बन जाता तो उस सूखे मांस को नए तरीके से पकाकर परिवार के लोग अपना पेट भरते। अकाल के समय दलित घरों में चूल्हा नहीं जलने का मार्मिक चित्रण पुस्तक में किया गया है। अकाल के समय धोबियों पर तो जैसे कहर ही टूट पड़ता क्योंकि उन्हें काम के बदले सिर्फ अनाज मिलता और अकाल के कारण वह मिलना भी बंद हो जाता। इस आत्मकथा में लेखक बताता है कि दलित स्त्री को कितना सहना पड़ता है। इस किताब की विशेषता यह भी है कि दलित स्त्रियों के प्रति लेखक जितना संवेदनशील है, उतना ही सवर्ण स्त्रियों के प्रति भी। तभी तो ब्राह्मण घर की लड़की आशा को नाला पार कराने के कारण तरह-तरह की अफवाहें उड़ीं और अंततः आशा की पढ़ाई छूट गई और वह ब्याह दी गई तो इस संदर्भ का वर्णन करते हुए तुलसीराम लिखते हैं- 'मेरे जैसा गुलाम पुत्र यदि शिक्षा से इतना कुछ हासिल कर सकता था तो फिर मालिक पुत्री न जाने कितना आगे जाती ?' यह पंक्ति एक चीख बन जाती है।

तुलसीराम के पिता के भाई बारहगांवा के चौधरी थे। बारह गांवों के दलित अपनी किसी समस्या के समाधान के लिए चौधरी की पंचायत में ही आते। उस पंचायत में ही कुजाति भी छांटा जाता या कुजाति से मुक्त भी किया जाता था। यौन संबंध या डांगर खाने के मामलों में दलितों में भी कुजाति घोषित करने की परंपरा का बेधक विवरण तुलसीराम ने दिया है। यानी जिस आवेग के साथ लेखक समाज में दलितों की स्थिति और उस स्थिति की वजहों और समूचे सामाजिक परिवेश का जीवंत चित्रण करता है, उसी आवेग के साथ वह दलितों के जीवन में कुजाति छांटने से लेकर तमाम अंधविश्वासों जैसी घर कर गई विकृतियों का बेबाक वर्णन भी करता है। कदाचित इसीलिए समूचे सामाजिक परिवेश की धड़कन इस आत्मकथा में हम सुन पाते हैं। इस आत्मकथा की एक विशेषता इसकी चुस्त भाषा है। पूरी आत्म कथा का प्रवाह रवानी भरा है। शायद इसीलिए पाठक इसे एक सांस में पढ़ जाते हैं। अब पाठकों को मुर्दहिया के दूसरे खंड का बेसब्री से इंतजार है जिसमें तुलसीराम के घर से भागने के बाद कलकत्ता, बनारस तथा दिल्ली होते इंग्लैंड और सोवियत संघ की जीवन-यात्रा का लेखा-जोखा होगा।

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केन्द्र
2ए/2 बी मृगेंद लाल मित्र रोड, दूसरा तल
कोलकाता-700017
मो. 9836219078

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

* शोध पत्र में थेरियों के गीत साङ्म्स ऑफ अर्ली बुद्धिस्ट्स, मिसेज राइस डेविड्स, पाली टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन (1909) से लिये गये हैं। ** शोध पत्र में थेरीगाथा के भाष्य धम्मपाल की कमेण्टरी से लिये गये हैं।

स्त्री संघर्ष की गाथा: थेरीगाथा

डॉ. नीलिमा पाण्डेय

बौद्ध धर्म की बुनियाद तकरीबन 2600 साल पहले गौतम बुद्ध (ई.पू. 563-ई.पू. 483) के द्वारा रखी गई जो मध्य गंगा घाटी के अभिजात्य वर्ग से सम्बन्ध रखते थे।[1] इतिहासकारों में बौद्ध धर्म के तत्कालीन उत्तर भारतीय समाज पर होने वाले प्रभाव को लेकर पर्याप्त बहस हो चुकी है। बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण समाज के विभिन्न घटकों पर किया जाता रहा है। स्त्रियाँ भी इससे अछूती नहीं रहीं। कुछ इतिहासकारों की अवधारणा है कि बौद्ध धर्म ने तत्कालीन समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति को ऊपर उठाया। इस अवधारणा के मूल में गौतम बुद्ध के द्वारा स्त्रियों को बौद्ध संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति देना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्त्रियाँ गौतम बुद्ध के काल में ही संघ का हिस्सा बन गई थीं। किन्तु संघ में उनको प्रवेश देने की गौतम बुद्ध की प्रारम्भिक हिचक, उनके संघ प्रवेश से सम्बन्धित नियम, संघ में उनके आचरण को लेकर उन पर तय की गई पाबंदियाँ - यह बताती हैं कि तत्कालीन समाज की ही भाँति बौद्ध धर्म भी अपने प्रारूप में पितृसत्तात्मक सोच से प्रभावित था।[2] इस प्रभाव के बावजूद अपने प्रारम्भिक चरण में बौद्ध धर्म स्त्रियों के प्रति वैदिक धर्म की भाँति कट्टरता पूर्ण रवैया नहीं रखता था।

संघ द्वारा तय किये गये कठोर नियमों के बावजूद काफ़ी बड़ी संख्या में स्त्रियों ने गृहस्थ जीवन को त्याग संघ में प्रवेश कर भिक्षुणी बनना स्वीकार किया। निश्चित रूप से जीवन यापन के विभिन्न उपलब्ध विकल्पों में उन्हें संघ का जीवन बेहतर लगा। थेरीगाथा[3] प्रारम्भिक बौद्ध धर्म, तत्कालीन समाज और स्त्रियों के पारम्परिक समीकरण को समझने का बेहतर स्रोत है। अन्य स्रोतों की तुलना में यह इसलिये विशिष्ट है कि इसकी रचना उन्हीं स्त्रियों के द्वारा की गयी जिनका सामाजिक घटक के रूप में विश्लेषण किया जाना है। अन्यथा इतिहास में स्त्री को तलाशते हुए हमें आम तौर पर पुरुषों द्वारा रचित साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। वस्तुत: थेरीगाथा स्त्रियों के अनुभव संसार का अनूठा संकलन है जो उनके सुख-दु:ख, इच्छा-अनिच्छा, महत्वाकांक्षाओं-संवेदनाओं का परिचय हमें देता है। थेरीगाथा, नारीवाद से अनभिज्ञ ऐतिहासिक चरण के स्त्री-विमर्श को प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इन कविताओं/भजनों में स्त्रियों के सामाजिक-धार्मिक-आध्यात्मिक अनुभव कैद हैं जो मानव के विचार श्रृंखला के इतिहास को और अधिक समृद्ध बनाते हैं। साथ ही साथ स्त्रियों की दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय भी कराते हैं जिससे वे अपनी भावनात्मक कमजोरियों से ऊपर उठ सकीं और जीवन की उन विषम और अप्रीतिकर परिस्थितियों को भुला सकीं जो उनके सतत दु:ख का कारण थीं। स्त्रियों ने संघ में प्रवेश से पहले के अपने जीवन के सौभाग्य और दुर्भाग्य का खुलकर उल्लेख अपनी कविताओं/भजनों में किया है। यही उल्लेख तत्कालीन समाज में उनकी प्रस्थिति को विश्लेषित करने में हमारी मदद करते हैं। थेरीगाथा की कविताएँ थेरियों के नाम के साथ संकलित हैं। अधिकांश थेरियाँ गौतम बुद्ध की समकालीन बतायी गयी हैं। बुद्ध का समय छठी शताब्दी ईसा पूर्व है। मोटे तौर पर उसी समय के समाज का प्रतिबिम्बन इन कविताओं में है।[4]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थेरीगाथा की रचयिता स्त्रियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी वर्णों की स्त्रियाँ थीं[5] जो विभिन्न आर्थिक स्तरों वाले परिवारों से सम्बन्धित थीं। कुछ अत्यधिक अभिजात्य वर्ग से थीं तो कुछ अन्य निर्धन परिवारों से। थेरियों में चार गणिकाएँ भी थीं।[6] सर्वाधिक संख्या (23) राजपरिवारों से आने वाली स्त्रियों की थी। दूसरे क्रम में विभिन्न आर्थिक वर्गों वाली ब्राह्मण स्त्रियाँ थीं।[7] स्त्रियों के वर्ण/जाति और आर्थिक स्थिति का संघ की नजर में कोई महत्व नहीं था। संघ प्रवेश-अर्हता के निर्धारित मानकों में अच्छा स्वास्थ्य, ऋणों से मुक्त होना, दासत्व से मुक्त होना और राजकीय सेवा में न होना प्रमुख थे। अपने इस समतावादी दृष्टिकोण (Egalitarian Approach) में बौद्ध धर्म विशिष्ट था। पूर्ववर्ती वैदिक धर्म इस संदर्भ में असमतावादी था जो शूद्रों और स्त्रियों को संन्यास, अध्यात्म और मोक्ष के लिये अयोग्य समझता था। जाति और आर्थिक स्थिति की भाँति स्त्रियों की वैवाहिक स्थिति भी संघ के लिये महत्वहीन थी। थेरियों में हम अविवाहित, विवाहित और विधवा सभी प्रकार की स्त्रियों को सम्मिलित पाते हैं।

अविवाहित स्त्रियों को संघ में प्रवेश लेने से पहले माता-पिता की अनुमति लेना अनिवार्य था।[8] विवाहित स्त्रियों के लिये यद्यपि पति की अनुमति अनिवार्य नहीं थी किन्तु उसके (पति) अप्रसन्न होने की स्थिति में संघ में प्रवेश लेने के बाद विवाहिता को 'प्रायश्चित्त' करना पड़ता था।[9] जाहिर है कि संघ का 'प्रायश्चित्त' का नियम पितृसत्तात्मक समाज से ताल-मेल बिठाकर चलने के लिये था और समाज स्त्री को अपने जीवन से सम्बन्धित निर्णय लेने का अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। ऐसे उद्धरण कम ही हैं जिनमें स्त्री की इच्छा का सम्मान रखते हुए उसे संघ-प्रवेश की अनुमति दी गयी हो।

प्रायः अनुमति देने का अधिकार रखने वाले (माता-पिता एवं पति) की व्यक्तिगत इच्छा अधिक महत्वपूर्ण दिखती है। अविवाहित स्त्रियों को पारिवारिक त्रासदी, विवाह की समस्या जैसी विकट परिस्थितियों में संघ प्रवेश की अनुमति सरलता से मिल जाती थी। अभिरूपनंदा[10], उप्पलवना[11] नामक स्त्रियाँ विवाह न हो पाने की स्थिति में अभिभावकों द्वारा सहर्ष संघ में प्रविष्ट करा दी गयीं। इसिदासी[12] क्रमशः तीन वैवाहिक सम्बन्धों के असफल हो जाने पर पिता की सलाह से संघ में प्रविष्ट हुई। इसी क्रम में सुन्दरी[13] पारिवारिक त्रासदी की वजह से संघ में प्रविष्ट हुई। सुन्दरी के भाई की असमय मृत्यु से दुःखी क्रमशः उसके पिता, माता ने संघ-प्रवेश का निर्णय लिया। यद्यपि सुन्दरी की माता चाहती थी कि भाई की मृत्यु के बाद सुन्दरी पारिवारिक विरासत को सँभाले किन्तु उसने सांसारिक जीवन में अरुचि दर्शाते हुए माँ से संघ प्रवेश की अनुमति माँगी। सीहा[14], गुट्टा[15], रोहिणी[16] को माता-पिता की अनुमति पाने में किसी कठिनाई का सामना करना पड़ा हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। सुमेधा अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध संघ में प्रविष्ट हुई।[17] कुमार कश्यप की माँ को विवाह से पहले माता-पिता की अनुमति नहीं मिली। विवाहोपरान्त पति की सहमति से वह संघ में प्रवेश पा सकी।[18]

विवाहित थेरियों के लिए सहमति-असहमति के संदर्भ भी उल्लेखनीय हैं। यदि पति स्वयं संन्यास लेने का इच्छुक हो तो वह पत्नी को सहर्ष अनुमति दे देता था। इस संदर्भ में भद्दा[19] और धम्मादिन्ना[20] उल्लेखनीय हैं। भद्दा और उसका पति पिप्पली[21] एक साथ संघ में प्रविष्ट हुए। धम्मादिन्ना थेरी के पति ने स्वयं संघ में प्रवेश का निर्णय लेने के बाद धम्मादिन्ना को पर्याप्त सम्पति लेकर वापस अपने पितृकुल लौट जाने की सलाह दी जिसे अस्वीकार कर उसने स्वयं संघ प्रवेश का निर्णय लिया। इन दोनों संदर्भों में स्त्रियों के संघ प्रवेश के निर्णय परिस्थितिजन्य थे। सम्भवतः पति की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अनुपस्थिति में उन्हें सामाजिक जीवन संघ में कठोर जीवन चर्या की तुलना में अधिक विकट लगा और उन्होंने संघ की शरण ली।

सोना नामक थेरी के भी पति के संघ में प्रवेश के पश्चात भिक्षुणी बनने का संदर्भ थेरीगाथा में है। सोना[22] का उल्लेख दस बच्चों की माँ के रूप में मिलता है। पति के भिक्षु बनने के बाद संतति (पुत्र एवं पुत्रवधुओं) से मिलने वाली प्रताड़ना से त्रस्त होकर इस वृद्ध स्त्री ने संघ में प्रवेश लिया। वृद्धावस्था में संतति के द्वारा किये जाने वाले दुर्व्यवहार और अपमान का सांकेतिक उल्लेख उसकी कविता[23] में है।

खेमा[24] का उल्लेख भी विवाहित भिक्षुणियों में किया जा सकता है। वह मगध के शासक बिम्बिसार की अपने सौन्दर्य से अभिभूत आत्ममुग्धा रानी थी और व्यक्तिगत रूप से बुद्ध, धर्म, या संघ में कोई रुचि नहीं रखती थी। किन्तु चूँकि बिम्बिसार स्वयं बौद्ध धर्मानुयायी था इसलिए उसने विशेष प्रयत्न कर खेमा को दीक्षा दिलवायी। खेमा की गणना प्रबुद्ध भिक्षुणियों में की जाती है। उसकी कविता/भजन का पहला छंद (छंद संख्या-139) उसकी आत्ममुग्धता का उल्लेख करता है। खेमा का संघ प्रवेश भी स्वैच्छिक नहीं था। खेमा को दीक्षित करने की प्रक्रिया में उसके साथ किसी किस्म का दुराग्रह पूर्ण व्यवहार नहीं किया गया और बिम्बिसार के इस प्रयास ने खेमा को भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित स्थान भी दिलवाया, किन्तु फिर भी एक प्रश्न स्वतः उठ खड़ा होता है कि यदि बिम्बिसार स्वयं बौद्ध धर्मानुयायी न होता तो क्या वह खेमा को संघ-प्रवेश की सहज इजाजत देता?

दो अन्य विवाहिताओं मुत्ता एवं अनाम भिक्षुणी की कविताएँ संवेदनहीन पति के साथ चूल्हे-चौके में स्वाहा होते स्त्री जीवन का प्रतिबिम्बन हैं। मुत्ता[25] की कविता/भजन चार पंक्तियों की होते हुए भी उल्लेखनीय है जिसमें उसने चक्की, खरल और कुबड़े पति से मुक्त हो जाने की उल्लासपूर्ण भावाभिव्यक्ति की है। अनाम भिक्षुणी[26] जिसे उसके पुत्र के नाम पर 'सुमंगल की माँ' कह कर सम्बोधित किया गया है मुत्ता जैसी भावाभिव्यक्ति अपनी कविता में करती है। दोनों ही स्त्रियों के द्वारा गृहस्थी के कार्यों से बोझिल होना और पति के लिये नकारात्मक विशेषण का प्रयोग[27] यह दर्शाते हैं कि ये उनके पूर्व जीवन में दुःख का कारण थे।

थेरीगाथा में तीन विधवा स्त्रियों की कविताएँ भी संकलित हैं जो पति की मृत्यु के बाद संघ में आयीं। इनके नाम गौतमी महाप्रजापति[28] धम्मा[29] और पटचारा[30] है। गौतमी महाप्रजापति (गौतम बुद्ध की मौसी) ने गौतम बुद्ध के पिता की मृत्यु के बाद भिक्षुणी संघ की स्थापना की दिशा में विचार और प्रयास किया। उनके सतत अनुरोध के बाद अनिच्छापूर्वक गौतम बुद्ध ने स्त्रियों को संघ प्रवेश की इजाजत दी। गौतमी संघ में प्रवेश लेने वाली पहली स्त्री थीं। उन्हें गरूधम्मो[31] ;म्पहीज बीपमर्फ त्नसमेद्ध का अनुपालन करने की शर्त के साथ संघ में प्रवेश मिला था।

श्रावस्ती के संभ्रान्त परिवार में जन्मी धम्मा[32] नामक विवाहिता ने पति की सहमति न मिलने पर अतिरिक्त धैर्य का परिचय देते हुए पति की मृत्यु तक सहधर्मिणी की भूमिका का निर्वाह किया, तत्पश्चात संघ में प्रविष्ट हुई। एक अन्य अनाम भिक्षुणी के द्वारा पति की सहमति के लिये लम्बी प्रतीक्षा करने का उल्लेख थेरीगाथा में मिलता है।[33]

गौतमी महाप्रजापति और धम्मा अपने संघ प्रवेश से पहले के जीवन में गृहस्थ जीवन का निर्वहन करने वाली आदर्श-पत्नी की छवि प्रस्तुत करने वाली स्त्रियाँ हैं जो पति की इच्छा को सर्वोपरि मानती हैं। उनकी यह आदर्श छवि पुरुष प्रधान समाज के खाके के अनुरूप है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पति वि[illegible] उपजे दु:ख की वजह से संघ की शरण में आयीं। इन स्त्रियों में उब्बिरी, किसा-गौतमी और पटचारा उल्लेखनीय हैं। अपनी कविताओं में इन स्त्रियों ने संतान खोने के दु:ख का भावविह्वल वर्णन किया है।[34] किसा-गौतमी की कथा मार्मिक है। सर्पदंश से मरे पुत्र के शरीर को लेकर यत्र-तत्र भटकने का जो विवरण पालि साहित्य में मिलता है वह द्रवित करने वाला है।[35] माँ का संतति से नैसर्गिक लगाव होता है, अत: दु:ख स्वाभाविक है किन्तु संतान खोने की स्थिति में जीवन को त्रासद मान लेना एवं उससे विमुख हो जाने की अवधारणा पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री में रूढ़ की। ऐसे समाज में स्त्री की पहचान और प्रतिष्ठा परिवार, पति और संतान के संदर्भ में तय होती है। इसलिये वह स्त्री के लिये पुरुष की तुलना में अधिक मूल्यवान होते हैं जिनको खो देने पर असंतुलन स्वाभाविक है।

थेरीगाथा में मानसिक धरातल पर मजबूत स्त्रियाँ भी उपस्थित हैं। संघ में प्रविष्ट होने से पहले इन स्त्रियों ने अपनी गैरमौजूदगी में अपने बच्चों के जीवन निर्वाह एवं अविभावक की समुचित व्यवस्था की। संघा[36], सकुला[37], वड्ढा की माँ[38] और काया[39] नामक थेरियों के गीत पीछे छूट गये बच्चों का उल्लेख करते हैं। वड्ढा का गीत उस समय का उल्लेख करता है जब वह अपनी माँ से मिलने अकेला ही भिक्षुणियों के बीच चला आया।[40]

III

संघ के भीतर की चर्या भी स्त्रियों की स्थिति को रेखांकित करती है। गरूधम्मपद (Eight chief rules)[41] का भिक्षुणी संघ की स्थापना एवं संघ प्रवेश की प्राथमिक शर्त होना ही स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का द्योतक है। स्त्रियों की उपसम्पदा अभिषेक की प्रक्रिया भी दर्शाती है कि उन्हें कमतर समझा जाता था। उपसम्पदा अभिषेक के लिये इच्छुक नवदीक्षित स्त्रियों को क्रमश: भिक्षुणी एवं भिक्षु दोनों संघों से अनुमति लेनी पड़ती थी। इस नियम का केवल एक अपवाद मिलता है।[42] भद्दा कुण्डलकेशा जो पूर्व में जैन धर्मानुयायी थी, को बुद्ध ने स्वयं उपसम्पदा दी। किन्तु यह एक विशेष परिस्थिति थी। सामान्यत: दोनों संघों की सहमति अनिवार्य थी।

विनयपिटक में अनेकानेक ऐसे संदर्भ हैं जिनमें भिक्षुओं को अपनी शंकाओं-समस्याओं के शमन हेतु बुद्ध से सम्पर्क साधते हुए दिखाया गया है। इस तरह का सम्पर्क बुद्ध और भिक्षुणी संघ के बीच नहीं दिखता। ऐसा नहीं है कि भिक्षुणियों की कोई शंका-समस्या नहीं थी। किन्तु उसे गौतम तक पहुँचाने का रास्ता लम्बा और मध्यस्थता वाला था। पहले भिक्षुणियाँ अपनी समस्याओं की चर्चा आपस में करती थीं फिर उसे भिक्षु संघ के सदस्यों की मध्यस्थता से गौतम बुद्ध तक पहुँचाया जाता था। सिर्फ महाप्रजापति गौतमी ही एक ऐसी भिक्षुणी थीं जिन्हें अपवाद माना जा सकता है।[43]

भिक्षुणियों का आध्यात्मिक चिन्तन मनन के लिये एकांत और निर्जन स्थानों पर जाना वर्जित था। सम्भवत: इस निषेध की वजह एकांत स्थानों पर घट सकने वाली दुर्घटनाओं का डर था जो किसी स्त्री के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को कुचल सकती थी। उप्पलवना नामक भिक्षुणी के साथ घटी बलात्कार की घटना से इस विचार को बल मिलता है।[44] जाहिर है कि इस निषेध के लिये समाज का स्त्री के प्रति रवैया अधिक जिम्मेदार था जो सांसारिक जीवन त्याग चुकी स्त्री को भी जिंस के रूप में ही देखता था।

कुछ भिक्षुणियों के द्वारा वापस गृहस्थ जीवन में लौट जाने के भी उल्लेख हैं। संयुक्त निकाय[45]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तिस्सा नामक स्त्री के गृहस्थ जीवन में लौट जाने की बात कहता है। विनयपिटक से भी ऐसे संदर्भ मिलते हैं।[46] ये संदर्भ बताते हैं कि स्त्रियों को अनिच्छा पूर्वक संघ का सदस्य बने रहने के लिये बाध्य नहीं किया जाता था। उल्लेखनीय है कि भिक्षुणियों की तुलना में भिक्षुओं के द्वारा संघ छोड़ने के संदर्भ बड़ी संख्या में मिलते हैं। भिक्षुणियों के ऐसे संदर्भ इक्का-दुक्का ही हैं। एक बार संघ छोड़ देने के बाद वापस लौटने को लेकर संघ के नियम सख्त थे[47] और इसमें अनेक कठिनाइयाँ थीं। यही वजह होगी कि भिक्षुणियाँ भिक्षुओं की भाँति अधिक तीव्रता से निर्णय नहीं ले पायी होंगी। पुरुषों को लेकर समाज और संघ दोनों का नजरिया अधिक सकारात्मक और सहयोगी था। इसलिये भिक्षु अपने व्यक्तित्व में अधिक स्वतंत्र दिखते हैं।

सीहा[48] नामक भिक्षुणी के द्वारा किया गया आत्महत्या का प्रयास इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। सात वर्षों तक अर्हत बनने के लिये संघर्ष करने के बाद भी असफल रहने पर उसने आत्महत्या का रास्ता चुना। उसने ये कदम घोर निराशा में उठाया क्योंकि उसने ये मान लिया था कि अर्हत बनने की योग्यता उसमें नहीं थी। पालि साहित्य में कहा गया है कि 'घोर नैराश्य एवं अवसाद की स्थिति में उसने जंगल में जाकर एक पेड़ से फाँसी लगाने का प्रयास किया।' संघ में बने रहने की बाध्यता न होने के बावजूद सीहा का ये कदम सांसारिक एवं आध्यात्मिक दोनों जीवनों से उपजी निराशा का परिणाम है। (छंद संख्या-79, 80)। उसकी कविता के अंतिम छंद (छंद संख्या-80) में कहा गया है कि, 'उसी क्षण उसे ज्ञान की प्राप्ति हो गयी।'

गैर जिम्मेदार सदस्यों को बार-बार नियमों का उल्लंघन करने पर निष्कासित करने का भी प्रावधान था। पालि साहित्य निष्कासित की गयी भिक्षुणियों की कोई सूची नहीं देता। विनयपिटक से मेत्तिया[49] नामक एक भिक्षुणी के निष्कासन का संदर्भ मिलता है। मेत्तिया और भिक्षु संघ के एक सदस्य के बीच विवाद का उल्लेख करते हुए विनयपिटक में कहा गया है कि गौतम ने मेत्तिया को निष्कासित किया। पूरा विवरण कुछ इस प्रकार का है जैसे मेत्तिया भिक्षुओं के रचे किसी षड्यंत्र का शिकार हो गयी क्योंकि निष्कासन के लिये निर्धारित मानकों में से किसी का उल्लंघन उसके द्वारा किये जाने का उल्लेख साहित्य में नहीं है।[50] भिक्षुणियों के निष्कासन का सिर्फ यही एक संदर्भ है।

सामाजिक-संघिक भेदभाव से संघर्ष करती, जूझती स्त्रियों में से अनेक ऐसी हैं जिन्होंने बौद्ध संघ और धर्म में अपने लिये महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित एवं सम्मानित स्थान प्राप्त करने का गौरव हासिल किया। इनमें सुक्का ने एक योग्य उपदेशक के रूप में अपनी पहचान बनायी।[51] पटचारा विनय (पिटक) की जानकार थी। उसने अनेक स्त्रियों को बौद्ध धर्मानुयायी बनाया।[52] धम्मादिन्ना[53], विशाखा[54] अन्य प्रबुद्ध स्त्रियाँ थीं। खेमा[55] का योगदान भी उल्लेखनीय है। इन सभी स्त्रियों को अपनी योग्यता और प्रबुद्धता को दर्शाने का अवसर महाप्रजापति गौतमी के सतत् प्रयासों से मिला। स्त्रियों के प्रति सदेच्छा की भावना ही उनका सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान है जिसने तमाम स्त्रियों के निराश जीवन में आशा का संचार कर उनके जीवन को एक नयी दिशा दी और इतिहास में स्त्रियों को अपनी पृथक पहचान भी।

बी-3/84, विशालखंड- 3 गोमती नगर, लखनऊ

मो. 09452464672

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ:

1. रेइले, केविन, वर्ल्ड्स ऑफ हिस्ट्री: अ कम्प्रेहेन्सिव रीडर, वाल्यूम-1, न्यूयार्क, सेन्ट मार्टिन्स प्रेस। 2. चुल्लवग्ग, i, 1, 4। 3. थेरीगाथा बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा संघ प्रवास के दौरान लिखी गयी कविताओं का संकलन है। बौद्ध साहित्य में इसे सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय के नवें खण्ड के रूप में संकलित किया गया है। कविताओं की कुल संख्या 73 है। थेरवाद सम्प्रदाय से सम्बन्धित होने की वजह से इन भिक्षुणियों को थेरी कहा गया है। यह बौद्ध धर्म का प्राचीनतम सम्प्रदाय है। 4. इन गाथाओं को ई.पू. 80 में संकलित किया गया। 5. विनय पिटक, पृ. 272; विनय पिटक में कहा गया है कि चार कुलों - खत्तिय, ब्राह्मन, वेस्स और सूद्द - की स्त्रियों ने संघ में प्रवेश लिया। 6. गणिकाओं के नाम अद्धकाशी (थेरीगाथा-XXII), अभय की माँ (थेरीगाथा-XXIV), विमला (थेरीगाथा-XXXIX) और आम्बपाली (थेरीगाथा-LXVI) मिलते हैं।

7. संघ में प्रविष्ट ब्राह्मण स्त्रियों के तीन वर्ग मिलते हैं -

(i) प्रभुत्वशाली परिवार - 7 स्त्रियाँ, (ii) सामान्य परिवार - 9 स्त्रियाँ, (iii) निर्धन परिवार - 2 स्त्रियाँ

8. महावग्ग, i, 54; चुल्ल वग्ग, X, 17, 1 विनय पिटक के महावग्ग में कहा गया है कि अविवाहित स्त्रियों के लिये संघ में प्रवेश लेने से पहले माता-पिता की अनुमति अनिवार्य थी। 9. विनय पिटक, IV, पृ. 334-35, 10. थेरीगाथा* - XIX, 11.थेरीगाथा - LXIV, 12.थेरीगाथा - LXXII, 13.थेरीगाथा - LXIX, 14. थेरीगाथा - XI पर भाष्य** 15. थेरीगाथा - LVI पर भाष्य, 16. थेरीगाथा - LXVII, 17. थेरीगाथा - LXXII, 18. अंगुत्तर निकाय - i. XIV, 19. थेरीगाथा - XXXVII, 20. थेरीगाथा - XII पर भाष्य, 21. डेविड्स, मिसेज़ राइस; साज़्म्स ऑफअर्ली बुद्धिस्ट्स; पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1909, पृ. 48, 22. थेरीगाथा - पर भाष्य; देखें संदर्भ संख्या-23, 23. थेरीगाथा - XLV, छंद संख्या-102, 103, 24. थेरीगाथा - LII, 25. थेरीगाथा - XI, 26. थेरीगाथा - XXI, 27. मुत्ता ने अपने पति के लिये 'कुबड़ा' शब्द का इस्तेमाल किया है। सुमंगल की माँ ने अपने पति को 'पाशविक' कहा है।, 28. थेरीगाथा - LV, 29. थेरीगाथा - XVII पर भाष्य, 30. थेरीगाथा - XLVII पर भाष्य, 31. X, 1, 4, 32. थेरीगाथा - XVII छंद-17, 33. थेरीगाथा - I छंद-1; पर भाष्य, 34. उब्बिरी, थेरीगाथा - XXXIII; किसा-गौतमी, थेरीगाथा LXIII; पटचारा, थेरीगाथा-XLVII, 35. थेरीगाथा-LXII पर भाष्य'', 36. थेरीगाथा-XVII छंद संख्या-18, 37. थेरीगाथा-XLIV छंद संख्या-98, 38. थेरीगाथा-LXII देखें संदर्भ संख्या-40, 39. थेरीगाथा-LXVII, छंद संख्या-300, 302, 303, 40. छंद संख्या-204, 41. चुल्लवग्ग, X 1, 4, 42. थेरीगाथा-XLVI पर भाष्य, 43. विनय पिटक, III पृ. 234-35, 44. थेरीगाथा-LXIV यद्यपि इस कविता में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। हॉरनर, आई.बी., वुमन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, नई दिल्ली, 2007 (रिप्रिंट) मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 155; मरकॉट, सूजन, द फर्स्ट बुद्धिस्ट वुमन, बर्कले, 1991, परालैक्स प्रेस। 45. संयुक्त निकाय, XVI 10-11, 46. विनय पिटक, IV पृ. 235-36, 47. चुल्लवग्ग, X 26, 1 एवं 2, 48. थेरीगाथा-XL, 49. विनयपिटक, IV पृ. 235-36, 50. विनय पिटक, IV पृ. 210-220, दोतरफा शारीरिक आकर्षण, किसी भिक्षु से शारीरिक सम्पर्क (गले से घुटने के बीच), किसी भिक्षु के साथ एकांत स्थान पर प्रवास, किसी अपराध को छिपाना, सजा पाये किसी भिक्षु का अनुकरण, उत्तरदायित्वों को नजरअंदाज करना आदि कुछ ऐसे कारण थे जो संघ से निष्कासन की वजह बताये गये हैं। विनय पिटक ऐसे अनेक भिक्षुओं के संदर्भ देता है जो भिक्षुणियों के माध्यम से अपनी यौनेच्छा के शमन का प्रयास करते थे। सुन्दरीनंदा नाम की एक भिक्षुणी का उल्लेख विनयपिटक (IV 216) में मिलता है जो गर्भवती हो जाने की वजह से संघ छोड़ने को बाध्य हुई।, 51. थेरीगाथा-XXIV पर भाष्य, 52. थेरीगाथा-XLVII पर भाष्य, 53. थेरीगाथा-XII पर भाष्य, अंगुत्तर निकाय, i पृ. 25, 54. थेरीगाथा-XIII पर भाष्य, 55. थेरीगाथा-LII पर भाष्य।

अन्य सन्दर्भ:

1. द थेरीगाथा, संपादित, हरमन ओल्डेनबर्ग एवं रिचर्ड पिशेल, लंदन 1883, पाली टेक्स्ट सोसाइटी, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस। 2. वुमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, आई.बी. हार्नर, नई दिल्ली, 2007 (रिप्रिन्ट), मोतीलाल बनारसी दास। 3. वुमेन एण्ड रिलिजन (वाल्यूम III), संपादित एमन एम. अहमद, इस्ताम्बुल, टर्की, 1998, हेनरिख बॉल फाउण्डेशन। 4. वुमन अंडर फुटस्टेप्स ऑफबुद्धा, कैथरीन आर. ब्लैक स्टोन, नई दिल्ली, 2000, मोती लाल बनारसी दास। 5. वुमेन इन इण्डियन सोसाइटीज़, संपादित, कुमकुम रॉय, नई दिल्ली, 2005, मनोहर।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थेरीगाथा-XIX : अभिरूपनंदा

थेरीगाथा XIX के भाष्य में अभिरूपनंदा का उल्लेख एक आत्ममुग्ध स्त्री के रूप में किया गया है। उसका संघ में प्रवेश उसकी स्वयं की इच्छा के विपरीत माता-पिता की मर्जी से होता है। उसके लिए चुने गए वर चाराभूत की आकस्मात मृत्यु इसका प्रमुख कारण है। बौद्ध संघ में भी अभिरूपनंदा की अपने रूप के प्रति आत्ममुग्धता में कोई कमी नहीं आती। अंततः गौतम बुद्ध उसे शरीर की नश्वरता का भान कराते हैं और अभिरूपनंदा अरहंत बनती है। यही अभिरूपनंदा की गाथा की विषय वस्तु है।

व्हरो नंदा
अपान रुग्ण काया संघट्ट
जो अशुद्ध है
उसके प्रति आसक्ति उचित है क्या
नंदा
धैर्य पूर्वक
शांत चित्त से करो विचार
नश्वर है शरीर
इस अप्रिय परिघटना को
समझने के लिए स्वयं को करो तैयार।
(छंद-19)
शांत चित्त से सोचो
करो चिंतन
रूप का दंभ ठीक नहीं
उसके प्रति अतिरिक्त झुकाव
उचित नहीं
जिस क्षण
मुक्त होगा मन मस्तिष्क
दम्भी विचारों से
मिलेगी मुक्ति, विजय
शांत होगा पथ।
(छंद-20)

थेरीगाथा LXIV : उप्पलवना

इस गाथा के भाष्य में उप्पलवना के कोषपाल की पुत्री के रूप में जन्म लेने का उल्लेख है। विवाह की उम्र आने पर उसके पिता को धनाढ्य एवं सामान्य सभी वर्गों के लोगों से विवाह के प्रस्ताव मिले। प्रस्तावों की अधिकता होने की स्थिति में पिता ने सोचा कि वह सभी की इच्छा पूर्ति नहीं कर सकता। अतः उसने अपनी पुत्री उप्पलवना के समक्ष संसार को त्यागने का प्रस्ताव रखा जिसे उसने स्वीकार कर लिया। थेरीगाथा में इस भिक्षुणी द्वारा रचित गाथा का अंतिम खण्ड IV का सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत मनोभावों से है। यह खंड मार और उप्पलवना के बीच संवाद के रूप में है। बौद्ध मिथकों में मार कामना के देवता के रूप में प्रसिद्ध है।

मार
तुम सी सुन्दर
रूपवती
यौवन से मदमाती
करती क्या निर्जन उपवन में
पुष्प सुगन्धित मंद पवन
तुम एकाकी
क्या डरती नहीं
प्रलोभन से
यौनाकर्षण से ? (छंद-230)

उप्पलवना
तुम क्या हो
तुम जैसे सहस्त्र प्रलोभन
अखिल विश्व के यौनाकर्षण
भी होते तो
बाल भी कर सकते क्या बाँका
यौनाकर्षण मेरा कुछ अनिष्ट कर पाए
कब संभव है ?
तुम क्या हो! (छंद-231)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थेरीगाथा LXXII : इसिदासी

यह गाथा पटना की थेरी इसिदासी द्वारा रचित है। गाथा छंद 400 से 447 के बीच है। कुछ उद्धृत छंद-

उज्जैनी जो
अवंति का सबसे बड़ा नगर है
जहाँ वास करते हैं मेरे
धर्मप्राण पिता
उनकी मैं इकलौती पुत्री,
अति प्यारी
उनके जीवन की सबसे बड़ी सम्पदा।
(छंद-405)

और तब
साकेत से आया एक नागरिक
उच्च कुल का वैभवशाली
अपने पुत्र से विवाह के लिए
माँगने मेरा हाथ
और पिता ने दे दिया मुझे
उसकी पुत्रवधू के रूप में।
(छंद-406)

मैंने प्रातः और सायं वंदना की
पति के माता और पिता की
शीश झुकाकर
प्रतिदिन छुवे उनके चरण
जैसा कि मुझे प्रशिक्षित किया गया।
(छंद-407)

मेरे पति के बंधु और भगिनियाँ भी
और सभी कौटुम्बिक
जब भी हुए प्रविष्ट
मैं उठी एक विनम्र तत्परता से
दिया आसन उन्हें।
(छंद-408)

कच्चे-पके भेजन, पेय
आदि की, करी व्यवस्था
और
सभी को उनकी आवश्यकतानुरूप
सेवा दी।
(छंद-409)

फिर
धोकर अपने हाथ-पाँव
स्वामी की सेवा में
रही उपस्थित।
(छंद-410)

लेकर शीशा-कंघा, तेल-साबुन
की उसकी साज-सज्जा देखभाल
दासी की तरह।
(छंद-411)

मैंने उबाले चावल
धोए बर्तन
और इकलौते बच्चे की माँ की तरह
अपने पति को सँवारा-दुलारा।
(छंद-412)

मेरे लिए
जिसने किया अंतहीन कठोर श्रम
और विनम्रता से दी निरंतर सेवा
शीघ्र उठी प्रातः
परिश्रमी, अच्छी, गुणी
पर न भाई उसके मन को।
(छंद-413)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

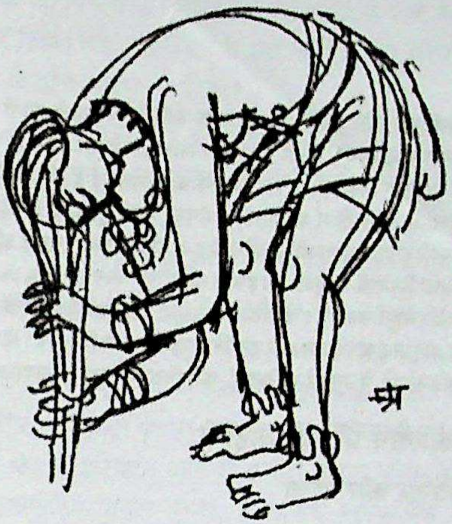

नहीं! उसने माता-पिता से कहा
अनुमति दें मुझे चला जाऊँगा
नहीं रहूँगा इसिदासी के संग
न ही उस संग
एक छत के नीचे करूँगा वास।
(छंद-414)

अरे बेटा!
अपनी बुद्धिमती भार्या के लिए
ऐसे वचन मत बोल
गृह-कार्यों में दक्ष वह एक परिश्रमी गृहणी है
फिर क्यों तेरी आँखों में
नही रहा प्रेमानुराग ?
(छंद-415)

नहीं! कोई हानि नहीं पहुँचाई उसने
फिर भी उस संग नहीं बसूँगा
उसे सहना दुष्कर मेरे लिए
जाने दो जाने दो
अनुमति दो चला जाऊँगा।
(छंद-416)

ऐसा सुनकर सास-ससुर ने
पूछा मुझसे
'किया क्या ऐसा तूने
भावनायें हुयीं आहत उसकी
क्यों कर
निर्भीक! सच बताओ बेटा'
(छंद-417)

कुछ नहीं
कोई अपशब्द नहीं
कोई हानि नही
करूँ क्या ?
पति को सख्त नापसंद मैं।
(छंद-418)

अपने पुत्र को साथ बसाने को
सास-ससुर ने
भेज दिया वापस मुझे
भाग्यहीन मैं!
(छंद-419)

पुनः पिता ने दूजी बार
वधु रूप में दिया मुझे
(छंद-420)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा पंजाबी कथा साहित्य की जानी-मानी आलोचक हैं। उनका पंजाबी एवं हिन्दी पर समान अधिकार है एवं दोनों ही भाषाओं में उनकी मूल रचनाओं की अनेक किताबें प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी से पंजाबी में और पंजाबी से हिन्दी में भाषांतर का उनका काम वृहद भी है और मूल्यवान भी। हमारी इन दो भाषाओं के बीच वे एक दुहरे सेतु की तरह हैं और दो दर्जन से अधिक किताबें दे चुकी हैं। इसके अतिरिक्त बाल-साहित्य के अनुवाद में भी उनका बहुत काम है। 'प्रगतिशील वसुधा' के लिये कहानियां जुटाने और उनका अनुवाद करने का श्रम उन्होंने विशेष रूप से किया है। हिन्दी-पंजाबी पत्र-पत्रिकाओं मे उनकी कविताएं, कहानियां व अनुवाद लगातार छपते हैं।

समकालीन पंजाबी कहानी

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

बीसवीं सदी के आठवें-नौवें दशक के दौरान पंजाब प्रादेशिक क्षेत्र में काफी उथल-पुथल रही, क्योंकि आठ के दशक में व्याप्त रहे आतंकवाद तथा परिणामस्वरूप घटे ऑपरेशन ब्लू स्टार जैसे हादसों ने पंजाब में ऐसा सन्नाटा ला दिया कि नाचता-गाता, भांगड़े-गिद्दे की तालों पर गूंजता पंजाब रुदन में लिपट गया। पंजाब नौजवानों से रीता (खाली) हो गया। अनेकों नौजवान पुलिस मुकाबलों तथा अन्धी दहशतगर्दी के शिकार हो गये। हालात यह हो गये कि जहां पहले लोग जवान बेटियों की रक्षा करते थे, अब जवान तथा किशोर पुत्रों को लुका-छिपाकर रखने लगे। इसी उथल-पुथल के कारण चौपट हुए काम-धंधों तथा सरकारी नीतियों से बचाव की खातिर लोगों ने विदेशों की ओर रुख कर लिया। इस आर्थिक संकट ने प्रवास को काफी बढ़ावा दिया। इन्हीं कारणों से पंजाबी कहानी में संकट, संताप के साथ-साथ प्रवास गये पंजाबियों में अपनी जड़ों से दूर जाने की पीढ़ी भी दिखायी देने लगी। पंजाबी कहानी का नाक-नक्शा बदलने लगा।

इस दौरान छोटे किसानों को गहरा धक्का लगा। आर्थिक नीतियों के चलते बढ़े खर्चों, पानी का संकट, भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में होता विभाजन, हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद कुछ हासिल होने की बजाय गंवाये जाने की प्रक्रिया को गति पकड़ते देख नौजवान पीढ़ी खेती के काम धंधों से मुंह मोड़ प्रवास की ओर कदम बढ़ाने को तरजीह देने लगी। जो नौजवान एजेंटों के हथकंडों तथा गैर कानूनी तरीकों से विदेशों में पहुंच कर भी, भटकते हुए, जब देश वापस लौटे तो उनके अन्दर निराशा तथा डिप्रेशन ने पक्का घर कर लिया। इसी कारण नौजवान नशे की लत में बुरी तरह से ग्रस्त होने लगे। लोग पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के चक्कर में संकटों तथा उलझनों में ग़र्क होने लगे।

पंजाब में भइया (आप्रवासी मजदूर) वर्ग के आगमन ने पंजाबी नौजवानों को और भी बेकार कर दिया। इन सभी प्रभावों का प्रभाव धीरे-धीरे पंजाबी कहानी में भी नज़र आने लगा। इस समय के युवा कहानीकारों ने मानसिक संतापों में ग्रस्त, डिप्रेशन का शिकार होते, नशे द्वारा अपने ग़मों को भुलाने का भ्रम पालते चरित्रों की रचना आरंभ कर दी। आखिर साहित्य अपने समय के सच को ही चित्रित करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धीरे-धीरे मल्टीनेशनल कंपनियों के आगमन ने सारे भारत की व्यावसायिक तथा व्यापारिक अर्थव्यवस्था को प्रभावित करना आरंभ कर दिया। बड़े-बड़े ब्रैंड, चमकते नामों अधीन ग्लैमर, सैक्स तथा स्टाइल ने सभी क्षेत्रों में अपना प्रभाव दिखाना आरंभ कर दिया।

यह सब कुछ पिछले बीस-बाईस वर्षों के दौरान घटा और जिसने पंजाबी कहानी की तमाम पुरानी परंपराओं को एकदम बदल कर रख दिया। इस दौर को पंजाबी में चौथी पीढ़ी की कहानी के तौर पर जाना-पहचाना जाता है। इस समय विषयों तथा चरित्रों के स्वभाव तथा चरित्र-चित्रण में भारी बदलाव आया है। इस लेख को विशेषत: नौजवान कहानीकारों के संदर्भ में रखकर विचारा गया है।

नौजवान पीढ़ी के कहानीकारों ने कहानी में कुछ नयापन लाने के यत्न आरंभ किये। यह नयापन तथा नवीनता कहानी के माध्यम से कैसे प्रकट हो रही है, इसे दो प्रकार से देखा जा सकता है। एक तो बीसवीं सदी के आखिरी दशक तथा इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशक के अधीन वैश्विक स्तर पर जो क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिले वे पिछले पचास-साठ वर्षों से अधिक हैरान कर देने वाले रहे। मनुष्य के जीवन के किसी एक क्षेत्र में परिवर्तन आने से उसका प्रभाव जीवन के अन्य पहलुओं पर अवश्य दृष्टिगोचर होता है। राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में टकराव आर्थिक स्तर पर आते उतार-चढ़ाव आदि के साथ मनुष्य एक ही समय में इन सभी चक्कियों में पिसता जा रहा है। इस पिसते जाने की प्रक्रिया को किसी चिंतन-मनन का नाम नहीं देना चाहिये, क्योंकि दोनों प्रक्रियाओं में ज़मीन-आसमान का अंतर होता है। पिसते जाना या निचोड़े जाना मजबूरीवश होता है, जिसकी बागडोर किसी दूसरे के हाथ में होती है, जिसमें आप व्यक्ति नहीं कठपुतली अधिक होते हैं, जबकि चिन्तन-मंथन की स्थिति मनुष्य की अपनी मानसिक अवस्था का परिचय देती है। पहली प्रक्रिया सामाजिक विश्लेषण तथा पड़ताल कहलाती है और दूसरी स्व-विश्लेषण। नौजवान पीढ़ी इन दोनों प्रक्रियाओं, पिसते तथा निचोड़े जाने व चिन्तन-मंथन, को बखूबी अपना रही है।

दूसरी बात, इन परिवर्तनों के माध्यम से नवीनता लाने के यत्न विशेष तौर से किये जा रहे हैं। यह भी संभव है कि वे स्वयं भी कहानी का हिस्सा बनते जा रहे हैं। अर्थात् संचार, टेक्नालॉजी, वैज्ञानिक सहूलियतें जिस प्रकार से अप्रत्यक्ष तौर से हमारे जीवन का हिस्सा बन हमारी आवश्यकताओं में शामिल हो गये हैं, उसी प्रकार से साहित्य में भी प्रकट हो रहे हैं। इसका जवाब सकारात्मक भी कहा जा सकता है। मगर साथ ही कही-कहीं कुछ कहानीकारों के द्वारा अपनी रचना में एक अलग आयाम प्रस्तुत करने के इरादे से भी इन्हें अपनाया जा रहा है। दूसरे शब्दों में, नवीनता के मार्ग पर चलने के यत्न प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों स्तरों पर हो रहे हैं।

अब यह देखने का यत्न करें, जिसे हम अपनी सुविधानुसार 'चौथे दौर की कहानी' से संबोधित कर रहे हैं, वह किस प्रकार की नवीनता की बात करती है। कहानी में उसके कथानक, पात्र-निर्माण, संवाद के लिहाज़ से निरख-परख करना उसके थीम-पैटर्न पर आधारित होता है, परन्तु जब हम उसका वैचारिक विश्लेषण करते हैं तो उसके विषय, विषय को निभाने के साथ-साथ जुगत के लिहाज़ से तकनीक तथा शैली पर भी ध्यान केन्द्रित करना अत्यन्त ज़रूरी होता है, क्योंकि जिस प्रकार से विषयों में तब्दीली आयी है, उसी प्रकार से उसकी रचनात्मक संरचना में भी आयी है। असाधारण मनुष्यों या आदर्शवादी व शुद्ध उच्च चरित्रों का अपना कद, उनकी उच्चता भी इतनी उच्च दर्ज़े की होती है कि उसमें किसी अन्य उच्चतम पक्ष को उभारने की आवश्यकता ही नहीं होती। उस असाधारण पात्र की असाधारणता,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कथानक, संवाद/वार्तालाप तथा चरित्र-निर्माण में हावी रहती है, जिसके अधीन अन्य सभी बातें तथा पहलू गौण रह जाते हैं या छिपे रह जाते हैं। मगर जब बात ही साधारण आदमी की कहानी, साधारण में से भी खंडित, अभिशप्त, उलझे, अर्द्धचेतन जैसी मानसिकता वाले पात्रों की करनी पड़ रही हो तो फिर? फिर उनमें से कोई तो असाधारणता ढूंढनी पड़ेगी या उभारनी पड़ेगी। तब साधारण तथा लकीर की भांति सीधी सरल स्पष्ट रखी गयी कहानी प्रभावहीन हो जाती है। इन्हें प्रभावशाली बनाने के लिये जटिल तथा उलझाव भरी तकनीक ही उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि हमारे अन्दर की अनाम बेचैनी तथा अनदेखे दबाव, स्थितियों तथा वस्तुओं का जब मनुष्य की समझ के साथ उलझाव तथा टकराव होता है तो अस्पष्टता अथवा 'कन्फ्यूज़न' पैदा होता है। इस टकराव के कारण ही हमारे मूल्यों तथा व्यवहारों पर हमला या दबाव पैदा होने से अप्रत्यक्ष तौर पर ही हमारी रचना बदलने लगती है।

पंजाबी कहानी में मानसिक संवेगों तथा भावों के अवचेतन में जड़ जमाने तथा कुछ व्यवहारों तथा क्रियाओं द्वारा उनको प्रकट करने का आरंभ कथाकार *ज़िंदर* ने किया। इस संदर्भ में उसकी सबसे उल्लेखनीय तथा चर्चित कहानी रही 'कत्ल'। जिसमें बाप के प्रति उत्पन्न नफ़रत से पुत्र, उसे मरणासन अवस्था में पड़े देख, जिसमें मां-बाप के आत्मीय रिश्ते में भी आयी दूरी के बावजूद मां को तन-मन से बाप की तीमारदारी करते देख पुत्र अपनी मानसिक इच्छा को, जो बाप से बदला लेने की है, मां पर आरोपित कर देखता है और सोचता है कि मां ने उसकी नाक साफ करने के बहाने उसकी गर्दन को दबा दिया है, क्योंकि उसी समय मां, बाप के अंतिम सांस लेने पर ज़ोर से चीख मारती है। अपनी मन की तसल्ली के लिये पुत्र सोच लेता है कि मां ने अपनी बेइज्जती का बदला ले लिया है। इस कहानी के बाद धीरे-धीरे पंजाबी में कई मानसिक संताप तथा मानसिक गुंझल/उलझावों से रची कहानियों का आरंभ हो गया जिसे नौजवान कहानीकारों ने और भी जटिल संरचना के द्वारा व्यक्त करना आरंभ कर दिया। इस संदर्भ में अजमेर सिद्धू की (इकबाल हुसैन अभी नहीं मरा, कुंआ चलता है), जसवीर राणा की (चूड़े वाली बांझ, दो सांसों के बीच ठहराव) जतिंदर हंस (पावे से बंधा काल), भगवंत रसूलपुरी की (कसूरवार, तीसरा नेत्र, क्रीड़ा), देसराज काली की (फ़कीरी, सुन्नखेल, चीख), अनेमन सिंह की (रोड बठिंडा, गली नंबर कोई नहीं) केसरा राम की (पुलिसिया क्यों मारता है, सबसे खतरनाक) आदि कहानियों का ज़िक्र किया जा सकता है।

ये सभी कहानियां एक ही समय में काल, स्थान तथा स्थिति के दरम्यान कोई भेदभाव नहीं करती। पात्र उत्तम पुरुष के माध्यम से वर्तमान से अतीत तथा अतीत से भविष्य की ओर सोचते और लौटते रहते हैं। कहानियों का आरंभ जहां से होता है, अंत में कहानी उसी विचार तथा मनस्थिति पर पहुंचती है। कहानी के मध्य कथानक अन्दर ही अन्दर कई मोड़ों से गुजरते हुये, पात्रों की वर्तमान स्थिति के साथ-साथ उसके अतीत की छान-बीन करता भविष्य में मंसूबे भी बनाता है। इससे यह बात तो तय होती है कि प्रत्येक वर्तमान घटनाक्रम तथा पात्रों की मनस्थितियां अतीत के गर्भ से ही निकलती हैं। किसी भी मानसिकता, उसका स्वभाव, हाव-भाव तथा अनुभव की बुनियाद उसका अतीत ही होता है। ये कहानियां जटिल इसलिये भी प्रतीत होती हैं, क्योंकि पात्र काल, स्थान तथा स्थिति का भेद भुलाकर अपने मन के वेग में बह, वर्तमान+अतीत, अतीत+भविष्य की ओर छलांगें लगाते हुये अपने साथ पाठकों को भी तेज़-तेज़ भागते जाते हैं। इससे यह भी ज़ाहिर होता है कि स्वयं से बातें करते हुये, अथवा मनोलाभ की स्थिति में मन बेरोकटोक भागता रहा है। मन की गति, हवा से भी तेज मानी गयी है।

मगर इन जटिल वृत्तांतों वाली कहानियां सफल तभी कही जा सकती हैं, जब 'मैं' (वक्ता)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मुख्य विचार से इधर-उधर ना हो। वह इस भीतरी तोड़-फोड़ या टूटन में भी कहानी का सिरा अपने हाथ से छूटने न दे। उसकी पकड़ कथानक पर बनी रहे, जैसे कठपुतली नचाने वाले की होती है। मन के भटकाव में उलझा पात्र प्रत्यक्ष तौर पर अपनी प्रवृत्ति के द्वारा जगह-जगह पर भटकता नज़र आता है, जबकि असल में पर्दे के पीछे कहानीकार ऐसा शिल्प गढ़ता है कि पात्र तथा घटनाक्रम, विचार तथा भाव, मनोवेग, घड़ी के पेंडुलम से इधर-उधर हिलते-डुलते हुये भी संतुलित रहते हैं। यह संतुलन ही असल में कहानी तथा कहानीकार की कामयाबी निश्चित करता है। इस प्रसंग में जसवीर राणा की कहानी 'दो सांसों के बीच ठहराव' अपने मकसद की रक्षा न कर पाने के कारण पाठकों तक अपना संदेश पहुंचाने में नाकामयाब रहती है। उसकी जटिलता 'संचाररूपी जटिलता' बन कह रह जाती है जबकि 'इकबाल हुसैन अभी नहीं मरा' तमाम जटिलता के बावजूद, अपने शिखर को छूकर एक सफलतम कहानी बन जाती है।

इन जटिल कहानियों के पात्र परिस्थितियों, हालातों तथा काल के मिले-जुले कठघरे में खड़े 'अब' के संदर्भों की तस्वीर बन स्वयं को निर्दोष तथा मासूम साबित करने पर ज़ोर देते हैं। परिस्थितियां तथा हालातों की सच्चाई आज के दौर में मनुष्य के 'वास्तविक गठन' की सच्चाई है। पंजाबी समकालीन कहानी इस सच्चाई को पकड़ती गढ़ती तथा रूपांतरित करती प्रतीत होती है।

इस दौर के कथाकारों ने तकनीक के लिहाज़ से ही नहीं विषयगत तौर पर भी इसमें विभिन्नता लाने की कोशिश की है, जो इसमें 'समय के साथ कदम-ताल' होने की भी गवाही देती है। समलैंगिकता, एड्स, लिव इन रिलेशनशिप, स्पर्म डोनर, जैसे विषय आधुनिक जीवन-प्रणाली की देन है, जो वैश्वीकरण के प्रभाव को प्रकट करते हैं। अफ़सोस कि हम भारतीय आज भी अपनी सभ्यता से अधिक तरजीह यूरोपियन सभ्यता को देते हैं।

समलैंगिकता में गे तथा लैस्बियन संबंधों का शोरगुल हमें आज सुनायी दे रहा है, जबकि यह बहुत पहले से हमारे समाज तथा साहित्य में दबे-छिपे अंदाज़ में या सांकेतिक तौर पर कहीं न कहीं नज़र आते रहे हैं। हां, यह सच है कि इन संबंधों को अधिक ख़ींचकर फोकस करने की कोशिश नहीं की जाती थी। लोग इस प्रकार के संबंधों को ज़ाहिर करने से डरते थे या जानकर भी अनजान बनने की कोशिश करते थे। नवाबों के जीवन-प्रसंगों, किस्सों से संबंधित अनेक उपन्यासों में इनका ज़िक्र पढ़ने को मिलता रहा। मंटो की भी एक कहानी लैस्बियन संबंधों पर आधारित मिलती है। जिसमें मर्दाने कद-काठी वाली एक लड़की अपनी कोमल, नम्र पड़ोसन सहेली पर हावी होती है। अजीत कौर की 'मन्नू' तथा राजेंद्र यादव की एक कहानी भी, जिसमें एक बड़ी उम्र की अकेली औरत, नौजवान लड़की के साथ लैस्बियन संबंध बनाती है। मगर वह संबंध एकतरफ़ा होते रहे। दीपा मेहता की फिल्म 'फायर' में शबाना आज़मी तथा नंदिता दास (जेठानी-देवरानी) के संबंध पूरी तरह से लैस्बियन दर्शाये गये।

भारतीय समाज में समलैंगिकता के लिये चर्चा का माहौल असल में इस फिल्म ने तैयार किया। जिसके बाद साहित्य में लुके-छिपे भाव से, सांकेतिक ढंग से बयान किये जाते इन संबंधों ने प्रत्येक भाषा के साहित्य में बड़े खुलेपन तथा स्पष्टता से अपने पैर पसारने शुरू कर दिये। पंजाबी में भी लैस्बियन विषय से संबंधित अनेक कहानियां मिलती हैं, जैसे हरजीत अटवाल की 'भाई', परवेज संधू की 'सौतन' इक़बाल दीप की 'उल्टे पांव' सुकीरत की 'जलावतन' (देश निकाला) बलवीर परवाना की 'अपने-अपने जज़ीरे' आदि। पहली बार 'घर' कहानी में सुकीरत ने 'गे' संबंधों की चर्चा की,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिसमें उसने घर की संकल्पना वही पारंपरिक बताई, जहां पति-पत्नी के साथ मिलकर घर बनता है।

'स्पर्म डोनर' की हैसियत से नि:संतान दंपत्तियों को संतान-प्राप्त हो सकती है। इस आधुनिक तकनीक के द्वारा औरतों में गर्भवती होने के विषय को लेकर पंजाबी में गुरमीत कडियालवी ने कहानी रची 'बदलते समीकरण'। इस कहानी में पति के नामर्द होने पर ससुराल द्वारा अपना वंश चलाये जाने के लिये सास-ससुर की सलाह से अपने खून का बच्चा होने की सोच के कारण ससुर के स्पर्म से जब बहू गर्भवती होती है तो रिश्ते किस प्रकार बदलने लगते हैं, क्योंकि अब ससुर का नज़रिया बहू के प्रति बदलने लगता है और वह अपनी ब्याहता की तरह उसका ध्यान रखने की कोशिश करने लगता है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा गर्भावस्था का यह तरीका कहीं न कहीं बेहद कष्टदायक तथा अपमानजनक भी बनने लगता है। इससे न केवल रिश्तों के समीकरण बदलने लगते हैं, बल्कि इज्ज़तदार तथा गरिमामयी रिश्तों की मर्यादा भी झिलने लगती है।

रिश्तों का ऐसा समीकरण तब भी बदलने को तत्पर दिखायी देता है जब रानी नगेन्द्र की कहानी 'पालना' में एक अधेड़ उम्र मां अपनी ही बेटी को मातृत्व सुख देने के लिये उसके लिये 'सेरोगेट मदर' बनती है। सवाल यह है कि उस 'पालने' में किस का बच्चा झूलेगा मां का या बेटी का? ऐसे विषयों से संबंधित कहानियां हमारे सामने प्रश्न चिन्ह बन खड़ी भी होती हैं और हमें इन नवीन धरातलों पर खड़े होकर नये अवमूल्यन के लिये भी प्रेरित करती हैं।

'लिव इन रिलेशनशिप' जैसी जीवन-प्रणाली यूरोपियन सभ्यता का एक हिस्सा रही, मगर युवा एशियाई पीढ़ी विशेषत: भारतीय युवा पीढ़ी नगरों, महानगरों में इसे अब खुलेआम अपनाने लगी है। पंजाबी में इस विषय पर वीना वर्मा की 'रज़ाई' तथा बलवीर परवाना की 'पिता' कहानी का ज़िक्र किया जा सकता है। हालांकि वीना वर्मा की कहानी लंदन में घटती है और उसमें मासूम बच्चों की परवरिश तथा संभाल मुख्य होती है, जबकि 'पिता' में जवान लड़की भारत के एक महानगर में रहते हुये अपने मर्द साथी के साथ रहने का फैसला करती है और मां-बाप को इस बारे में सिर्फ़ सूचित करती है। यह कहानी लिव इन रिलेशनशिप के मुख्य आधार को सही ढंग से अपनाती है।

एड्स जैसा रोग भी आधुनिक जीवन-प्रणाली से ही निकला है, जिसमें खुले तौर पर सेक्स-संबंधों को अपनाया जाता है। यह रोग पहले 'सिफ़लिस' जैसी बीमारियों आदि सहित सेक्स-वर्करों में फैलता रहा है, मगर आज समाज में रहते अनेक लोगों में भी अपनी पकड़ बनाता जा रहा है। एड्स को आधार बनाकर पंजाबी में जसवीर राणा की कहानी 'नक्षत्र घूम रहे हैं' मिलती है, जिसमें वह एड्स की अनजाने शिकार हुयी युवती की ऐकांतिकता को बयान करता है।

संचार, टेक्नालॉजी, वैज्ञानिक सुविधाएं, कम्प्यूटर, इंटरनेट, सोशल नेटवर्किंग, मोबाइल आदि इलेक्ट्रानिक संचार साधनों का इस्तेमाल आदि अब पंजाबी कहानी में काफी तादाद में मिलने लगा है। युवा कहानीकार पात्रों की अन्तर्मन संबंधी उलझनों, गुत्थियों बावत् चर्चा करते समय उसे कम्प्यूटर, मानीटर, माऊस, ग्राफिक्स आदि के ताने-बाने के द्वारा बयान करने लगे हैं, जिनमें अजमेर सिद्धू, भगवंत रसूलपुरी, बलविन्दर ग्रेवाल के नाम मुख्य रूप से आते हैं। उनकी अनेक कहानियों में जैसे 'दिल्ली के कंगूरे', 'कब्र में दफ़न हजार वर्ष', 'कुआं' 'चलता है' (अजमेर सिद्धू) 'तीसरा नेत्र', 'डाक्यूमेंट्री' (भगवंत रसूलपुरी) आदि में कम्प्यूटर के ग्राफिक्स, तकनीक का इस्तेमाल अत्यन्त खूबसूरती तथा स्वाभाविकता से किया गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

युवा कथाकारों ने समकालीन दौर में एक नया कदम और बढ़ाया है कि उन्होंने शब्दों तथा संबंधों के प्रचलित अर्थों तथा पारंपरिक शब्दावली को उनके सीमित अर्थों से निकालकर उन्हें नये संदर्भों से जोड़कर और भी विस्तृत अर्थ प्रदान कर दिये हैं। इस संबंध में 'रेप' शब्द तथा उसके प्रचलित अर्थ के नवीन प्रयोजनों की चर्चा की जा सकती है। सरूप स्यालवीं की 'रेप' इसे स्त्री के शारीरिक शोषण तथा प्रताड़ना की बजाय 'मानसिक टार्चर' (प्रताड़ना) की तरह प्रस्तुत करती है जो एक स्त्री द्वारा एक युवक को प्रताड़ित करके किया जाता है। जिन्दर की 'बलात्कार' कहानी एक मालिक द्वारा अपने किशोर नौकर के शारीरिक-मानसिक शोषण को रेखांकित करती है। इसी प्रकार सुखजीत की कहानी 'मैं रेप को इन्जुआए करती हूँ' तो पहले अपने शीर्षक से ही चौंकाती है। उत्सुकता, हैरानी, बेचैनी सारे भाव एकसाथ उभर आते हैं, क्या रेप को भी इन्जुआए किया जा सकता है, वो भी एक औरत द्वारा ? परन्तु यह कहानी रेप की शिकार हुयी औरत की ओर से उभरी बदले की भावना को बयान करती है और वह औरत मर्दाना शक्तियां हासिल कर, पुरुषों जैसी बोली-भाषा में अपना बलात्कार करने वाले से अपने ढंग से बदला लेती है। तभी वह मर्दों की तरह सोचते हुये इस बात का ऐलान करती है कि 'अब वह रेप को इन्जुआए करती है'। इस प्रकार रेप शब्द सुनते ही पहले बनी तस्वीर एकदम तस्वीर टूट जाती है और कहानीकार पाठकों को नयी सोच प्रदान करते हैं।

स्त्री-मर्द के निकट आपसी संबंधों को युवा कथाकार बहुत बेबाकी से बयान करने लगे हैं। इन संबंधों में प्रमुख तौर से विवाहेतर संबंध शामिल हैं। असल में ये संबंध बहुत तेज़ी से समाज में स्वीकृति हासिल करते जा रहे हैं तो ज़ाहिर है साहित्य से दूर कैसे रह सकते हैं ? विवाहेतर संबंध आरंभ से समाज का हिस्सा रहे हैं, मगर पहले इन संबंधों में पुरुष का प्रभुत्व अधिक रहता था और अक्सर यह संबंध एकतरफा भी होते थे, जिनमें आर्थिक शोषण के तहत, दबाव मानते हुये औरतों को कई बार मजबूरी में इन संबंधों को अपनाना पड़ता था। आज हालात काफी बदल चुके हैं। आधुनिक जीवन-प्रणाली के कारण आज स्त्रियां भी इन संबंधों में रुचि लेने लगी हैं, इन्हें आसानी से अपनाने भी लगी हैं। वीना वर्मा तथा निर्मल जसवाल जैसी स्त्री कथाकार स्पष्ट शब्दों में ऐसी औरतों को प्रस्तुत करती हैं जो प्रेमी या मर्द मित्र के साथ शारीरिक संबंधों का उपयोग कर सुख, खुशी तथा सकून प्राप्त करती हैं। वीना वर्मा की 'तू कौन है ?' कहानी में उसकी स्त्री-पात्र अपने पुरुष मित्र को स्पष्ट चुनौती देते हुये कहती है, 'जब तुम मुझे भोगकर खुशी हासिल कर सकते हो तो मैं क्यों नहीं ? आखिर तू है कौन--। जो तुमने मुझसे हासिल किया, वही मैंने भी किया।' अब रिश्तों के रवायती तथा पारंपरिक अर्थ खोते जा रहे हैं। पाप-पुण्य तथा पति-परमेश्वर जैसे संकल्प अर्थहीन होते जा रहे हैं। अनेक कथाकार इसी कारण इन संबंधों को ग्लानि, शर्मिन्दगी तथा पाप से मुक्त कर रचते तथा कहानी का हिस्सा बनाते हैं। ये भी आज के युग की एक सच्चाई है।

वैश्वीकरण के दौर में देशों की आपसी दूरियां बेहद कम हो गयी हैं। अब वर्ल्ड ट्रेड सेंटर का हादसा हो या ईराक व अफगानिस्तान में युद्ध की आग में मरते, झुलसते नवयुवक बगैर कौम, देश, जाति के भेदभाव के अपने भी प्रतीत होते हैं। अगर 'टावर्स' कहानी (जरनैल सिंह) में अनेक अमेरिकी दंपत्ति डब्ल्यू.टी.सी. तथा ईराक युद्ध में मर गये अपने बच्चों के वियोग में तड़पते-रोते कराहते हैं तो पाठक उनके दुख-दर्द में उतने ही शरीक होते हैं। 'मुहाज़' (जरनैल सिंह) कहानी भी युद्ध की विभीषिका को बयान करती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन कहानी में काफी हिस्सा स्त्री-विमर्श से भी जुड़ा है और बहुत बड़ा हिस्सा दलित विमर्श से संबंधित है। अगर जरनैल सिंह की 'दो टापू', वीना वर्मा की 'फिरंगियों की बहू', 'छोटी सरदारनी', सुरिन्दर नीर की 'सूबेदारनी', 'डिप्रेशन' जिन्दर की 'रफ्तार' आदि कहानियों स्त्री-विमर्श के सराकारों से जुड़ती हैं तो भगवंत रसूलपुरी, सरूप सयालवी, देसराज काली, गुरमीत कडियालवी, बलीजीत आदि कई नौजवान कहानीकार दलित मुद्दों, समस्याओं तथा सरोकारों के प्रति पूरी निष्ठा से समर्पित हैं। 'आदि डंका' तथा 'जड़ें' (भगवंत रसूलपुरी) कहानियां दलित-विमर्श से संबंधित कई गंभीर प्रश्नों को सामने लाती हैं।

आज हम यह भी देखते हैं कि कहानी में 'रोल मॉडल पात्रों' की बजाय अभिशप्त, निराश तथा खंडित मनुष्य को केन्द्र में रखकर रचना की जा रही है। लगभग सभी नौजवान कहानीकार ऐसे पात्रों की कथा को अधिक बयान करते हैं, जो परिवार, समाज, प्यार आदि किसी न किसी के हाथों सताये हुये शापित जीवन जीने के लिये मजबूर हैं। निचोड़े जाने या शोषित होने की प्रवृत्ति का जिक्र जो मैंने लेख के आरंभ में किया था इन कहानियों के पात्र उसी प्रक्रिया से गुज़रे जाने के कारण अर्धसुप्त हुये समाज से ही नहीं, स्व-अस्तित्व से भी टूटते जा रहे हैं। यह स्थिति बेहद पीड़ादायक है। इस स्थिति से निकल वे कुछ हासिल करने योग्य बन सकते हैं, मगर अपने ही भीतर टूटते और खंडित होने के कारण स्वयं की नज़र में भी अत्यन्त बौने तथा समाज की दृष्टि में गौण होते जा रहे हैं। बेरोज़गारी, प्रतिद्वंदिता तथा तेज रफ्तार ज़िन्दगी की प्रतियोगिता के कारण नौजवानों तथा किशोरों को सही दिशा तथा मार्गदर्शन न मिल पाने के कारण वे नशे, अपराध तथा सेक्स में लिप्त हो, जिन्दगी के 'शार्टकट' ढूंढने में अधिक उलझते जा रहे हैं।

आज की पंजाबी कहानी में कुछ भी गलत, पाप तथा नाजायज़ नहीं, सब कुछ समाज तथा स्थितियों पर आधारित है। नियति का सच, परिस्थिति का सच, हर हाल में ज़िन्दगी जीने की छटपटाहट का सच, क्योंकि मानव जीवन अनमोल है। इस बार जीवन मिला है, अगले जन्म की कोई गारंटी नहीं, इसलिये भोगवादी प्रवृत्ति का हावी होना कोई आश्चर्यजनक नहीं लगता।

समकालीन पंजाबी कहानी में अब समस्याओं का हल प्रस्तुत नहीं किया जाता। यह सिर्फ़ पात्रों को समस्याओं से घिरे हुये प्रस्तुत करती है। पात्र समस्या के भीतर हैं, उसे भोगता है, 'सफ़र' करता है। उसे उससे बाहर निकलने के रास्ते को तलाश करने की प्रेरणा नहीं मिलती क्योंकि उसके आस-पास का माहौल, ताना-बाना, सामाजिक सरोकार सभी संकटों में घिरे हुये हैं। इन कहानियों का विश्लेषण करते समय हमें उस समय, स्थान तथा परिस्थितियों को ओझल नहीं होने देना चाहिये, जिसमें ये रची गयी हैं।

इस सब के बावजूद पंजाबी समकालीन कहानी न केवल समय की गति को पहचानते हुये इसके साथ-साथ कदम बढ़ा रही है, बल्कि कई कहानियों में अंतरिक्ष-मानव तथा क्लोन और प्रोग्रामिंग चित्रों द्वारा सारी कार्य-प्रणाली में तब्दील होने की सुगबुगाहट भी दो-चार कहानियों में नज़र आने लगी जिनमें सुरिन्दर रामपुरी तथा सुरिन्दर सिंह ओबराय का नाम लिया जा सकता है।

35, मस्जिद रोड, जंगपुरा
भोगल, नई दिल्ली-14
मो. 09868182835

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बदलते समीकरण

गुरमीत कडियालवी

शादी के चार-पांच महीनों के बाद भी जब प्रेगनेंसी ना हुई तो सास को बेचैनी होने लगी। हर महीने मुझसे पूछती, 'दिन ऊपर हुये।'

सास दिनों का बहुत हिसाब-किताब रखती। एक बार जब दस-बारह दिन ऊपर हो गये तो उसने हिदायतें देनी शुरू कर दी-

'बहू! अपना ध्यान रख। ऊपर-नीचे पैर न रखना। पानी की बाल्टी न उठाना। दिल में कुछ होता है क्या? मुँह का स्वाद तो नहीं बदल गया। कुछ फ़र्क महसूस होता है।'

मैं क्या बताती, जब मुझमें कोई फ़र्क आया ही नहीं था। न शारीरिक, न मानसिक। आखिर कुछ दिनों के अंतराल बाद शरीर ने गर्भवती होने की सूचना न दी तो सास की घबराहट बढ़ गयी। वह भगवान, पड़ोसियों, रिश्तेदारों तथा अन्य कई लोगों को भला-बुरा कहने लगी। कहती रिश्तेदारों ने बहू की कोख हरी न होने देने के लिये कुछ टोना करवाया हुआ है। हर समय उखड़ी रहती। कितनी ही लेडी डॉक्टरों से मुझे चैक करवाया गया। नुक्स कोई नहीं था। सब कुछ नार्मल। सब ठीक है का ऐलान करने के बावजूद हरेक लेडी डॉक्टर ढेर सारी दवाइयां लिख देती और मेरी सास सुबह-शाम पास खड़े होकर मुझे यह दवाइयां खिलाती। गर्म दवाईयां खा-खाकर मेरा अंदर जलने लगा था। दिन में हर समय पसीना आता रहता जैसे गर्म दवाइयों ने अंदर आग लगा दी हो। मुझे बेहद प्यास लगती। टीके लगा-लगा कर मेरा शरीर छलनी कर दिया। हारमोन बढ़ाने के लिये, गरोडोटरोपिक के महंगे इंजैक्शन। फर्टिलिटी बढ़ाने के लिये आयरन की हाथ भर गोलियां। नतीजा फिर वही का वही। हर महीने घरवालों के चेहरे लटक जाते। सास का मन सबसे अधिक उचाट हो जाता। अपने बेटे की औलाद को गोदी में उठाकर खिलाने का चाव उसे ही अधिक था। हमारी शादी के बाद से ही उसने फेरीवालों से सस्ते भाव के कपड़े खरीद-खरीद के घर भर लिया था।

'मम्मी! यह क्या खरीद-खरीद कर घर भरते जा रहे हो।' सभी के द्वारा पूछे जाने इस सवाल के जवाब में वह कहती

'जब संजू के घर में लड़का होगा तो संजू की बुआ, मौसी तथा और कितनी कामवालियों, बधाई देने वालियों तथा ऐरे-गैरे रिश्तेदारों को लेने-देने के काम आयेंगे।'

'यह मौसी, बुआ को देने वाले कपड़े हैं।' मैं सोचती, परन्तु कह न पाती। बड़ी बुरी नियत है। दरअसल जिन्होंने सारी उम्र लोगों को लूट कर खाया हो, अपनी जेब से धेला नहीं खर्च कर सकते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ससुर तहसील में रजिस्ट्री क्लर्क हैं। जाट-जमीदारों की जेबों से पैसे वसूल कर कितने ही प्लाट लिये हुये हैं। 'मम्मी जी। ये भी अपना चैकअप करवा के देख लें। शायद कहीं.....।' 'हाँ, हाँ। मेरे बेटे में ही नुक्स होगा कोई ? तुम पढ़ी-लिखी लड़कियों को अब अपने मर्द में नुक्स लगेगा। हमने तो ऐसा कुछ सुना-देखा नहीं, भई, आदमियों में भी नुक्स होता है। संजू हटटा-कटटा, अच्छा भला..... इसमें नुक्स होगा भला ? कहती है, चैक करवा कर देख लेना चाहिये।'

सास कनखियों से मुझे ताक रही थी। मुझे ताड़ती रहती जैसे मेरी जासूसी कर रही हो। पहले जब भी मैं पड़ोसिन मधु से बातें करती थी तो सास नज़दीक नहीं आती थी, परन्तु अब मैं ज़रा सा पड़ोसिन के आँगन की ओर झुकती, हमारे घरों के बीच छोटी-सी दीवार ही है, तो सास सुगबुगाहट लेने लगती। बहाने से आवाज़ लगाकर मुझे अन्दर बुला लेती। विशेषकर जब मनमिंदर ड्यूटी से वापस घर आ गया हो, तब तो सास की बाज जैसी आँख मेरी निगरानी करने लगती। सास के अन्तर्मन को मैं अच्छी तरह समझती हूँ। ससुराल वालों के विचार मनमिंदर के बारे में अच्छे नहीं है। उसके मुँह पर मिंदर-मिंदर करते, परन्तु पीठ पीछे कहते हैं, 'माँ-बाप की मर्जी के खिलाफ जाकर गैर जाति में शादी कर ली। किसी की बेटी को फँसा ले आया है। यह क्या अच्छी बात है ? सास-ससुर वैसे तो हर ज़रूरत के समय मधु तथा मनमिंदर के पास भागते रहते हैं, परन्तु प्रत्येक आये-गये के सामने उनकी चुगली भी करते रहते हैं।

मुझे अक्सर समझाने लगते, 'इनके ज्यादा मुँह लगना ठीक नहीं। चाल-चलन भी ठीक नहीं इनका। अपनी मर्ज़ी से शादी की है, दोनों ने।' जैसे मधु-मनमिंदर ने बहुत बड़ा गुनाह किया हो।

सास-ससुर जितना मधु-मनमिंदर के प्रति भड़ास निकालते, मेरी उतनी दिलचस्पी उनमें बढ़ती जाती, विशेषकर मनमिंदर में। कोई बात तो होगी, जिस कारण मधु जैसी ज़हीन तथा खूबसूरत लड़की उसकी ओर आकर्षित हो गयी थी। मैं स्वयं लवमैरिज के पक्ष में थी। मुझे याद है कि एक बार क्लास में अरुणा मैडम ने सभी लड़कियों से विवाह संबंधी राय जाननी चाही थी। मैंने बिना झिझक कहा था- लवमैरिज़। इस कारण क्लास की लड़कियाँ मुझे छेड़ती भी रही थीं। वह कहती थी कि मैं उस दिलवाले का नाम बताऊँ जिससे लव मैरिज करवाने जा रही हूँ। मुझे मोनिका जैसी शरारती लड़कियों की टोली से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया था। आखिर बात तभी ठंडी पड़ी जब क्लास की सबसे चुप रहने वाली लड़की दीपिका के अफ़ेयर की बात बाहर निकली थी। अपनी पसन्द के लड़के से शादी कर वह आम से खास हो गयी थी। वैसे हैरानी की बात यह थी कि दीपिका ने क्लास में अपनी पसन्द 'माँ-बाप की मर्जी से विवाह' को बताया था। अब चर्चा का विषय मैं नहीं दीपिका हो गयी थी। तब मुझे दीपिका पर काफी रश्क हुआ था।

जिस दिन सारी असलियत सास के सामने रखी, उसके सिर पर जैसे कोई एटम बम फट गया हो।

– 'यह कैसे हो सकता है ?'

– 'हो क्यों नहीं सकता है ?'

– 'डॉक्टर ऐसा ही बकवास करता है।'

– 'टैस्ट करवाये हैं।'

– 'टैस्ट गलत भी तो हो सकते हैं ?'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

– 'सारी लैबोरेटरियाँ तो गलत नहीं हो सकतीं।'

– 'हे भगवान! ऐसा भी होता है क्या?'

– 'बस, ऐसा ही हुआ है मम्मी।'

सास मेरी ओर तरस भरी निगाहों से देखने लगी।

'बेटी समझदार बनो। इस बात का धुआँ भी बाहर न निकले।' सास मेरे सामने हाथ जोड़े खड़ी थी।

'निम्मी बेटा.... किसी के सामने बात न करना। अपने मायके वालों के सामने भी नहीं।' सास की यह हालत मुझसे सहन न हुई। मैं उसके हाथ अपने हाथों में लेकर कितनी देर तक रोती रही थी।

'निम्मी बेटा। बात बाहर निकली तो संजू की बेइज्जती होगी। लोग अच्छा नहीं समझेंगे। देखो, वह तुम्हें कितना प्यार करता है। उसकी इज्जत तुम्हारे हाथ में है।'

'बेटा। प्रार्थना किया करो..... उसके घर किस बात की कमी है। उम्मीद नहीं छोड़नी चाहिये।' सास मिन्नतें करती।

मैं सास को क्या बताती कि धरती कितनी भी उपजाऊ क्यों न हो, भुने हुये बीजों से उगने की आस कैसे की जा सकती है। प्रार्थना करने से भुने दाने तो नहीं उग सकते।

'आप फ़िक्र न करें मम्मी जी.... मैं सारा दोष खुद पर ले लूँगी।' और मैंने अपना सारा दोष स्वयं पर ले लिया था। कोई भी रिश्तेदार या और लिहाज़दार पूछता मैं अपने-आप में नुक्स बताने लगती। अपनी कोख को कोसने लगती। बनी-बनायी कहानी बयान करने लगती-

'बचपन में बीमार हुई थी। काफी अरसा बीमार रही। शायद तभी कहीं बच्चेदानी में नुक्स पड़ गया।' जैसे कहते हैं न, किसी झूठ को सौ बार बोल देने से वह झूठ नहीं रहता। मेरा झूठ भी सच बन गया।

मैं अंदर ही अंदर घुलने लगी। दुख किसी के साथ बाँट नहीं सकती थी। अजीब हालत थी मेरी। लोग कहते हैं माँ-बेटी हमराज़ होती हैं, परन्तु मैं तो माँ को भी दुख नहीं बता सकती थी। वह कई बहानों से कई सवाल पूछती, परन्तु मैं हर बार टाल जाती। वह समझाने लगती-

'निम्मी बेटा! आजकल पढ़े-लिखे जल्दी बच्चा नहीं चाहते, लेकिन अच्छा यही होता है कि जल्दी से अपनी फैमिली कम्पलीट कर लो। जवानी में पैदा हुये बच्चे अपने बराबर के हो जाते हैं। माँ-बाप के साथ कंधों से कंधा मिला लेते हैं।'

माँ को क्या और कैसे बताती कि एक छोटी सी घटा के बरसने के इन्तजार में सारी उम्र मरुथल में गवां देगे जैसी मेरी हालत है।

'निम्मी.... अब ज्यादा देर न करो। हम भी नाना-नानी बने। वैसे भी बेटी तुम्हारी उम्र अब माँ बनने की ही है। उम्र बढ़ जाने से कई समस्यायें घेर लेती हैं।' माँ मेरी चुप्पी तोड़ना चाहती थी।

'कुल का निशान बाकी रखना हो, तो स्त्री के लिये हरेक उम्र ही गर्भ की उम्र होती है।' कहीं पर पढ़ी हुई कविता की यह पंक्तियाँ याद आती तो चेहरे पर एक रोशनी उभर आती, मगर जल्दी ही कहीं गायब भी हो जाती। मैं मम्मी को टालकर पास से उठ जाती।

'मम्मी, जब संजू चाहेंगे.... बच्चा कर लेंगे। अभी हमने प्लान नहीं किया।' कहने को मैं कह तो देती, परन्तु फिर सारा दिन उखड़ी-उखड़ी रहती। इस प्रकार भला कब तक चलेगा। आस-पड़ोस,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रिश्तेदारों को कैसे टाला जा सकेगा? धरती को बंजर होने का ताना, परन्तु यदि बीज ही बुरा हो....? संजू के साथ लगातार कई दिनों तक सलाह-मशवरा करने के बाद जब मैंने अपना फैसला सास को बताया तो वह भड़क उठी- 'ना भई ना.... किसी ऐरे-ग़ैरे का लेकर पालने से क्या लाभ? बेगाना खून' किसी का क्या भरोसा.... बड़े होकर कैसा निकले। कितने केस ऐसे देखे हैं...किसी का बच्चा लेकर पाला। बड़े होकर जब उसने ज़मीन-जायदाद संभाल ली तो अपने असली माँ-बाप के पास चला गया। रहे फिर पालनहार बुढ़ापे में राम भरोसे। सास की दलील यह होती, परन्तु असल बात मैं समझती थी। सास सोचती यदि किसी दूसरे का बच्चा अडाप्ट किया, लोग कितने ही सवाल पूछेंगे। किस-किस का मुँह कोई पकड़ सकता है। लोग तो बात की तह तक जाते हैं। असलियत का पता लगा ही लेंगे।

'डॉक्टर तो सूखी जड़ भी हरी कर देते हैं दवाईयों से। मैं करूँगी डॉक्टर मनीषा से बात। कोई हल तो होगा ही?' कैसे बताती कि इस बारे में डॉक्टर मनीषा से पहले ही बात की जा चुकी है। संजू के अंदरूनी नुक्स पता लगने पर डॉ. मनीषा ने ही सलाह दी थी।

'अच्छा यह होगा कि सीमन बैंक से सीमन लेकर नम्रता की कोख में इन्जैक्ट करवा दिया जाये। ऐसे केसों में आजकल बहुत से परिवारों में इसे ही अपनाया जा रहा है। बच्चा गोद लेने से तो यह बेहतर है। अपने पेट से बच्चा पैदा होने से माँ तथा बाकी परिवार को भी अटैचमैंट हो जाती है।'

इस बात की सूचना मिलने पर सास-ससुर बुदबुदाने लगे। सारी रात वह दोनों खुसर-पुसर करते रहे। सास ने सुबह-सुबह ही हमारा दरवाज़ा खटखटा दिया।

'निम्मी बेटा.... उठो। चाय पी लो।' मैंने हड़बड़ाहट में दरवाज़ा खोला तो सास चाय वाली केतली लिये खड़ी थी। मैंने हतप्रभ होते हुये चाय पकड़ ली। उस दिन सारी दोपहर बेटा-बेटा करती रही। आखिर शाम को वह असल मुद्दे पर आ ही गई।

'निम्मी बेटा.... कुदरत ने कितना बड़ा धक्का किया हमारे साथ। कितनी सुंदर जोड़ी है मेरे बेटे-बहू की.... परन्तु प्रमात्मा ने....।' सास ने बनावटी सी गहरी साँस ली। 'निम्मी... यदि सीमन बैंक से सीमन लिया तो क्या मालूम किस का हो? कोई भी छोटी-नीची जाति...। बेटा बुरा ना मानना....। ठंडे दिमाग़ से सोचना। यदि तुम्हारे ससुर का सीमन ले लिया जाये....? कम से कम अपना खून तो होगा। बच्चे से सभी प्यार करेंगे। अपना खून....।'

मैं क्या कहती, ससुर का बीज अपनी कोख में? मैं तो रिश्तों के फंदे में ही उलझ गई थी।

'मम्मी, आप संजू से पूछ लेते?'

'संजू से बात कर ली है.... उसकी भी यही मर्ज़ी है।'

जब संजू की मर्ज़ी शामिल है तो मेरे इन्कार का क्या अर्थ था?

अब सास-ससुर और संजू के चक्कर डॉ. मनीषा की ओर लगने लगे। अपने स्वभाव के विपरीत बेटा-बेटा कहने वाली सास से मुझे भय लगने लगा। अपने स्वार्थ के कारण आदमी कितना नीचे झुकने लगता है, इसका एहसास मुझे सास के व्यवहार से हुआ। मैं समझ जाती कि मुझे डॉक्टर के पास जाने के लिये तैयार किया जा रहा है, हर महीने मुझे डॉक्टर मनीषा के पास जाना पड़ता। दस दिनों से लगातार ओवोलेशन स्टडी करवायी जाती। अड़ोस-पड़ोस से भेद रखने के लिये मुझे और संजू को पहले ही स्कूटर पर भेज दिया जाता। सास और हर समय खीझने वाला ससुर बाद में आते। संजू हमेशा की भांति मायूस होता। उसकी मौजूदगी मुझे तंग करती। सोचती, जब इसका कोई काम ही नहीं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
फिर इसे हर बार अपने साथ लाकर ज़लील क्यों किया जाये। वह हारा हुआ सा अस्पताल के बैंच पर सिर झुकाये बैठा रहता। उसकी यह हालत मेरे लिये अत्यन्त दुखदायी सिद्ध होती। मुझे संजू पर गुस्सा आता, क्या इसकी अपनी कोई सोच नहीं। जैसे माँ-बाप कहते हैं, मान लेता है। माना, आर्थिक तौर पर वह परिवार पर निर्भर है, परन्तु इतनी गुलामी भी क्या हुई ? माँ-बाप के किसी भी फैसले के खिलाफ बोलने की हिम्मत ही नहीं करता। अभी भी दूध पीता बच्चा है क्या ? कभी-कभी मुझसे कहता,

'निम्मर! तू और विवाह कर ले। मैं तलाक लिख देता हूँ। मेरे कारण तू क्यों दुख भोगती है।'

वैसे मैं जानती हूँ कि संजू यह बात कभी दिल से नहीं कहता। ऐसा कहते हुये उसका पीलेपन से भरा चेहरा एकदम सफेद हो जाता। वैसे उसे भी इस बात का यकीन है कि मैं ऐसा कभी नहीं करूँगी। मुझे कभी-कभी संजू पर बहुत गुस्सा आता। मैं चाहती, वह मेरे साथ झगड़ा करे। मेरे साथ नाराज़ हो, बहुत गुस्सा हो। गुस्से से बोले। रूठ जाये। परन्तु वह तो अपनी माँ से ज्यादा लाचारगी दिखाता। इतना लाचार आदमी.....। इस तरह के आदमी मुझे शुरू से ही बहुत बुरे लगते थे। कभी-कभी इस पर तरस आने लगता। इसका भी क्या कसूर ? इसके वश में भी क्या है ? मालूम नहीं कौन सा पाप हुआ इससे। सभी अंग होने के बावजूद यह मर्द न बन सका। भरपूर मर्द। संजू की आँखों में आई लाचारगी और हीनता मुझसे सहन न होती।

हर महीने में शूलों की सेज़ चढ़ती। रिज़ल्ट के नैगेटिव होने के बारे में सुनते ही मेरा मन खुशी से भर उठता परन्तु मैं अपनी इस आंतरिक खुशी को चेहरे पर ज़ाहिर न होने देती। मैं संजू का अंतर्मन पढ़ने की कोशिश करती, मुझे अनुभव होता, जैसे उसने भी चैन की सांस ली हो। बाकी परिवार का चेहरा ऐसे उतर जाता, जैसे किसी निकट आत्मीय के दाह-संस्कार से वापस आये हो। हर महीने में रिज़ल्ट में नैगेटिव होने की प्रार्थना करती, परन्तु प्रार्थना हर बार तो नहीं सुनी जाती...।

वह दिन मेरे लिये मरण समान था, जिस दिन लैबोरेटरी टेस्ट के नतीजे पौजेटिवं आ गये। आखिर डॉ. मनीषा की लगातार पाँच महीने की कोशिशों के बाद ससुर का बीज मेरी कोख में जा टिका था। सारे परिवार की खुशी का ठिकाना ना रहा। सभी एक-दूसरे को बधाई देने-लेने लगे। खुशी के वेग में मेरी भावनाओं की परवाह ही किसे थी। मेरा मन घबराता। जी चाहता कोख में टिके बीज को उल्टियाँ कर-कर के ही बाहर निकाल दूँ। मैं गले में अंगुलियाँ डालकर उल्टी करने की कोशिश करती, परन्तु कहाँ.... ? गले में से तो पीला सा पानी ही बाहर आता।

डॉ. मनीषा के पास निरन्तर चैकअप चलता रहा। स्कैनिंग रिपोर्ट आने पर सबसे अधिक खुशी ससुर को हुई। 'बच्चे की ग्रोथ तो ठीक हो रही है....।' ससुर खुशी से बताता। मुझे सुनाई देता जैसे। मेरे बच्चे कहा हो। ससुर घर में फ्रूट और सूखे मेवे अधिक लाने लगे। अपनी धर्म-पत्नी के द्वारा वह मुझे अधिक से अधिक फ्रूट खाने की चेतावनी देने लगे,

'संजू की माँ, निम्मर से कहो, वह फल ज्यादा खाया करे। इसी के लिये ही लाया हूँ।'

कई बार तो सीधे मुझसे ही मुखातिब हो कहने लगते, 'निम्मर, फल खाना तुम्हारे लिये बेहद ज़रूरी है। दूध भी खूब पीया करो। कैल्शियम और आयरन बच्चे की ग्रोथ के लिये बहुत जरूरी है। खाने-पीने में लापरवाही ना बरतना। कुछ भी खाने का मन हो, बता देना, ऐसे समय में एहतियात ज़रूरी है।'

ससुर की आवाज़ में अधिकार साफ झलकता। सुनकर मेरा सिर चकराने लगता। संजू ऐसा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कुछ भी क्यों नहीं कहता ?

ससुर का व्यवहार दिनों-दिन बदलने लगा था। पहले वह मुझे 'निम्मर बेटा या निम्मर पुत्तर' कहा करता था, परन्तु अब सिर्फ 'निम्मर' ही कहता। 'पुत्तर या बेटा' मुँह में ही भींच लेता। रसोई में काम करते समय आने-बहाने मेरे पास मंडराने लगता।

'पापा, आप रूम में बैठो आराम से। काम मैं खुद कर लूँगी।' खींझकर मैंने एक दिन कह ही दिया। माथे पर त्यौरी चढ़ाये वह कमरे में जा बैठा। कई दिनों तक घरवालों से घुटा-घुटा सा रहा। घर में फ्रूट न आया। फिर कुछ दिन बीतने पर सब सामान्य हो गया। घर में फिर से ताज़ा और महंगा फ्रूट आने लगा।

सास का रवैया समझ से बाहर होने लगा। 'बेटा-बेटा' करने वाली और मेरे गर्भवती होने की प्रार्थना करने में मंदिरों-गुरूद्वारों की दहलीज़ों पर माथा घिसाने वाली सास अब बाघिन बन खाने को दौड़ने लगी। मेरे साथ जिद करने लगी। संजू ने तो मुझे पहले ही दिन से कभी कोई सूट इत्यादि नहीं लेकर दिया था। मुझे भी अब पहनने-ओढ़ने का चाव नहीं रह गया था। परन्तु अब जब कभी ससुर अपनी मर्ज़ी का सूट मेरे लिये ले आते तो सास जल-भुन कर कोयला हो जाती। उसे तब तक सब्र न आता जब तक मुझसे महंगा सूट न ले आये। अब उसे मेरे हर काम में दोष नज़र आने लगा। बात-बात पर टोकती। मेरा उठना-बैठना, बोलना-चलना उसे अच्छा न लगता। अब मेरी बनाई हर सब्जी में उसे नमक-मिर्च अधिक लगने लगा। मेरे धुले कपड़ों में से मैल नज़र आता। कपड़े प्रैस करती तो सिलवटें निकली हुई न लगती। क्रीज़ ठीक न बैठी लगती। फ़र्श पर लगाया झाडू-फटका पसंद न आता। मेरी चाय बेस्वाद लगती। काम-धंधे से थोड़ा फुरसत पा टी.वी. देखने के लिये स्विच ऑन कर बैठती तो नसीहतें देने लगती।

'घर में तुम्हारे पापा जी बैठे हैं। टी.वी. देखना अच्छा लगता है क्या?' मैं मन ही मन हँसती। 'पापाजी' शब्द मेरे गले में अटकने लगता। मैं आवाज एकदम तेज कर टी.वी. बंद कर देती। सास अंदर बैठी कितनी देर तक कुढ़ती रहती। मुझे लगता वह मेरे साथ अपने नये बन रहे रिश्ते को लेकर अंदर ही अंदर उलझी रहती है।

सास ही क्यों, मैं स्वयं भी इस परिवार के साथ अपने नये रिश्ते को लेकर उलझन में हूँ। हम सभी इस घर में रिश्तों के नये समीकरण बनाने और समझने में लगे हैं। मुझे लगता है कि जैसे ससुर की आँखें मेरी पीठ पर उग आयी हैं। मालूम नहीं इतनी नर्वस क्यों होने लगी हूँ। दूध फ्रिज़ की बजाये अलमारी में रख देती हूँ। रज़ाई तह लगा कर फ्रिज में रखने चल देती हूँ। चाय में नमक और दाल-सब्जी में चीनी डाल देती हूँ। चप्पलें-जूते ट्रंक में रखने लगती हूँ। बाथरूम में नहाते समय तौलिया बाहर ही भूल जाती हूँ। गर्म पानी में ठंडा पानी मिलाना भूल जाती हूँ। गर्म-गर्म पानी से शरीर जलने लगता है। कई बार गर्म पानी के भुलावे में ठंडे पानी से ही नहा लेती हूं।

'ध्यान मालूम नहीं कहाँ रहता है, महारानी का। हम तो ऐसा नहीं करते थे। ऐसे चलित्तर हमें नहीं आते थे।' सास मेरी बदहवासी को त्रिया-चत्रित कहती है। संजू समेत सारा परिवार मुझे फूटी आँख नहीं सुहाता। मुझे यूनिवर्सिटी के दिनों की क्लास फैलो प्रोमिला बार-बार याद आने लगती है-

'गमलों में लगे वृक्षों की जड़ें बहुत गहरी नहीं होती, इसलिये इन वृक्षों की उम्र भी अधिक नहीं होती। कई रिश्ते भी गमलों में लगे वृक्ष की ही तरह होते हैं।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यूनिवर्सिटी के दिनों की बात और थी, तब प्रोमिला की बातों पर हम सिर्फ हँस देती थी। तब प्रोमिला की इस बात का अर्थ भी समझ में नहीं आता था।

कई बार सोते समय मुझे ऐसा महसूस होता है कि जैसे मेरी छातियाँ दूध उतर आने से अकड़ने लगी हो। फिर एक गुदगुदा सा बच्चा मेरी छाती से दूध चूसने लगता। धीरे-धीरे छातियाँ ढीली पड़ने लगती। मैं बच्चे को सहलाने लगती। आत्मा एक अजीब से सकून से भर जाती। फिर मालूम नहीं, नफरत कहाँ से आ जाती। गोदी में पड़ा बच्चा सपोलिया सा लगने लगता। मैं बच्चे को उठा दूर फेंक देती। बच्चा चीख कर शांत हो जाता। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठती। होंठ और गला सूखे हुये लगते। जीभ तालू से चिपकी हुई। अंदर जैसे आग भड़कने लगती। बार-बार पानी पीने से भी प्यास है कि बुझती ही नहीं। जी चाहता है कि बहुत बड़ी सी बहती हुई नदी को एक साँस में पी जाऊँ। अक्सर सपने में ऐसा होता रहता। पानी की भरी नदी मेरे मेरे पास आ जाती। मैं पानी पीने के लिये अंजुरि भरने लगती तो नदी एकदम सूखी नज़र आती। संजू शांत चित्त सोया रहता। मेरे अंदर उठे तूफान से एकदम बेखबर। मुझे उस पर बहुत गुस्सा आता।

फिर मैं सोचती, संजू शांत होने का सिर्फ दिखावा करता है। उसके अंतर्मन की टूटन को कोई कैसे जान सकता है। हर समय उखड़ा-उखड़ा रहता है। मेरा जी चाहता, मैं संजू को अपनी बाँहों में भरकर चूम लूं। आने वाले बच्चे के बारे में उससे बातें करूँ। मेरे उभरे हुए पेट पर कान लगाकर वह बच्चे की धड़कन सुने। उसके साथ तोतली भाषा में ऊल-जलूल बातें करे। मेरी सेहत के बारे में पूछे। बच्चे का नाम रखने के बारे में सुझाव दे। आने वाले दिनों को लेकर मेरे साथ बातें करे, परन्तु संजू..... संजू तो जैसे घर से गायब ही हो गया है। संजू के स्थान पर ससुर ही लल्लो-चप्पो करता रहता है। आने-बहाने बात करने लगता है-

'निम्मर, बच्चे को कौन से स्कूल में डालने के बारे में सोचा है। मेरा ख़्याल है सेंट एनडरिन ठीक रहेगा। यहाँ पर दो ही स्कूल ठीक हैं। सेंट एनडरिन या फिर लेडी नाज़िम। तेरा क्या ख़्याल है।'

मुझे ससुर की यह बातें बेवक्त, फालतू सी चुभने लगती। इसके साथ क्या सलाह करूँ। यह बातें तो सिर्फ़ बच्चे के पिता से ही की जा सकती हैं। बच्चे के पिता के बारे में सोचते ही दिमाग में बने सारे समीकरण गड़बड़ा जाते हैं।

'देखे लेंगे।' मैं संक्षेप-सा जवाब देती ताकि बात आगे न बढ़ सके। ससुर को मेरे संक्षिप्त जवाब से जैसे संतुष्टि नहीं होती। वह 'देख लेंगे' की बजाय 'देख लेना' मेरे मुँह से सुनने की ख़्वाहिश रखने लगा है। 'निम्मर, तुझे अपनी सेहत का ख्याल रखना चाहिये। संजू को तो जैसे तुम्हारी फ़िक्र ही नहीं। मालूम नहीं कहाँ खोया रहता है। मुझे लगता है जैसे तेरी केयर ही न करता हो।'

मुझे अनुभव हुआ, जैसे ससुर ने जानबूझकर ही संजू का ज़िक्र छेड़ा, सिर्फ यह जतलाने के लिये कि सारे घर में सिर्फ उसे ही मेरी फ़िक्र है।

'नहीं पा.....।' मेरी आवाज़ कहीं खो गयी है। सोचती रहती हूँ क्या जवाब दूँ। सच बोलूं कि झूठ.... ?

गुरमीत कड़ियालवी
वी.पी.ओ. करियाल, जिला मोगा (पंजाब)
फोन. 01682-240994

हिन्दी अनुवाद-डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंजाबी कहानी- दो

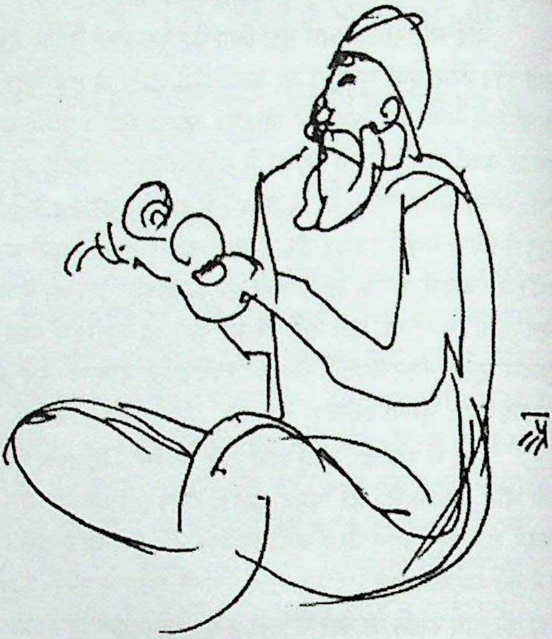

जख़्म

जिंदर

'मुझे तो इतनी दूर से ठीक तरह दिखाई नहीं देता,' ताऊ जी ने अपनी खूंड़ी का सहारा लेकर उठते हुये कहा। वह टीवी से दो फुट दूर, ऐन सामने, उकड़ूं होकर जा बैठे थे। मैं कुर्सी उठा कर उनके पास ले गया। जर्बदस्ती ही उन्हें कुर्सी पर बिठाया। वह अपनी ही रौ में बोलते जा रहे थे, 'बेटा। कोई बात नहीं, मैं ऐसे ही बैठता हूं। फिल्म अच्छी है। मुझे जरा ध्यान से देखने दो। मैं कौन-सा बाहरी आदमी हूं । मेरा अपना घर है मैं जैसे चाहूं बैठ जाऊंगा।'

मैंने कहा, 'फिल्म का क्या है। शुरू से लगा देता हूं।'

ड्राईंग रूम में लगा बत्तीस इंच का एल.सी.डी. हमसे दस फुट की दूरी पर था। हम भी मेज और सोफे को खींच कर उनके नजदीक आ बैठे।

वह माथे पर हाथ की ओट बनाकर, एकाग्रचित्त होकर फिल्म देख रहे थे। उन्होंने दांयी टांग बांयी टांग पर रखी हुयी थी। वह धोती पहने थे। वह बार-बार दांये टखने के ऊपर खाज कर रहे थे, फिर वह खाज करते- करते अपना हाथ घुटने के नीचे तक ले आये तो मैं उनका जख्म देखकर अचंभित रह गया। टखने के पास का जख्म तो मैंने तभी देख लिया था, जब वह आकर बैठे ही थे। शायद पहले भी कभी देखना हुआ होगा, मगर पक्की तरह याद नहीं। परन्तु यह ज़ख्म तो इतना बड़ा और गहरा था कि मुझे इसका अंदाज़ा तक नहीं था। जैसे शहतूत के दरख्त के तने में खोल सा बना होता है, नीचे से लेकर टहनियों तक ठीक उसी प्रकार का यह जख्म था। कई जगहों से पीब जैसा कुछ रिस रहा था। मेरा दिल खराब होने लगा। शायद मेरे साथ बैठे दोस्तों का भी हुआ होगा। फिर मैंने सोचा, हो सकता है उन सभी का इस ओर ध्यान ही न गया हो। मेरी ही नजरें उस पर केंद्रित हुई हो। मैं स्वयं चाहता था कि वे लोग इस जख्म को न देखें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने अपनी धोती फिर से अपनी टांग पर फैला ली। इस डर से कि कहीं कोई मक्खी न आ बैठे। चारों ओर से बेखबर, वे फिल्म देखने में मगन थे। उन्हें मालूम ही ना हो सका कि कैमरामैन ने कब उनके कुरते पर माईक चिपका दिया था।

हमने दो घंटे उनका इन्तजार किया था। कई छोटे- छोटे पैग सिप करते हुये पिये। हम यानि कि चार दोस्त। मैं यानि जगमोहन गोगना, मानव-शास्त्र का प्रोफेसर, स्टेट यूनीवर्सिटी आफ न्यूयार्क, से समाज- शास्त्र विभाग का हैड, प्रो. खालिद जावेद, सिंगापुर की नेशनल यूनीवर्सिटी से डा. जसपाल कलेर, जिस ने पुरातन एशियन इतिहास पर कई रिसर्च- पेपर लिखे थे और दिल्ली से आया हुआ कैमरामैन हरी भटनागर।

प्रो. जावेद का गांव कसूर के नजदीक था। उसके मां- बाप नूरमहल से उजड़कर वहां गये थे। उसकी दो चाचियां,तीन बुआ आदि मारी गयी थी। उसकी एक चाची ने बताया था कि बच्चों को बचाने के लिये पिछली कोठरी में बंद कर दिया था। उनके बारह बच्चों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिल पायी थी कि वह जीवित थे या कत्ल कर दिये गये थे। उनके बाबा का कहना था कि शायद किसी ने तरस खा कर बच्चों को मारा न हो, उनका धर्म बदल दिया हो। उसके बाबा ने दो वर्ष बाद अपने घर में रहने वाले के नाम ख़त लिखकर इन बच्चों के बारे में पूछा था, मगर वहां से कोई जवाब नहीं मिला था।

अब जावेद इन बच्चों की तलाश में मेरे साथ आया था। उसे यकीन था कि इनमें से कोई न कोई अवश्य ही जीवित होगा। यदि आठ वर्ष का अली जीवित हुआ तो उससे काफी कुछ मालूम हो सकता था।

'उसे कहते हैं नूरमहल की सराय,' मैंने सामने की ओर देखते हुये बताया।

प्रो. जावेद कार से उतरा। उसने बड़ी उम्मीद से सराय की ओर देखा था, कहा, 'अब आप लोग मेरे पीछे- पीछे आओ। मैं अपने पूर्वजों का घर खुद ही ढूंढ लूंगा ।' वह मेरे आगे- आगे चलने लगा। दो पल के लिये वह दुविधा में खड़ा रहा। 'बाजार को दो रास्ते जाते हैं। एक अड्डे की ओर से। एक अड्डे से सराय के बीच में से। यह रास्ता ठीक रहेगा।' वह बायीं ओर मुड़ा। मैंने उसे रोका, 'आगे वाला रास्ता भी ठीक रहेगा।'

'नहीं, प्लीज। मुझे डिस्टर्ब ना करो।' मैं अपने कदमों की गिनती कर रहा हूं। फिर उसने बताना शुरू किया था, 'यहां से सैंत्तालीस कदम आगे जाकर दायीं ओर मुड़ना है, फिर एक सौ तेईस कदमों पर बरगद आयेगा। बरगद के नीचे रंगरेज़ बैठा होगा। शायद अब वह ना हो। वहां से बांयी ओर मुड़ना है। पचासी कदम आगे जाकर बायीं ओर मुड़ेंगे, बाजार खत्म हो जायेगा। दस कदमों पर चढ़ाई आयेगी। पंद्रह कदम नीचे की ओर जाना होगा, फिर बायीं ओर मुड़ेंगे। बावन कदमों पर जाकर कुंआ आयेगा। यहां से बारह कदमों पर बायीं ओर मेरे पूर्वजों का कभी घर होता था।'

हम एकदम उस घर के सामने जा पहुंचे थे। मैंने उसे छेड़ा था, 'एकदम सही हिसाब रखा हुआ है।'

'यह हिसाब मैंने नहीं रखा। मेरे ग्रेंड फादर ने रखा था। वह दूसरे- चौथे दिन अपने घर को याद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते रहते थे। यहां पर मेरे पूर्वजों की जड़ें हैं। मुझे लगता है कि शायद मेरी अपनी जड़ें भी यहीं पर हैं। मुझे लगता है । फिज़ी में भारतीय सोचते हैं कि जहां उनके पूर्वजों का नडुआ दबा हो, उनकी जड़ें वहीं पर होती हैं। इस बात की समझ मुझे अब आयी है।'

मेरी उसके साथ मुलाकात ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी इंग्लैण्ड में एक सेमीनार के दौरान हुई थी। इस सेमीनार का विषय था इंडो- पाक बंटवारे में नेहरू तथा जिन्ना की भूमिका- साइको ऐनालैटिक अध्ययन। जिस होटल में हमें ठहराया गया था, उस में मेरा कमरा प्रो. जावेद के बगल वाला था। दो तीन मुलाकातों में ही हम आपस में घुल-मिल गये थे। हमें महसूस ही नहीं हुआ था कि हम पहली बार मिले थे। हमने अपनी मातृ भाषा में बातें की, जब मैंने उसे अपने शहर नूरमहल के बारे में बताया था तो उसने कितनी देर तक मुझे अपनी बाहों में बांधे रखा था। फिर मेरा हाथ दबाते हुये कहा, 'मुझे मेरे पूर्वजों की धरती का व्यक्ति मिल गया। हो सकता है, मेरा काम आसान हो जाये।' मेरे द्वारा कई बार पूछने पर भी उसने अपने काम के बारे में कुछ नहीं बताया था। बस यही कहा था कि, 'सब्र रखो। मुझे अभी हर रोज तुम्हारी कंपनी चाहिये।' जल्दी ही हमारे साथ डा. कलेर भी शामिल हो गया था।

सह सेमीनार एक हफ्ते का था।

तीसरे दिन दूसरे सेशन में कांग्रेस प्रधान कृपलानी का कांग्रेस अधिवेशन में दिया गया भाषण बहस का मुद्दा बना था, 'मैं कुछ दंगा पीड़ित इलाकों में गया। एक जगह पर मैंने एक कुंआ देखा, जिसमें औरतों ने अपने बच्चों समेत छलांग लगाकर अपनी इज्जत बचायी थी। एक अन्य स्थान में एक मंदिर में आदमियों ने इसी कारण पचास लड़कियों को मार गिराया था। एक घर में मैंने हड्डियों के ढेर देखे, जहां 107 आदमी, जिनमें ज्यादातर स्त्रियां तथा बच्चे थे,हमलावरों ने घेर कर एक घर में बंद कर दिया, फिर जीवित ही जला दिये गये। कुछ मैंबरों ने हम पर दोष लगाया कि हमने डर के कारण यह फैसला किया है । मैं इसके पीछे छुपे सच को स्वीकार करता हूं,मगर उस अर्थ में नहीं,जिस अर्थ में यह दोष लगाया गया है। यह डर जन हानि का, या विधवाओं तथा अनाथों की कराहटों का, या अनेक घरों के जलाये जाने का नहीं है। डर सिर्फ यही है कि हम ऐसा ही करते रहे, एक दूसरे से बदला लेते रहे तथा अपमान पर अपमान करते रहे तो आखिर हमारी स्थिति मानव भक्षकों जैसी और उससे भी बुरी हो जायेगी। इन दुखी परिस्थितियों में मैंने भारत के बंटवारे का समर्थन किया।'

जर्मनी से आये डा. स्पैन्सर ने किसी पुस्तक में से सरदार पटेल के विचार पढ़कर सुनाये, 'कांग्रेस,पाकिस्तान के विरूद्ध है, फिर भी सदन के सामने जो प्रस्ताव है,यह बंटवारा वह स्वीकार करती है। महासमिति इसे पसंद करे या ना करे, असल में पंजाब तथा बंगाल दोनों में तो पाकिस्तान पहले से ही मौजूद है। ऐसी परिस्थिति में मैं असली पाकिस्तान को अधिक पसंद करूंगा,क्योंकि फिर वह उन लोगों की जिम्मेवारी का भी कुछ ख्याल रखेगा।'

प्रो. जावेद अपनी कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया था। उस ने समय लेकर अपनी बात शुरू की थी, 'मैं सबूत पेश कर सकता हूं कि कायद-ए-आज़म जिन्ना अंत तक पाकिस्तान नहीं चाहते थे। केबिनेट मिशन की योजना पर 2 जून, 1947 को जिन्ना, माउंटबेरन से मिलने गये थे। कांग्रेस ने इस योजना को पहलें से ही मान लिया था। जिन्ना ने नहीं। माउंटबेटन ने कहा था, 'इस प्रकार आप अपना पाकिस्तान हमेशा के लिये गवां देंगे।' तो आगे से जिन्ना ने एक पंक्ति में जवाब दिया था, जो होना है, वही होगा। कितनी महत्वपूर्ण बात थी कि कायद-ए-आज़म इतिहास के इस अत्यंत महत्वपूर्ण तथा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फैसलाकुन पल में भी कोई अहम फैसला लेने से पीछे हट रहे थे।

प्रो. जावेद के विचारों तथा तथ्यों ने एक बार तो हाल में सन्नाटा ला दिया। वहां बैठे विद्वानों के मनों में यह प्रश्न खलबली डालने लगा था कि प्रो. जावेद ऐसा पहला मुसलमान था, जिस ने पाकिस्तान बनने का विरोध किया है या उसके अंदर यह बात घर कर गयी थी कि कायद-ए-आज़म पाकिस्तान नहीं चाहते थे। उनके विचार तो पाकिस्तान के विरुद्ध थे। इस बात ने सभी का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। कईयों ने उठकर उसकी ओर विशेष तौर से देखा भी था।

पीछे से किसी विद्वान की आवाज़ आयी, 'मैं प्रो. जावेद की बात से सहमत नहीं हूं। बाईस-चौबीस मार्च, 1940 को लाहौर में मुस्लिम लीग का सत्ताईसवां ऐतिहासिक सेशन हुआ था, जिसमें कायद-ए-आज़म जिन्ना ने कहा था, हिन्दू और मुसलमान दोनों का अलग-अलग धार्मिक दर्शन,सामाजिक रीति-रिवाज तथा अलग-अलग साहित्य है। वह ना आपस में शादी कर सकते हैं ना खाना खा सकते हैं। असल में यह दो अलग सभ्यताएं हैं जो विरोधी विचारधाराओं तथा भावनाओं पर आधारित हैं। उनके महाकाव्य अलग है। उनके नायक अलग हैं तथा कथाएं भी अलग है। अक्सर एक का नायक दूसरे के लिये खलनायक है। इसी प्रकार उनकी जीत-हार भी अलग है।'

वक्त खत्म हो जाने पर भी उस विद्वान की बात पूरी नहीं हुयी थी।

इस सेशन में बहुत विचारोत्तेजक बातें हुई थी।

रात को महफिल मेरे कमरे में सजी थी। हम चाहते थे कि इंडो-पाक बंटवारे को छोड़कर कुछ और बातें करें। परन्तु डा. कलेर ने डा. स्पैंसर को बुला लिया था। डा. कलेर ने कहा, 'दोस्तों, अब हम आफ द रिकार्ड बातें करेंगे।

कुछ समय के पश्चात हमने सैमीनार से भी ज्यादा गंभीर बातें की थी।

डा. स्पैंसर ने कुछ शब्दों में बताया था, 'मेरा अब तक का तुजर्बा यही बताता है कि तुम एशियन लोग तथ्यों को तोड़ मरोड़कर बयान करते हो। खुद पर कोई दोष नहीं लेते। इसीलिये कोई भी बात स्पष्टता से सामने नहीं आ पाती। मैं ही नहीं, जो भी व्यक्ति इंडो-पाक बंटवारे के समय के हालातों की पड़ताल करेगा, उसे जख्म ही जख्म दिखाई देंगे। यह अभी भी कई वर्षों तक हरे रहेंगे और हरे जख्म बहुत तंग करते हैं-अब मैं अपनी बात महात्मा गांधी से आरंभ करता हूं। तब उन की उम्र थी 78 वर्ष की। नेहरू तथा सरदार पटेल ने इंडो-पाक बंटवारे को स्वीकार कर लिया था। इस संबंध में उन्होंने गांधी को भी अंधेरे में रखा था-जब गांधी को मालूम हुआ कि वह असमंजस में फंस गये थे। वह जानते थे कि पार्टी पर सरदार पटेल की पकड़ मजबूत है, नेहरू की जनता पर। यदि गांधी उन दोनों का खुलकर विरोध करते हैं तो गांधी, कांग्रेस तथा भारत की आज़ादी तीनों की स्थिति बहुत ही संकटमयी हो जाती। दूसरी बड़ी बात,उनमें अब पहले जैसी शक्ति भी नहीं रही थी।'

डा. कलेर ने डा. स्पैन्सर को टोका था, 'गांधी जी ने तो अंग्रेजों से यह भी कहा था कि, तुम जाओ, हमें भगवान के भरोसे छोड़ दो। बर्बादी में छोड़ दो। हम खुद ही तय कर लेंगे कि क्या करना है, परन्तु तुम चले जाओ।'

'गांधी ने माउंटबेटन से दूसरी मुलाकात में ही कह दिया था कि जिन्ना तथा मुस्लिम लीग को केन्द्र में सरकार बनाने दी जाये। जिन्ना देश का प्रधानमंत्री बने और जैसे चाहे देश को चलाये। आगे से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माउंटबेटन ने पूछा था,जिन्ना पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी।' गांधी ने जवाब दिया था, 'फिर वही, कपटी गांधी।' मगर पटेल और नेहरू यह नहीं चाहते थे।

'बंटवारे की योजना भी वी.पी. मेनन ने तैयार की थी- उच्च कुलीन हिन्दू ने,मुस्लिम लीग से छुपा कर।'

'हां, गांधी जी ने कहा था, मैं मानता हूं, मगर जैसे मैंने सैमीनार में भी कहा था तथा प्रो. जावेद ने भी इस बात पर जोर दिया था कि जिन्ना इंडो-पाक पार्टीशन के लिये जिम्मेवार नहीं थे। मैं अब भी अपने विचारों पर ज्यों का त्यों खड़ा हूं। सारे स्कॉलर तथ्यों को ऐतिहासिक तथ्यों से जोड़कर देखते हैं। मैंने एक और तरफ से भी सोचना शुरू किया है। शायद मैं सही भी हूं। यह है मानवीय जीन्स। जिन्ना दो पीढ़ियों पहले हिन्दू ही थे। हो सकता है कि कहीं न कहीं उनके खून में हिन्दू धर्म समाया हो। जिन्ना ने तो कभी हिन्दू धर्म और ना ही कभी हिन्दुओं के खिलाफ अपशब्द कहे। जितनी इज्जत वह तिलक और गोखले को देते थे, उतनी किसी मुसलमान को भी नहीं।'

इस बार तो सभी के मुंह पर ताले लग गये।

जल्दी ही प्रो. जावेद ने कमांड अपने हाथ में ले ली थी, 'यारो, बात बस इतनी सी थी कि यदि इस बात को कांग्रेस एक बार भी मान लेती कि जिन्ना और मुस्लिम लीग मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं तो शायद बात इतनी ना बढ़ती। हमारा इतिहास कुछ और ही होता।'

डॉ. कलेर ने इतिहास का एक और ही पन्ना खोल कर रख दिया था, 'चलो इस्लाम धर्म से ही शुरू करें। मुहम्मद इक़बाल ने एक बार कहा था कि, इतिहास में संकट के समय इस्लाम ने मुसलमानों की रक्षा की है, ना कि मुसलमानों ने इस्लाम की। यदि आप इस्लाम पर ध्यान केन्द्रित करें, उसमें समायी उज्जवल विचारधारा से प्रेरणा ले तो आपकी बिखरी हुयी शक्ति फिर से इकट्ठी हो जायेगी। मैं उनकी इस बात से सहमत हूँ भी और नहीं भी। आप पूछें, कैसे? हिन्दुस्तान के लगभग सभी मुसलमानों की सबसे अहम समस्या यह थी कि उनका धर्म विदेशी था। उनके धार्मिक फैसले किसी ने किसी रूप में तुर्की या अन्य स्थानों से प्रभावित होते थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्हें असली मुसलमान नहीं माना जाता था। इस्लाम अरबी धर्म है। जो अरबी नहीं है, परन्तु मुसलमान है, वह परिवर्तित है। यहां मुसलमानों की ऐसी स्थिति थी कि एक ओर उनकी मातृभूमि थी, जहाँ वह पले-बढ़े थे। दूसरी ओर, उनकी आस्था थी, जिसका सब कुछ अरब में था। जब विदेशी मुसलमान इंडिया में आये तो वह अपने साथ औरतों तथा बच्चों को साथ नहीं लाये थे। यहाँ पर एक अजीब किस्म का इस्लामी राज्य फैला। कई स्तरों पर यह अलग-अलग रूपों में देश के मूल निवासियों से जुड़ा हुआ था।'

प्रो. जावेद ने आम से थोड़ी ऊँची आवाज़ में कहा था, 'इंडिया में जितने भी मुग़ल बादशाह, संत, सूफी रहे, किसी ने भी बाहर के खलीफ़ा या पाशा के प्रति अपनी श्रद्धा या सरोकार नहीं रखा था। इसकी कोई भी मिसाल कहीं पर नहीं मिलती। इस देश में हिन्दू भी बाहर से आये थे। मुसलमान भी। उनके लिये यह धरती उनकी मातृभूमि है। हमारे लिये भी एक दम ऐसा ही है। इंडिया में इतने बरस इकट्ठे रहने से हमारा खून बदल गया था। हमारे चेहरे भी बदल कर एक जैसे हो गये थे। मुसलमानों ने हिन्दुओं के अनेक रीति-रिवाज़ अपना लिये थे, हिन्दुओं ने मुसलमानों के। दोनों आपस में इतना घुलमिल गये थे कि उन्होंने एक नयी भाषा बना ली थी, जिस का नाम उर्दू है। ना यह हिन्दुओं की भाषा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, ना मुसलमानों की....।'

डॉ. स्पैन्सर ने पूछा था, 'फिर गलती कहाँ हुई थी।'

प्रो. जावेद ने सीधा ही मेरी ओर देखा, जैसे कह रहा हो कि अब चुप बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। कुछ तो बोलना ही पड़ेगा। मैंने अपनी बात यहां से शुरू की थी, 'डॉ. स्पैन्सर अपनी बात सिद्ध करने के लिये मुझे पीछे जाना पड़ेगा। तीन मार्च 1707 को औरंगजेब की मृत्यु हुई थी। यहां से मुगल सल्तनत में गिरावट आनी आरंभ हुई। औरंगजेब के चौथे लड़के मुहम्मद शाह के बाद इंडिया बँटने लगा। 9 अगस्त 1765 को क्लाइव इलाहाबाद में शाह आलम से मिला। शाह आलम ने एक शाही फरमान जारी कर बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी कंपनी को दे दी थी। यह मुगल सल्तनत के ताबूत में पहला कील था। कार्नवालिस ने परमानेंट सैटलमेंट की नीति लागू की तो मुसलमान जमींदारों का आर्थिक आधार डगमगाने लगा। हिन्दू पहले ही कंपनी में नौकरियां करते थे, उन्होंने मौका संभाला। अंग्रेजी शिक्षा तथा सरकारी नौकरियों में पिछड़ते हुये मुसलमान धीरे-धीरे उद्योग, व्यापार सभी ओर से पिछड़ने लगे। उनका आत्म गौरव तथा आत्म विश्वास भी लड़खड़ाने लगा। उनका गौरवशाली अतीत, शानो-शौकत तथा उनके महान बादशाह उनके लिये बीते दिनों की बात हो गयी थी।'

मैं सामने बैठे प्रो. जावेद की प्रतिक्रिया जानने के लिये रुका तो उसने मुझे बात जारी रखने को इशारा किया। मैंने बात को आगे बढ़ाते हुये कहा था, 'वारेन हेस्टिंग्ज़ ने एक बार कंपनी को चिट्ठी लिखी थी कि भारत की परम्पराएं, हिन्दू तथा मुस्लिम बेहद मज़बूत, प्रभावशाली और प्राचीन हैं। अंग्रेजों को सामाजिक तथा न्यायिक कारणों से किसी भी स्थिति में दखल नहीं देना चाहिये। 1857 की असफलता के बाद हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग धर्मों, फ़िरकों तथा राष्ट्रीयताओं के रूप में देखे जाने लगे। पहले ऐसा कुछ नहीं था। देखने वाली बात यह भी थी कि 1857 की असफलताओं के बाद बदले हुये हालातों में वह उन्हें नई तरह के अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में देख रहे थे। बेशक वह पहले भी गिनती में कम थे परन्तु तब उनके पास राजनैतिक सत्ता तथा पॉवर थी। अब वह हारे हुये और सत्ताहीन थे। बौद्धिकता सर सैयद अहमद से आरंभ हुई थी। सर सैयद ने ही अंग्रेज़ी सरकार को बताया कि अंग्रेजों को हिन्दू तथा मुसलमान सिपाहियों की अलग-अलग रेज़ीमेंट रखनी चाहिए थी। जिससे वह दोनों एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से जुड़े रह सके। एक को दबाने के लिये दूसरे को इस्तेमाल किया जा सके। सर सैयद के विचार उसकी पुस्तक 'कॉज़ेज़ ऑफ इंडियन रिवोल्ट' में दर्ज है, जिसकी 500 प्रतियां प्रकाशित की गयी थी। 498 प्रतियां इंग्लैंड में संसद सदस्यों तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों को भेजी गयी। अमीर अली ने 1910 में मुस्लिम लीग की लंदन में शाखा खोली। अलीगढ़ यूनीवर्सिटी के अंग्रेज़ प्रिंसीपल मिस्टर बेक ने मुसलमानों को उकसाया।'

प्रो. जावेद ने बीच में से टोकते तथा खीझते हुये कहा था, 'मालूम नहीं क्यों हमारे अंदर से धर्म नहीं निकलता। मैं स्वयं इसका शिकार हूँ। डॉ. गोगना भी। मुझे समझ में नहीं आता था डॉ. गोगना को जानबूझकर सावरकर की पुस्तक 'दि इंडियन वार ऑफ इंडीपैंडस 1857' क्यूं याद नहीं आयी। इस पुस्तक ने हिन्दू-मुसलमानों में बंटवारे की शुरुआत की थी।'

मैंने कहा था, 'सौरी, मैं भूल गया। मैं अपनी बात इन शब्दों के साथ खत्म करता हूँ कि यह लड़ाई उच्च वर्ग, जिन में मनसबदार, जागीदार, जमींदार आदि थे, की थी ना कि गरीब वर्ग की, क्योंकि इसमें यदि किसी ने अपनी जान-माल का नुकसान करवाया तो वह गरीब वर्ग ही था।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. स्पैन्सर हमारी बातों से उकता गया था। इसलिये उसने उठते हुये कहा था, 'अब सो जाओ। बाकी बातें कल करेंगे।'

डॉ. स्पैन्सर के जाने के बाद हमने इंडो-पाक दोस्ती के नाम के जाम टकराये थे। मैंने जोर देकर कहा था, 'हमें यह बात मानकर चलना चाहिये कि बंटवारे को भूलना मुश्किल है, परन्तु इसे याद रखना और भी खतरनाक है।'

प्रो. जावेद ने मेरी ओर तिरछी नज़र से देखते हुये कहा था, 'जिनके साथ बीती है, उनसे पूछ कर देखो। वे अभी जीवित हैं। उनके पास अपनी यादें हैं। बँटवारे के इतिहास की यादें। पीछे रह गये अपने घर की यादें। उनके किस्से-कहानियाँ सुनो। इन किस्सों-कहानियों से बहुत कुछ जाना जा सकता है।'

डॉ. कलेर ने उनसे पूछा था, 'बंटवारे के किस्से-कहानियों को ढूंढने से हमारा क्या फायदा होगा?'

प्रो. जावेद ने मेज़ पर मुक्का मारते हुये कहा था, 'ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एशियन लोगों की साईकी को समझने के लिये किस्से, कहानियों की बहुत अहमियत है। किसी भी शख्स से मिलो, वह अपनी आपबीती सुनाने के लिये कोई न कोई किस्सा अवश्य ही सुनायेगा। इसके बगैर वह अपनी बात कह ही नहीं पाता। दूसरी बात-मेरे दोस्त, आप यह बात क्यों भूल जाते हैं कि हमने कितना कुछ खोया है। जब रेश्मा पहली बार इंडिया गयी तो वह प्राईम मिनिस्टर इंदिरा गांधी से मिली। इंदिरा गांधी ने उससे पूछा 'मेरे लायक कोई काम हो तो बताओ।' रेश्मा ने झट से कहा था, 'मैडम, आप यह बार्डर खोल दीजिए। हम तो उधर चले गये हैं, परन्तु हमारे पीर-बाबा तो इधर हैं। फ़ौजी हमें उनके मज़ार पर जाने नहीं देते। हम गाना गायें और अपने पीर-बाबा को भी न सुनायें तो गाने का फायदा क्या हुआ।' कितना बड़ा सच कहा था रेश्मा ने। हमारी यादें तो इंडिया में ही हैं। हमारे धार्मिक स्थान अजमेर शरीफ़, बिहार शरीफ़, निजामुद्दीन, दुनिया में प्रसिद्ध इमारतें ताजमहल, जामा मस्जिद, लाल किला, फतेहपुर सीकरी यहीं पर रह गयी। हमने यह सब कुछ खो दिया है। बताओ, तुमने क्या खोया है। हमारे अपने खानदान की कब्रें इंडिया में हैं। मेरे बाबा जी को जब नूरमहल याद आता था या कोई बात चलती थी तो वह अक्सर कहते थे, हमारे देश में ऐसा होता था। हम अपने देश में ऐसा करते थे। उन्होंने कभी इंडिया का नाम नहीं लिया, कभी पाकिस्तान का नाम नहीं लिया। उनकी स्मृतियों में तो उनकी जन्मभूमि बसी थी। इसका धर्म से कोई भी संबंध नहीं था। एक और बात देखने वाली है कि पार्टीशन की खामोशियाँ कई प्रकार की हैं। देखो सितम की बात, पार्टीशन से संबंधित कोई स्मारक भी नहीं बना। दोस्तो, हमारा कल्चर एक है। पंजाबी कल्चर। कोई तो काम करो। ऐसे चुप बैठे रहने से कुछ नहीं होगा। कम से कम मेरे परिवार के बच्चों को ही ढूंढने में मेरी मदद करो। शायद उनमें से कोई जीवित हो।'

डॉ. कलेर ने पूछा था, 'तुम अपने स्वयं के बारे में क्यों सोचते हो?' प्रो. जावेद का जवाब था, 'स्वयं से ही बात आगे चलती है। शायद इससे कई और बच्चों का भी पता लग जाये।'

XXX

मैंने कैमरामैन को ताऊजी के बारे में बताया था, 'यह मेरे ताऊजी हैं। मेरे पिताजी के साथ नूरमहल के 'जगम्दबा ज्वेलर्स' में काम करते थे। इनका गाँव नया गाँव शौकिया है। सारा परिवार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमेरिका तथा कनाडा में बैठा है। यह यहां पर अकेले हैं। कई बार वीज़ा के लिये एप्लाई किया था परन्तु नरेन्द्र मोदी की तरह अंग्रेजों इनके पासपार्ट पर हमेशा रिफ़्यूज़ की मोहर लगा दी...।'

उन्होंने बीच में ही टोकते हुये कहा, 'अब बस भी करो। पहले पैग डाल दे। मुझे फिल्म देखने दो।'

मुझे उनके पैग का अंदाज़ा था। फिर भी मैंने नार्मल पैग डाला। उन्होंने अपनी नज़रें टीवी की स्क्रीन पर ही टिकाये रखी। एक ही साँस में गिलास खाली कर दिया था। उन्होंने किसी की ओर भी न देखा।

मैंने उनके कान के पास जाकर अपने दोस्तों के बारे में बताया। मैं कुछ पूछने ही लगा था कि उन्होंने होंठों पर अंगुली रखकर चुप रहने का इशारा किया।

प्रो. जावेद ने अजय भारद्वाज की फिल्म 'रब्बा, अब क्या करें' वहां से लगायी थी, जहां मलेर कोटले के नज़दीक गाँव के एक अपटूडेट सरदार ने बताना शुरू कर किया था, '...उन दिनों मैं यहां खड़ा था। वो सामने से मैंने मुसलमानों के परिवारों को टोलियों में या अकेले-अकेले जाते देखा था। एक दिन एक औरत जा रही थी। उसके सिर पर ट्रंक था। बगल में बच्चा था। हमारे गाँव का जमना उसके पीछे भागा था। जब जमना औरत के नजदीक पहुंच गया तो उस औरत ने ट्रंक फेंक दिया। वह सरपट दौड़ पड़ी। जमना को पीछा करते देख औरत ने अपना बच्चा भी फेंक दिया था। जमना ने पहले बच्चे को उठाया, फिर ट्रंक को। गाँव के पास आकर उसने बच्चे को टाँगों से पकड़, घुमाकर उसका सिर टहनी में दे मारा था। गांव वालो ने इसे पुण्य का काम कहा था। जमना को दूध पिलाया था। फिर मैंने इस जमना को बुढ़ापे में कुत्ते की मौत मरते देखा था। उसके सिर में कीड़े पड़ गये थे।'

ताऊजी के कहने पर प्रो. जावेद ने दो बार रिवाइंड कर फिल्म चलायी थी।

डॉ. कलेर ने रिमोट कंट्रोल से आवाज़ ऊंची कर दी थी। ताऊजी उठकर खड़े हो गये थे। जैसे उनके पैरों के नीचे किसी ने अँगारे रख दिये हों। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर ऊपर देखा और मरियल सी आवाज़ में कहा था, 'हे भगवान। यह तूने क्या-क्या रंग दिखाये।'

उनका शरीर, भीगी हुई बकरी की भांति कांपा था। उन्होंने हमारी ओर बेगानों की तरह देखा था। मुझे लगा था कि अधिक उम्र हो जाने के कारण वह कमजोर हो गये थे। मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ था कि मुझे इतनी जल्दी ऐसी भावुक किस्म की फिल्म नहीं दिखानी चाहिये थी।

उन्हें नार्मल करने के लिये मैंने एक और पैग उन्हें पीने के लिये दिया। उन्होंने नज़रें झुकाये ही गिलास खाली कर दिया था। कहा, 'मेरा गिलास भर दो।'

डॉ. कलेर ने मुझे इशारा किया कि मैं उन्हें और पैग न दूँ। व्हिस्की तेज़ थी। इसने ताऊजी पर हावी हो जाना था। फिर वह बोलने योग्य न रहते।

प्रो. जावेद ने मेरे हाथ से बोतल ले ली और गिलास भर भर ताऊजी को पकड़ा दिया था।

ताऊजी चुप थे।

हमें उनकी खामोशी अजीब सी लगी।

मैंने उनसे बातों का सिलसिला चलाने के लिये अपने पिता जी की बातें छेड़ दी। वह पिताजी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के हमउम्र थे। उन दोनों ने एक ही दुकान पर चालीस साल एक साथ काम किया था। हमारे आपस में पारिवारिक संबंध थे। बेशक वह पिताजी से उम्र में बड़े थे, मगर वह पिताजी को अपना गुरू मानते थे क्योंकि उन्होंने पिताजी से सुनारों वाला काम सीखा था। एक बार, जब मोरारजी देसाई ने नई गोल्ड पालिसी लागू की तो सर्राफ़ों के काम बंद होने के किनारे पहुंच गये थे। धर-पकड़ चल रही थी। उन दिनों 'जगम्दबा ज्वेलर्स' ने अपनी दुकान बदल कर नूरमहल ताऊजी के गाँव में शिफ्ट कर दी। सारे कारीगर यहां आ गये थे। दो वर्षों तक ताऊजी ने घर की ऊपरी मंज़िल में गहने बनाने का काम जारी रखा था। इस दौरान उनके तथा पिता जी के आपसी रिश्ते और भी गहरे हो गये थे। पिताजी अक्सर रात को वहीं रुक जाया करते थे। अब बेशक पिताजी इस दुनिया में नहीं रहे थे, परन्तु ताऊजी जब भी नूरमहल आते, हमारे घर अवश्य चक्कर लगाते थे। हमारे दुख-सुख में शामिल होते थे।

प्रो. जावेद ने उन्हें उकसाने के लिये मुझे इशारा किया। उनके चेहरे पर अजीब तरह की घबराहट, दुख तथा खामोशी के भाव थे। उन्होंने मेरी ओर चेहरा घुमाकर पूछा था,

'बेटा, कब आया स्पेन से।'

'पाँच दिन पहले। मैंने आपको बताया तो था।'

'मुझे याद नहीं रहा शायद। कब वापस जाना है।'

'तीन हफ्तों के बाद।'

'मुझे किसलिये बुलाया था?'

'आप मेरे ताऊजी हैं। क्या मैं आपको बुलावा नहीं भेज सकता?' मैंने एक बार फिर उनके घुटनों को हाथ लगाया। उन्होंने मुझे अपनी बाँहों में भर लिया।

'बारह बच्चों वाली वह कहानी सुनाइये ज़रा, जो आपने एक बार पिताजी के साथ शराब पीते हुये सुनाई थी।'

'पहले मुझे एक और पैग दे दो। गिलास भरकर। एकदम ऊपर तक। मैं सच कहने लायक तो हो जाऊं....। बेटा, यह फिल्म की कहानी तो कुछ भी नहीं। मैंने इससे बड़ा पाप होता अपनी आँखों से देखा था। पाप। अनर्थ। यह देख मेरा ज़ख्म। पिछले तीस बरसों से यह ज़रा-सा भी नहीं भरा। मैंने काफी देसी दवा-दारू की। अंग्रेजी इलाज भी करवाया। लड़कों ने लाखों रुपये खर्च किये। जोंक़े लगवायी, मगर ये ज़ख्म नही भरे गये। ये भरे जायेंगे भी नहीं। एक बार इसमें कीड़े पड़ गये थे। मैंने तीन दिनों तक उन्हें कुछ न कहा। मरे हुए बच्चे मुझे नज़र आते थे। चौथे दिन, जब दर्द से मैं बेहोश होने वाला था तो तुम्हारी ताई ने फ़िनाइल के तेल का फाहा ज़ोर से दबाया था। मैं अपने किये की सज़ा भुगत रहा हूँ। अभी मालूम नहीं कितनी और भुगतनी है।'

प्रो. जावेद, डॉ. कलेर तथा कैमरामैन कभी मेरे मुंह की ओर और कभी ताऊजी की ओर देख रहे थे।

मैंने उन्हें छेड़ा, 'पूरी बात तो बताइये।'

उन्होंने कहा था, 'बेटा, सच बताना बहुत कठिन होता है। बहुत सारे सच तो आदमी के साथ ही मर जाते हैं। वह इतने बुरे काम करता है कि किसी को बता ही नहीं पाता। मेरा आँखों देखा सच भी ऐसा ही है। बताने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। पहले एक और पैग दे दो।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैंने व्हिस्की का गिलास भरकर दिया और एल.सी.डी. की आवाज़ एकदम घटा दी।

उन्होंने बताया, 'दंगे शुरू हुये तो आस-पास के गाँवों में लूटपाट शुरू हो गयी थी। नूरमहल में बहुत सारे मुसलमान रहते थे। तगड़े लोग रातों-रात निकल गये थे। गरीब-दीन फंस गये थे। मैं, सुरजन तथा करतारा भी लूटपाट के लिये नूरमहल गये थे। हमने कई घरों से चीज़ें इकट्ठी की। फिर हमारे साथ जोगा भी शामिल हो गया। उसका घर बिलगे की ओर जाने वाले रास्ते पर पड़ता है। हम एक घर में घुसे तो वहां एक कमरे में कई बच्चे बंद थे। दो से लेकर आठ बरस की उम्र के थे। वह सहमे और डरे हुये थे। वे अम्मा कहां हो। अम्मा कहां हो?' पूछ रहे थे। हम सोच में पड़ गये कि इनका क्या करें। घर में कोई भी बड़ा व्यक्ति नहीं था। घर सामान से भरा हुआ था। हमें समझ में न आये कि हम यहां से क्या-क्या उठायें। हम दुविधा में पड़े बाहर गली में आकर खड़े हो गये।

पांच-सात मिनटों के बाद हमें पंडित बिशन दास आता नज़र आया। वह नज़दीक आया तो सुरजन ने उन्हें बच्चों के बारे में बताया। उसने हमसे कहा कि, हम उन बच्चों की मुक्ति कर दें। संपोलियों को जीवित नहीं रखना चाहिये। उन्होंने इस काम के लिये मुझे दस रुपये भी दिये थे। हम लगातार इन्कार करते गये। हममें से किसी का भी उन्हें मारने का जिगर नहीं हो रहा था। बिशनदास ने मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं तथा सिक्खों पर कत्लेआम की अनेक घटनायें सुनायी थी। तभी ज्वाला सिंह भी आ गया। उसने हमें प्रेरित किया। हम तीनों ने बच्चों को भेड़-बकरियों की भांति हाँकना शुरू किया। शहर से बाहर नकोदर की ओर ले गये। ज्वाला तथा जोगा ने बड़ा-सा गड्ढा खोदा। हमने एक-एक करके बच्चों को गड्ढे में फेंक दिया था। मैंने गिनती की थी। बारह बच्चे थे। बच्चों ने चीखना-शुरू किया था। मैंने कानों में अंगुलियां दे दी थी। आँखें बंद कर ली थी। मैं तो कांपने लगा था। ज्वाला तथा जोगा ने जीते-जी बच्चों को दफन कर दिया था। मैं वह दस रुपये वहीं फेंक कर सरपट गाँव भाग आया था।'

उन्होंने आँखें बंद कर ली थी। मुँह में कितनी देर तक बुदबुदाते रहे, फिर जैसे अपनी खोयी हुई ताकत इकट्ठी कर रहे हो। वह पहले से ऊँची आवाज़ में बोले, 'मैं जीते जी इस ज़ख्म को भरने नहीं दूंगा। यह ज़ख्म रिसते रहने देने चाहिये। इनमें बार-बार कीड़े पड़ने चाहिये। मैं तो जमना से भी बुरी मौत मरना चाहता हूँ।'

उन्होंने बोतल उठाई और अपने सूख रहे जख्मों पर आयी पपड़ी को नाखूनों से उधेड़कर ऊपर शराब उड़लनी शुरू कर दी थी।

हममें इतनी हिम्मत नहीं थी कि हम उन्हें रोक पाते। प्रो. जावेद ने ज़ेब से रूमाल निकालकर आँखें पोंछी। हरी भटनागर से वीडियो कैमरा छीन लिया। कैसेट बाहर निकाल कर गटर में फेंक दी।

जिंदर
984, मॉडल हाउस,
नियर सुरिन्दर वेल्डिंग वर्क्स, जलंधर-3
मो. 09814803254

अनुवाद-जसविन्दर कौर बिन्द्रा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

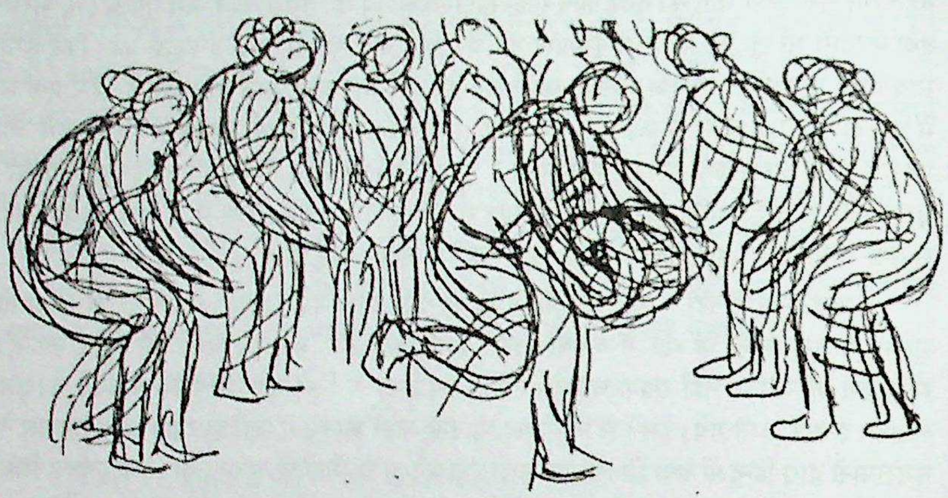

आदि डंका

भगवंत रसूलपुरी

दृश्य पहला

सूत्रधार- अड्डे पर फिर शांति हो गयी है। जलाये गये ठेके से कबाड़ उठा दिया गया है। मुलाज़िमों ने फिर से ठेके पर रंग पोत लकड़ी के रैक बनाने आरम्भ कर दिये। शाम को ठेके पर दारू के पियक्कड़ों की रौनक फिर से लगने लगी। वे भी दारू खरीदने लगे जो ठेके को लूटने में, अग्रणी थे। चौधरी फकीर चंद भी अपने खोखे को फिर से जमाने लगा। उसका पोता गाँव के मिस्त्री से खोखा बनवा रहा है। सामने बिजली के खंभे पर लगा किसी गायक का 'पोस्टर लायक पुत्र चमारों के .... वैसे का वैसा ही लगा हुआ है। सड़कों पर जिन्दगी वैसे ही लौटने लगी है। परन्तु मन में सहम भी बना हुआ है। चौधरी फकीर चंद सोच में घिरा, बन रहे खोखे की ओर देखता जा रहा है।

पहली झांकी

मैंने जले हुये खोखे के पास ही जगह को समतल कर बोरियां बिछा कर अपनी दुकान खोल ली थी। चमकते सूरज की ओर से ओट कर ली थी। इक्का-दुक्का ग्राहक आने लगा था। कल बाबू जोगिंदर पाल आधा घंटा पहले आ गया था। उसे बातें करने की बुरी सनक थी। वह मेरे निकट साइकिल खड़ाकर बैंच पर बैठ बातें करने लगा।

'.... चौधरी साहब बात तो बढ़ ही जाती है। इतवार को गाँव के लड़के इकट्ठे हो गये। कहने लगे हमें ना मंदिर रखना है ना गुरुद्वारा, हम तो इसका नाम 'सतिगुरु रविदास धाम' रखेंगे। कहने लगे, हम किसी से नहीं जुड़ेंगे। इसलिये बुजुर्गो, अब गाँव के गुरुद्वारे का नाम 'सतिगुरु रविदास धाम' रख दिया है। तुम्हारे गांव वाले भी बदलना चाहते हैं।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'बाबूजी। आप ठीक कहते हैं.... क्या हुआ तब जब आदि धर्म की लहर चली थी। उनकी अंग्रेजों से एक ही मांग थी कि इसे हिन्दुओं से अलग समझा जाये। हमें अलग धर्म, आदि धर्म के तौर पर, पहचाना जाये। बाबू मंगू राम ने आंदोलन चलाया। वह जहां जाते.... लोग हुमहुमा कर जलसे में पहुंचते। मेरे पिताजी घर में अक्सर कहते थे, हम हिन्दू नहीं हैं.... गोरी सरकार मर्दमशुमारी के समय हमें हिन्दू ना लिखे, ना ही हम इस धर्म का अंग हैं। वह कहते थे जब मर्दमशुमारी हो, हमें आदि धर्मी लिखा जाये और हमें सरकार और समाज में बराबरी का हिस्सा दिया जाये। हमारा ग्रंथ आदि प्रकाश ही है, सभी जन इसका पाठ करें।' मैंने अपनी लाल रंग की पगड़ी को ठीक करते हुये कहा।

'चौधरी साहब और सुनिये, हमारे सभी गुरु रविदास धामों में गुरु रविदास की वाणी ही पढ़ी जाती है।' डेरे में तो ग्रंथ साहिब भी एक ओर रख दिये गये हैं। लोग तरह-तरह की बातें करते हैं, 'कहते हैं हम अपने गुरु की वाणी का ही पाठ पढ़ते हैं। अरदास भी एकदम अलग से करता है।'

'कुछ नहीं होगा।! चार दिनों तक शोरगुल होगा, फिर सभी भूल जायेंगे इन बातों की ओर ध्यान देने का समय किस के पास है.... रोटी का मसला ही हल नहीं होता.... हमारे जैसे लोग ऐसे ही पैरों तले कुचले जाते रहेंगे। ग्रंथ तो अंग्रेजों के समय से बना हुआ है, किसी चमार ने इसे स्वीकार ही नहीं किया। मंगूराम ने कहा, सभी आदि धर्म को अपना ले, किसी ने नहीं अपनाया। 'जय गुरुदेव' कोई कहता नहीं। हम रविदास गुरुद्वारे में 'सौगंध' लिखवाते थे, जाप करते थे, धीरे-धीरे खत्म हो गया। 'हरि' लिखने लगे। जब भी पूछा भई! 'हरि' क्यों लिखा? तो बस यही जवाब कि मालूम नहीं... डेरे में लिखा था, हमने भी लिख दिया...। कभी-कभी मुझे यह भी लगता है कि यह आदि धर्म से चमारों को तोड़ने की कोई चाल है.... उस लहर का कोई चिह्न न रहने दो.... हर कोई अपनी अलग पहचान चमारों को जा थमाता है और अपने लोग पीछे हो लेते हैं।' बाबू जोगिन्दर ने अपना पक्ष रखा।

'पूना पैक्ट बनाकर.... हमारे माथे पर कलंक लगा दिया... आदि धर्म को अलग धर्म न बनाकर एक जाति ही बना दिया। यानी तुम हो तो हिन्दू, मगर हो चमार.... आदि धर्मी फिर जब भी मर्दमशुमारी हुयी, इसे आदि धर्मी न लिखा गया।' अब तुम लोग अपना धाम बना भी लोगो- अपनी वाणी भी अलग कर लोगे तो क्या होगा? कुछ भी नहीं। रहोगे तुम लोग वही जो तुम्हें बनाया गया है।' मैंने गहरे डूबते हुये कहा।'दूसरे लोग नहीं चाहते कि ये लोग अपनी गुरू की वाणी अलग करें, विवाह, जन्म-मृत्यु की रस्में बांट ले-' बातें करते-करते मेरे पास एक ग्राहक आ गया। बातें रोक मैं उसकी जूती गांठने लगा। बाबू जोगिन्दर उठकर बस का इन्तजार करने लगा। मेरा मन सोच में डूब गया।

.... कुछ दिन पहले ही तो 'गुरु रविदास धर्म बचाओ मोर्चे' की ओर से अड्डे पर एक जलसा किया गया था, जिसमें एक लीडर ने कहा- 'प्यारे साधजनो! आज हमारी कौम बहुत नाजुक दौर से निकल रही है। हमारा कोई अस्तित्व नहीं है। ताकतें गुरू रविदास की विचारधारा को खत्म करने के लिये तत्पर हैं। हम अपने धार्मिक स्थानों को पहचान सतिगुरु रविदास धाम (मठ) के तौर पर बना रहे हैं। हम उस ग्रंथ का पूरा सत्कार करते हैं, जिसमें हमारे गुरू के वचन शामिल हैं। मगर जब बात मर्यादा की आ जाये तो हम समझते हैं कि हमारी कौम का अपना एक ग्रंथ हो। इस ग्रंथ की स्थापना गुरू रविदास धामों (मठों) में की जाये। संत समाज में से हमारी कौम के विद्वान लोग 'ग्रंथ' की तैयारी में व्यस्त हैं ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियां इस महान ग्रंथ के द्वारा अपनी खुशी, ग़मी, त्यौहार तथा विवाह-शादी की सभी रस्में सम्पन्न करें। प्यारे साधजनो कुदरत सदैव परिवर्तनशील है। हमारी कौम भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिवर्तन चाहती है। आइये, इस संत समाज से पूछें कि हम कौन हैं ? हमारा स्वयं का धर्म क्या है ? आइये हम संत समाज के इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिये प्रार्थना करें। हमारे सभी भाई अलग-अलग स्थानों पर बिखरे हुये हैं- इसलिये मैं सभी साधजनों से निवेदन करता हूँ....'

और मेरी अंगुली में आर की नोक चुभ गयी। यह आर मेरी अंगुली में नहीं, सीने में चुभी थी।

मिस्त्री लकड़ी के फट्टे पर रगड़ाई करते हुये मेरा ध्यान तोड़ देता है। मेरे सामने नया बन रहा खोखा आ जाता है, फिर धुंधला पड़ जाता है। बाबू से आसपास की खबरें मिलती रहती हैं। एक दिन दफ्तर से लौटते समय मेरे पास आ कहने लगा, 'चौधरी साहब, आदि धर्मियों का आदि डंका तो अब बजा करेगा।'

'वो कैसे भई ?' मैं पूछता हूँ।

'अपने रविदास धामों में से ग्रंथ साहब हटा देने की योजनायें भी बनने लगी हैं.... तो तुम कल संक्रांति की बात सुन लो। सुबह ही जमींदारों के मुहल्ले से दस-बारह लोग इकट्ठे होकर रविदास धाम जा धमके। प्रधान से कहने लगे, 'तुम लोग ग्रंथ साहिब की बेअदबी कर रहे हो ? बंद कमरे में रखना मर्यादा के उलट है.... इसका नित्यप्रति 'प्रकाश' करना जरूरी है। प्रधान जी ने आगे नम्रता से कहा, देखो साधजनों हमें तो अपने गुरू महाराज के वचन पढ़ने हैं नितनेम से, वह पढ़ते हैं हम, डेरे (मठ) ने रविदास के वचन अलग से प्रकाशित किये हैं.... अरदास भी जो है, वही करते हैं। इस ग्रंथ में हमारे गुरू की वाणी है, हमारे भक्तों की वाणी है, फिर भी अगर आप लोग मर्यादा की बात करते हैं तो ग्रंथ साहब उठाकर अपने गुरुद्वारे में रख लीजिए।' चमारों के लोग इकट्ठे हो गये। बहस होने लगी। लड़के गुस्से में बोलने लगे....। फिर वे लोग चले गये। अब चौधरी जी बात यह है कि आसपास के गांवों से ग्रंथ साहब उठा देने की बातें आरंभ हो गयी हैं। यह भी मालूम हुआ है कि होशियारपुर के एक गांव में 'श्री आदि प्रकाश रत्नाकर ग्रंथ' का 'प्रकाश' (स्थापना) भी कर दिया है...।'

मैं हैरान हुआ। मेरा काम हाथ से छूट जाता है। मुझे आदि डंके की आवाज सुनायी देती है, मेरी आंखें प्रश्नचिन्ह बन जाती है, 'क्या-- फिर क्या हुआ ?'

'बुजुर्गों सच बात है, हमारे दफ्तर का एक क्लर्क तो वहां जा कर देख भी आया है।' कहते हैं कि अपने सारे कार्य- व्यवहार इस ग्रंथ के द्वारा ही पूरे होंगे। बाबू जोगिन्दर बताता है।

अलग पहचान तो होनी चाहिए, वरन् हमारा कहीं भी ठिकाना न ही रहेगा। मैं सीधा होते हुये कहता हूं।

बाबू का साथी कहता है, 'अब बात यह हो रही है कि सिक्ख लीडरों ने संत महापुरुषों पर रौब डालना शुरू कर दिया है। कि ग्रंथ हटाये न जाये, इकट्ठे होने की यही तो सांझ है, जिस कारण तुम लोग हमारे साथ जुड़े हुये हैं।'

मगर आप लोग हमें अपने साथ जोड़ कहां रहे हैं- देख लो गांवों में हमारे गुरूद्वारे अलग-अलग हैं। हमारे श्मशान घाट अलग हैं, फिर सांझ कहां रह गयी है। गोरों के राज में जब मंगू राम उठा था,इसी मसले को लेकर ही तो आया था। मैं दुखी होकर कहता हूं।

मुझे याद आता है वह समय,देश विभाजन से पहले का, जब आदि धर्म मंडल लहर की आंधी चल रही थी। फिर हुआ यह कि वह कहने लगे हमें हिन्दू सिक्खों से अलग मान्यता दो। हमारा धर्म

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आदि धर्म है। तब लाहौर साइमन कमीशन आया था। कमीशन के साथ अंबेडकर भी था। तब मेरे पिताजी आदि धर्म मंडल के प्रचारक थे और अक्सर इस बात के लिये घर से बाहर ही रहते थे। बाबू मंगूराम जी अपने मंडल के साथियों तथा कार्यकर्ताओं के साथ दस हज़ार से अधिक की गिनती में साइमन कमीशन से मिले थे। उन्होंने लाल रंग की पगड़ियां बांधी हुयी थी। जिन पर आदि धर्म मंडल लिखा हुआ था। तब लाल रंग के कपड़े अछूत नहीं पहन सकते थे। साइमन कमीशन भी मान गया था। परन्तु दूसरे धर्म वालों ने यह कहना शुरू कर दिया कि ये तो हमारे भाई है। उन दिनों पिताजी- चौधरी छज्जू राम हमें बताते थे।

'गोरों के समय मर्दमशुमारी होनी थी। बाबू मंगूराम,शूदरानंद,उस समय के आदि डंके के संपादक रामचंद गांव-गांव जाकर जलसे करवा अछूतों को बता रहे थे कि तुम लोग मर्दमशुमारी में अपना धर्म आदि धर्म लिखवाओ-- फिर हुआ क्या भई हमने जलंधर कृश्ना स्टीम प्रेस के नजदीक जलसा रखा।' दूर दराज में गांवों से अछूत चल कर जलसे में पहुंचे। जलसा चल रहा था कि शूदरानंद को सिक्ख नवयुवक उठा कर ले गये। फिर तो शोर मच गया। उस समय शिरोमणि कमेटी ने अछूत सिक्खों में से इस काम के लिये प्रचारक रखे थे। जो अछूतों में जाकर यह प्रचार करते थे कि अछूत मर्दमशुमारी में स्वयं को सिक्ख लिखवाये- आदि डंका में छपा कि ननकाणा साहब में बाबू मंगूराम और उसके साथियों को घेर लिया गया। वह मुश्किल से पुलिस की सहायता से भीड़ से निकले। उन दिनों में बाबू मंगू राम बड़ी जोशीली तकरीर देते थे।

एक दिन हमारे ताऊ चौधरी गरीब दास ने पिताजी को आकर बताया' अपने चण्डीगढ़ जाने वाली सड़क पर एक गांव है मूंडिया जो लुधियाने के नजदीक पड़ता है। वहां आदि धर्मियों का जलसा था। अभी हम जलसा करने लगे ही थे कि हज़ारों सिक्खों ने हमें घेर लिया।' इस जलसे में स्टेजी कवि गुरदास राम आलम भी हमारे साथ था। वो जी हमारा जलसा ही ना होने दे। यह कहा नहीं जा सकता। फिर जी हमने पुलिस बुलवा ली और हमने सड़क पर गाड़ी खड़ी कर स्टेज बना दी। अछूत लोगों की बहुत भीड़ थी। सिक्ख कहने लगे कि हमें भी बोलने का बराबर समय दिया जाये, हम तभी जलसा करने देंगे। आखिर में पेश ना चलते देख फिर उन्हें दस- दस मिनट बोलने का समय दे दिया गया। हमारी ओर से शूदरानंद बोले। वह धुंआधार भाषण देते थे। अंत में हमने लोगों से फिर कहा कि जो स्वयं को मर्दमशुमारी में अपना धर्म आदि धर्म लिखवाना चाहते हैं, वे पंडाल में अपना हाथ खड़ा करे। हजारों लोगों ने हाथ खड़े कर दिये। उन दिनों हमें दूसरे लोगों ने बेहद तंग किया। सामाजिक बहिष्कार किया।

मैंने बीच में उन्हें टोक कर कहा, 'पिताजी बताते थे कि भई गांवों में अछूतों की टांगे तोड़ दी गयी थी--। भई गांवों में तो ये बहिष्कार दो- दो महीने तक चले थे।'

हां वो समय बहुत खराब था। हमारे अछूत लोग गरीब थे, बेचारे थे।

पिताजी ने यह भी बताया कि, 'इसीलिये बाबू मंगूराम मुंगोवालियां ने अलग- अलग स्थानों पर वालंटियर जत्थे तैयार किये। इस जत्थे की एक वर्दी थी। सिर पर लाल रंग की पगड़ी, सफेद कमीज, धोती और हाथ में लाठी। इस वर्दी ने अछूतों के आपसी भेदभाव को दूर करने में अहम भूमिका निभायी।'

तभी अर्जुन लुहार का लड़का आया और रंदा को मेरे आगे कर मेरा ध्यान तोड़ दिया। उसने

CC0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहा, 'चौधरी फ़कीर चंद! ये लो, लगा दिये दोनों के हत्थे।' जब मेरे खोखे को आग लगी थी तो ये आरी और रंदा भी खोखे में ही थे, इनकी लकड़ी वाले हत्थे जल गये थे। और मैं इनकी दुकान पर नये हत्थे लगाने के लिये दे आया था। मेरा ध्यान फिर से बन रहे खोखे की ओर चला जाता है। बाबू जोगिन्दर उठकर बस की ओर चल देता है। मैं बैंच पर अकेला बैठ रह जाता हूँ। सोचे पीछे की ओर लौट जाती हैं। आंखों के सामने आदि धर्म लहर घूमने लगती है.... । गोरे अंग्रेजों के आगे अछूत आदि धर्मियों के डंके बजते सुनायी देते हैं.... । कुन्नों के पास बैठे पिता सुम्मा पीते नज़र आते हैं। उसके पैरों तथा हाथों पर कीकर के बोट का रंग चढ़ा हुआ है। नाखून काले पड़ चुके हैं....फिर क्या हुआ, भई सारा कारोबार ठप्प हो गया था। लहर को बहुत धक्का लगा था। सारे प्रचारक बिखर गये थे। आदि डंका बंद हो गया था। कृश्ना स्टीम प्रैस पर जो कतारें लगती थीं, वह बंद हो गयी थीं। पिता जी अस्थिर हो गये थे। सारा व्यापार मंदा पड़ गया था। लेकिन वह अपने ट्रंक को हाथ नहीं लगाने देते थे। जब भी मन करता खुद ही ताली खोलते, अन्दर से 'आदि डंका' की कोई पुरानी प्रति निकालते, पढ़ते, फिर रख देते। बेग़मपुर गांव में कच्चे चमड़े की रंगाई का काम बंद होने लगा था। पिता जी ने अड्डे पर जूते तैयार करने की दुकान ले ली।... इस खोखे तक पहुंचने की एक लंबी कहानी है। परन्तु यह डंका कौन सा बजने लगा है। एक बार फिर अड्डे में आदि धर्मी-चमार होने का दावा..... खंभे पर लटका पोस्टर 'लायक पुत्र चमारों के'... मेरी बूढ़ी हड्डियों में जान आ गयी लगती है, चेहरा किसी जोश से भर गया लगता है। मेरी सोचें फिर से वहीं पहुंच गयी लगती हैं, जब जूते में टांके लगाते हुये मेरी अंगुली में सुआ चुभ गया था।

दृश्य दूसरा

सूत्रधार- दो पहर ढल चुकी है। तीखी धूप की तपिश कुछ कम हो गयी है। चौधरी फकीर चंद का तांबई रंग चमक रहा है। उसने अपने खोखे के सामने खाद के बोरों से बनी थंबी को भी सीना छोड़ दिया है। खस्ता हाल हुये खोखे अंदर बैठी किसी औरत की जूती को टांके लगा रहा है।

झांकी पहली

जूती में घुसाई सुई अचानक मेरे पोर में चुभ गयी थी, जब अड्डे में शोरगुल शुरू हुआ। खाली ड्रम सड़कों पर गिरने लगे थे। टायरों की दुकान से, पुराने टायर उठा- उठा कर भीड़ ने सड़क पर फेंकने शुरू कर दिये थे। 'जय संतों की'- 'रविदास शक्ति अमर रहे' जैसे नारों से मेरा ध्यान उखड़ गया था। जूती को टांका लगाने की गति चींटी की चाल जैसी मंथर हो गयी। जूती गठवाने वाली औरत का चेहरा ये सब देख खिंच सा गया, अरे फकीरचंद, जल्दी- जल्दी चार टांके लगा दे, मालूम नहीं क्या हो गया है अड्डे में, मैंने तो लड़की के ससुराल जाना है, नासपीटे ने फिर रात को दारू पी लड़की को पीट दिया।

मगर मेरा ध्यान तो उखड़ चुका था। एक अंगुली के पोर से लहू रिसने लगा था। लेकिन मैंने भी टीस की परवाह न कर जूती को जल्दी से गांठ औरत को चलता किया। इतने में ही भीड़ बढ़ने लगी थी। फिर क्या हुआ, भई गांव बेगमपुर से काफी लोग अड्डे पर आ गये थे। पल में सड़क पर जिन्दगी रुक सी गयी। मैं भी अपने बूढ़े घुटनों के बल अपने खोखे से बाहर निकल आया। फिर क्या हुआ भई टायरों को आग लग चुकी थी। आग की लपटों तथा धुंए से इर्द-गिर्द दहशत फैल गयी थी। गाड़ियां, कारें, बसें, ट्रक रूक गये थे। सड़क के दोनों ओर गाड़ियों की लाइटें जलने लगी थी। रविदास शक्ति अमर रहे- जो हमसे टकरायेगा-चूर चूर हो जायेगा- जय संतों की- 'जैसे नारे ऊंचे होने लगे। मेरा पोता

CC0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सूरज भी भीड़ में जा धुसा था। एक लड़के के पास जाकर मैंने पूछा था, क्या हुआ है लड़के ?'

'बापू अपने संत पर किसी ने गोली चला दी है। कहते हैं, दोनों संत मारे गये। कोई कहता है ठीक- ठाक हैं। कोई कहता है,एक को गोली लगी है-' इतना बता वह लड़का लाठी लेकर एक कार की ओर बढ़ गया, जो साईड से निकलने की कोशिश कर रहा था। मेरे देखते ही देखते उस लड़के ने लाठी से उस कार का शीशा तोड़ दिया। पांच सात अन्य लड़कों ने उस कार पर लाठियां तथा पत्थर बरसाने शुरू कर दिये। वह बहुत मुश्किल से बाहर निकल पाया, देखते- देखते उस कार को आग लग गयी और कार से काला धुंआ निकलने लगा। आग की लपटें आसमान की ओर उठने लगी। खोखे के पास आ मेरा उदास मन सोचों में उलझ गया।

झांकी दूसरी

मेरे सामने संत बाबा का चेहरा घूमने लगा। मैं उनके डेरे पर भी कई बार जा चुका था। वह संत गुरु रविदास की वाणी का प्रचार करते थे। मेरे खोखे में रविदास की फोटो के साथ उन संत बाबा की फोटो देख बाबू जोगिन्दर पाल एक दिन मुझे कहने लगा था,'बुजुर्गों, इस डेरे के कारण ही दोआबा के अधिकतर चमार रविदास से जुड़े हुये हैं। इस डेरे तथा बाबू मंगू राम की लहर ने रविदास को सुरक्षित रखा हुआ है। देखो, उस समय में कितनी तगड़ी मूवमैंट चली थी-' साइकिल खड़ा कर वह मेरे निकट आ गया था। जोगिन्दर पाल हमारी दूर की रिश्तेदारी से हैं। शहर के बैंक में नौकरी करता है। गांव से साइकिल पर बेगमपुर के अड्डे तक आता है। मेरी नजरों के सामने मेरा बाप घूमने लगता है। जो बाबू मंगूराम मूंगोवालिया की ओर से चलायी लहर 'आदि धर्म मंडल' में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेता रहा था।

झांकी तीसरी

देश विभाजन से पहले की बातें हैं, मुझ पर अभी जवानी आयी ही नहीं थी। मूंछे फूटने लगी थी। मेरे पिता को आस- पास के गांवों के लोग चौधरी कहकर पुकारते थे, उन दिनों में वह मुझे गांवों से मृत पशु लेने भेजता था। मैं मुंह झाखरे ही रेहड़ी ले चक्कर लगाने चल देता था। दो- तीन जानवर मिल जाते थे और मैं उन्हें निचले स्थान पर बने, हड्डा- रोड़ी पर लिटाकर मृत जानवरों पर बड़ी कुशलता से रंदा चलाने लगता था। दो- तीन खालें रेहड़ी पर लाद दिन ढले घर लौटता था। इन खालों को हम कुन्नों में रंगते थे। गांव के सारे चर्मकार यही काम करते थे। मेरा पिता चमड़ा रंगने का काम तो कम ही करता था। उसका अधिकतर समय आदि धर्म लहर का प्रचार करना ही था। एक दिन जब मैं पशुओं की खालें लादे रेहड़ी कुन्नों के पास कीकर के नीचे खड़ी ही की थी तो मुझे आंगन में कोई गेरू रंग के लाल कपड़े पहने बैठा नजर आया। मेरा पिता दूसरी चारपाई पर बैठा हुक्का पी रहा था। पहलवानों जैसे कुदरती शरीर वाले उस आदमी का चेहरा काफी आकर्षक था। वह सिर से सफा चट था। उसके गले में दो- तीन मालाएं थी। कपड़ों में से उसका पक्का रंग चमक रहा था। हाथ में पीतल का कमंडल था। मैंने उनके नज़दीक जाकर 'जय गुरुदेव' कहा। उन्होंने बहुत अपनत्व से 'जय गुरुदेव' कहा और मैं उनके पास जमीन पर ही बैठ गया। सारे घर में ही नहीं सारे चमरवाड़े में हम एक दूसरे को 'जय गुरुदेव' कहते थे। कमंडल पर हाथ फिराते समय वह पिताजी से कुछ कह रहा था।

'देखो चौधरी छज्जूरामजी। हमने जो लहर खड़ी की है, यह सभी भी भलाई के लिये है। इसमें हमने चमार ही नहीं बल्कि वाल्मीकियों को भी साथ लिया है- हमने कबीर पंथियों को भी साथ जोड़ा है। हमने सभी छोटी जातियों को अपने साथ लिया। परन्तु ज्यादा ध्यान चमारों पर रखा। आपको तो

CC-0 Agamnigam-Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मालूम है हमारी कोई अलग पहचान नहीं। हमें किसी ने पहचान दी ही नहीं। भाई, अगर पहचान होगी तो हमारा रुतबा ऊंचा होगा। हमें शिक्षा मिले, हमें जमीनों का हक मिले। ब्राह्मण हमें नफरत करते हैं। सिक्ख हमें पास फटकने नहीं देते। हमें अंग्रेजों के आगे ये मांगे रखनी चाहिये कि हमें एक अलग पहचान दे। हमारा धर्म आदि धर्म है, इस नाम तले हमें एक होना हैं। मंगूराम स्वयं आगे चले हैं। हमें उनके पीछे चलना है। हमारे गुरु वही है जिन्हें हम मानते हैं। रविदास जी है-वाल्मीकी जी है-नामदेव है,कबीर है-हम अब ना चमार है ना चूहड़े- ना कुछ और ठीक है न। यदि हम इकट्ठे होंगे तो गोरों से कुछ ले सकते हैं। नहीं तो यूं ही घुटने रगड़-रगड़ कर मरते जायेंगे।

जब वह बोलने से रूक गये तो पिताजी मुझे बताने लगे थे, 'बेटा, यह स्वामी शूदरानंद जी है। बाबू मंगूराम की लहर के कार्यकर्ता है। जहां भूख लगती है, खा लेते हैं,प्यास लगती है तो पी लेते हैं। नींद जहां आ जाये सो जाते हैं। अपने जालंधर के ही है। रसता मुहल्ले में रहते हैं। वहीं पढ़े हैं। बाबू जी के साथ जुड़ गये हैं। वैसे इनका नाम शिवचरण है। कौंम को जोड़ने के लिये इन्होंने अपना घर- परिवार सभी कुछ त्याग दिया। अब तो बहुत लोग हैं जो अपने लोगों के दिमागों में रोशनी भर रहे हैं।पिताजी बताते हुए साथ- साथ हुक्का पी रहे थे। स्वामी शूदरानंद जी काफी समय तक पिताजी के साथ बातें करते रहे थे। मैं हैरानी से उनकी बातें भी सुनता रहा था। फिर स्वामी जी सभी को 'जय गुरूदेव' कहते हुये उठ खड़े हुए थे। पिताजी ने उन्हें लहर के प्रचार के लिये दो आने दिये थे। स्वामी जी अपनी बगली से 'आदि डंका' अखबार की कापियां निकालीं। एक कापी पिताजी को दी। पिताजी ने 'दो पैसे' स्वामी जी को दिये। फिर स्वामीजी मुझे आशीर्वाद दे कर 'जय गुरुदेव' कह अगले गांव के लिये चल दिये।

झांकी चौथी

पिताजी सुबह उठकर पहले हमें बोरियों की भांति सिली हुई खालों में पड़े कीकर के सक्क वाला गेरूआ रंग का पानी डालने को कहते। हम बोरी सरीखी खालों को उनके मुंह तक पानी से भर देते। पिताजी ताजा लायी खालों पर नमक डाल एक के ऊपर एक परत की तरह रख देते। फिर दास्ताने डाल कुन्नों में रखी खालों को निकालते। चबूतरे पर फैलाकर रंभी से साफ करते- उनके कोनों को मूंज के तिनकों से सिल देते ताकि खालों को रंगा जा सके। फारिग होकर कंडों के छोटे टुकड़ों से हुक्का ताजा करते। अपने साथी हंसे को पास बुला लेते। कोठरी में से। आदि डंका अखंबार ले आते। जमीन पर हमें बिठाल कर, उसे पढ़ कर सुनाते।

हम बाबू मंगूराम के लेख, विशेष तौर से सुनते- देखो लड़का-ये महापुरुष लोग सोई हुई कौंम को जगाने के लिये दिन-रात एक कर रहे हैं। 'आदि डंका' का पहला पेज़ हमारी ओर कर कहते, ये बाबूजी ने जांलधर से शुरू किया है। इसमें आदिधर्म के बारे में बहुत कुछ छपता है। भई, इस धर्म को जरूरत क्यों पड़ी-क्या असूल है- क्या फर्ज है, कौन कौन से खतरे हैं। बस यह समझो कि बहुत कुछ है इसमें। जब पिताजी बातें करते, हम पांच-सात लड़के उनकी बातें ध्यान से सुनते। पिताजी ने उर्दू गांव के मौलवी से सीखी थी। गुरमुखी उन्होंने स्वयं ही पढ़नी सीख ली थी। उस वक्त हमें स्कूलों में घुसने नहीं दिया जाता था।मेरे पिता जब मुझे स्कूल में दाखिल करवाने गये तो स्कूल के मुखिया ने हमारी जाति पूछी,पिताजी ने तुरन्त कहा, जी हम आदि धर्मी हैं। स्कूल के प्रधानाचार्य ने कहा,ये कौन सा धर्म है भई,सीधी तरह से बताओ कि तुम चमार हो या चूहड़े। बात बिगड़ गयी। उन्होंने गांव के मौलवी के पास मुझे पढ़ने को भेज दिया। हमारे आदि धर्मियों के प्रांगण से पांच- सात लड़के और भी वहीं पढ़ते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। मेरी बहन को भी पिताजी ने पढ़ने के लिये भेज दिया था। मौलवी के पास मैंने प्राइमरी पास कर लिया। फिर पिता मुझे शहर के आर्या स्कूल में दाखिल करवाने के लिये ले गये, जब शहर के हिन्दू लड़कों को मालूम हुआ कि मैं चमारों का लड़का हूं तो उन्होंने स्कूल में शोर मचा दिया ,स्कूल के मास्टर ने मेरा नाम काट दिया। मेरे पिता को क्रोध आने लगा, 'मास्टर जी, मैं बताऊंगा,तुम कैसे मेरे लड़के को नहीं पढ़ाते।' पिताजी गुस्से में मास्टरों से कह आये। उस समय गोरों का राज्य था। बड़ी अदालत लाहौर में थी। पिताजी आदि धर्म मंडल जालंधर के प्रचारकों को लेकर लाहौर कोर्ट गये। गोरे लोग अच्छे थे,लाहौर की अदालत ने कह दिया कि इस विद्यार्थी को स्कूल में दाखिल किया जाये। पिताजी बताते हैं कि 'पुत्तर, उस दिन के बाद स्कूलों में हमारे बच्चों के लिये दाखिले खुल गये,मगर भेदभाव होता रहा। हमें अलग बिठाया जाता।स्कूल के अध्यापक छड़ी से हमें दूर से पढ़ाते- दूसरे बच्चे हमें पत्थर रोड़े मारते।'

हां एक रोड़ा आकर मुझे लगता है, मेरा ध्यान टूट जाता है, ध्यान फिर से सामने चला जाता है। कई आवाजें मेरे कानों में पड़ती है।

'ओफ्फो। इन लोगों ने अब तो अति कर दी है। अगर तुम्हारे संत को गोली लगी है तो तुम लोग यहां क्यों सब फूंकते जा रहे हो शरीफ लोगों को क्यों ख्वार कर रहे हो। कोई बीमार- रोगी तो इस जाम में मर ही जायेगा।'

कहते हैं बूटां मंडी में में ट्रक जला दिया, ट्रक मिनटों में राख हो गया।

-सुना बाईपास में बसें जला दी।

-लो सुनो भाई, कैंट स्टेशन पर तो सारी की सारी गाड़ी ही फूंक दी। डर के कारण मेरा बूढ़ा शरीर कांपने लगा। संतों के साथ भी बहुत बुरा हुआ था। मंगूराम की आदि धर्म लहर बेशक दम तोड़ गयी थी। परन्तु वह लहर रविदास की जड़ें पंजाब में लगा गयी। तभी यहां 'डेरा' भी पैदा हो गया था जो रविदास की वाणी का प्रचार कर रहा था। बेशक डेरे का आरम्भिक मिशन 'उदासी संप्रदाय' जैसा था। बड़ी मात्रा में दोआबा के चमार इस डेरे से जुड़ गये थे। मैं भी कई बार डेरे गया था। मुझे याद आता है। पिछले हफ्ते साइकिल खड़ा करते समय जोगिन्दर मेरे पास खोखे पर बैठ गया, 'बाबूजी छुट्टी कैसे गुज़री फिर ?' मैंने बूट पर पालिश करते हुये कहा था।

'बुजुर्गों ! कल हम डेरे गये। इतवार को भंडारा होता है न। काफी लोग आते हैं। छोटे संत जी बहुत सुन्दर कीर्तन करते हैं। डेरे के असली प्रचारक तो वही हैं। उनके कारण ही डेरे की महिमा देश-विदेश पहुंच गयी है। तुम खुद देख जो, डेरे ने कितने गुरुद्वारे बनाये हैं गाँव-गाँव में, कोई अंत नहीं। हर वर्ष संत सम्मेलन होते हैं। बहुत श्रद्धा से है हमारे लोगों में। संत जी को पालकी में बिठा बैंड-बाजों के साथ लेकर आते हैं।'

मैं कहता हूँ, 'बाबूजी! मैंने गोरों का ज़माना भी देखा हुआ है। जब कभी बाबू मंगू राम और....आदि धर्म की आंधी चली थी। जब लोगों को मालूम होता कि फलां स्थान पर बाबूजी आ रहे हैं तो लोग मीलों लंबा रास्ता तय कर समूहों में बाबू के जलसों में पहुंचते थे। दस-दस मील तो हम चलकर जाते रहे। तब आने-आने के इतने साधन भी नहीं होते थे। जब भी हम पिता से कहते कि हमें फलां जगह जलसे में जाना है तो वह हमें तुरन्त भेज देते। दो-चार आने प्रबंधकों को देने के लिये भी देते। ताकीद करते कि 'आदि डंका' ज़रूर लेकर आना। एक बार जालंधर शहर में जलसा हो रहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जलसे में बाबू मंगू राम, सेठ लभ्भू राम, तुम्हारे ताजपुर गांव से चौधरी सूबा मल्ल जो मंडल के खजांची भी रहे। हज़ारी राम जो जनरल सैक्रेटरी थे.... बंडाला मंजरी से पंडित बख्शी राम, स्वामी शूदरानंद तथा अन्य बहुत सारे प्रवक्ता पहुंचे। हमें तो बाबू मंगूराम का भाषण ही सुनना था। लो भई, हज़ारों की गिनती में दुनिया थी। लोगों के पैर नंगे, नंगे बदन पर सिर्फ चड्डी, किसी के घुटनों के ऊपर तक धोती, बदबूदार शरीर, पसीना, धूल से भरे चेहरे। जलसे में बाबू मंगूराम स्टेज पर जब भाषण करने लगे तो चारों ओर खामोशी फैल गयी।'

झांकी पाँचवीं

'.... मेरे आदणीय बहनों और भाईयों। आपको मालूम ही है कि हमने आपके सहयोग से आदि धर्म मंडल की स्थापना जालंधर में पिछले तीन वर्ष पहले कर दी थी। यहां मैं ज्यादा बातें नहीं करूँगा, ना ही अछूतों के इतिहास में जाऊँगा। क्योंकि यह सभी कुछ आप लोग मंडल के अखबार 'आदि डंका' में पढ़ते रहते हो। 'आदि डंका' का ताज़ा अंक जो आज बेचा भी जा रहा है, में मैंने मंडल की प्राप्तियों के बारे में ज़िक्र किया। अंग्रेज़ लोग हमारी मांगों को बहुत गंभीरता से ले रहे हैं। हम समय-समय पर प्रतिनिधिमंडल लेकर गोरी सरकार के पास जाते रहते हैं। परन्तु यहां के उच्च जाति वाले इस बात का विरोध कर रहे हैं। वे हमें अपनी जाति में तो रखना चाहते हैं परन्तु रखना पशुओं की तरह चाहते हैं। इसलिये मेरे भाइयो, आप सभी इस लड़ाई में मेरा और आदि धर्म मंडल का साथ दीजिये। आपकी आंखों में धूल डालने के लिये दयानंद दलित उद्धार और ऐसी अन्य संस्थाओं ने जो हमारा कुछ नहीं संवारा। इन संस्थाओं के पीछे उच्च जातियों के दिमाग काम कर रहे हैं। ऐसी मौकापरस्त संस्थाओं ने आप लोगों को गड्ढे में से कभी निकालना नहीं है। आदि धर्म मंडल मेरे अकेले की संस्था नहीं, आप सभी की संस्था है। जो आज से तीन वर्ष पहले आप लोगों के सहयोग से बनी है। याद रखिये, हमारा मकसद आपको आदि धर्म के नाम पर सामूहिक कुरना ही नहीं बल्कि हमारा उद्देश्य अछूत बच्चों को शिक्षा की ओर प्रेरित करना भी है, क्योंकि शिक्षा मनुष्य को समझदार तथा चेतन करती है। हमने दबे-कुचले लोगों के लिये झंडा उठाया है। आप सभी पीड़ित लोग इस झंडे तले एकत्रित हो रहे हैं, ये शुभ लक्षण है। मैं ज्यादा बातें नहीं करूँगा, क्योंकि अन्य प्रवक्ताओं को भी अपने विचार आपके सामने रखने हैं... स्वामी शूदरानंद 'आदि डंका' के बारे में बतायेंगे.... रामप्रकाश संघर्षशील प्रोग्राम के बारे में बतायेंगे।'

बाबू मंगूराम का भाषण मुझे शब्द-ब-शब्द याद है। भाषण ही नहीं मुझे तो 'आदि डंका' में छपते लेख, खबरें तथा संपादकीय भी याद हो जाते थे। कभी-कभी मेरे सपनों में भी सारा कुछ घूमता रहता। मेरी याददाश्त के बारे में जान पिताजी भी काफी हैरान होते थे, हालांकि पिताजी को भी काफी कुछ याद रहता था। वह कई बार आधी-आधी रात तक हमें बातें बताते रहते थे।'

'अच्छा बुजुर्गो। तुम्हारे जैसे ज्ञानी लोग विरले ही है। कहते हैं, जब आदि मंडल बना, तब हजारों की गिनती में लोग होशियारपुर के गांव मूंगोवाल पहुंचे- बड़ी जर्बदस्त लहर चली थी। आज हम फिर वहीं के वहीं खड़े है।' चाय का घूंट भरते हुये बाबू जोगिन्दर पाल ने बोलकर मेरी चेतना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

मैं खोखे की दाहिनी दीवार पर लगे गुरू रविदास के कैलेंडर की ओर देखकर मन ही मन आदर से सिर झुका देता हूं तथा सिर पर लाल रंग की पगड़ी ठीक करते हुये कहता हूं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'दरअसल बात यह है कि बाबूजी की अपनी कौम के पास बहुत बड़ा दिमाग नहीं है। दिमाग बड़ा भी कैसे होगा- सारा दिन गधे की तरह काम करना,शरीर को काम में झोंके रखना, दिमाग को इस्तेमाल ही न करना,दिमाग को जंग ही लगेगा और क्या। दिमाग सोचने वाले लोगों के बड़े होते हैं। पढ़ते जाओ- सोचते जाओ, जब बाबू जी की ओर से लहर चली, उस समय बाबूजी वाल्मीकी लोगों को इतने बड़े स्तर पर अपने साथ सम्मिलित न कर पाए। अपने पंडित बख्शीराम वाल्मीकी बिरादरी के बड़े प्रभावशाली लीडर हुए हैं। उन्होंने बाबूजी के साथ काम भी किया। मालूम नहीं फिर पीछे क्यों हट गए। ये बातें गोरों के जमाने की है। एक ओर तो सारा मुल्क देश की आजादी के लिये लड़ रहा था। हम लोग तो अपनी आजादी के लिये भी लड़ रहे थे अपनी पहचान के लिये संघर्ष कर रहे थे कि हमें हमारी एक स्वतंत्र पहचान से जाना जाये। हमें आजादी नहीं चाहिये। गोरे लोग हमारे बारे में सोचते भी थे। जब गोरे हमें कोई रियायत देने लगते, आर्य समाजी लोग भड़क उठते। गांधी बीच में टांग अड़ा देता। रावलपिन्डी, लाहौर, मुलतान आदि में वाल्मीकीयों की गिनती काफी थी।' इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था। दुखी होकर इन डिवीजनों के वाल्मीकि मुसलमान बन गये। क्या हुआ फिर मुसलमान तो बन गये,निजात वहां भी न मिली। बेशक ये मुसलमानों में सम्मिलित हो मुस्लिम बन गये। मगर वहां भी एक अलग सेक्शन बन गया। फिर हुआ यह कि, सयालकोट तथा गुरदासपुर में भी वाल्मीकियों की तादाद काफी थी। यहां अंग्रेजों का प्रभाव भी काफी था। हुआ यूं कि यहां ईसाई प्रचारक बहुत थे। यहां के अधिकतर वाल्मीकि ईसाई बन गये। मांझा में सिक्खी का प्रभाव था। वहां सिक्ख बन गये, क्या हुआ कई सिक्खों में एक अलग सैक्शन बन गया- वो भला मज़हबी सिक्खों का। फिर क्या हुआ, दूसरी ओर बाबू मंगूराम ने मूंगोवाल में आदि धर्म मंडल की स्थापना की।

सभी चमार, सांसी,गंधीले, जुलाहे,मेघ,कबीर पंथी तथा अन्य कई वर्गों के लोग स्वयं को आदि धर्मी कहलाने लगे । बेशक इनकी जड़ें अभी ऊपरी स्तर पर ही थी, गहरी नहीं धंसी थी,जब हम लोग लाल कपड़े पहन सामूहिक ढंग से गोरे अफसरों को मिलने जाने लगे और प्रस्ताव रखने लगे कि हमें, हमारे हक दिये जायें,इन्हें मान्यता दी जाये-- तो गोरे हमारे बारे में विचार मग्न होने लगे। तब हुआ क्या, उस समय लाला लाजपतराय, स्वामी गणेश दत्त तथा लाला देवीचंद को चिन्ता होने लगी कि इस प्रकार तो हिन्दू समुदाय गिनती में कम रह जायेगा। कल को ये लोग और भी मुंह खोल लेंगे। और भी मांगे रखने लगे। तभी लाला लाजपतराय ने लाहौर में अछूत उद्धार मंडल की स्थापना कर दी। और सुनो बाबू जोगिन्दरपाल जी। जो मैंने अछूत उद्धार मंडल बाबत बताया न, उसके लिये होशियारपुर में शूदरानंद प्रचार कर रहा था। जब बाबूजी ने आदि धर्म मंडल की स्थापना की तो स्वामी शूदरानंद जी से जा मिले,मगर अंदर से वह आर्य समाजी ही रहा। बाबू मंगूराम ने 'आदि डंका' का कार्यभार कुछ समय के लिये उन्हें सौंप भी दिया। वह कुछ समय तक सेक्रेटरी भी रहे। बड़े धड़ल्लेदार प्रचारक थे- पिताजी भी प्रचारक थे। कई बार वे एक साथ जलसों को संबोधित करते। लो और सुनो, मुझे याद है, आदि धर्म मंडल का जालंधर के अली मुहल्ले में जलसा था। पंडित बंख्शीराम अपनी भजन पार्टी के साथ भजन गाकर उतरे तो शूदरानंद ने पिताजी को स्टेज पर भेज दिया। पिताजी ने उस जलसे में दो-तीन बातों पर जोर दिया- एक तो आर्य समाज की ओर से चलाये जा रहे अछूत उद्धार मंडल की निन्दा की, दूसरा उन दिनों होने वाले वाल्मीकि जलसों के प्रधान हिन्दुओं को बनाये जाने पर ऐतराज व्यक्त किया, तीसरा, इस जलसे में वाल्मीकि को डाकू कह उसकी बेइज्जती की गयी है। हमारे आदि धर्म गुरुओं में ऋषि वाल्मीकि भी शामिल हैं। हम इस के विरोध में वाक् आउट करते हैं। शूदरानंद बहुत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैरान हुआ। आदि धर्म मंडल से संबंधित श्रोता भी शोर मचाने लगे। फिर क्या हुआ, शूदरानंद,पंडित बख्शीराम आदि धर्म से दूर हो गये। उन्हें अछूत उद्धार मंडल वाले अपनी ओर खींच ले गये। आर्य समाजियों ने मंगूराम की लहर को तितर-बितर करने के लिये शूदरानंद को भेजा। इस बारे में बाद में मालूम हुआ। फिर बाबू मंगूराम के बाद यह लहर बिखर गयी। कोई संभालने वाला न रहा। परन्तु इस लहर ने हमारे लोगों के लहू में इस बात को भर दिया कि हमें रविदास को मानना है और अपना अलग अस्तित्व बनाने के लिये प्रयत्न करना है। हार्न की आवाज़ आती है- बस है। हार्न बजा रही है। ध्यान टूट जाता है।

'अच्छा बुजुर्गो। बाकी बातें फिर किसी दिन।' बाबू जोगिन्दर पाल की बस आ जाती है। वह मुझसे इज़ाज़त ले चल देते हैं।

दृश्य तीसरा

सूत्रधार

शाम होने लगी है। चौधरी फकीरचंद का पोता अपने बाबा को खोखे में आकर बता गया कि जिस संत पर हमला हुआ, उन की मौत हो गयी है। पोते की बात सुन चौधरी फकीरचंद के चेहरे पर परेशानी तथा उदासी फैलने लगती है। वह अपने खोखे में पड़े चूं-चूं करते बैंच पर बैठ सोचने लगता है। पोता सूचित कर गया कि जलाने- फूंकने की वारदातें जालंधर के बाद अगल-बगल के शहरों में भी फैलने लगी हैं।

झांकी पहली

ताऊ खोखा बंद कर दो, हालात बिगड़ गये हैं। मालूम नहीं क्या होगा। नौजवान जिस चीज़ को देख रहे हैं, आग लगा रहे हैं। पता नहीं हमारे खोखों का क्या बनेगा। दाणी पैंचर के खोखे से आवाज सुनायी देती है। मेरा ध्यान उखड़ जाता है। यह दाणी की आवाज़ है। यह सीधा- भोला है। परसों मैं इसके खोखे के आगे रूक गया। दाणी ने खोखे में काफी कलेण्डर लगाये हुये थे। मेरी निगाह सबसे पहले बाबा बालक नाथ के कलेण्डर पर गयी, फिर गुरू रविदास, शेरा वाली माता, गुरू नानक, शिवाजी,कृष्ण,अबेडकर- फिल्मी लड़कियां,लाल बादशाह और पता नहीं क्या- क्या। मैं उसके खोखे की ओर देख परेशान हो गया। पूछ ही लिया, भई दाणी, ये क्या सभी को एक ही रस्से से जकड़ता जा रहा है।

दाणी पैंचर देखने के लिये ट्यूब को पानी में डुबोने लगा था, वैसे ही रूक गया। मेरी ओर देखकर बोला, 'ताऊजी। हम सभी को खुश रखते हैं। मालूम नहीं कब कौन सा महापुरुष डूबते भी बांह थाम ले, बात ये है कि हम सभी को मानते हैं ताऊजी।' दाणी पैंचर वाला कीड़ा लगे दांतों से हंसता हुआ कहने लगा।

'ठीक है, ठीक है।' कहता हुआ मैं अपने खोखे की ओर चल दिया।

सड़क से एकदम बसें,कारें, ट्रक गायब होने लगे। भीड़ इन्हें फूंकने लगी थी। अधिकतर लड़के बेगमपुर के थे, कुछ धर्मपुरा के भी थे। इधर-उधर के भी शामिल हो गये थे। खोखाबंद कर मैं भीड़ की ओर देखता हूं। काफी लड़कों के सिरों पर सफेद रूमाल बंधे हुये थे, जिन पर। 'हरि' लिखा हुआ था। मुझे याद आया, जब आदि धर्म मंडल की आंधी चली थी तो उन्होंने 'सौगंध' को पवित्र शब्द में तौर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर अपनाया था। एक दिन आदि डंका अखबार में से पिताजी हमें पढ़ कर सुना रहे थे, ये बहुत ध्यान देने वाली बात है- बाबू मंगूरामजी मूंगोवालिया लिखते हैं कि हमारा पवित्र शब्द 'सौगंध' है और आदि धर्म मंडल ऐलान करता है कि इस शब्द का जाप किया जाये। जब हम एक दूसरे से मिले तो 'जय गुरुदेव' कहें। इसके साथ ही हम चाहते हैं कि 'आदि प्रकाश असंख्य दीप ग्रंथ' के अनुसार चला जाये। इस ग्रंथ की शिक्षाओं के आधार पर 'आदि धर्मी' चलें। गुरु रविदास के मंदिरों में इस ग्रंथ की वाणी पढ़ी जाये।

पिताजी 'आदि डंका' से इस प्रकार के लेख पढ़कर सुनाते। पत्र में कौम को जागृत करने के लिये भी लेख प्रकाशित होते। उसके बाद गुरु रविदास के मंदिरों में ' सौगंध' शब्द का चिन्ह बनाकर लगाया जाने लगा। इस चिन्ह के झण्डे बनने लगे। जब आदि धर्म की लहर अपने आखिरी सांस तक पहुंची तो 'हरि' शब्द इसकी जगह लेने लगा। रविदास के मंदिरों में ये दोनों शब्द लिखे जाने लगे। कभी 'सौगंध' और कभी 'हरि' मुझे इस बात की समझ नहीं आ रही थी।

झांकी दूसरी

खोखे में लगी पिताजी की तस्वीर की ओर देखकर मुझे उनकी याद आने लगती है। मेरे पिताजी तथा गांव के चौधरी गरीबदास के साथ सुबह सुबह बैठे कोई गंभीर बात कर रहे थे। पिताजी कलकत्ता से कच्चा चमड़ा रेल द्वारा मंगवाने लगे थे। चमड़ा रंगने वाले हरीपुर , बाठां,बूटा मंडी से कच्चा चमड़ा ले जाते थे। दोनों ही तकरीबन किसी न किसी जलसे में शामिल होने के लिये जाते रहते थे। आज फिर कहीं जाने के लिये तैयार बैठे थे। दोनों ने ही लाल रंग के कपड़े पहने हुए थे। कंधों पर लाल अंगोछे रख, उसी रंग की पगड़ियां बांधी हुयी थी। आदि धर्मी केश नहीं रखते, सिर्फ पगड़ी ही बांधते थे। उन दिनों में चमार तथा अछूत लोगों के लिये इस रंग को पहनने की मनाही थी। पिताजी ने हुक्के पर रखी चिलम में आग डालने के लिये मुझे बुलाया और उनकी चिलम में आग रख मैं उनके निकट ही बैठ गया था।

चौधरी गरीबदास पिताजी से कह रहा था, 'लो भई फकीरचंद। कल मैं आदि धर्म मंडल के दफ्तर कृश्ना स्टीम प्रेस चला गया। रेल्वे बोर्ड के निकट भी है। वहां दफ्तर के सामने दो तीन बहुत लंबी कतारें लगी हुयी थी। शूदरानंद अंदर बैठे 'आदि डंका' का काम कर रहे थे। जब मैंने कतारों के बारे में पूछा, तो वह कहने लगे, चौधरी साहब ये सभी 'आदि डंका' लेने आये हैं। पहली कतार हिन्दी वालों की, दूसरी उर्दू तथा तीसरी पंजाबी वालों की है। शूदरानंद प्रूफ की गलतियां लगाकर मशीन मेन को पकड़ा रहे थे,कहने लगे।

'स्वामी जी, यह तो खुशी की बात है कि हमारे आदि धर्म कौम में पढ़ने की रूचि होने लगी थी। गांवों में,चौपाल में, बैठकर चमार 'आदि डंका' के लेख सुनते हैं, खबरे सुनते हैं। फिर आगे से हरि के किस्से की तरह ये बातें आगे चली जाती थीं।

पिताजी चौधरी गरीबदास को हुक्के की नली पकड़ाते हुये कहते हैं, तूने पिछले हफ्ते के आदि डंका में बाबू मंगूराम का पहले पेज वाला लेख पढ़ा था।

नहीं पढ़ नहीं पाया। अपने ताजपुर वाला बेलीराम मेरे झोले से निकाल ले गया। कहने लगा, परसों दे जाऊंगा।अभी तक तो आया ही नहीं। चौधरी गरीबदास कहता है। 'उस लेख में बाबूजी ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी बात कही है। किसकी बात की है अपना चमड़ा रंगने वाले चामड़ियों की। उन्होंने गोरी सरकार से मांग की है कि हम पशुओं का चमड़ा उतारते हैं, फिर उन्हें सुखाते हैं। साफ कर रंगते हैं। तुम्हें मालूम है चमार शब्द कैसे बना--चमड़ा-- मतलब कि चमार मतलब कि चमड़ा--कार मतलब कि बनाने वाला-- क्या हुआ चमड़ा बनाने वाला। हम लोग जूते भी बनाते हैं, जो जूते गोरे अफसर भी पहनते हैं। मगर ये जूते तथा बूट सरकार हमसे सीधे नहीं खरीदती। किससे खरीदती है-- उच्च जाति के व्यापारी लोगों से। उन्होंने अपने लेख में सरकार से मांग की है कि वे ये बूट इत्यादि सीधे तौर पर आदि धर्म मंडल जालंधर के दफ्तर से लें। सरकार दलालों के द्वारा बूट लेने बंद कर दें।' पिताजी कह रहे थे।

'चौधरी साहब, यह तो ठीक है। चमड़ा हमारी मेहनत से बनता है, इसका फायदा भी हमें ही मिलना चाहिये। वैसे गोरी कौम ये सब कुछ मान लेंगे।' गरीबदास कहता है।

पिताजी, 'आदि डंका' पढ़कर, संभालकर अपने ट्रक में रख लेते थे। वह मंडल के लेखकों की पुस्तकें भी खरीद कर पढ़ते थे। बाबू मंगूराम मूंगोवालिया की किताब 'आदि दुखड़े' में से कवितायें गाकर हमें सुनाते थे। फिर शूदरानंद की किताब जो हर घर का श्रंगार थी 'अछूतों की पुकार' पिताजी ने हमें कई बार पढ़ कर सुनायी थी।

उनकी बातें सुनकर बीच में मैं भी बोल उठा, पिताजी, आप सभी लोग सिर झोंक कर प्रचार में लगे हैं। काम का कोई फिक्र नहीं। पेट का कोई फिक्र नहीं। दान देते जाते हो। बात ही करते जा रहे हो-

हां पुत्तर, यह काम ही ऐसा है। सभी हम जैसे नहीं है। कोई- कोई खोटा सिक्का भी हमारे में आ मिल जाता है। तूने पढ़ा नहीं पिछले 'आदि डंका' में ठाकुर चंद के बारे में,जो मंडल का सैक्रेटरी था, वह तो अपनी मनमर्जी करने लगा। वह बाबू मंगूराम का कहना नहीं मानता था। उसे किनारे कर दिया- फिर एक था बसंत सिंह होशियारपुर का, उसके मन में खोट था। उल्टी बातें करता था। कमेटी जो करती, वह उल्ट जाता- मक्खन से बाल की भांति बाहर निकाल दिया। फिर वह आदमी दसूहे की ओर गरीब लोगों से आना-आना इकट्ठा करने लगा। फिर जो उसका भी बायकाट हुआ। फिर वह दयानंद के दलित उद्वार मंडल में घुस गया। पिताजी मुझे बता रहे थे।

फिर पिताजी चौधरी गरीब दास को साथ लेकर 'कृश्ना स्टीम प्रैस' जहां आदि धर्म मंडल का दफ्तर है, वहां चले गये थे।

जब वे दस दिनों बाद लौटे तो घर आकर पिताजी ने बताया, बेटा, हम मंगूराम के साथ जालंधर में ही थे। वहां वायसराय ठहरे थे। तुम्हें मालूम ही होगा कि गांधी ने मरणव्रत रख लिया था। कि यदि अछूत चमारों को हिन्दुओं से अलग किया गया तो वह मरणव्रत रखकर जान दे देंगे। गांधी जी हमें हिन्दू धर्म से अलग करने का विरोध करते थे। आदि डंका में छपा था कि पहली गोलमंज़ कांफ्रेंस में अपने अंबेडकर गये थे- उनके साथ कोई नवासन- नवासन नाम का आदमी भी था।अपने अंबेडकर ने सभी के सामने ठोस दलील दी, भई हमारे लिये अलग धर्म क्यों जरूरी है। कहते हैं, गोरे मान गये कि अछूतों को हिन्दुओं से अलग राजसी अधिकार मिलेंगे। अलग धर्म भी माना जायेगा। उधर गांधी ने मरण व्रत रख लिया। सरकार झुक गयी। फिर क्या हुआ- बाबू मंगूराम ने गोरी सरकार के विरोध में जालंधर में मरण व्रत रख लिया। भाई, हमें राजसी हक मिलने चाहिये। अंबेडकर फिर गांधी से मिले और वहीं एक समझौता हुआ। इसे 'पूना पैक्ट' कहा जाता है। इसी समझौते के तहत अब हमें आठ सीटें मिलेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिताजी ने हमें बताया था। इस प्रकार पिताजी अचानक घर से चले जाते थे। फिर कई हफ्तों के बाद कभी पन्द्रह दिनों के बाद लौटते थे।

दृश्य चौथा

सूत्रधार-

चौधरी फकीरचंद अपने गांव 'बेगमपुर' से विपरीत दिशा की ओर चल देते हैं। नज़र कम होने के कारण वह खूंटी के सहारे धीरे-धीरे चल रहे हैं। दूसरे चौक पर जब पहुंचते है तो भीड़ शराब का ठेका लूटने में लगी हुई है। नौजवान शराब को बेसब्रों की तरह पीते हैं। कोई बोतलों को सड़क पर फेंक कर मारता है। सड़क पर बिखरी शराब एकदम से आग पकड़ती है। चारों ओर चीख पुकार होने लगी है। पलों में सारा ठेका लूट लिया जाता है। फिर एक आदमी ठेके को आग लगा देता है। आग की लपटों के साथ चौक रोशन हो जाता है। फिर अचानक पुलिस की गाड़ियों के हूटर बजने लगते हैं। भीड़ छिपने लगती है। चौधरी एक किनारे पर खड़ा देखता रहता है। उसके मन में कई विचार उठने लगते हैं। उसे अपनी जवानी याद आने लगती है। जवानी के दिनों में वह जब मंगूराम के जलसों में जाया करता था। तब उसका खून भी खौलने लगता था, जब गांव में उसकी बिरादरी के साथ बुरी घटना होती थी। चमारों पर जुल्म होते थे और वह कुछ नहीं कर पाते थे। मन में लावा उठता था, शांत हो जाता है। सोचते सोचते वह फिर से अड्डे की ओर मुड़ आता है। रास्ते में भीड़ की ओर से ट्रक वाले को रोका जा रहा है। भीड़ नशे में चूर है। ड्राइवर उनके आगे हाथ जोड़ता है, भाइयो। मैं भी तुम में से हूं। मेरी यही रोजी- रोटी है। मेरी तीन बेटियां हैं। मेरे ट्रक को कुछ न करो। मगर भीड़ बेकाबू है। एक आदमी सब्बल मार कर पेट्रोल की टंकी में छेद कर देता है। ड्राईवर मिन्नतें करता है।

'भाईयों, ट्रक में लाखों का सामान है। मैं जीते जी मर जाऊंगा। आप मुझे सामान तो उतार लेने दो।' मगर भीड़ उसे धक्के मारती है। इतने में ट्रक आग की लपटों से घिर जाता है। ट्रक को देख ड्राईवर वहीं गिर जाता है। मिनटों में लाश में बदल जाता है। भीड़ अगले शिकार की ओर कूच कर जाती है। पुलिस की गाड़ियों के साइरन बजते हैं। चौधरी खूंटी के सहारे अड्डे में लौट आता है।

अड्डे का मंजर देख वह दंग रह जाता है। अड्डे का ठेका लूटा जा चुका है। ठेके में धीमी- धीमी आग अभी जल रही है। काला धुंआ निकल रहा है। उसकी नजर खोखों की ओर जाती है। दाणी पैंचर वाले का खोखा काली राख के ढेर में बदल चुका है। फिर वह अपने खोखे की ओर देखता है, उसका खोखा काफी जल चुका है। एक हिस्सा खड़ा है, देखकर वह वहीं बैठ जाता है। बैठते बैठते उसका हाथ एक बोतल पर जा पड़ता है। ठेका लूटते समय किसी के हाथ से छूट गयी होगी, सोचते ही वह ढक्कन खोल बोतल को मुंह लगा लेता है। उसकी नजर आधे जले अपने खोखे की ओर चली जाती है। वहीं नज़र जम जाती है। जहां उसके पिताजी की फोटो लगी होती थी, अधजला फोटो फ्रेम फोटो फ्रेम से निकल पिताजी उसके आगे आ खड़े होते हैं। गेरूआ पगड़ी बांधे, गेरूआ धोती-कुर्ता पहने तथा कंधे पर गेरूआ अंगोछा रखे चौधरी छज्जूराम आदि धर्म मंडल के प्रचारक-- कभी वह पिताजी से सवाल करता है। कभी उसके पिताजी उससे सवाल पूछते हैं।

झांकी पहली

'चौधरी छज्जू राम जी, आकर देखो चमारों का डंका कैसे बज रहा है। कोई भी चूं-चां नहीं कर रहा। सड़कों पर चिड़िया भी 'पर' नहीं मार सकती। आपने क्या डंका बजाना था... बस जलसे करते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही रह गये।' मैं जली हुयी एक कार की ओर इशारा करते हुये कहता हूँ।

'देख रहा हूँ पुत्तर। यह सारा मंज़र। हम आदि धर्मी या तुम कहो कि आदिवासी.... हम युद्ध लड़ने में माहिर हैं। मार भी खूब खाते आये हैं। बार-बार क्या गड़े मुर्दे उखाड़ना। तू देखता ही रहा गांव में अपनों पर बड़े लोग कैसे जुल्म करते थे। कहते थे कि तुम हमारे भाई हो, अछूत भाई हो। हम तो इन्हें गले से लगाते हैं। गांधी भी कहता था। और भी कई थे। तू कौन सा बच्चा है। तूने भी खुद पर बहुत कुछ भोगा हुआ है। ये गुस्सा, ये नफ़रत... लूट-खसूट की भूख हमारे खून के द्वारा इस पीढ़ी तक पहुंची है। यदि तुम आदमी को सदियों से कुचलते जाओ, मारते जाओ, जलील करते जाओ, लानतें दो... फिर भाई वो किसी ने किसी बहाने से आग लगायेगा ही, जलयेगा ही। ठेके लूट कर 'ग्रेजी शराब' पीयेगा ही। यह अस्तित्व की लड़ाई है। भूख की लड़ाई है। आज जिन्होंने आग लगायी है, शराब की बोतलें सड़क पर तोड़ी हैं, पी हैं, ये इनका कसूर नहीं। जिस कौम को इतना दबाकर रखा गया हो। कोई पहचान ही न दी गयी हो। वो तो भैया यही सब कुछ करेंगी।' पिताजी ने मुझसे कहा। उनका चेहरा क्यों इतना तप रहा है, 'मगर लोग कहते हैं कि इस कौम के खून में ही लूट-खसोट करना घुसा हुआ है। मार-पीट वाला गंदा खून, मालूम नहीं क्या क्या?' मैं नशे में आकर तीन-चार घूंट और पी जाता हूँ।

'नहीं बेटा, हालात को इतना सीधे नहीं समझा जा सकता। हिंसक आदमी को कौन बनाता है। अब खतरा तुम्हारे अस्तित्व को है। धर्म तो तुम्हारा है ही नहीं...।'

तभी मेरे आगे एक स्कूटर आकर रुका। उसके आगे नज़र आते पिताजी लुप्त हो जाते हैं। अंधेरे में अधजला खोका ही रह जाता है।

'बाबा जी, आप आधी रात को यहां बैठे क्या कर रहे हो?' यह मेरे पोते की आवाज़ है। फिर वह मुझे उठाकर स्कूटर पर बिठाता है। सुबह पोता मुझे कहता है, 'बापू, आज रात को क्या बोलते जा रहे थे। नज़ारा आ गया एक बार तो....। जला दो....खोखे बनते रहेंगे। डंके की चोट पर कर दो नाश।' मगर मुझे कुछ भी याद नहीं था।

सुबह मैं अड्डे पर जाने के लिये तैयार होता हूँ। 'फकीर चंद मोची का खोखा कितना जल गया होगा?' सोचते हुये अड्डे पर पहुंचता हूँ। सूनी सड़क पर ईंट-रोड़े बिखरे पड़े हैं। सड़क पर पड़ी भारी लकड़ियां अभी भी सुलग रही है। शहर में कर्फ्यू लग चुका है। मैं खोखे के पास पहुंचता हूँ। खोखे का एक हिस्सा जल चुका था, एक हिस्सा खड़ा था। मैं राख हटा रंभी टटोलता हूँ। उसका हत्था जल चुका है। आरी देखता हूँ.... वह तो ठीक थी। मैं अपने बारे में सोचता हूँ, 'लो भई फकीर चंद मोची का खोखा भी 'कौम' के नाम लग गया है।' मैं स्वयं से कहता हूँ। इतने में साइकिल पर बाबू जोगिन्दर पाल आ जाता है।

झांकी दूसरी

'बहुत बुरा हुआ फकीर चंद।' साइकिल एक ओर खड़ाकर जोगिन्दर पाल कहता है।

'हाँ।' मैं सिर्फ़ इतना ही कह पाता हूँ।

'मगर एक बात अच्छी हुयी। हमारे लोगों ने भी बता दिया कि हम भी जब पहले वाले चमार नहीं रहे.... 'गर संत ग्रंथ साहिब के पास बैठकर संगत-जनों से माथा टिकाते हैं तो टिकाते जायें। बुरी बात तो मुँह से नहीं निकालते हैं।' पैंट की ज़ेब से रूमाल निकाल कर जोगिन्दर चेहरे पर आये पसीना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पोंछता हुये कहता है।

'बाबू जी। यह उनकी मर्यादा है। मर्यादा भंग होती है उनकी तुम समझते क्यों नहीं।' मैं तल्खी से कहता हूँ। मेरे सामने कई घटनायें घूम जाती हैं, जवानी के समय की।

'नज़दीक के गाँव। विर्क्रो' के गुरुद्धारा सिंह सभा के आगे हम संक्रांति के दिन कितने सारे बच्चे इकट्ठे हो कर जाते थे। कईयों ने तो चड्ढी ही पहनी होती थी। अन्दर पाठी पाठ करते। हम गुरुद्वारे के गेट के सामने खड़े बरछा लिये एक सरदार की ओर देखते रहते। हमें वह अंगुली के इशारे से दूर बैठने का इशारा करता रहता। हमारे गांव से पांच-सात वृद्धाएं भी आ जाती। उन्हें तो वह अन्दर घुसा लेता, और उन्हें जूता घर के पास बिठा देता। अरदास होती, पाठी देसी घी का प्रसाद बांटता। जूता-घर के पास बैठी वृद्धाओं को वह दूर से ही हाथों पर प्रसाद गिराता। जब हमारी बारी आती तो गेट पर खड़ा सरदार हमें कहता, 'ओ बच्चो, एक बच्चा बर्तन लेकर आगे आ जाये..., सबसे बड़ी उम्र वाला बच्चा उसकी ओर थाली सरकाता। पाठी थाली में प्रसाद डाल देता। हम गांव लौट आते। प्रसाद खाते, फिर अंगुलियां चाटते रहते। फिर हमारे पिताजी ने हमें वहां जाने से मना कर दिया। मेरा ध्यान तभी टूटता है, जब बाबू जोगिन्दर मेरा कंधा पकड़कर झिंझोड़ने लगता है।

'चौधरी साहब भला मर्यादा किस की बनायी हुई है.... आप तो सयाने हो....। गोरों के ज़माने की लगती है।'

'मर्यादा बेशक तुम बना लो, मैं बना लूं... इसका क्या है। जिसके हाथ में ताकत है उसकी मर्यादा। अरे मूर्ख गरीब आदमी की क्या मर्यादा....।' मैं नाक से सरकती ऐनक को ठीक करते हुये कहता हूँ।

हमारे नज़दीक एक सरदार खड़ा है, शायद वह किसी बस की प्रतीक्षा कर रहा है या किसी जानकार की। वह बोल पड़ता है, 'बुजुर्गो! यदि ग्रंथ साहिब डेरों में रखना है तो उसे रखने का सलीका भी आना चाहिये। एक मर्यादा वनी हुई है। यदि कोई ग्रंथ साहिब की हजूरी में अपना सत्कार कराये, मत्था टिकवाये तो फिर....।' सरदार हमारी बातों में ज़बर्दस्ती आ घुसता है।

मेरे बोलने से पहले ही बाबू जोगिन्दर बोलने लगता है, 'तुम यार हमें आदमी ही नहीं समझते। जब गांवों में हमें तुम लोग गुरुद्वारों में घुसने नहीं देते थे। हमने भी रविदास मंदिर बनाये, फिर तुम लोगों ने शोर मचा दिया कि मंदिरों में ग्रंथ साहब नहीं रहने देंगे। हमने रविदास गुरुद्वारे बना लिये। अब भी नहीं जीने देते। बताओ कौन से कुएं में जा गिरे।'

बाबू जोगिन्दर पाल की बात बीच में से काटते हुये मैं बहुत धीरज से कहता हूँ, 'यह आज़ादी से पहले की बात है। बेडकर हमारी कौम का लीडर था। उसके पीछे सारे देश के करोड़ों अछूत लगे हुये थे। उसने एक बार सिक्ख बन जाने के बारे में भी सोचा था। भई मेरे करोड़ों साथी जात-पात से मुक्त हो जायेंगे। बेडकर की सीधी सिक्ख लीडरों के साथ सीधी बात चल रही थी। सारे देश में यह बात फ़ैल गयी, भई देश के अछूत सिक्ख मत ग्रहण कर लेंगे। इन बातों में से बंबई के खालसा कॉलेज की बात निकली। बेडकर दूर की सोच रहे थे, भई दक्खन के अछूत सिक्ख बनकर यहां पढ़ेंगे। जिन अकाली लीडरों के पास सिक्खी की बागडोर थी, वे ये कहने लगे कि छः करोड़ अछूत सिक्ख बनाकर, दरबार साहब निचली जाति के लोगों के हवाले कर दें?'.... सरदार जी, छः करोड़ 'रंगरेटे गुरू बेटे' गुरू घर के दरबार में आये, धक्के मार कर लौटा दिये गये।' मैं सहजता से कहता हूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'मगर बुजुर्गो, दरबार साहब के दरवाज़े तो सभी के लिये खुले हैं, जो मर्जी आये, लंगर छक्को।' सरदार ने ठंडे ढंग से कहा।

'मैं कहां कहता हूँ कि जाने नहीं देते, अब देख लो... बाल्मीकि सिक्ख बने। तुम लोगों ने उन्हें भी गले से नहीं लगाया। मज़हबी सिक्ख बना दिये और श्री पदवी दे दी.... खालसे की... भई दूर से ही पहचान हो जाये.... क्या हुआ गांवों में मजहबी सिक्खों के गुरूद्वारे बन गये। क्यों बने भई, वो तो तुम्हारे भाई बने थे, 'पांच ककारों' वाले।' मैं कहता हूँ।

'चौधरी जी, अंदर की बात क्या थी कि अचानक बेडकर सिक्खी से दूर हो गये?' जोगिन्दर पाल कहते हैं।

'बेडकर काफी देर तक सिक्खी की जानकारी लेते रहे थे। उन्हें लगा कि अछूतों के लिये ये धर्म भी सही नहीं। फिर क्या हुआ, बेडकर बुद्ध धर्म की ओर चले गये।' मैं कहता हूँ।

इतने में शहर की ओर से मिलट्री की तीन-चार गाड़ियां आती हैं। पुलिस की जीप आगे-आगे स्पीकर पर कुछ कह रही थी, 'सभी को सूचना दी जाती है कि प्रशासन ने कर्फ़्यू चौबीस घंटे के लिये बढ़ा दिया है, इसलिये कोई भी घरों से बाहर न निकले। ना ही भीड़ बनाकर सड़कों पर चले... और अड्डे पर खड़े लोग इधर-उधर सिखकने लगते हैं। बाबू साइकिल उठाकर अपने गांव की ओर चल देता है। सरदार ज़ेब में हाथ डालकर 'सतिनाम पैलेस' की ओर चल देता है। मैं देखता हूँ 'बेगमपुर गांव की ओर से आये पच्चीस-तीस लड़के ओट में छिप जाते हैं। इनमें मेरा पोता सूरज भी है। पहले वे गुरू रविदास तथा संत के जैकार लगाते हैं। मिलट्री की गाड़ियां नज़दीक आने पर वे खामोश हो जाते हैं। सारा दिन ऐसा ही होता रहा। कर्फ़्यू में भीड़ इकटठे होकर सड़कों पर उतरती जैकारे लगाने लगती। यदि कोई इक्का-दुक्का गाड़ी नज़र पड़ती तो उसे फूंक भाग जाते। ये आग सारे पंजाब में फैल गयी थी।

मेरे आगे गोरों का ज़माना घूमने लगता है। आदि धर्म मंडल वाले अछूतों का प्रतिनिधिमंडल लेकर कभी लाहौर जाते हैं, कभी ननकाणा साहब, और कभी जालंधर जाते रहे। मेरी आंखों के आगे सर जोन साईमन घूमने लगता है, पंजाब के गवर्नर के साथ बातचीत करते, आदि डंका बजाते अछूत घूमते हैं मंगूराम की पीठ पर वार करने वाले नज़र आते हैं। मुझे मंगूराम मूंगोवालिया मरण व्रत पर बैठे नज़र आते हैं। इसी डेरे के संत उनका मरण व्रत खुलवाते नज़र आते हैं। डंका तो तब भी बजा था तभी आदि धर्मियों को सत्ता में हिस्सा गोरों ने दिया था। डंका अब भी बजा है।

'देखो मूर्खों ने कितना नुकसान कर दिया है।' बंतू लुहार के बोल मेरे मन में गूंज रहे हैं। उसके स्वर ने मेरे मन में बहुत ही उथल-पुथल मचा दी है, 'मैं कौन हूँ? मेरी पहचान क्या है? गोरों के समय से अपनी पहचान ढूंढ रहा हूँ? मुझे कोई बता क्यों नहीं रहा, भले आदमी, तेरी पहचान ये है... मैं जो मैं नहीं हूँ.... डंके ज़रूर बजते रहेंगे... मगर 'मैं' नहीं मिल पायेगा।'

भगवंत रसूलपुरी
ग्राम-धरमपुरा, पोस्ट-खाम्बरा
जिला-जलंधर-144026
मो. 09417064350

अनुवादः डॉ. जसविन्दर कौर बिन्दा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आयोजन

मध्यप्रदेश के युवा रचनाकार साथियों की एक संस्था 'अनवरत' के तत्वावधान में पिछली 12 अप्रैल 2012 को नई दिल्ली के राजेंद भवन में 'शमशेर सम्मान' का आयोजन हुआ। समारोह में वर्ष 2011-12 के लिए शमशेर सम्मान क्रमशः कमला प्रसाद, प्रभात त्रिपाठी, बद्रीनारायण और डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को दिये गये। इस अवसर पर वहां आमंत्रित कवियों का काव्य पाठ भी हुआ। उन्हीं कविताओं में से कुछ यहां प्रकाशित हैं।

बद्रीनारायण

बेगमपुरा एक्सप्रेस

अमरपुर से बेगमपुरा तक
चलती है एक ट्रेन
बेगमपुरा एक्सप्रेस
सुबह पाँच दस पर
बिल्कुल ब्रह्मबेला में।

टिकट काउन्टर पर बैठा है
क्लर्क टिकट लेकर

कहते हैं
कि पैसे से मिल जाता है सब कुछ
पर लोग हाथ में ले खड़े हैं
पैसे, रुपये व ए.टी.एम.कार्ड
टिकट बाबू फिर भी
उन्हें टिकट नहीं देता

कत्ली, खूनी, बलात्कारी
बेईमान, चालू, फ्राड, लम्पट
हिंसक, झूठ, बवाली,
सुल्तान, साहेब, मालिक
इन सबको नहीं मिलेगा टिकट
दम्भी कवि, सत्ता के बौद्धिक
सब खड़े रह जायेंगे और नहीं मिलेगी
उन्हें इस ट्रेन की टिकट

टिकट बाबू अगर इन्हें बेचना भी चाहेगा
उसके हाथ बेकार हो जायेंगे

जो ढाई आखर जानता होगा
वही बेचेगा टिकट
जो ढाई आखर जानता होगा
वही पायेगा टिकट

लहरों से होकर आये तारों को
कोमल मन सुकुमारों को
सराय के मालिकों को तो नही
पर सराय् रूकने वालों को
मिल जायेगी टिकट

टिकट बाबू सोना ले लो, चांदी ले लो
मुहरें और मोती ले लो
पर दे दो मुझे टिकट
कई दशकों से मैंने कोई यात्रा नहीं की है
मैं जाना चाहता हूं
बेगमपुरा

ट्रेन खुलने लगी है, हरे पंछी पेड़ से उड़ने लगे हैं
ट्रेन में घाना बैठे है
पीपा बैठे हैं
बैठे हैं सेना नाई
ट्रेन खुलने लगी है।

जी.बी. पंत समाज विज्ञान संस्थान
झूंसी, इलाहाबाद 211019
मो. 09450613293

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुलजीत सिंह

लड़की, तेरी देह

लड़की,
तूने कैसे समझ लिया कि तेरी ये देह
बस तेरी है... ?

अरे पगली,
इस देह से बनते हैं परिवार
बसते और उजड़ते हैं पुरुषों के घर,
चलते हैं उनके वंश और व्यापार,
सजती हैं दुकानें
जगमगाते हैं बाज़ार
तुझसे किसने कह दिया
बस तेरे ही हाथों में
सुरक्षित हैं इसके सर्वाधिकार ?

ये देह सिर्फ तेरी कैसे हो सकती है ?
सच तो ये है
दिन रात बनते ढहते उठते गिरते
आसमान छूने को लपकते,
सारी दिशाओं के आरपार
जंगलों पहाड़ों घाटियों खेत-खलिहानों
नदियों समन्दरों को हड़पते
हड़बड़ाते हांफते बदहवास
बेतरतीब बेडौल बेदिल
इमारतों, अट्टालिकाओं, बाज़ारों के फैलते
इस विकराल अनंत विराटकाय भव्य
बदबूदार राक्षसी तिलिस्म की
एक छोटी सी ईंट की मिट्टी से ज्यादा
कुछ नहीं तेरी ये देह

अपनी देह का स्वत्वाधिकार
पुरुष को न सौंपने या वाज़िब दाम पर
न बेचने के दुस्साहस पर
तेज़ाब में गलना होगा तेरे नाजुक बदन को
किसी के पीछे चलती परछाई
न चाहने पर बनना
कोयला कर देंगी तुझे
वहशिआना अहंकार की हिंसक लपटें

लड़की, तू क्या करेगी ?
जब तेरे सच के सुच्चे आंगन में हर रात
लोग फेंकेंगे शराब की खाली बोतलें
और हर सुबह
तुझे चलना होगा अपना खून बहाते
अपने ही आंगन में फैले
उनके झूठ के नुकीले टुकड़ों पर।

तू क्या करेगी लड़की,
जब घरों की दीवारें
ढकेलती हुई बाहर कर देंगी तुझे
लपटों के अट्टाहासों की तपती सड़कों पर
हवाएं सारे शहर में बांटेगी
तेरी बदनामी के चटखारेदार
रंगीन इश्तहार

अकेली खड़ी रहना होगा तुझे
चिलचिलाते आसमान के नीचे
हर तरफ से बरसते पत्थरों के बीच
रक्त के प्यासे रेगिस्तान में
कुछ पापों को न करने की सजा पाते।

लड़की, तूने कैसे समझ लिया
कि सभी आज़ाद होते हैं
किसी 'आज़ाद' मुल्क में ... ।

एम-117, गोपबंधु, नगर, छेण्ड कॉलोनी
राउरकेला-769015 (ओड़िसा)
मो. 09437341577

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतापराव कदम

सृजन उत्सव

एक उत्सव उसके भीतर उमड़ रहा
झांक रहा आंखों की खिड़की से
चमक रहा गालों पर
कानों में सीटी सा बज रहा
बेतहाशा हंसने के बाद जैसे
हो जाता है चेहरा
वैसा ही हो गया है कुछ
रंगों के लिए
मिट्टी के लिए
फलों के लिए उसकी चाह
मौसम की हदबंदी से बाहर है
कितने नजदीक वह प्रकृति के
नहीं प्रकृति ही वह
उससे बड़ा कौन सृजन-कर्ता इस समय
इसे ही गुनगुना रही वह
सारे ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिषी
चौघड़िया देख रहे

शमशेर के
कांसे के वो दो ठोस बेलोस
सबसे ज्यादा शामिल उसके इस उत्सव में।

11, शकुन नगर, प्रोफेसर्स कॉलोनी
मो. 9424523720

अनिल मिश्र

1. गमले के फूल न हुए

हिमशैल थे हम
नदी तो बाद में हुए
बह चले जो धार-धार
गाद न हुए
पत्थर थे अष्टवक्र
आवारा अनगढ़ थे
धूप-छांव रोज सिझे
उबड़ थे खाबड़ थे
वक्त की तराश चली
रोज-रोज मुझ पर , पर

बुत न हम हुए
बीहड़ थे जंगल के
बाहर भी अंदर के
आंगन तक बढ आये
झापस थे तरूवर के
डालियों की कतर-ब्योंत
कैंचियों ने की, मगर
गमले के फूल न हुए

5/31-बी विवेक विहार कॉलोनी
मिन्टो रोड, सिविल लाइन्स
इलाहाबाद 211001
मो. 8005446924

Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

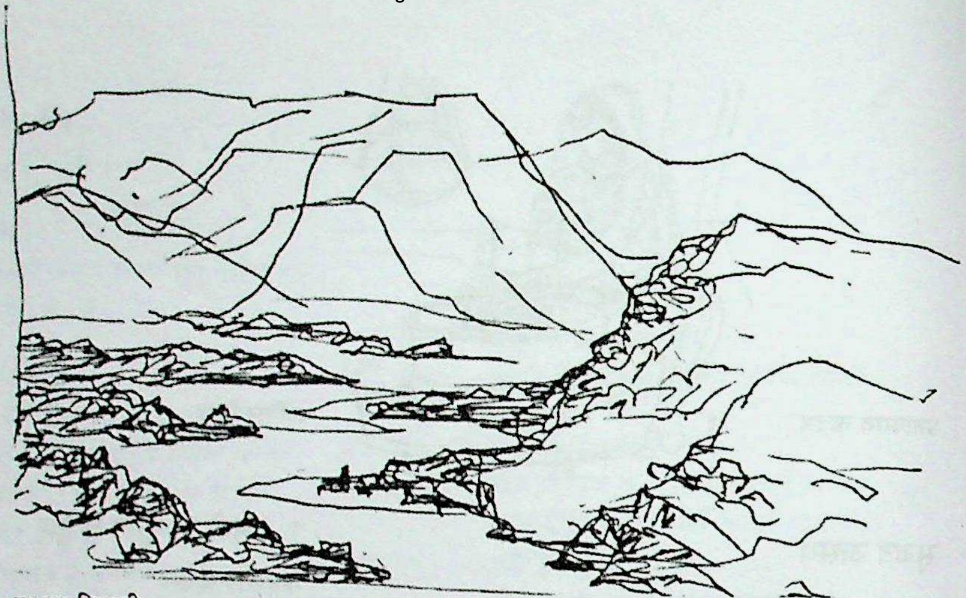

प्रभात त्रिपाठी

संस्कृति चिन्तक के साथ

एक संस्कृति चिन्तक के साथ
महानदी के पानी को छूने की कोशिश में
एक नुकीला कंकड़ चुभ गया था पाँव में
क्या पता वह कोई काँटा हो,
या सैलानियों के काँच के गिलास का
कोई टुकड़ा,
अचानक याद आने वाले दृश्यों में
सैकड़ों बिम्ब ऐसे होते हैं,
जो पानी की रचना के बावजूद
मरुस्थल से कम सूखे नहीं होते,
जैसे कंकड़ या काँटा या काँच का टुकड़ा
वह भी संस्कृति चिन्ता के समय में।

मुझे दुख इस बात का नहीं
कि महानदी के चक्कर में काँटा या काँच गड़ गया,
या इस बात का भी नहीं,
कि किनारों की, या शायद कगारों की
फिसलन भरी चीकट माटी की वजह से
मैं छू नहीं सका महानदी के पानी को

फुर्सत का दुख सिर्फ इतना है
कि महानदी में बेखौफ तैरने के दिनों को,
मैं फिर से नहीं पा सकता,
मैं फिर से नहीं गा सकता,
किशोर साहस का वह अंगरचा गीत
जब चंद्रहासिनी के मंदिर को,
एक बेनाम देवी चन्द्रसेनी के रूप में
उसके लाल रंग से पहचानता
मैं बेखौफ कूद जाता था महानदी में

अब अगर कूद नहीं सकता,
तो कम से कम,
उन्हें तो न डराऊँ,
जो महानदी और चन्द्रसेनी को,
एक साथ अपनी आत्मा में भरते हुए,
मगन तैर रहे हैं
गहरे पानी के शान्त प्रवाह में।

रामगुड़ी पारा रायगढ़
(छत्तीसगढ़) 496001
मो. 09424183427

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिथिलेश श्रीवास्तव

मेरे प्यार के किस्से सुनने वाला यहाँ भी कोई नहीं था

मैं भाग निकला क्योंकि शाम होते ही
एक मैले कुचैले कम्बल के भीतर दुबक जाने की हिदायत मिल जाती
पागलों को आपस में बात बहस करने की मनाही होती
कोई पागल बुदबुदाने की हिम्मत नहीं कर सकता था
अपनी तकलीफों की तरतीब बयान नहीं कर सकता था
एक औरत जो नर्स के रूप में हमारी तीमारदारी करती
बराबर कड़क आवाज में गरजती
कहने का अंदाज लोरी सुनाने जैसा बिलकुल नहीं होता
वह सिर्फ धमकाया करती
बुदबुदाना नहीं वरना पुलिस बुला लेगी

मैं भाग निकला क्योंकि मेरे घरवाले मुझे छोड़कर शाम को चले जाते
मेरे घरवाले एक दिन छोड़कर दूसरे दिन आने लगते
मेरे घरवाले कई कई दिनों तक नहीं आते

मैं भाग निकला क्योंकि शाम होते ही
मुझे अपने प्रेम के किस्से सुनाने का दिल करने लगता
मैं भाग आया घर
मुझे केवल घर का रास्ता मालूम था
मेरे प्यार के किस्से सुनने वाला यहाँ भी कोई नहीं था।

एन 153, सेक्टर-8, आर.के. पुरम
नई दिल्ली 110022
मो. 09868628602

Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी कहानी

चेंग-चुई

पुरुषोत्तम अग्रवाल

'यह मकबरा सा क्यों बना दिया है भई' 'सर, इसे मकबरा मत कहिए' सागरकन्या ने प्रवीण की कम-अक्ली पर तरस खाते हुए कहा, 'यह चेंग-चुई आर्किटेक्चर है...' चेंग-चुई ? प्रवीणजी बहुत बड़े अफसर बनने के बाद एलाट हुआ बंगला देखने आए थे। देश के बड़े सेवकों का जैसा होना चाहिए वैसा ही बंगला था। विशाल, भव्य, गरिमापूर्ण। लेकिन प्रवीण अकेले आदमी, जोरू ना जाता, अल्लाह मियाँ से नाता टाइप। इतने बड़े घर का करेंगे क्या ? मकबरे सरीखे डोम पर निगाह पड़ते ही उनकी दुष्ट कल्पना सक्रिय हो गयी थी। सोचने लगे कभी कभी, आधी रात में सारे घर की बत्तियां बंद कर, सफेद कुर्ता पाजामा धारण कर, हाथ में मोमबत्ती लेकर गृह-भ्रमण किया करेंगे। ' गुमनाम है कोई, बदनाम है कोई' या 'नैना बरसें रिमझिम, रिमझिम' जैसे किसी धाँसू घोस्ट-सांग की सीडी सही बैकग्राउंड स्कोर देगी। मरने के बाद का हाल तो कोई कह नहीं सकता। सारे ज्ञान और सारी सर्जनात्मक, खुराफाती क्षमता के बावजूद अपन भी नहीं कह सकते-यह बुनियादी सचाई प्रवीणजी भी जानते ही थे। सोच यह रहे थे कि जीते जी भूत बनने में कितना मजा आएगा। उच्च कोटि के इंटेलेक्चुअल के मजे और मूर्खों के मजे में कुछ फर्क भी तो होगा। सबसे बड़ी बात तो यही कि अपने इस मजे में डिफरेंस का भी ऐसा स्टेटमेंट होगा कि मार्क्स के प्रेतों का बखान करने वाले ज्याक देरिदा भी अपने प्रेतावतार में प्रसन्न हो जाएंगे। 'देखो न यार', प्रवीण ने अपने आप से कहा, 'फिल्मों में सफेद कपड़े पहना कर, नीम अंधेरी रातों में गाना गाने का काम महिलाओं से ही कराया जाता है, अपनी रची इस घोस्ट स्टोरी में अपन इस सेक्सिस्ट स्टीरियो-टाइप को भी तोड़ेंगे और सदा के लिए न सही, कभी कभार तो आधी रातों में अपने प्रेत बनने का नजारा भी आप ही देखेंगे, बतर्ज 'आप ही डंडी, आप तराजू, आप ही बैठा तोलता...'।

प्रवीणजी के अफसर ने प्रवीणजी के सिनिकल पोयट-फिलासफर को धकियाया, और बंगले को ठीक से देखना शुरु किया। यहाँ रह कर देश की सेवा करने में मजा तो आएगा। दोमंजिला बंगला। नीचे तीन, ऊपर दो बेडरूम। टायलेट-बाथ अटैच्ड । ऊपर की मंजिल पर, कोने का एक कमरा बिना अटैचमेंट के भी। यह रहने वाले की इच्छा पर कि इसे स्टोर मान ले या पूजा अथवा प्रेयर रूम। सागरकन्या फरमा रही थीं, 'इंटरनेशनल ट्रेंड है न सर दीज डेज, आपने तो देखा ही होगा, आजकल एयरपोर्ट्स पर भी प्रेयर-रूम होते हैं। वैसे आप चाहें तो इस कमरे को स्टोर-कम- प्रेयर रूम के तौर पर भी यूज कर सकते हैं, ज्यादातर एलाटी करते ही हैं'। 'याने भगवान की औकात वही मानते हैं, जो घर के फालतू या इफरात सामान की', प्रवीणजी सोचने लगे, ' उनकी माँ को अगर सुझाव दिया जाए कि उनके लड्डू गोपाल के लिए घर की बुखारी का एक कोना मुकर्रर किया गया है तो सुझाव देने वाले की कितनी पीढ़ियों को, चुनिंदा सुभाषितों के जरिए वैतरणी तार देने में माताराम को कितना समय लगेगा'। वह जानते थे कि पूजा-घर में टायलेट ना बनाने के डिजाइन से तो माताराम भी सहमत ही होंगी, लेकिन उनके अपने मन में यह जरूर आया कि एलाटी और उसके परिवार के बेडरूम्स में तो टायलेट्स हैं लेकिन भगवान के लिए ?

यह अतिप्रश्न था। व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों ही धरातलों पर। भगवान के बारे में ऐसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सवाल नहीं पूछे जाते। भगवान वैसे भी सवालों के जबाव देने के फेर में पड़ते नहीं। पड़ने लगें तो नाक में दम हो जाए। उनकी तरफ से उत्तर देने का काम हो, या उनके नाम पर आहत भावनाओं की जंग छेड़ने का, करना भक्तों को ही पड़ता है। ऐसे में भगवान के भक्तों के रोष की परवाह किये बिना कोई पूछ भी ले- टायलेट विषयक अतिप्रश्न- तो भगवान का उनके जैसा ही खुराफाती कोई भक्त यह प्रति-प्रश्न भी तो कर सकता है ना कि सारी दुनिया और क्या है बे ? और, फिर भगवान तो दो जहाँ के मालिक हैं। ऐसे सवाल तो इस दुनिया के भी छोटे- बड़े मालिकों के बारे में भी नहीं पूछे जाते। मालिकों के टायलेट से जुड़ा सवाल मिलियन डालर क्वेशचन की कोटि में आता हो न आता हो, अपने ही देश के प्रसंग में, इस सवाल का जबाव जरूर मिलियन रुपीज आंसर साबित हो सकता है... एकाएक प्रवीणजी की यादों के स्क्रीन पर कालेज के दिनों की फतेहपुर सीकरी यात्रा की डाक्यूमेंट्री चलने लगी। खसखसी दाढ़ी वाले बुजुर्ग गाइड मियाँ शहंशाह अकबर की सुलहकुल नीति का नॉस्टेल्जिक लहजे में बयान कर रहे थे। आजकल के दंगे फसाद के माहौल को अकबर के सुनहरी दौर के बरक्स रखते हुए ऐतिहासिक पछतावे से गुजर रहे थे, और कोशिश कर रहे थे कि पछतावे के कुछ छींटे इन नौजवानों के दामन पर भी नजर आएँ। नौजवान पछ्ता रहे थे या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता। हाँ, सिक्स्थ सेंस से यह जरूर जान रहे थे कि उनकी कन्या-मित्रों के मन में अपने अपने बायफ्रेंड्स के लल्लूपन की तुलना शहंशाह अकबर की शानदार पर्सनाल्टी के साथ जरूर चल रही है। सो, कुढ़ रहे थे, और कर ही क्या सकते थे।

उधर, बुजुर्गवार का बयान जारी था, ' देखिए हाजरीन, यह दीवाने आम याने बादशाह सलामत का दरबार रूम, यह दीवाने खास, यहीं बादशाह दीनो मजहब, मंतिको फलसफा के आलिमों के साथ गहरे मसलों पर तवील गुफ्तगू किया करते थे....और यह इस तरफ उनकी ख्वाबगाह, मतलब बेडरूम, यहाँ वे आराम फरमाते थे... बाकी लोग आधी ऊब आधी दिलचस्पी के साथ बादशाह सलामत की दिनचर्या का कंडक्टेड टुअर ले रहे थे। लेकिन समीर जो आगे चल कर बहुत अच्छा और बहुत उपेक्षित बल्कि कुछ उचकबुद्धुओं के शब्दों में दयनीय कवि बना, इस वक्त अपना निजी इंवेस्टिगेशन कर रहा था। ख्वाबगाह में इधर-उधर घूमा, बाहर तक ताक-झाँक कर आया। लौटा तो, संबोधित गाइड को किया, 'सुनिए चचा' लेकिन, फिर जिज्ञासा उनके सामने नहीं जैसे सारे इतिहास के सामने ठेठ पुरबिया लहजे में रखी, 'बादशाह सलामत झाड़ा कहाँ फिरते थे जी ?' मुगलिया शान के कसीदों से ऊबते, जिसे सिस्क्थ सेंस से जान रहे थे, उस तुलनात्मक अध्ययन से जलते लड़के तो जितना जरूरी था, उससे भी ज्यादा जोर से हँसे ही, अकबर की पर्सनाल्टी से टू मच इंप्रेस होती लड़कियों के लिए भी इस सवाल पर हँसी रोकना मुश्किल हो गया। इन साधारण मर्त्य मानवों से अलग, प्रवीण और उनके जैसे ज्ञानी, अवसर के अनुकूल न होने पर भी, जिज्ञासा की मूल वैधता को स्वीकारते हुए उसके सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक निहितार्थों की पड़ताल में जुट गये।

गाइड बुजुर्ग तड़प उठे थे। मुगलिया सल्तनत का नॉस्टेल्जिया कहिए या मुश्तर्का कल्चर का, इस गुस्ताख सवाल पर उनकी भँवें ही नहीं टेढ़ी हुईं, खसखसी दाढ़ी भी गुस्से से काँपने लगी। बोले कुछ नहीं, एकाएक आदाब अर्ज करके चल दिए, पैसे भी लेने को राजी नहीं। किसी तरह प्रवीण ने ही बात सँभाली थी। गाढ़ी उर्दू और गाढ़ी हिन्दी को बोलचाल की जुबान के समर्थक कितना भी कोसें, इस गाढ़े वक्त साथ गाढ़ेपन ने ही दिया। मर्जी होने पर प्रवीण साध सकते थे दोनों तरह का गाढ़ापन। सो, उन्होंने काफी हाई फंडा उर्दू बोलकर 'अहमकों के इस हुजूम में वाहिद बाशऊर शख्स' होने का यकीन बड़े मियाँ को दिलाया, समीर की गुस्ताखी की माफी माँगी, और बुजुर्गवार को फीस देकर, उनकी दुआएं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हासिल कर उन्हें विदा किया। इस अनुभव की याद ने प्रवीण को रोका पूजारूम में अटैच्ड टायलेट-बाथरूम न होने के बारे में अतिप्रश्न करने से। लेकिन ड्राइंग रूम के पीछे के इस विशाल हाल में, सपाट छत की जगह, मकबरे के गुंबद जैसा आकार देखकर रहा नहीं गया, पूछ बैठे, और ज्ञानान्वित हुए कि यह चेंग-चुई आर्किटेक्चर है। तिलमिलाए भी कि आज तक नाम नहीं सुना था, चेंग-चुई का। मामला चाहे मकान का हो, चाहे श्मशान का, प्रवीणजी को सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता में कहीं भी, किसी से भी पीछे रहना सुहाता नहीं था। विडंबना देखिए कि इस निहायत फैशनेबल (और इस कारण, प्रवीणजी के इंटेलेक्चुल संसार के अलिखित नियमों के अनुसार, अज्ञानी होने को अभिशप्त) बाला ने चेंग-चुई के बहाने प्रवीणजी को अज्ञानी सिद्ध कर ही दिया। 'पढ़ना कम कर दिया है, साले, तुमने, लिखने और भषणियाने ज्यादा लगे हो'- प्रवीण जी ने खुद को खबरदार किया।

उधर सागरकन्या बड़े अफसर और प्रसिद्ध विद्वान के टू-इन-वन को इंप्रेस करने के अवसर का पूरा लाभ उठा रही थीं, 'अभी अपने यहां किसी ने नाम तक नहीं सुना है, सर। लोग फेंग सुई तक ही रह गये हैं। मैं तो एक बार इनके साथ शिप पर आइवरी कोस्ट से गुजरी थी.. ही इज़ विद दि मर्चेंट नेवी, यू नो.... वहां चीनी डायस्पोरा की एक बस्ती थी उन्होंने अपनी क्लासिकल ट्रैडीशंस के साथ लोकल नालेज का हाइब्रिड करके फेंग सुई का जो रूप रिकंस्ट्रक्ट किया, उसे चेंग-चुई कहते हैं,' सागर कन्या पोस्ट-मॉडर्न शब्दावली से गुजर कर असली चीज पर अब आई, 'चेंग-चुई का प्रिंसिपल है कि ऐसा डोम बनाने से पाजिटिव एनर्जी सारे घर में सर्कुलेट करती है, यहाँ जो वैक्यूम बनता है, वह सारी नेगेटिव एनर्जी को एब्जार्ब करके, प्यूरिफाई करके उसे पाजिटिव एनर्जी में बदल कर सारे स्ट्रक्चर में सर्कुलेट कर देता है, स्प्रिचुअल एनर्जी का रिसायकलिंग सिस्टम बन जाता है चेंग-चुई के हिसाब से डोम बनाने से...हमारी फर्म ने तो पेटेंट करा लिया है, चेंग-चुई का...अब इन दि एंटायर साउथ एशिया, बस हमारी ही फर्म चेंग-चुई प्रिंसिपल्स के इन एकार्डेंस मकान बनाती है, इसीलिए तो मिनिस्ट्री ने आप जैसे टॉप ऑफिशियल्स की इस कॉलोनी का काट्रैक्ट हमें दिया है....बिटवीन मी ऐंड यू सर, जब मिनिस्टर साहब को मालूम पड़ा तो ही वाज लिटिल अपसेट कि... ऑनली फॉर ऑफिसर्स...अब आपकी दुआ से ऐंड विद दि ग्रेस ऑफ गॉड ऑलमाइटी, मिनिस्ट्रियल बंगलोज का काम भी हमीं को मिलने वाला है'। 'लेकिन मेरे यहाँ आने के पहले दीवारों की सीलन तो ठीक करवा देंगी ना आप, लीकिंग पाइप्स हैं शायद...'

' ओ, नो, सर, दिस इज आलसो चेंग-चुई, ताकि आप कभी भी अपरूटेड महसूस न करें, आपकी जड़ें ही नहीं आपका लेफ्ट-राइट भी बैक टू फ्रंट, सदा भीतर से नम बना रहे, आपकी पर्सनाल्टी और रिलेशनशिप्स में कभी रूखापन न आए...आप तो जानते ही हैं सर कि आजकल फैमिलीज के भीतर ह्यूमन रिलेशंस कितने रूखे और खोखले होते जा रहे हैं...हमने मकानों के चेंग- चुई डिजाइन के जरिए एन्स्योर किया है कि रिश्ते भीतर से नम रहें और घर में पाजिटिव एनर्जी लगातार मूव करती रहे...बाई दि वे आप तो हिन्दी के राइटर भी हैं न सर?' पहले मकबरे का सा गुंबद, अब यह सीलन, इसमें भी साला यह चेंग-चुई का आर्किटेक्चर...प्रवीण एक के बाद इन गुगलियों से हिल गये थे, हिन्दी के राइटर होने की याद दिलाए जाने से हकबका गये। इतना ही कह पाए, 'हाँ, तो?'

'मेरे हसबैंड एक्टिव इंटरेस्ट लेते हैं हिन्दी राइटिंग में, ही इज ए शॉर्ट स्टोरी राइटर एज वेल एज ए पोयट...' प्रवीण को चेंग-चुई से बड़ा खतरा मंडराता दिखने लगा। अगला वाक्य यही होने वाला है कि जब आपको टाइम हो, हम लोग आते हैं, हसबैंड की पोयम्स सुन कर कुछ एडवाइज कीजिएगा। हिन्दी का लेखक या प्रोफेसर होने के यों तो कई कुपरिणाम हैं, लेकिन पिछले कई बरसों से जिससे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रवीण सर्वाधिक आतंकित रहे आए थे, वह यही था- एक से बढ़ कर एक नमूनों की राइटिंग हाजत रफा कराने का माध्यम बनना... । एक से एक चुनिंदा बेवकूफों की रचनाशीलता का मूल्यांकन करना, उनकी महान रचनाओं पर राय देना। साहब लोगों की दुनिया में हिन्दी का लेखक चांदमारी का बोर्ड था। जिन्हें हिन्दी में अपनी क्रिएटिविटी फायर करने की लत लग जाए, उन्हें अपनी इलीट दुनिया में न पाठक मिलते थे, न श्रोता। इस दुनिया में प्रवेश करने के बाद प्रवीण को, भलमनसाहत कहिए या एटीकेट की विवशता, दर्जनों कुड हैव बीन नोबल लारेट्स एमेच्योर्स की फायरिंग झेलने का दुर्भाग्य भोगना पड़ा था, अब उनका धीरज जबाव देने लगा था। एक भी पल गँवाए बिना, उन्होंने कवर-पोजीशन ले ली,' मैं किसी हिन्दी राइटर का लिखा कुछ नहीं पढ़ता'...बात को थोड़ा मजाक का टच देने के लिए आगे जोड़ा, 'सिवा अपने...' सागरकन्या को प्रवीण का कथन न तो मजाक लगा, न बुरा और न ही उसे कोई ताज्जुब हुआ, 'आई नो दैट सर, हसबैंड भी यही बताते हैं, मैंने भी फील किया, वो क्या है कि एक बार हमारे घर पर गैदरिंग हुई थी तो सारे के सारे राइटर्स बस फॉरेन या एट बेस्ट इंडियन इंगलिश ऑथर्स की ही बात कर रहे थे, या अपनी खुद की राइटिंग्स की। सो आई नो... बट, मैं तो कह यह रही थी कि उस गैदरिंग में भी, और वैसे भी मैंने नोट किया है कि कंटेंपरेरी हिन्दी राइटिंग, इन पर्टिकुलर फिक्शन में, नमी पर बड़ा एंफेसिस है। सम एक्सप्रेशंस इन दैट गैदरिंग वर रियली फेबुलस....लाइक...मेरी चेतना भीतर से नम हो गयी, जड़ों की नमी पत्तों तक आ गयी ऐंड आँखों में ही नहीं सारी देह में नमी छा गयी...यू नो...'

गुगली पर गुगली... प्रवीणजी को लगा, अब तो शॉट खेल ही लिया जाए, 'तो आपके हिसाब से हिन्दी की कंटेपरेरी राइटिंग में भी आपका चेंग-चुई काम कर रहा है, आप मकान बना रही हैं, लेखक लोग कहानियाँ बना रहे हैं..दोनों चेंग-चुई के हिसाब से...राइट?' 'ऐंड वाय नाट सर?' सागरकन्या पर प्रवीणजी की चोट का कोई असर नहीं हुआ, 'किसी चीज से इंप्रेस या इंफ्लुएंस होने के लिए उसे जानना कोई क्रिटिकली जरूरी थोड़े ही है। क्रिश्चियनटी विदाउट क्राइस्ट...यू नो...' प्रवीणजी की हालत सेंचुरी बनाने के आदी, लेकिन जीरो पर आउट हो गये बैट्समैन की सी हो गयी। ग्लव्स उतारते, पैवेलियन की ओर वापस जाते बस इतना ही कह पाए, 'सागरकन्या जी, आभारी हूँ आपका, कि चेंग-चुई की पाजिटिव एनर्जी से भरे इस मकबरे...आई मीन मकान में रहने जा रहा हूँ। सफेद कुर्ता-पाजामा और मोमबत्ती आपकी दुआ से मेरे सामान में है, गुमनाम है कोई की सीडी का जुगाड़ कर लूंगा, बस फिर अपने मकबरे...सॉरी अगेन..मकान... में अपना प्रेत- विचरण देखने का सौभाग्य प्राप्त करूंगा। बहुत शुक्रगुजार हूँ...क्या कमाल किया है इस मकान के डिजाइन में व्याप्त, और बाकी सारी चीजों में व्याप्त होती जा रही चेंग-चुई विद्या ने कि मकबरे में रहने के लिए दफ्न होना जरूरी नहीं रहा, और प्रेत बनने के लिए मरना...'। 'वाट ए क्यूट एक्सप्रेशन, सर' सागरकन्या के मुँह से हँसी की खनखनाहट बरसने लगी, 'एनीवे, आप शिफ्ट तो कीजिए, आई एम एब्साल्यूटली श्योर, कभी छोड़ना नहीं चाहेंगे इस बंगलो को, मन ही नहीं करेगा कभी भी, देख लीजिएगा...यही तो है चेंग-चुई का कमाल...' एकाएक उसने घड़ी देखी, 'सॉरी सर, मुझे निकलना होगा, बाय सर, बट यू हैव ए वे विद वर्ड्स, मकबरे में रहने के लिए दफ्न होना जरूरी नहीं, प्रेत बनने के लिए मरना जरूरी नहीं, क्या बात है...' हँसी फिर से खनखनाई... खनखनाहट गूंजती रही- यही तो है चेंग-चुई का कमाल...गुमनाम है कोई...यही तो है चेंग- चुई का कमाल...गुमनाम है कोई...यही तो है चेंग चुई का कमाल...

99, न्यू मोती बाग, नई दिल्ली

मो. 09810411679

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामचन्द्र शुक्ल और रस-मीमांसा

डॉ. सविता भार्गव

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रसवादी आलोचक हैं। उनका रसवाद से जुड़ना भारतीय साहित्यशास्त्र की सर्वाधिक सशक्त व सार्थक परम्परा से जुड़ना है। यह इसलिए कि रस को काव्य की आत्मा मानकर ही काव्य को चमत्कारवादी और कलावादी आत्मजाल से उबारा जा सका है। दूसरी बात, शुक्ल जी का रसवाद संस्कृत के आचार्यों के रसवाद का भी पिष्टपेषण नहीं है। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की शब्दावली को लिया ज़रूर है, लेकिन जो व्याख्या की है, वह सर्वथा मौलिक और जीवन-जगत् से जुड़ी है। वे रस को प्रत्यानुभूति, लोकहृदय या सामान्य हृदय से जोड़कर देखते हैं। उन्होंने लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा को रस-दशा कहा है।

भरत से लेकर लोल्लट और शंकुक तक रस-चिन्तन लौकिक भूमि पर हुआ था। परवर्ती आचार्यों के यहां उसका स्वरूप अधिदर्शनात्मक हो गया। भरत के बाद के आचार्यों में अभिनवगुप्त सबसे मेधावी आचार्य हुए, जिनका रस-सम्बन्धी चिन्तन सबसे सुसंगत है। यह उनकी बड़ी उपलब्धि कही जायेगी कि उन्होंने रस के सहृदय-निष्ठ रूप की प्रतिष्ठा की और उसे वस्तुनिष्ठ तत्त्व के साथ मिला दिया। लेकिन उनके यहां भी रस लोकोत्तर ब्रह्मानन्द स्वरूप और न जाने क्या-क्या हो गया। आचार्य शुक्ल पहले साहित्यशास्त्री हैं, जिन्होंने रस को लोकोत्तरता आदि से मुक्त कर उसे लोकहृदय से जोड़ा और आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिक बनाने की चेष्टा की।

आचार्य शुक्ल ने रसानुभूति का आधार 'गोचर जगत्' को माना है। अगोचर सत्त को आधार बनाकर लिखे जाने वाले काव्य का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा है- 'हमारे हृदय का सीधा लगाव गोचर जगत् से है। इसी बात के आधार पर सारे संसार में रस-पद्धति चली है और सच्चे स्वाभाविक रूप से चल सकती है।' ('काव्य में रहस्यवाद', चिन्तामणि, भाग-2) एकाधिक स्थलों पर शुक्लजी ने भौतिक जगत् को सौन्दर्यानुभूति का आधार कहा है। 'रसात्मक-बोध के विविध रूप' शीर्षक निबन्ध में स्पष्ट लिखा है कि 'सौंदर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता इत्यादि की भावनाएँ बाहरी रूपों और व्यापारों से निष्पन्न हुई हैं।... सुन्दर, मधुर, भीषण या क्रूर लगने वाले रूप या व्यापारों से भिन्न सौन्दर्य, माधुर्य, भीषणता या क्रूरता कोई पदार्थ नहीं। सौन्दर्य की भावना जगाना सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं या व्यापारों का मन में आना ही है।' (चिन्तामणि, भाग-1 पृ.-242)

काव्य के सन्दर्भ में भी शुक्लजी ने गोचर जगत् को तो महत्त्व दिया ही, साथ ही कविता को मनुष्य और उसके ऐश्वर्य मात्र तक भी सीमित नहीं माना। उन्होंने लिखा है, 'नरक्षेत्र के भीतर बद्ध रहने वाली काव्य-दृष्टि की अपेक्षा सम्पूर्ण जीवन-क्षेत्र और समस्त चराचर के क्षेत्र में मार्मिक तथ्यों का चयन करने वाली दृष्टि उत्तरोत्तर अधिक व्यापक और गम्भीर कही जायेगी।' (वही, पृ.-156) यह कथन शुक्ल जी की व्यापक और वस्तुवादी दृष्टि का प्रमाण है।

भाववादी मान्यताएँ वस्तु को भाव पर अवलम्बित मानती हैं और साहित्य को जीवन-जगत् से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काटकर देखती हैं, फिर उनकी दृष्टि में रस का लोकोत्तर और अलौकिक होना स्वाभाविक है। और अगर रस लोकोत्तर होगा तो उसका आनन्दस्वरूप भी होना निश्चित ही है। शुक्लजी ने काव्य में आनन्द के तहत्त्व को अस्वीकार नहीं किया है, लेकिन आनन्द-मात्र के लिए लिखे जाने वाले काव्य का विरोध अवश्य किया है।

शुक्लजी ने आनन्दवाद का खण्डन इस आधार पर भी किया है कि जीवन में जो सुखात्मक और दुखात्मक भाव होते हैं, साहित्य में वे अपनी प्रकृति से च्युत नहीं हो जाते। उन्होंने लिखा है, 'मेरी समझ में रसास्वादन का प्रकृत स्वरूप 'आनन्द' शब्द से व्यक्त नहीं होता। 'लोकोत्तर', 'अनिर्वचनीय' आदि विशेषणों से न तो उसके अवाचकत्व का परिहार होता है न प्रयोग का प्रायश्चित। क्या क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनन्द का रूप धारण करके ही श्रोता के हृदय में प्रकट होते हैं, अपने प्रकृत रूप का सर्वथा विसर्जन कर देते हैं, उसे कुछ भी लगा नहीं रहने देते? क्या 'विभावत्व' उनका हर कर उन्हें एक ही स्वरूप-सुख का-दे देता है। क्या दुःख के भेद सुख के भेद से प्रतीत होने लगतते हैं? क्या मृत पुत्र को लिये विलाप करती हुई शैव्या से राजा हरिश्चन्द्र का क़फ़न माँगना देख-सुनकर आँसू नहीं आ जाते, दाँत निकल पड़ते हैं? क्या महमूद के अत्याचारों का वर्णन पढ़कर यह जी में नहीं आता कि वह सामने आता जो उसे कच्चा खा डालें? क्या कोई दुःखान्त कथा पढ़कर बहुत देर तक उसकी खिन्नता नहीं बनी रहती? 'चित का यह द्रव होना' क्या आनन्दगत है? इस आनन्द शब्द ने काव्य के तहत्त्व को बहुत कुछ कम दिया है-उसे नाच-तमाशे की तरह बना दिया है।' (रस मीमांसा, पृ.-80)

शुक्लजी ने काव्य-अनुभूति को वास्तविक या प्रत्यक्ष अनुभूति से पृथक या स्वतंत्र नहीं माना है। दूसरी बात, ये रस-दशा को हृदय की मुक्तावस्था कहते हैं। उन्होंने लिखा है, 'इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।' यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि रस हृदय की मुक्तावस्था है और उसके योग के अभ्यास से शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध कायम होता है, तब सुखात्मक और दुखात्मक अनुभूतियों को भी 'रसात्मक' मानने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। बाधा है तो वह है रस का आनन्दस्वरूप कहा जाना। शुक्लजी ने लिखा है, 'करुण-रस प्रधान नाटक के दर्शकों के आँसुओं के सम्बन्ध में यह कहना कि 'आनन्द में भी तो आँसू आते हैं' केवल बात टालना है। दर्शक वास्तव में दुःख का ही अनुभव करते हैं।' (चिन्तामणि, भाग-1, पृ.-251)

शुक्लजी ने काफी विस्तार के साथ दिखाया है कि लोक-जीवन में कैसे रसानुभूति होती है। 'रसात्मक-बोध के विविध रूप' वाले निबन्ध के शुरू में ही लिखा है कि रसानुभूति तीन प्रकार की होती है-प्रत्यक्ष, स्मृति पर आधारित और कल्पित। पहले दो का सम्बन्ध लोकजीवन से है और तीसरे का काव्य से। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रत्यक्ष का सम्बन्ध सिर्फ़ आँख से देखी जाने वाली वस्तुओं से ही नहीं है, वरन् रूप शब्द के भीतर शब्द, गंध, रस और स्पर्श से भी है। रसानुभूति के इन तीनों रूप विधानों में सम्बन्ध स्थापित करते हुए उदाहरण के रूप में जो लिखा, वह देखने योग्य है, 'एक स्थान पर हमने किसी अत्यन्त रूपवती स्त्री का स्मित आनन और चंचल भ्रू विलास देखा और मुग्ध हुए, अथवा किसी पर्वत के अंचल की सरस सुषमा देख उसमें लीन हुए। इसके उपरांत किसी प्रतिमालय और चित्रालय में पहुंचे और रमणी की वैसी ही मधुर मूर्ति अथवा उसी प्रकार के पर्वतांचल का चित्र देख लुब्ध हुए। फिर एक तीसरे स्थान पर जाकर कविता की कोई पुस्तक उठाई और उसमें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वैसी ही नायिका अथवा वैसा ही दृश्य का सरस वर्णन पढ़ रसमग्न हुए।' (चिन्तामणि, भाग-1, पृ.-245) रसानुभूति की स्थिति तीनों स्थलों पर है। उन्होंने आगे एक और खूबसूरत और कहीं जीवन्त उदाहरण दिया कि 'स्वदेश प्रेम के गीत गाते हुए नवयुवकों के दिल जिस साहस भरी उमंग के साथ कोई कठिन या दुष्कर कार्य करने के लिए निकलते हैं, वह वीरत्व की रसात्मक अनुभूति है।' (वही, पृ.-250)

आचार्य शुक्ल रस की अनुभूति के लिए श्रोता, दर्शक या पाठक का आश्रय के साथ तादात्मय और आलम्बन का साधारणीकरण अवश्य मानते हैं। उन्होंने काव्य में 'विभाव' को ही मुख्य समझा है, लिखते हैं, 'रस का आधार खड़ा करने वाला जो विभावन व्यापार है वही कल्पना का सबसे प्रधान कार्य-क्षेत्र है।' (चिन्तामणि भाग-2, पृ.-2) विभाव में भी आलम्बन अर्थात् भाव के विषय को अधिक महत्व दिया है। उनके शब्दों में, 'काव्य में आलम्बन ही मुख्य है, श्रोता या पाठक किसी काव्य को पढ़ता या सुनता है सो केवल दूसरों का हँसना, रोना, क्रोध करना आदि देखने के लिए ही नहीं, बल्कि ऐसे विषयों को सामने लाने के लिए जो स्वयं उसे हँसाने, रूलाने, क्रुद्ध करने, आकृष्ट करने, लीन करने का गुण रखते हों।' (चिन्तामणि, भाग-2, पृ.-42-49)

'काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं, वह 'व्यक्ति' सामने लाता है, जाति नहीं', (चिन्तामणि, भाग-1, पृ.-222) इसे महत्तव देते हुए शुक्लजी ने इस जटिलता को भी सुलझाया कि 'विशेष' या व्यक्ति और साधारणीकरण में कोई विरोध नहीं है। 'साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है। व्यक्ति तो विशेष ही रहता है, पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे सामान्य धर्म की रहती है, जिसके साक्षात्कार से सब श्रोताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ा या बहुत होता है।' (उपर्युक्त, पृ.-230) आलम्बन की स्थिति सापेक्ष ही है, उसकी 'विशिष्टता' 'लोक' या 'साधारण' की सापेक्षता में ही होती है। 'सबकी रुचि और प्रकृति में मिश्रता होने पर भी कुछ ऐसी अन्तर्भूमियाँ हैं जहां पहुंचने पर अभिन्नता मिलती है। ये अन्तर्भूमियाँ नर-समष्टि की रागात्मिका प्रकृति के भीतर है। लोक-हृदय की यह सामान्य अन्तर्भूमि परख कर हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गयी है।' (उपर्युक्त, पृ.-236)

काव्य के पात्रों की एक चारित्रिक स्थिति होती है, वह अपने चरित्र के अनुरूप ही दर्शक या पाठक के भी किसी भाव-विशेष का आलम्बन बनता है। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि सभी तरह के आश्रय के साथ पाठक या श्रोता का तादात्म्य हो, और ऐसी स्थिति में स्वभावतः आलम्बन के प्रति उसका वही भाव नहीं होगा, जो आश्रय व्यक्ति कर रहा होता है। अगर ऐसा हुआ तो सीता के प्रति रावण के क्रोध के साथ हमारे अन्दर भी क्रोध का संचार होना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है, बल्कि ठीक इसके विपरीत रावण के प्रति ही हममें कोध-भाव जागता है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में यह भी एक प्रकार की रस-दशा है। उन्होंने लिखा है, 'ऐसी दशा में आश्रम के साथ तादात्म्य या सहानुभूति न होगी, बल्कि श्रोता या पाठक उक्त पात्र के शील-द्रष्टा के रूप में प्रभाव ग्रहण करेगा और यह प्रभाव भी रसात्मक ही होगा।' (उपर्युक्त, पृ.-231) इस तरह शुक्लजी की दृष्टि में रसानुभूति की दो दशाएँ हुईं- 'आश्रय के साथ तादात्म्य की दशा', और 'शील परिज्ञान से उत्पन्न अनुभूति'। इस दूसरी दशा को उन्होंने मध्यम कोटि का माना है।

आचार्य शुक्ल की दृष्टि में सच्चा कवि वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो और जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विशिष्टताओं का चित्रण करते हुए भी मनुष्य के सामान्य हृदय को पहचान सके। इस तरह, शुक्लजी ने साहित्य को लोकबद्ध करके देखा और उसे सामाजिक उपयोगिता के साथ जोड़ा। भाव को निष्क्रिय आध्यात्मिक कलात्मकता आदि के बजाय कर्म से जोड़ने वाले भी शुक्ल जी हैं। उन्होंने भाव का कार्य ही मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करना बताया। उनके शब्दों में, 'शुद्ध ज्ञान या विवेक में कर्म को उत्तेजना नहीं होती। कर्म-प्रवृत्ति के लिए मन में कुछ वेग का आना आवश्ययक है।... कविता तो भाव-प्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का विस्तार कर देती है।' (उपर्युक्त, पृ.-156) यहाँ शुक्ल जी 'शुद्ध ज्ञान या विवेक' को कर्म के प्रति आसक्ति के लिए अपर्याप्त मानते हैं, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि ये ज्ञान या बुद्धि के विरोधी थे। जिस तरह उन्होंने कर्महीन आनन्द को आनन्द नहीं माना, उसी तरह ज्ञानहीन काव्य को भी काव्य नहीं माना। इस सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट धारणा है, 'ज्ञान ही काव्य के संचरण के लिए रास्ता खोलता है। ज्ञान प्रसार के भीतर ही हृदय-प्रसार होता है और हृदय-प्रसार ही काव्य का सच्चा लक्ष्य है। अत: ज्ञान के साथ लगकर ही जब हमारा हृदय परिभाषित होगा तभी काव्य की नयी-नयी मार्मिक अर्थ-भूमियों की ओर वह बढ़ेगा। ज्ञान को किनारे रखकर, उसके द्वारा सामने लाए हुए जगत् और जीवन के नाना पक्षों की ओर न बढ़कर यदि काव्य प्रवृत्त होगा तो किसी एक भाव को लेकर अभिव्यंजना के वैचित्र्य-प्रदर्शन में ही लगा रह जाएगा। इस दशा में काव्य का विभाव-पक्ष शून्य होता जाएगा, उसकी अनेकरूपता सामने न आएगी। (हिन्दी साहित्य का इतिहास) निष्कर्ष यह निकला कि ज्ञान-शून्य काव्य विभाव-पक्ष से शून्य हो जाता है और विभाव-पक्ष से शून्य काव्य काव्य ही नहीं होता।

भारतीय काव्यशास्त्र में नौ स्थायी भाव और तैंतीस संचारी बताये गये हैं। इससे आगे बढ़कर शुक्ल जी ने एक और भाव की चर्चा की है- 'बीजभाव।' 'बीजभाव' स्थायी भाव और अंगी भाव से भिन्न होता है, जो रस-रूप में तो परिणित नहीं होता, पर उसकी प्रेरणा से घटना चक्र लता है और अनेक भावों के स्फुरण के लिए जगह निकलती चलती है।' (उपर्युक्त, पृ.-229) शुक्ल जी ने मंगल का विधान करने वाले दो भाव बतलाये-करुणा और प्रेम। उनमें भी उन्होंने करुणा को बीज भाव माना। भारतीय महाकाव्यों का उदाहरण देते हुए लिखा है, 'हमारे यहाँ के कवियों ने लोकरक्षा के विधान में करुणा को ही बीजभाव रखा है।' (रसमीमांसा, पृ.-69) करुणा सभी भावों में व्यापक है, 'जिसकी प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति सब रूपों और दशाओं में रागात्मक होती है।' (चिन्तामणि, भाग-1, पृ.252)

लोकमंगल, लोक-हृदय और लोकानुभूति शुक्ल जी के समग्र रस-चिन्तन के केन्द्र में है। रसानुभूति सम्बन्धी उनकी स्थापनाएं न तो किसी शास्त्रीय ग्रन्थ पर आधारित हैं और न ही प्रत्यक्षत: किसी आधुनिक दर्शन से प्रेरित। अप्रत्यक्ष रूप से उनकी दृष्टि आधुनिक विचारधारा से प्रभावित हो सकती है, और ऐसा होना स्वाभाविक भी है, पर वास्तविक रूप से वह लोकहृदय की गहरी पहचान से ही उत्पन्न हुई है। उन्होंने साधारणीकरण पर जो विशेष बल दिया, वह प्रकारान्तर से कविता की लोकप्रियता पर बल था।

एफ-2/4 प्रोफेसर्स कॉलोनी
भोपाल-462002
मो. 9425020941

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामाजिक चिंतन का वर्तमान आयाम

डॉ. राखी रॉय हल्दर

भारत को इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किए हुए एक दशक बीत गया। लेकिन आज भी बीसवीं सदी के तमाम सामाजिक सांस्कृतिक संकट भारत के लिए चुनौती बने हुए हैं।

भारत में जब लोकतंत्र की स्थापना हुई तब लोक का एक बहुत बड़ा अंश अशिक्षित था और लोकतंत्र का मतलब समझना उसके लिए दूर की बात थी। विकृत सामंती मूल्यों का ज़हर लोकमानस में घुला हुआ था। ठीक इसके विपरीत उस दौर में एक वर्ग ऐसा भी था जो लोक की कमजोर नस को पहचान कर सत्ता और पूंजी हथियाने के शिकंजे कसना जानता था। सुविधाएं पाकर बिक जाने वाला परजीवी मध्यवर्ग भी अपने में पूंजीपतियों और सत्ताधारियों का मोहरा बनने की संभावनाएं समेटे हुए था। ऐसे हालात में सामाजिक सांस्कृतिक संकटों का वक्त के साथ गहराते जाना स्वाभाविक था।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक आते-आते ही नवपूंजीवाद, नव उपनिवेशवाद, वैश्वीकरण के भारत पर पड़ने वाले असर को लेकर बुद्धिजीवी वर्ग में गरमागरम बहसें चालू हो गई थीं। पर हकीकत का एक पहलू यह भी था कि व्यावहारिक स्तर पर भारत गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, नैतिक मूल्यों के हनन, विकृत पूंजीवादी तथा सामंती मूल्यों के प्रसार जैसी तमाम छोटी बड़ी समस्याओं से जूझ रहा था। इन्हीं समस्याओं के साथ ही भारत ने 21वीं सदी में प्रवेश किया। समस्याओं से निपटने का जो काम पिछली सदी में अधूरा छूट गया था आज उसे आगे बढ़ाने की जरूरत है।

गौर से देखें तो 20वीं सदी में ऐसे कई साहित्यकार, समाजशास्त्री, कलाकार, चित्रकार, फिल्मकार, अर्थशास्त्री, इतिहासकार मिलते हैं जो युगीन समस्याओं को समझने और उनसे निपटने की राहें तलाशने में लगे हुए थे। इस लिहाज़ से देखें तो वक्त के साथ समाज में युगीन चुनौतियों से टकराने के दर्शन, सिद्धांत तथा तर्कशील नजरिया भी विकसित हो रहे थे। आज इसी चिंतन पर वर्तमानोपयोगी पहलू से विचार करने की जरूरत है। अमर्त्य सेन का गरीबी और भुखमरी से संबंधित चिंतन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

अमर्त्य सेन ने भुखमरी की समस्या को अधिकार की दृष्टि से विश्लेषित करने की राह दिखाई है। इसी दृष्टि से उन्होंने गरीबी की समस्या को समझने और उसकी गहराई को नापने की कोशिश की है। इस क्रम में उन्होंने अकाल पर विचार करने के लिए प्रचलित 'फूड एवेलिबिलिटी डिक्लाईन' के नजरिए पर प्रश्न चिह्न लगाया है। इस नजरिए के तहत अकाल के कारण को खाद्यान्न की अनुपलब्धता के दृष्टिकोण से देखा जाता था। अमर्त्य सेन ने अकाल की समस्या को अधिकार और वंचना के नजरिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से देखने की दृष्टि दी है। उन्होंने एक वर्ग के खाद्यान्न से वंचित रह जाने के कारण को समाज में प्रचलित अधिकार व्यवस्था से जोड़कर देखा है। यहां अमर्त्य सेन उन अधिकारों की बात करते हैं जो अधिकार किसी वर्ग या व्यक्ति की सही अर्थों में हासिल होते हैं। अधिकार से संबंधित अमर्त्य सेन की यह दृष्टि अर्थशास्त्र में 'एन्टाइटेलमेंट एप्रोच' के नाम से प्रसिद्ध है। अकाल और भुखमरी पर विचार करने के लिए प्रस्तुत यह दृष्टि शिक्षा पर लागू होकर शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन ला सकती है। इसके लिए इस दृष्टि को शिक्षा के संदर्भ से जोड़कर देखना होगा। इससे पहले अमर्त्य सेन की इस दृष्टि में शामिल अवधारणाओं को समझना जरूरी है।

'एक्सचेंज एन्टाइटेलमेंट' की अवधारणा अमर्त्य सेन के अधिकार संबंधी दृष्टि की महत्वपूर्ण अवधारणा है। इसे 'विनिमय से हासिल अधिकार' कहा जा सकता है। इसे परिभाषित करते हुए अमर्त्य सेन कहते हैं कि, 'ऐसी वैकल्पिक वस्तुएं जिन्हें व्यक्ति अपनी क्षमता या अधिकार की वस्तुओं के विनिमय से हासिल कर सकता है वही क्षमता के विनिमय से हासिल वस्तुओं पर अधिकार है।'[1]

व्यक्ति की क्षमता या उसके अधिकार की वे वस्तुएं जिनके विनिमय से वह वैकल्पिक वस्तुएं हासिल करता है उसे अमर्त्य सेन 'ओनरशिप बंडल' कहते हैं। इसे 'अधिकार की वस्तुएं' कहा जा सकता है।

क्षमता के विनिमय से वैकल्पिक वस्तुएं हासिल करने की दर को अमर्त्य सेन ने 'एक्सचेंज एन्टाइटेलमेंट मैपिंग' से समझने का आधार दिया है। इसके सहारे अमर्त्य सेन भुखमरी के कारण-कार्य संबंधी को रेखांकित करते हुए कहते हैं,

'एक व्यक्ति तभी भुमखरी का शिकार होता है जब सही मायने में उसकी क्षमता या उसके अधिकार के दायरे की वस्तुओं के विनिमय से उसे अपनी जरूरत का कुछ भी नहीं मिलता। यहाँ तक कि भरपूर भोजन भी नहीं।'[2]

भुमखरी से जूझते लोगों के हालात में सुधार लाने के लिए अमर्त्य सेन 'अनधिकृत हस्तांतरण' (नॉन एन्टाइटेलमेंट ट्रांस्फर्स) की बात करते हैं। दान इसका ही एक रूप है। लेकिन वर्तमान भारत में गरीबी की समस्या के प्रसार को देखते हुए बहुआयामी ढंग से सोचने की जरूरत है।

दरअसल गरीबी और भुखमरी की गिरफ्त में फंसे लोगों की हालत में गुणात्मक सुधार लाने के लिए उन्हें आत्मनिर्भर बनाना जरूरी है। इसके लिए सर्वेक्षण के जरिए किसी इलाके के व्यक्तियों की क्षमताओं को पहचानना होगा। फिर इन व्यक्तियों को क्षमताओं की समानता के हिसाब से अलग-अलग वर्गों में बांटकर कौशलात्मक प्रशिक्षण दिया जा सकता है। कौशलात्मक प्रशिक्षण के ज़रिए व्यक्ति मानव संसाधन में रूपांतरित हो सकते हैं। सीखे गए कौशल के विनिमय से वे अपनी आजीविका कमा सकते हैं। कौशलात्मक प्रशिक्षण हासिल करने वाले व्यक्ति 'आत्मनिर्भर दल' (सेल्फ हेल्प ग्रुप) की

---

1. "The set of all the alternative bundles of commadities that he can acquire in exchange for what he owns may be called the 'exchange entitlement' of what he owns." **सेन अमर्त्य, पॉवरटी ऐण्ड फेमीन्सः ऐन ऐसे ऑन एन्टाइटेलमेंट एण्ड डेप्राइवेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली 1982 पृ. 3**

2. " A person will be exposed to starvation if, for the ownership that he actually has, the exchange entitlement set does not contain any feasible bundle including enough food." **सेन अमर्त्य, पॉवरटी ऐण्ड फेमीन्सः ऐन ऐसे ऑन एन्टाइटेलमेंट ऐण्ड डेप्राइवेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली-1982 पृ. 3**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैसियत से काम कर सकते हैं। सवाल यह है कि वैविध्य से भरे इस विशाल देश में लोगों की क्षमताओं की पहचान करने की प्रक्रिया को अंजाम दे पाना कैसे संभव हो पाएगा?

गरीबी और भुखमरी से जूझते लोगों की समस्याएं बहुस्तरीय हैं। यह समस्याएं ऊपर से भले ही आर्थिक नजर आती हों लेकिन इसका संबंध सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक स्तर से भी है। गरीबी की समस्या की जड़ों में जहां अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी सामाजिक समस्याएं हैं वहीं खासकर भारत के संदर्भ में अंधविश्वास, सामंती मूल्य और अतार्किक रीतिरिवाज भी इसकी जड़ों को मजबूत कर रहे हैं। यह समस्या लोगों की इच्छाशक्ति को इस तरह मार डालती है कि आदमी इससे बाहर निकलने की बात सोचने के बजाय नशाखोरी और उदासीनता से भरी लाचार जिंदगी जीने की राह अपना लेता है। गरीबी की गिरफ्त में फंसे अधिकतर युवा इससे उबरने के लिए लगी, चोरी, डकैती की राह पर भी चलने लगते हैं। नैतिकता का अभाव उनमें अपसांस्कृतिक तत्वों को पनपने के लिए उपजाऊ जमीन देता है। समस्या का यह सिरा मानसिक स्तर से जुड़ा हुआ है।

गरीबी की समस्या से जुड़ी महत्वपूर्ण हकीकत यह है कि जब तक इस समस्या से जूझते लोगों में इससे बाहर निकलने के लिए अपनी मदद खुद करने की इच्छा नहीं जगती तब तक उन्हें इस समस्या की गिरफ्त से बाहर निकालना संभव नहीं है। इन लोगों में यह इच्छा शक्ति जगाने के लिए एक मुहिम की जरूरत है। साथ ही इनके जीवन में गुणात्मक सुधार लाने के लिए नई राहें भी तलाशने की जरूरत है।

अमर्त्य सेन ने अपने 'ह्यूमन राइट्स एण्ड केपेबिलिटीस' लेख में गरीबी की समस्या से बाहर निकलने के लिए वैकल्पिक संभावनाओं को खोजने की बात की है। उनके अनुसार 'गरीबी पर लिखे गए प्राचीन रचनात्मक साहित्य लोगों की सुस्ती और निष्क्रियता पर केन्द्रित होने के बावजूद उनमें अभिव्यक्त लोगों की भुखमरी और पीड़ा का एक बड़ा कारण वैकल्पिक संभावनाओं का अभाव था।'[3]

महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी सामाजिक विज्ञान तथा अन्य विषयों के विशेषज्ञों एवं अध्यापकों के निर्देशन में वैकल्पिक संभावनाओं की तलाश कर सकते हैं। इसके लिए स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा को पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धति के जरिए बृहद सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ना होगा। अमर्त्य सेन की अधिकार संबंधी दृष्टि को अगर शिक्षा के संदर्भ से जोड़कर देखा जाए तो शिक्षा के जरिए युवा पीढ़ी को सार्थक सामाजिक कार्यों के लिए तैयार करने की राहें स्पष्ट हो सकती हैं।

अमर्त्य सेन ने अधिकार संबंधी दृष्टि में जिसे 'ओनरशिप बंडल' अर्थात 'अधिकार की वस्तुएं' कहा है शिक्षा के संदर्भ में वह 'ज्ञान तथा सामान्य बोध' हो सकता है। इसे विद्यार्थी परिवार, समाज, स्व अध्ययन तथा प्रारंभिक शिक्षण संस्थाओं से हासिल करता है। व्यक्ति तथा समाज के हित में सोद्देश्यपूर्ण तथा प्रभावी ढंग से काम करने के लिए ज्ञान तथा सामान्य बोध का प्रभावी बोध में परिवर्तित होना जरूरी है।

महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को नया ज्ञान देने के साथ-साथ उनके ज्ञान को प्रभावी बोध में रूपांतरित करने की भूमिका निभा सकते हैं। खासकर कला वर्ग के विद्यार्थियों के संदर्भ

3. "Even though indolence and activity has been clasic themes in the old literature on poverty, people havr starved and suffered becouse of lack of alternative possibilities." सेन अमर्त्य, 'ह्यूमन राइट्स ऐण्ड केपेबिलिटीस, जरनल ऑफ ह्यूमन डेवेलॉपमेंट, रूटलेज, खण्ड 6, संख्या 2, जुलाई 2005'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में कहा जाए तो इस बोध में समय और समाज की धड़कन को पहचानने का बोध, कठिन समस्याओं की जड़ों का बोध, इन समस्याओं से टकराने के लिए हथियारों के चयन का बोध, जीवन और समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक तत्वों को पहचानने का बोध शामिल है। अमर्त्य सेन जिसे 'एक्सचेंज एन्टाइटेलमेंट' अर्थात् 'विनिमय से हासिल अधिकार' कहते हैं शिक्षा के संदर्भ में वह 'ज्ञान का रूपांतरण' कहा जा सकता है। ज्ञान के रूपांतरण की प्रक्रिया को अंजाम देने के लिए शिक्षा पद्धति में बदलाव की जरूरत है।

ज्ञान से प्रभावी बोध के विकास के लिए शिक्षकों को पाठ्यक्रम में शामिल विषयों के प्रति अंत:सम्बन्धी रवैया अपनाने की जरूरत महसूस होगी। इस जरूरत की पूर्ति के लिए अलग-अलग विषयों की ताकत को समझना होगा। मसलन, इतिहास का ज्ञान किसी समस्या या प्रथा के जड़ों की तलाश करने में मददगार साबित हो सकता है। साहित्य के जरिए किसी समस्या के स्वरूप एवं विस्तार का भी अंदाजा लगाया जा सकता है। अर्थशास्त्र का ज्ञान आर्थिक स्तर पर किसी समस्या से बाहर निकलने की राहों को तलाशने में सहयोगी साबित हो सकता है। मनोविज्ञान की समझ किसी व्यक्ति या वर्ग में नई आशा का संचार करने की राहें सुझा सकती है। इन विषयों के सम्यक् ज्ञान से किसी समस्या से व्यावहारिक स्तर पर निपटने का प्रभावी बोध विकसित हो सकता है।

ज्ञान से प्रभावी बोध के विकास के लिए विषय वस्तु को उसकी प्रकृति के हिसाब से अलग-अलग विषयों से जोड़कर देखना जरूरी है। तभी वर्तमान के लिए उपयोगी बोध का विकास हो सकता है। इसके लिए पाठ्यक्रम में ही किसी विषय को देखने के अलग-अलग कोणों का उल्लेख किया जाना हितकारी साबित होगा।

ज्ञान से प्रभावी बोध के विकास के बाद इस प्रक्रिया की उपयोगिता को नापने का सवाल उठता है। अकाल और भुखमरी के विश्लेषण के संदर्भ में अमर्त्य सेन जिसे 'एक्सचेंज एन्टाइटेलमेंट मैपिंग' कहते हैं, उसे शिक्षा के संदर्भ में 'प्रभावी बोध की सार्थकता का मूल्यांकन' कहा जा सकता है। इस मूल्यांकन का एक पैमाना दलगत शोधकार्य हो सकता है। दलगत शोध कार्य दो स्तरों पर हो सकते हैं। एक सैद्धांतिक स्तर पर और दूसरा व्यावहारिक स्तर पर।

सैद्धांतिक स्तर पर शोधकार्य करने वाले कला वर्ग के विद्यार्थी समाज की किसी समस्या को मद्देनजर रखते हुए समस्या से बाहर निकलने की राहें तलाश सकते हैं। या फिर वे समाज की किसी मांग को पूरा करने के लिए वैकल्पिक संभावनाओं की तलाश कर सकते हैं। वे समाज की किसी प्रवृत्ति के समाज पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभाव का अध्ययन भी कर सकते हैं। ऐसे शोध कार्य करने वाले विद्यार्थियों के दल में कार्य की प्रकृति के हिसाब से अलग-अलग विषयों के विद्यार्थियों का होना आवश्यक है। यह दल सामाजिक विज्ञान तथा अन्य आवश्यक विषयों के विशेषज्ञों एवं अध्यापकों के निर्देशन में काम कर सकता है।

व्यावहारिक स्तर पर शोधकार्य करने वाले विद्यार्थी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय जिस जिले में हो उसी जिले के किसी पिछड़े इलाके का चयन करके वहां के लोगों के जीवन में गुणात्मक सुधार लाने का काम कर सकते हैं। उनका काम किसी प्रतिष्ठित सिद्धांत पर आधारित हो सकता है। यहां एक बात का अलग से उल्लेख करना जरूरी है कि खासकर साहित्य के विद्यार्थी जिन्दगी की मार से दबे व्यक्तियों में नई आशा का संचार करने के लिए अलग-अलग विषयों के विद्यार्थियों के साथ मिलकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सचेतनता शिविरों, चित्र प्रदर्शनियों, जिन्दगी की समस्याओं को समझने की दृष्टि देने वाले गीतों की रचना, नृत्य नाट्य एवं नुक्कड़ नाटकों की प्रस्तुति तथा पोस्टर प्रदर्शनियों का आयोजन कर सकते हैं। इस तरह कला वर्ग के पाठ्यक्रम में भी 'व्यावहारिक कार्य' (प्रैक्टिकल वर्क) शामिल हो सकता है।

सामाजिक कार्य करते हुए विद्यार्थी यह महसूस कर पाएंगे कि सिद्धांत और व्यवहार में कितना अंतर है। किताबों के सवाल जिन्दगी के सवालों से कितने अलग हैं। जिन्दगी के सवालों से जूझने के लिए किसी एक विषय का ज्ञान ही काफी नहीं है। शिक्षा विद्यार्थियों को जीवन के साथ-साथ समाज के लिए भी तैयार करती है। उच्च स्तर की शिक्षा हासिल करते हुए विद्यार्थी अपने सामाजिक दायित्वों को निभाने की कला सीखेंगे। इससे शिक्षा में नैतिकता का समावेश हो पाएगा।

वक्त इस सच्चाई पर से परदा उठा चुका है कि काम करने वाले लोगों और साधनों की कमी के कारण सरकार के लिए अक्सर जरूरतमंदों तक मदद पहुंचाना संभव नहीं हो पाता। इसके अलावा नैतिकता के अभाव के कारण बिचौलियों की रिश्वतखोरी जरूरतमंदों के लिए भेजे गए अर्थ या वस्तुएं हड़प लेने की आदतें भी अपनी जगह बनी हुई हैं। महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के विद्यार्थी व्यावहारिक शोध कार्यों के जरिए जरूरतमंदों की मदद का जरिया बन सकते हैं।

गौर करें कि जनसाधारण को जागरुक बनाने का दायित्व लोकतंत्र के चौथे खम्भे पत्रकारिता पर है। लेकिन अधिकतर लोग पत्रकारिता के साधनों को मनोरंजन, वक्त गुजारने या फिर महज जानकारी हासिल करने के लिए देखते या सुनते हैं। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो पत्रकारिता के साधनों से प्रभावित होकर हालात को बदलने की राहों पर चलने को तत्पर होते हैं। इन साधनों के जरिए जब-तब ये ताकतवर भी साबित हुए हैं। इससे एक बात तो स्पष्ट होती है कि सही अर्थों में लोगों को जागरुक बनाने के लिए उनके बीच जाकर काम करने वाले किसी वर्ग की जरूरत है। विद्यार्थी वर्ग यह भूमिका निभा सकता है। इसके लिए उन्हें शोध से प्रेरित सामाजिक कार्य करने का दायित्व सौंपना होगा। इससे उच्च शिक्षा बृहद सामाजिक उद्देश्यों से जुड़ पाएगी। ऐसी शिक्षा से न सिर्फ सार्थक सामाजिक कार्यों को बड़े स्तर पर बढ़ावा मिलेगा बल्कि विद्यार्थियों में देश और समाज की जटिल समस्याओं से टकराने के लिए शोधपूर्ण नजरिए का भी विकास होगा। इस तरह की शिक्षा देश के विकास में उपयोगी साबित होने वाले शोधकार्यों को बढ़ावा दे सकती है।

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
लॉरेटो कॉलेज, कोलकाता
मो. 9231622659

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार अशोक, करंट ट्रेन्ड्स इन इण्डियन एडुकेशन, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004
2. गुप्ता एस. एडुकेशन इन इमर्जिंग इण्डियन एडुकेशन, एटलान्टिक पब्लिशर्स ऐण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2001
4. दास एम, एडुकेशन इन इण्डिया प्राब्लेम्स एण्ड पर्सपेक्टिव्स, एटलान्टिक पब्लिशर्स ऐण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004
5. डॉन जरकेरी के.आर. यूनिवर्सिटी एडुकेशन इन इण्डियन प्रेस, न्यूयार्क, 2000
6. सेन अमर्त्य, डेवेलॉमेंट ऐज़ फ्रीडम, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2000
7. सेन अमर्त्य, ऑन इकनॉमिक इनक्वालिटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999
8. सेन अमर्त्य, पॉवरटी ऐण्ड फेमीन्सः ऐन ऐसे ऑन एन्टाइटेलमेंट ऐण्ड डेप्राइवेशन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1982

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आर्थिक संवृद्धि पर टिका असंतुलित विकास और विस्थापन के अन्तर्सम्बन्ध

डॉ. कृष्ण कुमार

मानवीय सभ्यता निरंतर विकास की ओर उन्मुख है। विकास एक बहुआयामी और संश्लिष्ट प्रकिया है। आदिम युग से प्रत्येक समुदाय, जाति, धर्म और राज्य में उसे प्राप्त करने की अलग-अलग पद्धति, प्रक्रिया, विचार और दार्शनिक श्रृंखलाएं हैं। यानि विशेष भौगौलिक क्षेत्र में रहने वाली जनता ने अपने जीवनानुभव और संघर्ष से विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान की धाराओं और रूपों को विकसित किया। लेकिन मौजूदा दौर में विकास से अभिप्राय आर्थिक संवृद्धि का निरन्तर बढ़ना है। वैश्विक शक्तियां और बहुराष्ट्रीय निगम आर्थिक संवृद्धि और विकास के अन्योयाश्रित सम्बन्ध पर जोर देते हैं। विकास की इस एकरेखीय समझ और अवधारणा को संपूर्ण विश्व पर उदारीकरण, निजीकरण, भू-मण्डलीकरण जैसे आकर्षक शब्द जाल के माध्यम से थोपा जा रहा है- खासकर तीसरी दुनिया और विकासशील देशों पर। उच्च प्रौद्योगिक और पूंजी के तालमेल से पैदा यह बहुप्रचारित विकास का मॉडल 'मुक्त बाजार प्रणाली' की अनुशंसा करता है तथा ज्ञान की पारंपरिक धाराओं और रूप को खारिज करके उसके समरूपीकरण पर जोर देता है।

पिछले दिनों विकासशील देशों के सन्दर्भ में आर्थिक वृद्धि या वृद्धि की सनक के बारे में प्रो. अमर्त्य सेन ने कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाते हुए कहा है कि यदि आर्थिक संवृद्धि बेहतर जीवन शैली समेत तमाम चीजों को हासिल करने में मददगार नहीं बनती, तो वह असंतुलित विकास को जन्म देती है। उन्होंने अपने विश्लेषण में भारत और चीन का अध्ययन करते हुए कहा- 'चीन में जन्म के समय बचने की संभावना 73.5 फीसदी है, भारत में यह अब भी 64.4 फीसदी है। शिशु मृत्यु दर भारत में प्रति हजार 50 फीसदी है, जबकि चीन में 17 फीसदी है। पांच साल से कम उम्र में मृत्यु दर भारत में 66 फीसदी है, जबकि चीन में 19 फीसदी है। चीन में वयस्क साक्षरता दर 94 फीसदी है, भारत में 64 फीसदी है..... हमारे यहां करीब आधे बच्चे अल्पपोषित हैं। जबकि चीन में यह संख्या मामूली है। डीपीटी के टीके के मामले में भारत की दर 66 फीसदी है, जबकि चीन में 97 फीसदी है'[1] स्पष्ट है कि पिछले दो दशकों से भारत और चीन की वृद्धि दर तो अंकों के आसपास है लेकिन बेहतर जीवन-शैली के सन्दर्भ में दोनों देशों के भिन्न-भिन्न आंकड़े हैं। चीन में सकल राष्ट्रीय उत्पाद ने गरीबी और बदहाली को कम करने में निर्णायक भूमिका निभाई, वहीं भारत में इसका लाभ एक वर्ग तक ही सीमित देखा गया। अत: आर्थिक संवृद्धि विकास का एक कारक मात्र है, संपूर्ण विकास नहीं।

---

1. प्रो. अमर्त्य सेन, आर्थिव संवृद्धि और अन्य चिन्ताएँ, संपा. पंकज बिष्ट, समयांतर, मार्च 2011 पृष्ठ संख्या-11

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे मुल्क की सत्ता ने दो दशक पहले अपनी वित्तीय प्रणाली को अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली (विशेषत: अमेरिका, यूरोपीय संघ-जापान) से जोड़कर विकास के मायने आर्थिक संवृद्धि के संदर्भ में तय किए। तब से हमारे सरकारें दोहराती आई हैं कि हमारी उपलब्धि में शामिल है – आर्थिक संवृद्धि में अप्रत्याशित वृद्धि, पर्याप्त विदेशी मुद्रा भण्डार, अरबों-खरबों का निजी निवेश और सबसे ज्यादा जरूरी अन्तर्राष्ट्रीय निवेश के अनुकूल माकूल माहौल। राष्ट्रीय मंचों से लोगों को समझाया जा रहा है कि इसके परिणामस्वरूप भारत जैसे गरीब देश का सम्बन्ध अमीर देशों से बन रहा है। इसकी बदौलत हमारा देश भी अन्तर्राष्ट्रीय-स्तर की सुख सुविधाओं से लैस होगा। व्यापार, वित्त और पूंजी निवेश के आधार पर जब दोनों देशों के रिश्ते प्रगाढ़ होते हैं, लाभ दोनों देशों को होगा-समृद्धि दोनों देशों में फैलेगी। अर्थशास्त्र की भाषा में इसे 'थ्योरम ऑफ कंवर्जेंस' कह सकते हैं।

सत्ता और उसके समर्थक, बुद्धिजीवियों का मत है कि जीवन-स्तर की गुणवत्ता, उत्पादकता पर निर्भर करती है तथा अत्याधिक उत्पादन, प्रौद्योगिकी और प्रबन्धन पर आश्रित है। चूंकि विकासशील देशों के पास पूंजी और ज्ञान का अभाव है। वैश्वीकरण के दौर में उन्हें पूंजी और प्रौद्योगिकी प्राप्त करने के लिए विकसित देशों के संपर्क में रहना होगा ताकि वे अपने संसाधनों का समुचित उपयोग कर सकें। हम अपनी गरीबी और अशिक्षा से निजात पा सकें- यह हमारी अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण होगा। जनता को वैश्वीकरण के इस रूप से कोई आपत्ति नहीं है लेकिन उसके नेता ऋण प्राप्ति और प्रौद्योगिकी के लिए किए गए शर्तों भरे समझौतों का जिक्र नहीं करते हैं। वे आर्थिक नीतियों पर जनता से अपने विचार सांझा नहीं करते कि सशर्त ऋण, राज्य और उसकी संवैधानिक संस्थाओं को पुनर्निमित करने के लिए जोर डाल रहा है- जिन्हें 'दूसरी पीढ़ी के सुधार' कहा जाता है। भारत ने आर्थिक संवृद्धि के लिए 'प्रथम पीढ़ी के सुधारों' को दो दशक पहले अपनाया था उसने बाजार को राज्य से नियंत्रण मुक्त करने के सिद्धान्त को अपनाया तथा राजकोषीय घाटे को दुरुस्त करने के लिए बड़े पैमाने पर सार्वजनिक कल्याण के कार्यों के लिए दी गई सब्सिडी को कम किया। पूंजी की चाह में अपनी अर्थव्यवस्था के अंतर्राष्ट्रीयकरण की ओर या काफी हद तक अमेरिकीकरण की ओर जो कदम हमने बढ़ाए थे, अब वे सरपट गति से दौड़ने लगे हैं। इसलिए हम वित्त और पूंजी के निवेश के लिए बहुपक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, द्विपक्षीय वार्ताएं, मुक्त व्यापार संगठन-विश्व बैंक-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा निर्देशित शर्तों के अनुसार अपने विकास की नियमावली तैयार कर रहे हैं।

उदारीकरण के इस दौर में मानवीय पूंजी की बजाय वित्तीय पूंजी का महत्व है। आज केन्द्र-राज्य सरकारों और बहुराष्ट्रीय निगम-कारपोरेट घरानों के बीच अनेकानेक समझौते (विशेषत: अचल सम्पत्ति के संदर्भ में) पर हस्ताक्षर हो रहे हैं। विश्व बैंक ने बड़ी चालाकी और धूर्तता से भूमि सुधार कार्यक्रम को पलट दिया है तथा खनन सम्बन्धी प्रक्रियाओं को सुविधाजनक बना दिया है। दूसरी ओर हमारी सरकारें जमीन अधिग्रहण के औपनिवेशिक कानून (1894) को लागू करके 'डंडे और बंदूक' के बल पर किसानों, आदिवासियों की जमीन हड़प कर भवन-निर्माण एवं खनन संबंधी कम्पनियों और बड़े बांधों के निर्माण के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों को बेच रही है। आज ओडिसा के जगतसिंहपुरा में पास्को कंपनी के स्टील प्लॉट, वेदांता को नियमगिरि की पहाड़ियाँ बाक्साईट एल्यूमिनियम निकालने के लिए, तमिलनाडू में कुडनकूलम पॉवर प्रोजेक्ट के लिए जे.पी. इन्फ्रा को सुविधा संयंत्र नगर बसाने तथा उत्तर प्रदेश में फार्मूला वन रेस के लिए, सुजलॉन को महाराष्ट्र में पवनचक्की परियोजना के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरा पहाड़ तथा हरियाणा में गोरखपुर परमाणु प्लॉट के लिए हमारों-लाखों एकड़ भूमि को सरकार अपने बाशिन्दों-किसानों-आदिवासियों से छीनकर उद्योग जगत को सौंप रही है। भारत की अधिकांश जनसंख्या गांव में रहती है। अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। जल, जंगल, जमीन अर्थात् संसाधनों को छीन कर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को नीलाम करना तथा उन्हें विस्थापित करके फटेहाल पर छोड़ देना बर्बरता और अमानवीयता है। यह विकास की कैसी अवधारणा है जो अपने ही लोगों का रक्तपात करने पर तुली है। उनकी जिंदगी के ताने-बाने को नष्ट करना चाहती है। 'स्वतंत्रता के बाद केवल बड़े बांधों से ही साढ़े तीन करोड़ लोगों को उजाड़ दिया गया है'[2] यदि इसमें अन्य विकास की परियोजनाओं द्वारा विस्थापित लोगों को जोड़ लिया जाए तो यह आंकड़ा शर्मनाक और अमानवीय है।

निर्देशित शर्तों अर्थात् ढांचागत संरचनात्मक समायोजन के अनुसार सरकार विकास के नाम कृषि योग्य तथा खनिज पदार्थों से युक्त भूमि किसान और आदिवासियों से छीनकर कौड़ी के भाव निजी स्वामित्व के हाथों सौंप रही है। अरुन्धति राय लिखती हैं 'भारत जैसे देश में संरचनात्मक समायोजन, जो कॉरपोरेट वैश्वीकरण परियोजना का अंतिम छोर है, लोगों के जीवन को लील रहा है। विकास की परियोजनाएं बड़े पैमाने पर निजीकरण और श्रम से संबंधित सुधार लोगों को उनकी जमीन और नौकरी से बेदखल कर रहे हैं। परिणामस्वरूप ऐसा बर्बर विस्थापन हो रहा है जिसकी इतिहास में मुश्किल से ही कोई मिसाल मिले। सारी दुनिया में जैसे खुला बाजार, पश्चिमी बाजारों का नंगई से संरक्षण कर रहा है और विकासमान देशों को अपने व्यापारिक प्रतिबन्धों को उठाने के लिए मजबूर कर रहा है। इससे गरीब और गरीब हो रहे हैं तथा अमीर और भी अमीर।'[3] स्थायी रोजगार के अभाव और जड़ों से विस्थापित होकर लोग संगठित/असंगठित होकर विकास के इस मॉडल पर सवालिया निशान लगाते हैं तथा अपनी लोकतांत्रिक सरकार को संदेह की नजरों से देखते हैं तथा उसकी नीतियों की आलोचना करते हैं। जब सत्ता उनकी बातों को अनसुना कर देती है तो वे कभी लोकतांत्रिक तरीके से या कभी बंदूक उठाकर अपने वजूद के लिए संघर्षरत् नजर आते हैं।

सरकार जन-संघर्षों को अपने विरुद्ध साजिश के रूप में चिन्हित करती है या अपनी जनता में जागरुकता के अभाव के रूप में देखती है। वह बार-बार नसीहत देती है कि अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के अनुरूप उद्योगीकरण-निजीकरण की प्रक्रिया को और तेज करने की आवश्यकता है। शुरू-शुरू में लोग अपने ज्ञान और कौशल से निर्मित पारम्परिक धंधों और भूमि से विस्थापित होंगे, बाद में उन्हें संगठित और असंगठित श्रम में बदला जाएगा। इस प्रकार उदारीकरण की नीतियों का लाभ वित्तीय संस्थाओं एवं पूंजीकर्ताओं से शुरू होकर निचले तबकों तक पहुंचेगा-यही विकास का 'ट्रिकल डाऊन' होगा ट्रिकल डाउन की यह प्रक्रिया विदेशों/विकसित देशों में सम्पन्न हो चुकी है। वहां भी उद्योगों का विकास कृषि भूमि पर हुआ। पारम्परिक धंधों और कृषि से विस्थापित लोगों को उद्योगों द्वारा समायोजित किया गया। उन्हें सेवा क्षेत्रों और उद्योगों द्वारा निर्मित नए काम-धंधों में तरजीह दी गई।

इतिहास का हवाला देकर समझाया जा रहा है कि विकास और विस्थापन में ऐतिहासिक सम्बन्ध है। विकसित देशों में यह प्रक्रिया पूरी हो चुकी है और विकासशील देशों में आजमाया जा रहा

2. अरुन्धति राय, द अलजेब्रा ऑफ इनफाइनाइट जस्टिस, पेंगुईन बुक्स, इण्डिया, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-16
3. अरुन्धति राय, नव साम्राज्य के नए किस्से, पेंगुईन बुक्स, इण्डिया, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-28

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। इस संदर्भ में ब्रिटेन की स्थिति पर विचार किया जा सकता है। वहां उद्योगों के विस्तार के लिए छोटे किसान और शिल्पकार विस्थापित हुए। वहां औद्योगिकरण की शुरुआत वस्त्र उद्योग से हुई। 80 धुरी वाली कताई की मशीन-जिसे 'जेनी' कहा जाता था, उसे चलाने के लिए शक्ति की जरूरत होती थी, बाकी बच्चे 79 व्यक्तियों को पारम्परिक काम से विस्थापित होना पड़ता था। हालांकि दो सदी पहले की मशीनें ज्यादा उन्नत नहीं थी फिर भी किसान-मजदूर की उत्पादन में भागीदारी निरन्तर कम होती चली गई और वस्त्र उद्योग में आदमी के ऊपर मशीन भारी पड़ी। औद्योगीकरण की इस प्रक्रिया को देखकर बुद्धिजीवी टोमस मूर की ये पंक्तियां याद आती हैं-'भेड़ें आदमी को खा रही हैं'।

आखिर प्रश्न यह है क्या कृषि भूमि पर पनपे उद्योग इस मात्रा में रोजगार सृजित कर पाए कि विस्थापित लोगों को संगठित या असंगठित श्रम में बदला जाए, उन्हें पुन: स्थायित्व प्रदान किया जाए। तस्वीर बिल्कुल उलट है-ब्रिटेन में फैलती हुए अर्थव्यवस्था विस्थापित श्रम को समेट नहीं पाई बल्कि बढ़ी संख्या में लोगों ने देश से पलायन किया तथा राजसत्ता के प्रति रोष प्रकट किया। उत्सा पटनायक लिखती हैं- 'ब्रिटेन में रोजगार और निम्न मजदूरी में काम करने वाले मजदूरों ने राज्यसत्ता के खिलाफ 1840 में विद्रोह कर दिया लेकिन उत्प्रवास के सैफटी वाल्व के कारण ही वहां क्रांति नहीं हुई। 1821 में ब्रिटेन की आबादी 1 करोड़ 20 लाख थी लेकिन 1821 और 1915 के बीच 1 करोड़ 60 लाख ब्रिटिश आबादी ने अमेरिका में मूल निवासियों की जमीन पर पलायन किया'[4] केवल इंग्लैण्ड से नहीं बल्कि पूरे यूरोप से हुआ यह पलायन उसकी आबादी का 1/8 भाग था। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम के स्थानांतरण पर इतने व्यापक प्रतिबंध नहीं थे। उस दौर के वैश्वीकरण में पूंजी और श्रम से संबंधित कानून लचीले थे। लेकिन आज कठोर अप्रवासी कानून और वाणिज्य दूतावास के व्यवहार से सीमापार श्रम के आवागमन पर कठोर नियंत्रण तथा व्यापार और निवेश में लचीला प्रवाह लगातार बना हुआ। वैश्विक प्रभुत्व वाली शक्तियों की यह दोहरी नीति है कि वह श्रम को नियंत्रित तथा उत्पादित वस्तुओं के लिए मुक्त बाजार प्रणाली की मांग करती है। इस प्रकार इन्होंने वैश्वीकरण जैसी सर्वकल्याण भावना को सीमित अर्थों में बांध दिया है। अपने युग के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री-अर्थशास्त्री नोम चोमस्की लिखते हैं- 'वैश्वीकरण से तात्पर्य अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण है और भला कौन समझदार व्यक्ति इसके खिलाफ हो सकता है..... कहने की आवश्यकता नहीं है कि शक्तिशाली लोगों ने वैश्वीकरण शब्द पर अनाधिकार कब्जा कर लिया है और उसे अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण के अपने विशिष्ट संदर्भ तक सीमित कर दिया है, जो स्वयं उनके हितों को प्रतिबिम्बित करता है। इस शब्द के विशिष्ट संदर्भ के कारण, उन लोगों को वैश्वीकरण विरोधी कहा जाता है जो उचित और न्यायसंगत ढंग का वैश्वीकरण चाहते हैं'[5]।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूंजी का संकेन्द्र अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान में उभरा। उनके पास सरप्लस पूंजी के भण्डार थे, उन्हें पूंजी की खपत और सृजन के लिए बाजारों की आवश्यकता थी। वे ब्रिटेनहुड समझौते, रीगन-थेचर समझौते तथा वाशिंगटन आम सहमति जैसे समझौतों के नियम और नीतियों के मार्फत विकासशील देशों को यह विश्वास दिलाने या बहकाने में सफल रहे कि वे अपने विकास के लिए राज्य की प्राथमिकताओं को दरकिनार करके उच्च प्रौद्योगिकी और पूंजी के लिए अपने

4. उत्सा पटनायक, कृषि क्षेत्र के संकट, संपा. पंकज बिष्ट, समयांतर, जुलाई-2011 पृष्ठ संख्या-20
5. नोमचोमस्की, शक्ति और वैश्वीकरण पर विचार, विश्व-सामाजिक मंच द्वारा आयोजित, पोर्टो अलेगर, फरवरी 2002

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दरवाजे खुले छोड़ दें तथा निजीकरण-निगमीकरण की प्रक्रिया को सख्ती से लागू करें।

यह मॉडल विकसित अर्थव्यवस्थाओं ने अपने अनुकूल ईजाद किया है। विकासशील देशों की परस्थितियां भिन्न हैं। यहां जनसंख्या घनत्व अधिक है और श्रम सरप्लस है। आर्थिक संवृद्धि पर टिका यह विकास श्रम को नहीं पूंजी को महत्व देता है। पूरे देश में इस प्रकार का वातावरण बन रहा है कि चंद लोग मालामाल हो रहे हैं और अधिकांश जनता मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। सरकार पूंजीपतियों के हक में नीति और नियम बनाकर अपनी जनता के संसाधनों को कौड़ी के भाव लुटा रही है।

आज हमारी सत्ता और राजनैतिक दल पश्चिम को अपना आदर्श मानकर, हमारे यथार्थ को बदलने की कोशिश कर रहे हैं। हालांकि यह सर्वमान्य सत्य है कि बैसाखियों के सहारे रेस नहीं लगाई जा सकती, उसके लिए खुद की माँसपेशियों को मजबूत करना पड़ता है। कोई भी ज्ञान-विज्ञान अपनी जड़ों से खुराक पाता है और आस-पास के वातावरण से मिलकर जीवन दृष्टि को बढ़ाता है। वह जनता के जीवनानुभव से मिलकर सहजता और विश्वसनीयता हासिल करता है। ऐसी तकनीक और कौशल से ही लम्बी दूरी तय की जा सकती है। तात्कालिक आयायित अर्थव्यवस्था का मॉडल बेशक कुछ समय के लिए हमारी आर्थिक संवृद्धि को बढ़ा दे लेकिन संपूर्ण विकास और दूरी तय करना मुश्किल है। यह मानना बड़ी भूल होगी पश्चिम का यह मॉडल हमारे विकास की जरूरतों को पूरा करेगा। हमें गरीबी और बदहाली से निकाल कर सभ्य देशों की श्रेणी में शामिल करेगा, उन्होंने अपनी जरूरत और इच्छाओं के मुताबिक इसे विकसित किया है। यह हमारा काया पलट नहीं कर सकता। अर्थशास्त्री दीपक नैयर लिखते हैं- 'भूमंडलीकरण की यह प्रक्रिया ऐसी नहीं है कि यह सभी जगह को संयुक्त राज्य ही बना देगी या उसकी प्रतिकृति तैयार कर देगी। एक सदी पूर्व की स्थिति पर भी हम नजर डालते हैं' तो उस समय भी उसने ब्रिटेन जैसी ही स्थिति उत्पन्न नहीं कर दी थी। यह ऐतिहासिक उदाहरण इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि कैसे भूमण्डलीकरण असंतुलित विकास के साथ जुड़ा हुआ है। अब यह असंतुलित विकास को जन्म देने के लिए अभिशप्त है तथा यह केवल देशों के बीच ही नहीं बल्कि देश के अंदर भी असंतुलित विकास को जन्म देता है' स्पष्ट है पिछले दो दशकों का अनुभव बतलाता है कि असंतुलित विकास और विस्थापन से जुड़ी विकास की प्रक्रिया आम जन की बजाय कुछ एक लोगों के हित में है जो भारत को विस्थापित करके कॉरपोरेट इण्डिया के विकास में लगी है।

सहायक प्रोफेसर
शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय
मटक माजरी, इन्द्री, करनाल
मो. 9416550290

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

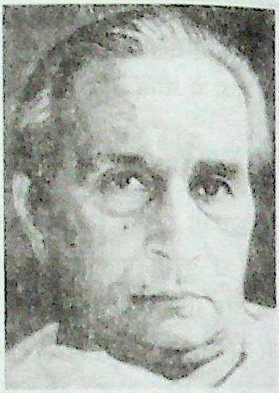

काइयांपन के रूप

वेद प्रकाश

कभी-कभी कहने के बने-बनाये ढाँचे को तोड़ने से भी कहानी में रोचकता उत्पन्न हो सकती है। लेकिन इसमें जोखिम भी है। रोचकता उत्पन्न करने के अतिरिक्त आग्रह का यह खतरा है कि कहानी पाठक को अपने से दूर कर दे। आजकल के अनेक लेखक कहानी की शुरुआत प्रायः किसी विदेशी लेखक के उद्धरण से करते हैं। ऐसा कम ही होता है कि उन विदेशी लेखकों के नाम पढ़े-लिखे पाठकों ने भी सुन रखे हों। वे नाम ज़्यादातर चौंकाऊ, अज्ञात और आतंकप्रद होते हैं। रही बात कहानी में दिये गये आरंभिक उद्धरणों की, तो उनका संबंध पाठक बहुत श्रम करने के बाद भी कहानी की संवेदना या कथ्य से स्थापित नहीं कर पाते।

परसाई की कहानियों के आरंभ का वैशिष्ट्य, उसकी प्रभाव-क्षमता, रोचकता और पाठक को आकर्षित कर लेने की अचूकता का उल्लेख हम कई बार कर चुके हैं। परसाई ने कहानी कहने के ढांचों को अनेक प्रकार से तोड़ा है। इस दृष्टि से भी हिंदी में परसाई की तरह के रचनाकार कम ही हैं। लेकिन परसाई को पढ़ते हुए यह कभी नहीं लगता कि वे नएपन और रोचकता का प्रदर्शन कर रहे हैं। नयापन उनके यहां सहज रूप में आता है, चकाचौंध में डालने वाली शैली में नहीं। परसाई की कहानियों के आरंभ पर ध्यान देना चाहिए। ध्यान देने पर ही वह समझ में आता है। वैसे वह इतना सहज है कि पढ़ते समय उसकी विलक्षणता-विशिष्टता का पता ही नहीं लगता। जब हम उस सहजता से उत्पन्न प्रभाव-क्षमता की खोज करते हैं, तो पता चलता है कि वह आरंभ विशिष्ट और विविधरूपी है। वह कहीं ठेठ भारतीय प्राचीन कथाओं (जो अपने आप में बहुत-से रूपों वाली हैं) के ढंग पर है, कहीं दर्शन का वाक्य है, कहीं किसी सामान्य या विशिष्ट घटना, स्थिति को बताने वाला है, कहीं संवादात्मक है, कहीं फैण्टेसी है, कहीं चित्रात्मकता लिये हैं, कहीं सूत्रवाक्य है, आदि-आदि। अपने समय को व्यक्त करने के लिए, इतनी तरह से कहानी का आरंभ करने के कारण परसाई की कहानियों का ढाँचा कहानी के निर्धारित ढाँचे से भिन्न है। इन कहानियों में अनेक साहित्य-रूपों की व्याप्ति है, निबंध की विशेष रूप से, इसीलिए कई बार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों और परसाई की कहानियों का आरंभ समान लगता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विदेशी लेखकों और उनकी रचनाओं के नामोल्लेख से कहानी का आरंभ परसाई भी करते हैं। पर एक तो वे उन लेखकों का कोई 'जगमगाता' उद्धरण नहीं देते। दूसरे, ये विदेशी लेखक विश्वस्तर पर लोकप्रिय होते हैं। तीसरे, परसाई इन लेखकों का अनुकरण न करके, इनकी रचनाओं में आयी स्थितियों का बयान करते हैं, फिर अपनी देखी हुई वैसी ही स्थिति से उसकी तुलना करते हैं और उसके बाद अपने देखे हुए में नएपन का उद्घाटन करते हुए उसकी कहानी लिखते हैं। यानी मिलती-जुलती दो स्थितियाँ हैं, उनकी अपनी-अपनी निजताएँ हैं। एक पर कोई लिख चुका है, दूसरी पर परसाई लिखते हैं, लेकिन परसाई केवल रचनाकार ही नहीं, बहुत पढ़ने वाले पाठक भी हैं, इसलिए यह भी याद करते हैं कि मिलती-जुलती स्थिति पर किसने लिखा। यह दूसरे रचनाकार का सम्मान है, पर साथ ही अपने देखे हुए को दिखाने का आग्रह भी है, अत: दूसरों से अपने को अलग करना भी। स्वयं देखना प्रगतिशील विचारधारा का खास लक्षण है। इस संदर्भ में परसाई की एक कहानी 'चूहा और मैं' का आरंभ देखिए-

'यह कहानी स्टीन बेक के लघु उपन्यास 'ऑफ मेन एण्ड माउस' से अलग है।

चाहता तो लेख का शीर्ष 'मैं और चूहा' भी रख सकता था। पर मेरा अहंकार इस चूहे ने नीचे कर दिया है। जो मैं नहीं कर सकता, वह यह मेरे घर का चूहा कर लेता है। जो इस देश का सामान्य आदमी नहीं कर पता, वह इस चूहे ने मेरे साथ करके बता दिया।'

परसाई की एक और कहानी 'एक लड़की: पाँच दीवाने' की शुरुआत इस तरह है-

'गोर्की की कहानी है, '26 आदमी और एक लड़की'। इस लड़की की कहानी लिखते मुझे वह कहानी याद आ गयी। रोटी के एक पिंजड़ानुमा कारखाने में 26 मजदूर सुअर से भी बदतर हालत में रहते हैं और काम करते हैं। मालिक की जवान लड़की जब निकलती है, वे सब सीखचों से उसे देखते हैं। जीवन के रेगिस्तान में थोड़ी हरियाली आती है। वे उसे देवी जैसी पूजते हैं। अलग-अलग और इकट्ठे उससे प्रेम करते हैं। एक दिन जब वह अपने उच्चवर्गीय प्रेमी के साथ बाहर निकलती है, वे आदतन उसे झाँकते हैं। लड़की कहती है-सुअर कहीं के! और प्रेमी के साथ चली जाती है।

पर जिस लड़की की कहानी मैं लिख रहा हूं, वह बड़े आदमी की लड़की नहीं, गरीब मध्यवर्गीय परिवार की बड़ी लड़की है, पिता सरकारी नौकर है। पत्नी बच्चे पैदा करने में गान्धारी से स्पर्धा करती है। गान्धारी ने अन्धे पति से 100 बेटे पैदा कर दिये थे, इस औरत ने जवानी में ही आँखों वाले पति से 4 पैदा कर लिये हैं। पांचवें का शिलान्यास हो गया है। मरियल है। पूरा खाने को नहीं मिलता। शरीर में खून नहीं है। हड्डी-हड्डी है।'

आज के सूचना-क्रांति के युग में 'प्रोजेक्ट' बनाकर लिखने वाला लेखक होता तो शायद गोर्की को फिर से पढ़ता और उपर्युक्त पहले अंश में आई कुछ सूचनाओं को सही करता, जैसे- गोर्की की कहानी की लड़की, मालिक की जवान लड़की नहीं, तान्या नाम की सोलह वर्ष की नौकरानी है। वह रोज इन मजदूरों से रोटी माँगने खिड़की पर आती है। जिसे उसका उच्चवर्गीय प्रेमी कहा गया है, वह न तो उच्चवर्गीय है, न ही लड़की का प्रेमी। वह कारखाने की इमारत में ही काम करने वाले, थोड़ी बेहतर स्थिति वाले मज़दूरों का सरदार है। वह अवकाश प्राप्त सैनिक है और बन-ठनकर रहता है। लम्पट है, बहुत-सी औरतों से संबंध बनाकर उनसे क्रूरताएँ करता है। लड़की तान्या को प्रेम करने वाले, उसकी पूजा करने वाले मानते हैं कि तान्या ऐसी-वैसी लड़की नहीं है, इसलिए वह इस सैनिक के झांसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में नहीं आएगी। इसके लिए वे सैनिक से शर्त लगाते हैं। शर्त में सैनिक जीतता है। ये मजदूर लड़की को घेरकर उसकी भर्त्सना करते हैं, उसकी ब्लाउज़ की बाँह खींचते हैं, तो लड़की कहती है-

'ओह! तुम ज़लील जेल के कीड़े....।'

परसाई किसी स्थिति पर कहानी लिखते समय, उस स्थिति की जिन दूसरी कहानियों का उल्लेख करते हैं, उनका आधार स्मृति है, इसलिए उनकी सूचनाओं में परिवर्तन हो जाता है,

लेकिन एक बात सही है कि गोर्की की कहानी लड़की और उसके प्रेमियों पर है। परसाई भी 'एक लड़की: पाँच दीवाने' लिखते हैं। जानवरों से भी बदतर स्थितियों में रहने वाले गोर्की की कहानी के वे प्रेमी, छब्बीस मज़दूर औरतों के बारे में ऐसी-ऐसी बातें करते हैं कि यदि वे औरतें सुन लें तो उन शब्दों की अश्लीलता और निर्लज्जता से स्वयं सिहर उठें। ये ऐसे मज़दूर तान्या के प्रति समर्पित हैं, उसे देवी मानते हैं, उस पर भरोसा करते हैं। गोर्की ने इनसे कहलवाया है, 'जब हम उससे बातें करते तो हमारी आवाज़ में शालीनता आ जाती और मजाकों में शिष्टता।' या 'प्रत्येक सुन्दर वस्तु हृदय में सम्मान की भावना उत्पन्न कर देती है, यहाँ तक कि उजड्ड आदमी भी उससे प्रभावित हो जाते हैं। एक बात और थी। यद्यपि उस कठोर परिश्रम ने हमें कोल्हू के बैल के समान जड़ बना दिया था तो भी हम मनुष्य थे और दूसरे मनुष्यों के ही समान बिना किसी की पूजा किए जीवित नहीं रह सकते थे। हमें एक आराध्य की आवश्यकता थी। उस स्थान पर हमारे लिए तान्या से सुन्दर और कोई भी नहीं था।' गोर्की की इस कहानी में जीवन के एक सत्य का चित्रण है। उन्होंने समाज के इन लोगों के हृदय की सात्विकता को दिखाया है, जो इसके लायक माने ही नहीं जाते।

परसाई की कहानी 'एक लड़की: पाँच दीवाने' का यथार्थ भिन्न है। लड़की की पारिवारिक-आर्थिक स्थिति का संकेत हम पा चुके हैं। इसका जिम्मेदार कौन है?- इस प्रश्न का उत्तर जटिलता की उपेक्षा करके नहीं ढूंढा जा सकता। लड़की की माँ 'हड्डी ही हड्डी', है लेकिन लड़की विशेष दुर्बल नहीं है। ऐसे परिवार में लड़की का दुर्बल न होना, आश्चर्यजनक है, अविश्वसनीय नहीं। लड़की के दुर्बल न होने के कारण की कल्पना यह है-

'माँ तो लगातार प्रसूति ही रहती है। लगता है लड़की खाना बनाते समय एकाध रोटी ज़्यादा निगल लेती होगी।'

यह वाक्य परिवार की दुर्दशा को और अधिक उभारता है। यह कोई अतिश्योक्ति पूर्ण, कलात्मक वाक्य नहीं है, अक्सर देखे हुए, अनुभूत किये गये का बयान है। लड़की न केवल दुर्बल नहीं है, छरहरी और सुन्दर भी है-

'लड़की छरहरी है। सुन्दरी है। और गरीब की लड़की है।'

और गरीब की लड़की है' पर ध्यान दें। यदि कोई लड़की सुन्दर हो, लेकिन गरीब परिवार की हो तो उसकी सुन्दरता इस समाज के लिए कैसी होगी, उस परिवार के लिए कैसी होगी और स्वयं के लिए कैसी होगी-इसके अनेक आयाम हो सकते हैं। लड़की का ऐसा होना मोहल्ले की गतिविधियों को बढ़ावा देता है। वह ठेठ भारतीय मोहल्ला है, इसीलिए कहा गया कि इस कहानी का यथार्थ भिन्न है। वह मोहल्ला कैसा है और उसका प्रभाव क्या पड़ता है-

'मोहल्ला ऐसा है कि लोग 12-13 साल की बच्ची को घूर-घूरकर जवान बना देते हैं। वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समझने लगती है कि कहाँ घूरा जा रहा है। वह उन अंगों पर ध्यान देने लगती है। ब्लाउज को ऊंचा करने लगती है। नीचे कपड़ा रख लेती है। कटाक्ष का अभ्यास करने लगती है। पल्लू कब खसकाना और कैसे खसकाना-यह अभ्यास करने लगती है। घूरने से शरीर बढ़ता है।'

रीतिकालीन कविता में अज्ञात यौवनाओं, नवयौवनाओं के अंगों के इज़ाफे पर विविध प्रकार से लिखा गया है। पाठक पर उसका असर अलग ढंग का पड़ता है। वहाँ सुंदरी की आर्थिक-सामाजिक दशा से कोई सरोकार नहीं। हर स्थिति में वह आनंद लेने-देने की चीज़ है। लेकिन जब परसाई लिखते हैं- 'घूरने से शरीर बढ़ता है', तो यह यथार्थ की धार से उत्पन्न वाक्य है। यह आनंदित करने वाला नहीं, मनुष्य की बदचलनी के प्रभाव से उत्पन्न वाक्य है। शायद आज भी वे स्थितियाँ बनी हुई हैं, जिनमें मानव-समाज 'नर' और 'मादा' में विभाजित हो जाता है। इसीलिए मोहल्ले के लोग 12-13 साल की बच्ची को घूर-घूरकर जवान बना देते हैं।

परसाई स्त्री और पुरुष समाज को उस तरह विभाजित नहीं करते, जिस तरह आजकल के अनेक नारीवादी करते हैं। जैसे पुरुषों में एक ही तरह की मनोवृत्ति वाले पुरुष नहीं होते, वैसे ही स्त्रियों में भी सभी स्त्रियाँ एक-सी नहीं होतीं। परसाई अनेक तरह की स्त्रियों का चित्रण करते हैं। उनकी दृष्टि में स्त्री होना, हर स्थिति में नैतिक-आदर्शवादी होना नहीं है। 'घेरे के भीतर' कहानी का विश्लेषण करते समय हम इसकी ओर संकेत कर चुके हैं। 'एक लड़की: पाँच दीवाने' कहानी में भी परसाई, ऐसी स्त्रियों का उल्लेख करते हैं, जो घूरे जाने या देखे जाने पर प्रतिक्रियास्वरूप लॉकेट हाथ में लेकर उसे हिलाने लगती है, लॉकेट न होने पर साड़ी के पल्ले को अंगुली पर लपेटने लगती है, स्वेटर के दो-चार खाने ग़लत बुन देती हैं या कोई-कोई चलतू तो साफ कह देती हैं-आज तो आपसे ही आइसक्रीम खायेंगे। लेकिन यह कहानी इन स्त्रियों की कहानी नहीं, लड़की की है, मोहल्ले की है और पांच दीवानों की है-

'लड़की को बाकी घूरने वाले अब हताश होकर कहीं और घूर रहे हैं। अब कुल पाँच दीवाने बचे हैं, जो सामने बैठते या चक्कर लगाते हैं। चक्कर लगाता प्रेमी बैठे प्रेमी से सवाया पड़ता है, क्योंकि वह मेहनत करता है। फिर परम्परा से कूचे की खाक छानता चला आ रहा है। लड़की अठारहं साल की हो रही है, उभार पर है। छज्जे पर आकर देखने लगती है, तो उपस्थित दीवाना समझता है कि मेरे ही लिए खड़ी है और मुझे ही देख रही है। पाँचों दीवाने एक साथ सिर्फ शाम को होते हैं, क्योंकि वे दिन में काम पर जाते हैं। दिन में जो हाजिर होता है, वह छज्जा देखता रहता है, आँखें मिलाता है, हावभाव करता है।'

'मोहल्ले में लड़की को घूरने वाले बहुत हैं, लेकिन अब पाँच बचे हैं।' 'बहुत' अमूर्त होता है और 'निश्चित' मूर्त। इसीलिए परसाई पाँच की बात करते हैं। वैसे ये पांच अपने हाव-भाव और अनुभवों से बहुतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके अनुभवों से कहानी स्वाभाविक बनी है। परसाई की कहानियों में स्थिति और पात्र विशिष्टता से युक्त है। यह विशिष्टता साहित्य की अपनी विशिष्टिता है, जो साधारणीकरण का आधार है।

परसाई की किसी एक कहानी में इतने पात्र कम ही मिलेंगे, जितने 'एक लड़की: पाँच दीवाने' में हैं। परसाई एक कहानी में प्राय: एक ही पात्र को लेकर उसकी अनेक परिस्थितियों-मनोवैज्ञानिक दशाओं का चित्रण करते हैं। 'रानी नागफनी की कहानी' और 'तट की खोज' को छोड़ दें तो यह कहानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परसाई की सबसे लंबी कहानी है। यह कहानी सोलह पृष्ठों की है। आकार में लगभग उतनी ही, जितनी गोर्की की कहानी- '26 आदमी और एक लड़की'। गोर्की की कहानी में 26 आदमियों की मार्मिक त्रासदी एक साथ अभिव्यक्त हुई है। परसाई ने पाँच दीवानों का एक-एक करके रेखाचित्र, कहानी तथा व्यंग्य के मेल से ऐसा चित्र खींचा है कि ये पाँचों दीवाने हमें चलते-फिरते हरकतें करते नज़र आते हैं। ये हमारे देखे हुए लगते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि परसाई अपनी अनेक अन्य कहानियों की तरह इस कहानी में भी भूतकाल की नहीं, वर्तमान की कथा कहते हैं, गोर्की की कहानी में 'था' या 'थे' पर बल है और परसाई की कहानी में 'है' पर। परसाई की कहानी की शैली भी भिन्न है। शायद लंबी कहानी लिखते समय परसाई ज़रूरत के अनुसार कहानी को उपशीर्षकों में विभाजित कर देते हैं। 'रानी नागफनी की कहानी' में उन्होंने घटनाओं के आधार पर उपशीर्षक रखे हैं। इसमें पुरानी शैली की पैरोडी है, जो इसकी व्यंग्यात्मकता के लिए अनिवार्य है। 'तट की खोज' को भी 'शीला' और 'मनोहर' में बाँटा गया है। 'एक लड़की: पाँच दीवाने' में उपर्युक्त लंबी कहानियों और अन्य छोटी कहानियों की शैलियों का संयोग है। इस कहानी को 'दीवाना नम्बर-1', 'दीवाना नम्बर-2' ,'दीवाना नम्बर-3, 'दीवाना नम्बर-4', 'दीवाना नम्बर-5' 'एक नैतिकतावादी', 'लड़की' और 'हम जानते थे' उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है, जो लोग कहानी को इस तरह से बाँटकर, इसी में नयापन मानते हैं, वे इस शैली के पुरानेपन पर ध्यान दें। इन उपशीर्षकों में पात्रों के अलग-अलग रेखाचित्र अलग-अलग मनोविज्ञान और उन पर परसाई की टिप्पणियाँ हैं। इस तरह से यह कहानी परसाई की उन कहानियों के मेल में भी हैं, जहाँ कोई व्यक्ति-चित्र प्रमुख होता है। यहाँ सभी दीवानों के आकर्षण का केन्द्र लड़की है, इसलिए यह एक लड़की और पाँच दीवाने की कहानी है।

इस कहानी में लड़की और पाँच दीवानों के अतिरिक्त अनेक तरह की स्त्रियों, नैतिकतावादियों, शराबियों, सब्जीवालों का प्रतिनिधित्व है, उनके हाव-भाव हैं, उनकी सकर्मता-अकर्मता है।

पाँच दीवानों को देखने से पहले, इस कहानी की उस 'लोकेशन' को देखें-जहाँ यह कहानी घटित हो रही है। परसाई की कहानियों में पात्रों के साथ 'लोकेशन' भी विशिष्ट होती है यानी मूर्त। इन कहानियों में स्थितियाँ पात्रों को आकार देती हैं और पात्र स्थितियों को। मोहल्ले की विशेषता हम देख चुके हैं, आगे भी देखेंगे। यहाँ कहानी से एक अंश देखें-

'सामने एक अधेड़ जनरल मर्चेण्ट की दुकान है। नीचे क्रॉकरी की। क्रॉकरी वाला जवान है, मगर उसकी मुसीबत यह है कि वह छज्जा सिर के ऊपर पड़ता है। जनरल मर्चेण्ट के बगल में किताबों की दुकान है, जिसका मालिक 40 साल का खूबसूरत आदमी है। ठीक सामने के दो कमरे के मकान में एक जवान आदमी रहता है, जो बीमा कम्पनी में काम करता है और 5-6 सौ से ऊपर ही कमा लेता है। यह 3-4 घण्टे ही बाहर रहता है। बाकी समय घर में ही काटता है। क्वाँरा है। घर के सामने एक हलवाई की दुकान है। 50 पर पहुंचता होगा, पर वह भी दीवाना है।'

पाँचों दीवाने अपनी-अपनी स्थितियों के अनुसार 'प्रेम' को बरतते हैं। इनकी स्थितियों के अनुसार इनका आचरण है। इस आचरण से इनका चरित्र उभरता है। कहानी को कहने के ढंग से भी इनका चरित्र उभरता है, क्योंकि परसाई निरपेक्ष कहानीकार नहीं है। उनकी वैचारिकता के आग्रह से कुछ सूक्ति-कथन या टिप्पणियाँ निकलती हैं, जो पाठक की समझ को विकसित करती हैं। इन टिप्पणियों से परसाई का व्यक्तित्व भी उभरता है और व्यक्तिगत जीवन में उनकी पसंद-नापसंद का भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पता लगता है।

दीवाने नम्बर-1 को कुल 3-4 घंटे का काम है। उसके बाद यह सामने वाली जनरल मर्चेंट की दुकान पर आकर बैठ जाता है। यह आर्थिक कठिनाई में रहता है। इस कठिनाई के कारण यह करुणा उपजाकर प्रेम चाहता है-

'इसने दाढ़ी बना ली है। दाढ़ी अलग-अलग तरह की होती है-प्रेमी की दाढ़ी अलग, मुल्ला की अलग और मुफलिस की अलग। इसने प्रेमी की दाढ़ी बढ़ा ली है, 'ट्रिम' करवाता है। दाढ़ी दीन भी होती है और रोबदार भी। यह दाढ़ी वाले के व्यक्तित्व और आँखों भाव से मालूम हो जाता है। कुछ दाढ़ियाँ क्षमा-याचना करती मालूम होती हैं। इस प्रेमी का विश्वास है कि दाढ़ी बढ़ाकर आँखों में भिखारीपन लेकर औरत का सामना करो तो वह आकर्षित हो जाती है। यह दाढ़ी और दीनता लिये कभी दुकान पर बैठकर छज्जा देखता रहता है या फिर सामने की सड़क पर टहलता है।

भावों-मनोविकारों का भी आरोह-अवरोह होता है। दूसरों से बहुत अपेक्षा करने के कारण व्यक्ति बहुत दयनीय हो जाता है और अपने को निरंतर गिराता चला जाता है। इस दीवाने ने अपने को भिखारी बना लिया है। भिखारीपन में कभी-कभी यह भी होता है कि देने वाले की स्थिति से लाभ उठाने में चूक नहीं की जाती। लड़की गरीब की है। सारा दिन घर में रहकर काम करती है। कभी साँस लेने के लिए छज्जे पर आती है, तो दीवाना उससे भी लाभ उठाना चाहता है-

'यह प्रेमी सिर्फ़ देखता है। वह छज्जे पर ऑक्सीजन लेने आती है, तो दाढ़ी वाला समझता है कि वह उसी को देखने आयी है और दीन हो जाता है। वह करुणा में से प्रेम निकालना चाहता है। करुणा में से प्रेम निकलता भी है। गाँव की चलतू औरत कहती है-इत्ते बड़े-बड़े आदमी के लड़के और मेरे गोंड़ (पाँव) पड़ें। मेरा तो जी पसीज जाय है। नहीं करते नहीं बनै।'

'वह छज्जे पर ऑक्सीजन लेने आती है...।'- लड़की की स्थिति को देखते हुए यह एक मार्मिक वाक्य है। इस स्थिति में भी, दयनीय बनकर उससे प्रेम की माँग करना उस व्यंग्य तक जाता है, जो इस उद्धरण की अंतिम पंक्षियों में है।

दीवाना नम्बर-2 क्रॉकरी वाला, 30 साल का जवान, गोरा, देखने में अच्छा है। पैसे के बल पर दाँव-पेंच करता है। पैसे उधार देता है। उधार लेने लड़की का बाप आता है। चाहता है कि लड़की आये। पर नहीं आती। इसकी दुकान लड़की के घर के छज्जे के नीचे है, इसलिए उसे देख नहीं सकता। पीछे का चक्कर भी लगाता है, लेकिन देख पाने में असफल रहता है। मज़बूरी में पुस्तक प्रेमी हो गया। सामने की दुकान पर एकाध घंटे बैठता है और मुआवजे के रूप में गुलशन नंदा की कोई किताब खरीद लाता है।

इसने एक सब्जी के ठेले के माध्यम से प्रेम-प्रदर्शन का तरीका निकाला। सब्जी वाले से कहा कि यहाँ आकर सब्जी बेचा करो। उसे उम्मीद थी कि लड़की सब्जी खरीदने नीचे आयेगी। वह आयी भी, उसने पूछा-

आलू क्या भाव दिये?।

इतने में दीवाना, क्रॉकरी के ग्राहक को छोड़कर ठेले के पास आ गया। प्रेम में बड़ा त्याग करना पड़ता है। ग्राहक खोना पड़ता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ठेले वाले से कहा- ठीक भाव से देना। और लड़की से आँखें मिलाने लगा।

लड़की ने कहा-पाव किलो आलू दे दो। सब्जी वाला निराश हुआ।

क्रॉकरी वाला नैतिक संकट में आ गया।

उसने कहा-ए, एक किलो दे दो। बाकी पैसे कल ले जाना।'

'पाव किलो आलू दे देना।' लड़की की आर्थिक स्थिति को व्यंजित करता है। यह स्थिति 'वह छज्जे पर ऑक्सीजन लेने आती है' से मिलती-जुलती है। इस मार्मिकता को दीवाने नहीं समझते, परसाई समझते हैं। ये वाक्य दीवानों की दीवानगी को तिरस्कृत करते हुए से लगते हैं।

दीवानों की इस दाँव-पेंच की प्रक्रिया में लड़की का विकास हो रहा है। परसाई इस स्थिति को देखते हैं और टिप्पणी करते हैं-

'दीवाने अपने बरताव से लड़की को चतुर बनाये दे रहे हैं। भोली लड़की सुविधा की होती है। उसे पटाना आसान होता है। पर ये दीवाने उसे काइयाँ बना रहे हैं। यह इन्हीं के हित के विरुद्ध जा रहा है। अब वह लड़की आसान नहीं रही।'

दीवाना नम्बर-3 का वर्णन अद्‌भुत व्यक्तिचित्र है। इसके प्रति अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार ने सीधा रास्ता चुना है। यह दीवाना सामने वाला हलवाई है। निहायत गन्दी चड्डी पहने और मैल से काली बनियान पहनकर भट्टी के सामने सबेरे बैठ जाता है। दाढ़ी खिचड़ी है और कई दिन बनाता नहीं है। दाँत पीले, नाक आलू-बण्डा की तरह है। पचास की उम्र का है, तीस बताता है। इसकी हरकतें देखिये-

'यह विकट दीवाना है। छज्जे की तरफ़ देखते हुए कड़ाही में चमचा चलाता है। जलेबी जल भी जाती है। कभी कच्चे-कच्चे आलू-बण्डे निकाल लेता है। तेल खाली जलता रहता है और वह छज्जे पर लड़की को देखता रहता है। फिर उसे जलेबी दिखाकर अपनी पीले दाँतों से हँसता है। समझता है, गरीब की लड़की है, आकर जलेबी ले जायेगी। पर वह नहीं आती।'

इसके साथ ऑक्सीजन वाले और पाव किलो आलू वाले प्रसंग को याद कीजिए। पिछले दीवानों को लड़की की मार्मिक स्थिति से सरोकार नहीं। यह दीवाना जानता है कि लड़की गरीब की है, उसके लिए जलेबी खाना बड़ी बात है। यह जलेबी खिलाकर 'प्रेम' प्राप्त करना चाहता है। कहानी में बाकी दीवानों के प्रति घृणा नहीं उपजती, इस हलवाई के प्रति उपजती है। एक दिन यह छोटी लड़की को जलेबी दे देता है और कहता है कि सब लोग बाँटकर खाना। परसाई ने लिखा-

'उसका मतलब था, वह मेहबूबा भी खा ले। पर मेहबूबा ने छोटी को डाँट दिया-फिर उससे जलेबी लेगी, तो पिट जायेगी।'

'मेहबूबा' शब्द गन्दी चड्डी, मैली बनियान, पीले दाँत, आलू-बण्डा सी नाक वाले हलवाई के भ्रम पर व्यंग्य है। दीवानों में से यही है। जिसे लड़की नापसंद करती है। उसकी जलेबियाँ नहीं खाना चाहती। पर यह दीवाना ऐसा है कि, फिर भी पीले दाँत निकाले और नथुने फैलाए छज्जे की तरफ देखता रहता है-

'जब वह छज्जे पर आती है, हलवाई पीले दाँत निकालकर नथुने फैलाकर साँड़ की तरह दूर से सूँघता है कि तैयार हुई कि नहीं।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परसाई की अनेक रचनाओं में घृणा की अभिव्यक्ति हुई है, लेकिन जितनी घृणा यहां है, उतनी शायद कहीं नहीं है। हलवाई एक ऐसा 'दीवाना' है जो नर रूप में साँड़ है और 'मादा' को सूँघता फिरता है। यह अभिव्यक्ति मनुष्य को कुत्ता, गधा आदि कह देने की अभिव्यक्ति से भिन्न है। साथ ही यहाँ पर मानवीकरण से विपरीत स्थिति है। इसके बारे में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है, 'यह वाक्य बिलकुल मंटो जैसा माँसाहारी है, मानवीकरण का उल्टा साँड़ीकरण का उदाहरण है। अधेड़ पीले दाँत वाले, चड्डी पहने जलेबी छानने वाले की प्रेम चेष्टाएँ समझेंगे रचनाकार, तब ऐसे मौलिक रूपक गढ़ सकेंगे।'

दीवाना नम्बर-4 पैसे वाले का लड़का है। परसाई ने इस बारे में लिखा है कि, 'यह खिलाड़ी है। कई जगह खेलता है।' चेहरे पर चेचक के दाग़ हैं, इसलिए शाम को आता है, ताकि चेचक के दाग़ छिप जाएँ और खूबसूरत लगे। अच्छे कपड़े पहनता है और चेन कुरते के बाहर रखता है। यह बाकी दीवानों से ऊपर के वर्ग का है, इसलिए इसका आना उन्हें पसंद नहीं। छज्जे पर पसीना सुखाने आयी लड़की को यह सोने की चेन से बाँधकर खींचना चाहता है। इस दीवाने का चित्रण करते हुए लड़की के विषय में एक वाक्य दोहराया गया है- 'पर वह चूल्हा फूँकती है।' यानी इस दीवाने की शेखियों, पैसे, दीवानगी, दैवी उदारता और लड़की के शौक पर चूल्हा अर्थात् लड़की के जीवन की अनिवार्यता भारी पड़ती है। दीवाना ज़ोर से कहता है-

'अरे, हज़ारों रुपये फूंक दिये हैं, यहाँ तो पैसे को मिट्टी समझते हैं। ज़रूरतमंद हो और माँगे, तो हज़ार-दो हजार दे देते हैं। और भूल जाते हैं।

पर लड़की इसकी यह दैवी उदारता सुन नहीं पाती, क्योंकि रोटी बनाती होती है।'

कहानी के इस अंश में भिन्न स्थितियों वाले पात्रों, उनकी मानसिकताओं-मनोविज्ञान की आपसी टकराहट है और उससे अभिव्यक्त सत्य का चित्रण है। इस सत्य के पीछे विचारधारा भी काम कर रही है।

दीवाना नम्बर-5 अलग ही व्यक्तित्व है। कहानी में सबसे अधिक इसी पर लिखा गया है, क्योंकि यह '100 फीसदी दीवाना है।' अकेले ज़िंदगी काटने वाला, हर स्त्री पर मोहित होने वाला, अपने आचरण से हर छह महीने में मकान बदलने वाला। इस पात्र के माध्यम से परसाई ने मोहल्ले में रहने वाले अनेक तरह के लोगों की हरकतों पर भी अपनी पकड़ का परिचय दिया है। परसाई स्वयं को पात्र के रूप रखकर दूसरे पात्रों से बातचीत करते हैं, अपनी काइयाँ, भेदक दृष्टि से उनकी समस्याएँ सुलझाते या उनसे मज़ा लेते हैं। स्त्री-प्रसंग में पड़ने के बाद दीवाना नम्बर-5 को उन्होंने पिटने से बचने का उपाय बताया। इस दीवाने का चित्रण करते समय परसाई, 'लड़की नहीं तो माँ ही हाथ लग जाय।', 'ऐसे में एक भी स्त्री हाथ नहीं पड़ती।' जैसी भाषा का प्रयोग करते हैं, जो इस चरित्र के लक्षण बताती है। ऐसा दीवाना लड़की को देखते ही उस पर मोहित हो जाता है। उससे शादी करना चाहता है। बिलकुल डूबा है। लड़की भी अनुकूल लगती है। वह इसी की तरफ़ ज़्यादा ध्यान देती है।

लेकिन इस दीवाने के प्रसंग में भी यह वाक्य पुनः आता है-

'दीवानों ने खुद एक सीधी लड़की को जो सहज ही फँसती, काइयाँ बना दिया है और अपना ही नुकसान कर लिया है।'

इस दीवाने के संदर्भ में भी यह वाक्य क्यों आया? इसका कारण है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'देखा-देखी तो बहुत हो चुकी। निकटता कैसी हो? प्रेमी बड़ा आविष्कारक होता है। लड़की का बाप शराब-प्रेमी है। इतवार की एक शाम उसने उसे बुलाया-मिसिरजी, आइए न। यहीं बैठें। मिसिरजी आकर बैठ गये।

प्रेमी ने ठर्रे का अद्धा खोल लिया और चालू हो गया। मिसिरजी जब आधी से ज्यादा पी गये तो प्रेमी ने कहा-आपको लड़की की शादी भी तो करना है। मिसिरजी ने झोंकते हुए कहा-मुझे क्या चिंता? तुम जैसा दामाद किस... वाले को मिलेगा? तुम तो मेरे दामाद ही हो गये। दुनिया कुछ भी कहे। सबकी माँ की...

उसने प्रेमी को गले लगा लिया।

प्रेमी को रात-भर नींद नहीं आयी।

सुबह मिसिरजी घर से निकले तो प्रेमी ने पुकारा- मिसिरजी, ज़रा सुनिए तो।

मिसिरजी ने चलते-चलते कहा-ड्यूटी का टाइम हो रहा है, फिर मिलूँगा।

उनका नशा उतर गया था।'

यानी कोई दीवाना करुणा के बल पर, कोई उधार देकर, सोने की चेन दिखाकर, कोई जलेबी खिलाकर लड़की का ध्यान आकर्षित करना चाहता है। लड़की सबकी हरकतें देखते हुए समझदार हो रही है। यह पाँचवाँ दीवाना उन सबसे अलग है, शादी करना चाहता है, लेकिन तरीका ग़लत चुनता है। संभावित ससुर को शराब के बल पर अनुकूल करना चाहता है। यह तरीका एक जाना-पहचाना तरीका है और इसे सब समझते हैं। लड़की का पिता शराब का नशा टूटने पर सोचता ज़रूर होगा कि संभावित दामाद शराबी है। इस कहानी में दीवाना या प्रेमी होने का अर्थ स्पष्ट है। पाँचों दीवानों के आधार पर जिस तरह से कहानी को उपशीर्षकों में बाँटा गया है, उनका व्यंग्य भी स्पष्ट है। इनका वर्णन करते समय भी यह प्रवृत्ति मिलती है। एक बात और कहानी का लेखक न तो इन दीवानों के पक्ष में है और न ही उन 'नैतिकतावादियों' के पक्ष में जो ऐसी गतिविधियों पर केवल चिंता प्रकट करते हैं। परसाई के अनुसार वे केवल इसलिए चिंता प्रकट करते हैं कि खुद कुल मानसिक स्थितियों, सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों में बँधे हैं। ऐसे लोगों को छेड़ने में परसाई को विशेष रूप से आनंद आता है। इस कहानी में एक उपशीर्षक है- 'एक नैतिकतावादी'। यह वही पुस्तक-विक्रेता है। सीधा, खूबसूरत। इसके पत्नी, तीन बच्चे हैं। इसके लिए दुनिया में दूसरी और कोई औरत नहीं है। इसे मोहल्ले की बड़ी चिंता है, जो चल रहा है, उसके प्रति बड़ा असंतोष है। इस छेड़ते हुए 'मैं' (परसाई) कहता है-

'मैंने कहा-धर्मग्रन्थ इस मामले में बहुत छूट देते हैं। देखो, पत्नीव्रत से पतिव्रत धर्म बड़ा होता है। पर तुलसीदास ने कहा है, उत्तम नारी के बारे में-

उत्तम कर अस बस मन माहीं,
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।

अर्थात् उत्तम स्त्री वह है जिसके लिए सपने में भी कोई पुरुष पराया नहीं है-सब अपने ही हैं।'

यह केवल चुहल ही नहीं है, स्वातंत्र्योत्तर भारत में शब्दों, विचारधाराओं, महान् पंक्तियों के बदलते हुए अर्थों का उद्घाटन भी है। इसी कहानी में एक जगह 'अछूतोद्धार' और 'गांधीभक्त' शब्द आए हैं। मैं दीवाना नम्बर-पाँच को गांधीजी की शिक्षा पर चलने के लिए कहता है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'उन्होंने पूछा-गाँधीजी ने इस 'सेक्स' के मामले में क्या सिखाया है, सिवा ब्रह्मचर्य के ?

मैंने कहा- नहीं, उन्होंने अछूतोद्धार भी सिखाया है। 1-2 रुपयों में अछूतोद्धार कर लिया करो।

वह गाँधी भक्त हो गये।'

यह दीवाना शराब पीता है, लेकिन ब्राह्मण है, पास में पैसे हैं और वह लड़की से शादी करना चाहता है। इस दीवाने को पिता भी देख रहा है, लड़की भी और लड़की की माँ भी-ये सब ताड़ रहे हैं, खासतौर से लड़की की माँ-

'लड़की की माँ चतुर है। वह सब समझ रही है।'

लड़की की माँ चतुर है, इसलिए घर में आटा खत्म होने पर छोटी लड़की को इस दीवाने के पास आटा लेने भेजती है। लड़की की माँ जानती है कि दीवाना मना कर ही नहीं सकता। यह निम्नमध्यमवर्गीय चालाकी है, जिसके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता। इस क्षेत्र में हिन्दी के तीन रचनाकार 'अद्वितीय' है- प्रेमचंद, अमरकांत और परसाई।

दीवाने ने दो किलो आटा छोटी लड़की को दे दिया। मगर उसके जाने के बाद डायरी निकालकर उसके नाम दो किलो आटा और उसकी कीमत लिख ली। इसके बारे में परसाई ने लिखा-

'मुझे ऐसे आदर्श प्रेमी बड़े अच्छे लगते हैं जो प्राण देने को तैयार हैं, मगर भूखी प्रेमिका को जो आटा देते हैं, उसकी कीमत उसके खाते में लिख लेते हैं। प्राण की कोई कीमत है ? बाजार में कौन खरीदता है प्राण ? आटा फिर भी एक किलो डेढ़ रुपये का होता है। हिसाब प्रेम में जरूर होता है। कहीं प्रेम में फल नहीं आये या शादी न हुई तो कम-से-कम हिसाब तो रिकार्ड में रहेगा।'

अब इस प्रेमी के घर से लड़की के घर निरंतर कुछ-न-कुछ जाने लगा है। मिसिरजी 'एरीअर्स' मिलने पर सब चुकता करने की बात करते हैं और दीवाना प्रेम के 'एरीअर्स' बढ़ा रहा है। वह चाहता है कि किसी तरह लड़की के घर जाने का सिलसिला शुरू हो। आखिर एक दिन दोपहर के भोजन का न्यौता मिला। इस न्यौते को सुनकर प्रेमी सन्न रह गया। उसकी मन:स्थिति का वर्णन इस प्रकार है-

'दोपहर के खाने को तीन घंटे थे। इतना समय कैसे काटे ? क्या सिनेमा का मेटिनी शो देख आये ? खुशी से अर्द्धविक्षिप्त हो गया। मन को लगाये रखने के लिए सामान सँभालने लगा। उसमें भी मन नहीं लगा। सड़क पर निकल पड़ा। चौराहे तक गया। बगल की दुकान से पान खाया। लौटा तो फिर पान खाया। फिर दूसरे चौराहे तक गया। इस बार इधर के पान वालों से पान खाया। फिर दूसरे चौराहे की तरफ गया और फिर पान खाया। पानवालों ने कहा-आज तिवारीजी, पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट में पान खा रहे हैं। क्या बात है ? वह दोनों चौराहों तक छ: बार जा चुका था और 25 पान खा चुका था। पता नहीं पानों का हिसाब उनके प्रेमिका के खाते में लिखा या नहीं। फिर थककर बैठ गया और 'बच्चन' के गीत पढ़ने लगा- 'आज न सोऊँगा, न सोने दूँगा तुमको हे मनभीने!' कई बार गाया।'

लड़की का परिवार एक तो इसे जाँचना चाहता है, इसलिए लड़की की माँ रोजाना खाना खाने का आग्रह करती है। दूसरा इसका एक लाभ यह भी है कि वह साठ रुपये महीने पर खाने के लिए तैयार होता है। इस परिवार में छह-सात आदमी का खाना वैसे भी बनता है। दाल में थोड़ा पानी ज़्यादा डाल दो और सब्जी में भी, तो सिर्फ़ चार-पाँच रोटियाँ की ज़रूरत तो है। साठ रुपये ग़रीब परिवार को बहुत मदद है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इससे बाकी दीवानों की दुनिया में हलचल मच गया–

'साले ने वहाँ रोटी खाना शुरू कर दिया। इसे पीटकर मोहल्ले से भगाना पड़ेगा।' पर इस दीवाने को बाकी दीवानों से कोई मतलब नहीं रह गया। जो उपलब्धि हुई उससे इसका छंद ही बदल गया–

'प्रेमी दोनों टाइम आसपास देखे बिना सीढ़ियां चढ़ जाता है।'

दीवाने का यह अनुभाव ध्यान देने योग्य है। अब वह विशिष्ट हो गया है। इसकी यह विशिष्टता बाकियों की ईर्ष्या का कारण बनती है, पर यह आसपास कुछ नहीं देखता।

इस कहानी में भी परसाई का व्यावहारिक और यथार्थ-बोध बहुत सक्रिय है। वे उन पात्रों के प्रति कभी भावुक नहीं होते जिनके पक्ष में खड़े होते हैं–इस बात का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। दीवानों के कारण सीधी लड़की चतुर बन रही है- यह स्वाभाविक स्थिति है। लड़की को चतुर बनाने का श्रेय दीवानों को ही है, पर लड़की की चतुरता दीवानों के पक्ष में नहीं विपक्ष में जाती है। दीवाने अपने काइयाँपन से लड़की को 'पटाना' चाहते हैं, उनकी हरकतों से लड़की भी काइयाँ हो रही है, लेकिन कहानी में उसका काइयाँपन उस तरह से व्यंग्य का कारण नहीं है, जैसे दीवानों का काइयाँपन। कहानी का रचनाकार लड़की की चतुरता की लगभग प्रशंसात्मक अभिव्यक्ति करता है। यह लड़की एक और ऐसा चरित्र है, जो परसाई द्वारा चित्रित सकर्मक, सकारात्मक चरित्रों में शामिल हो गई है। दीवाने को पहले खाना माँ परोसती थी, फिर बड़ी लड़की परोसने लगी–

'वह खाना कम और हाव-भाव ज़्यादा परोसती थी।'

इन दीवानों को लड़की के जीवन के संकट, उसके चूल्हा फूँकने से कोई सरोकार नहीं है। इस आखिरी दीवाने को भी खाने से अधिक उसके हाव-भाव की अपेक्षा है, लड़की भी खाना कम हाव-भाव ज़्यादा परोसती है। लड़की समझदार हो चुकी है, वह जानती है कि दीवाना यहां खाना खाने के लोभ से नहीं किसी और लोभ से आया है, इसलिए 'वह माँ की नज़र बचाकर पल्ला लापरवाही से खिसका ऊपर की चीज़ क्षण-भर को दिखा देती है।' इसके परिणामस्वरूप प्रेमी साठ रुपये के सत्तर रुपये कर देता है।

भोजन का यह सिलसिला तीन महीने चला, फिर एक दिन बंद हो गया। बंद होने का कारण खुद दीवाना था। दीवानों ने लड़की को चतुर बना दिया था। लड़की और उसके परिवार ने पाया कि यह तुनकमिजाज, उतावला और अस्थिर है। यह बारात में से भी लौट सकता है।

कहानी में 'लड़की' नामक उपशीर्षक के अंतर्गत लड़की की समझ को, उसकी इच्छाओं को विकसित होते दिखाया गया है। इस विकास को बार-बार उसके चतुर होने को कहकर सूचित किया गया है। भारतीय समाजों में लड़कियाँ अपने परिवेश से किस तरह सीखती हैं–इसे अभिव्यक्त करने में यह कहानी लासानी है। इस लड़की की ज़िंदगी कल तक क्या थी–

'गरीब आदमी की है। घर का सब काम करती है–रोटी बनाना, घर साफ करना, कपड़े धोना। सीधी, भोली लड़की। थोड़ी देर पढ़ने चली जाती थी। अभी-अभी उसने किसी तरह मैट्रिक पास किया है। उसे लगता था, यही उसकी जिन्दगी है।'

क्या वास्तव में यह ज़िंदगी है ? परसाई के नज़रिये से देखें तो ऐसा जीवन निरर्थक है। लेकिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस निरर्थकता में सार्थकता कैसे [illegible] कोई [illegible] दीवानों से रिक्त नहीं होता। इन दीवानों का बहुत बड़ा योगदान यह है कि वे लड़कियों को चतुर बना देते हैं। यह वक्तव्य दीवानों की प्रशंसा में नहीं दिया जा रहा, बल्कि एक सचाई है। इस कहानी में निम्नमध्यवर्गीय जीवन की जटिलता का चित्रण है। इस वर्ग में मानसिक विकास किन परिस्थितियों के बीच होता है, इसकी प्रक्रिया भी कहानी में व्यक्त हुई है। लड़की की कोई महत्त्वाकांक्षा, उसका कोई स्वप्न नहीं था- परसाई के लिए यह स्थिति स्वीकार करने योग्य नहीं। वे चाहते हैं कि कुछ ऐसा हो कि लड़की रोटी बनाने, घर साफ़ करने, कपड़े धोने के चौखटे से बाहर निकले। लेकिन इसके लिए कोई बना-बनाया समाधान काम नहीं आ सकता। न रचना में, न जीवन में। वह समाधान अविश्वनीय होगा। इसके लिए यथार्थ में कई रास्ते छिपे रहते हैं, ज़रूरत है इन्हें पहचानने की और विकसित करने की। परसाई यही करते हैं। ज़रूरी नहीं कि हर लड़की कहानी में व्यक्त रास्ते के ज़रिये समझदार हो, पर यह भी एक यथार्थवादी रास्ता है।

परसाई को उन लोगों से लगाव है जो प्रत्येक प्रकार की स्थिति का सामना करते हुए, अपने पराक्रम के बल पर उससे पार पा जाएँ। इसके लिए कोई बाहरी रास्ता अनुचित कल्पना है। लड़की को पाँच दीवानों का सामना करना पड़ गया, उसकी पारिवारिक स्थिति भी ऐसी है कि वह असहाय स्थिति में पड़ सकती है। पर इन स्थितियों को उसने अपने पक्ष में मोड़ दिया, बिना किसी शोर-शराबे के चुपचाप इन्हीं स्थितियों में उसके भीतर महत्त्वाकांक्षाएं जनम लेती हैं-

'पर दीवानों ने अपनी हरकतों से उसे भान करा दिया कि उसके पास रोट बनाने, कपड़े धोने और घर साफ करने के सिवा कुछ और भी है, जो घर के नहीं, बाहरवालों के काम का है। यों उम्र पाकर हर लड़की को यह बोध हो ही जाता है, पर इसे थोड़ा पहले ही दीवानों ने करा दिया। इसीलिए वह छज्जे पर बार-बार आकर घर के दमघोंट वातावरण से मुक्ति पाती रही और लगातार समझती रही कि वह क्या है, जो घर के नहीं, बाहर के काम का है।'

वास्तविक जीवन-संघर्षों को पहचानना भी रचनाकार का काम है। संघर्ष वही नहीं होता, जिसे प्रायः संघर्ष कहा जाता है। कुछ संघर्ष अपरिभाषित रह जाते हैं, लेकिन सचमुच के संघर्ष होते हैं। परसाई ऐसे संघर्षों को इनकी आंतरिकता के साथ पकड़ते हैं। उन्होंने संघर्ष के अनेक रूपों का चित्रण किया है। लड़की घर की भीतरी दशा में पिस रही है। वह बाहर की दुनिया की हक़ीकत भी देख रही है। उसके भीतर दोनों स्थितियों की टकराहट है। घर की ज़िंदगी के प्रति उसमें असंतोष उत्पन्न होता है-

'17 साल तक पहुंचते-पहुंचते वह समझ गयी कि गरीबी के कारण उसकी शादी होना कठिन है। उसका दम यहीं घुट जायेगा। या किसी ऐसे के गले मढ़ दी जायेगी, जहां वहा यहाँ से भी ज्यादा घुटे।'

उसे लगने लगता है कि उसमें भी कुछ ऐसा है जो घर के नहीं बाहर वालों के काम का है। लेकिन बाहर वाला अभी ऐसा, इन दीवानों में कोई नहीं मिला जो इस काम की चीज़ के योग्य हो। वे सब केवल चतुर-चालाक बनाने वाले हैं। केवल पाँचवें प्रेमी में कुछ अनुकूल लगा। मगर लड़की इतनी चतुर हो चुकी है कि उसकी अविश्वसनीयता भी समझ में आने लगी है। माता-पिता की आर्थिक स्थिति के कारण, उनके प्रति भी आश्वस्त नहीं। लड़की का व्यक्तित्व इन स्थितियों के संघात में विकसित होता है। किसी नारी पात्र का ऐसा पक्षधर विश्वसनीय चित्रण बड़े-बड़े नारीवादी लेखक भी नहीं कर पाते, जैसा परसाई ने इस कहानी में किया है। इस संदर्भ में कहानी का अंत भी विशिष्ट है। इस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंत 'हम जानते थे' का आरंभ भी बहुत नाटकीय है-

'मोहल्ले के लोग कहते हैं.... जो छज्जे पर खड़ी मर्दों को देखती है, वह ऐसा ही तो करेगी!

कुछ कहते हैं ठीक ही हुआ।

दीवाने कहते हैं.... साली छिनाल निकल गयी!

औरतें कहती हैं.... किसे पता था कि यह लड़की ऐसा करेगी।

क्या हुआ? पेट बढ़ गया? गर्भ गिरा दिया गया?

नहीं।'

इन पंक्तियों में जैसे पूरा मोहल्ला सक्रिय हो उठा है। पाँच वक्तव्यों में किसी भी मोहल्ले का, उसमें रहने वालों की मानसिकता का, किसी घटना के प्रति हर्ष, विषाद, निराशा, निरपेक्षता, जिज्ञासा, भविष्यवाणी, घोषणा की ऐसी अभिव्यक्ति दुर्लभ है। ये उक्तियाँ लड़की का नहीं मोहल्ले का परिचय देने के लिए लिखी गयी हैं। इन उक्तियों के बाद, इन पर लगाम लगाने वाला एक निषेधवाचक भी आता है। जो सकता है कि कहानी को पढ़ते समय हम उसकी उपेक्षा कर जाएँ, पर वह है महत्त्वपूर्ण, वह है-

'नहीं।'

यह 'नहीं' परसाई का लेखकीय हस्तक्षेप है। इस पर बल देकर पढ़ेंगे, तो ऐसा लगेगा मानो लेखक कहना चाह रहा हो कि बहुत हो चुका। बहुत कुछ ऐसा भी है जो तुम्हारी सोच से बाहर है, तुम्हारी सोच उसके लायक ही नहीं है, ज़रूरी नहीं कि जिसे तुम अनुचित मानो वह अनुचित हो ही। सुविधाजनक स्थितियों में रहने वाले, बने-बनाये ढर्रे पर जीने वाले उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर सकते, वह स्थितियों की सापेक्षता में होता है।

लड़की ने ऐसा क्या किया कि यह नाटकीय स्थिति उत्पन्न हुई? उसने वह किया जिसकी उम्मीद उससे किसी को नहीं थी, क्योंकि वह ग़रीब की लड़की थी। दीवानों को और लोगों को लगता है कि चालाकी करने का अधिकार केवल उन्हीं को है। वे नहीं समझ पाते कि उन्होंने खुद लड़की को अपने से अधिक चतुर बना दिया है। इस चतुरता ने लड़की के भीतर अपनी परिस्थितियों के प्रति असंतोष उत्पन्न किया, जो बहुत सकारात्मक है। एक दिन उसने अपनी माँ से नौकरी के लिए मैट्रिक का सर्टिफिकेट पेटी में से निकालने के लिए कहा। माँ खुश हुई कि सौ-सवा और घर में आयेंगे। इसके बाद लड़की की चतुरता खुलकर सामने आती है, वह अपने उत्कर्ष पर है। यह अंश यहां के लिए थोड़ा लंबा है, लेकिन जरूरी भी-

'फिर वह एकाएक हलवाई के पास गयी और बोली- चाचाजी, आज तो जलेबी खायेंगे।

'चाचाजी' सुनकर हलवाई खिन्न तो हुआ, पर पीले दाँत निकालकर *कहा-जितनी चाहो, खाओ, तुम्हारी ही तो दुकान है।*

उसने एक पुड़े में जलेबी बाँध दी। लड़की घर ले आयी।

माँ ने कहा-ये क्यों ले आयी?

लड़की ने कहा-माँ, आज मुझे नौकरी मिलेगी न, उसी खुशी में।

फिर दाढ़ी वाले प्रेमी को दो बाल्टियाँ देकर कहा-भैया, ज़रा, ये भरकर ऊपर रख देना। मेरी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तबियत ठीक नहीं है।

फिर क्रॉकरी वाले से कहा–मैं ज़रा एक काम से जा रही हूँ। भैया, ज़रा एक किलो आलू ऊपर भिजवा देना। अभी लौटकर पैसे दे दूँगी।

फिर प्रेमी नम्बर पाँच के पास गयी और बोली–मुझे पचास रुपये फौरन दे दो। बड़ी मुसीबत आ गयी है।

प्रेमी गद्गद हो गया। पहली बार घर आयी थी। उसने पचास रुपये फौरन दिये और उसका हाथ पकड़कर भीतर खीचते हुए बोला– एक बार तो पास आ जाओ।

लड़की ने कहा– नहीं, ये रुपये मैं माँ को देकर जल्दी आती हूँ। कहीं जाना मत। यहीं रहना।

वह घर गयी, प्रेमी नम्बर पाँच के दिये हुए साड़ी–ब्लाउज पहने। माँ से कहा.... मौसी के घर जा रही हूँ। मौसियाजी के मारफत ही नौकरी लगने वाली है।'

'मौसी का घर' कहानी में पहले भी आता है। यही एक घर है, जहाँ लड़की कभी–कभी जाती रही है। उसे वहाँ अच्छा लगता है। मौसी भी उसे चाहती है, उसकी सुंदरता, सुशीलता और भलेपन की प्रशंसक है और उसकी गरीबी से दुखी। वह चाहती है कि उसकी शादी हो जाए। मौसी का परिवार प्रतिष्ठित और प्रभावशाली है। उन लोगों ने एक लड़का तय कर रखा था। लड़के की माँ विधवा थी। लड़का बैंक में काम करता था। उसे लड़की पसंद थी। शादी का दिन तय हुआ। मैट्रिक का सर्टिफिकेट वह उम्र के सबूत के लिए ले गयी थी।

बैदिक रीति से विवाह घण्टे–भर में सम्पन्न हो गया।

दीवानों ने और मोहल्ले ने जो देखा वह यह था–

'4 घण्टे बाद लड़की लौटी, तो बढ़िया साड़ी और गहनें पहने थी। पीछे दो रिक्शों में सामान था। लड़की के साथ लड़का बैठा था। सास–ससुर के पाँव छूने आया था।

वे दोनों ऊपर गये। पिता ड्यूटी पर था। उसने लड़की की माँ के पाँव पर सिर रखा।

अचरज यह कि माँ को अचरज नहीं हुआ। लड़का लौट गया। विदाई बाद में होने की थी।'

इसके बाद एक वाक्य में समाया चित्र देखिए–

> *'लड़की छज्जे पर आयी, इतना लम्बा चौड़ा और गहरा सिन्दूर माँग में भरा था कि मील–भर से दिखता था।'*

मील–भर से दिखने वाला माँग का सिन्दूर दीवानों के लिए क्या था–यह कहने की ज़रूरत नहीं। वे कहते हैं– 'साली छिनाल निकल गयी!' अब तक ये दीवाने जो करते आये थे उसे यह पुरुष–प्रधान समाज परिभाषित नहीं करता। परसाई ने परंपरा का उपयोग किया और परिभाषित किया–साँड़ीकरण करके। कहानी की इस लड़की ने अपनी एक चालाकी से, रोज़–रोज़ चालाकी करने वालों को उनकी हैसियत बता दी।

परसाई की इस लंबी कहानी का अंत तेज़ी से घटित हुआ है। इस अंत की पृष्ठभूमि को, यानी लड़की के चालाक बनने को ज़्यादा विस्तार दिया गया है। लड़की अंत में, जिस तरह से अंतिम बार दीवानों से काम लेती है और मौसी द्वारा पक्के किये गये लड़के से शादी करती है–वह मनोरंजक है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थोड़ा प्रायोजित भी लगता है, लेकिन वह अविश्वसनीय नहीं। उसकी संभावना उस यथार्थ में ही है, जिसमें लड़की रह रही है। वैसे भी परसाई तटस्थ, उदासीन तथा विचारधाराविहीन लेखक नहीं हैं। वे सकारात्मक परिवर्तन के पक्षधर हैं। जहाँ इसकी ज़रा भी संभावना होती हैं, उभारने का पूरा प्रयास करते हैं। यह परिवर्तन उन लोगों के लिए होता है, जिन्हें इसकी सच्ची ज़रूरत होती है। श्रीलाल शुक्ल के अनुसार तो परसाई सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार ही इसलिए हैं कि उनके पास एक विचारधारा है। 'एक लड़की: पांच दीवाने' में भी लड़की के प्रति पक्षधरता विचारधारा ही है। ऐसी विचारधारा और पक्षधरता का विरोध कैसे किया जा सकता है। परसाई के मर्मज्ञ आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने माना है कि परसाई को शिक्षक का रोल पसंद है। वे यथार्थ की विसंगति से छटपटाते हैं, विषमता को दूर करने के लिए लिखते हैं, सक्रिय राजनीति में भाग लेते हैं, समाज-सुधार भी करते हैं। इससे रचनात्मकता क्षतिग्रस्त नहीं होती। 'एक लड़की: पाँच दीवाने' में लड़की द्वारा समाधान ढूँढने के विषय में उन्होंने लिखा लिखा कि, 'जब कथा के ताने-बाने में विषय यथार्थ रचनात्मक तौर पर रचा-बसा हो और उससे उबरने की मनोवांछित स्थिति की माँग खुद रचना करे तो आदर्श स्थिति आरोपित नहीं लगती। 'एक लड़की: पाँच दीवाने' के रचना-विधान में लड़की के प्रेम-विवाह का स्पेस है। परसाई अपने पात्रों को पीड़ा देकर आधुनिक या उत्तर आधुनिक कथाकार बनने वाले लेखक नहीं हैं।'

कहानी के अंतिम अंश का उल्लेख किये बिना हम परसाई की इस कहानी की प्रस्तुति का अंत नहीं कर सकते। यह अंश भी नाटकीय, चहल-पहल, भरा, मनोरंजक और हास्य की अभिव्यक्ति करने वाला है। लड़की लम्बा-चौड़ा और गहरा सिन्दूर माँग में भरे अपने घर के छज्जे पर खड़ी है-

'घर के सामने भीड़-सी लग गयी।
राहगीर पूछते-क्या बात है? कोई मौत हो गयी क्या?
दूसरे राहगीर ने कहा-हाँ, लगता है, कोई मौत हो गयी है।
तभी मोहल्ले के एक मसखरे ने कहा-एक नहीं, चार-पाँच मौतें हो गयी हैं।'

मोहल्ले का यह मसखरा कौन है? यह परसाई का ही प्रतिरूप है, जो अनेक अवसरों पर, अनेक रूपों में, हमारी स्थितियों में निहित को देखने-दिखाने और टिप्पणी करने के लिए उपस्थित रहता है। यहाँ पर वह दीवानों की हरकतों का पटाक्षेप करने के लिए और कहानी (या नाट्य रूपी कहानी?) के समापन के लिए मसखरे के रूप में उपस्थित होता है।

ऐसोशिएट प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग, अ.मु.वि.
अलीगढ़
मो.09412176567

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

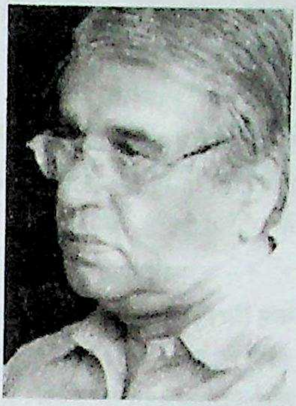

मधुरेश

कमला प्रसाद: काम की धुन में रमा आदमी

दिन, तारीख और महीने की बात छोड़िए। बस वे गर्मी के दिन थे- दिल्ली वाली तेज और कटखनी गर्मी। विश्वविद्यालय का नया सत्र शुरू ही हुआ था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अगस्त के आस-पास के दिन रहे होंगे। बारिश न होने से तब धूप और चमकीली और तीखी थी। उस गर्मी में पसीने और चिपचिपाहट की एक खास भूमिका होती है। इग्नू में पाठ्यक्रम समिति की कोई बैठक थी। मैनेजर पाण्डेय तब तक जे.एन.यू. के कैम्पस में न आकर उससे सटे बेर सराय वाले मकान में ही रह रहे थे। सुबह मीटिंग में उनके साथ ही गया था। कुछ समय सामान्य चर्चा में सब लोग साथ रहे, फिर अपने-अपने विषय के हिसाब से अलग-अलग टुकड़ों में बंट गए थे। तीसरे पहर को काम से फ़ुर्सत पाकर जब मैं बाहर निकला, आस-पास पाण्डेयजी को तलाश किया। उनके न मिलने पर ऑटो पकड़कर मैं घर चला आया। सोचा, शायद इसी तरह मुझे ढूंढ-ढॉढ कर वे भी पहुंच चुके होंगे। ज़ीने पर चढ़कर जब मैं ऊपर पहुंचा दरवाजा उनकी बेटी उर्मिला ने खोला जो तब वहीं थी। मुझे देखते ही उसकी हँसी बेसाख्ता फूट पड़ी। हँसी की उस रौ में भरसक उसे रोकने की असफल-सी कोशिश करते हुए वह कहने लगी... 'ताऊ जी कमला जी आई नहीं, आए थे...' उसकी बात समझने में मुझे काफी देर लगी। क़ायदे से वह तभी समझ में आई जब हँसी रुकने पर उसने ही पूरी बात बताई। कमला प्रसाद जी आए थे। पाण्डेय जी को पूछ रहे थे और उनके घर पर न होने से उससे यह कहकर चले गए थे- कह देना कमला जी आए थे। उर्मिला ने जब मेरे भी वहाँ होने की बात उन्हें बताई तो बोले, 'ठीक है कह देना शाम को नामवर जी के यहाँ मिलेंगे...'

एक लंबे-तगड़े, गोरे-चिट्टे भरे-पूरे आदमी की- स्त्री नाम के अनुरूप- कल्पना करके बाद में भी वह देर तक हँसती रही। जैसे-तैसे रुक-रुककर टुकड़ों में ही अपनी बात उसने पूरी की-कमला जी आई नहीं, आए थे।

उस दिन शाम को फिर नामवरजी के यहां भले ही कमला प्रसाद से पहली बार मिलना हुआ हो, लेकिन वह मिलना पहली बार मिलने जैसा लगा नहीं। ज्ञानरंजन के साथ वे वर्षों 'पहल' में रहे थे। 'पहल' में लिखने के आग्रह वाले पत्र या फिर 'पहल' के अंक और पुस्तिकाएँ अधिकतर ज्ञानरंजन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वारा लिखे गए नाम-पते वाले लिफाफे में ही आते थे, लेकिन बीच-बीच में कभी-कभार कमला प्रसाद का भी पत्र मिलता था। एक बड़े-से लिफाफे पर 'कमला प्रसाद' लिखकर, और लेखकों की तरह मैं उनके पत्र भी रख देता था। लेकिन मेरे बदायूँ रहते, बरेली में रखी गई ढेर सारी दुर्लभ किताबें, पत्रिकाएँ और खासतौर से लेखकों के पत्र सीलन और दीमक से बर्बाद हुए। उनमें कमला प्रसाद के पत्र भी थे। इनमें सबसे ज्यादा पत्र शैलेश मटियानी के थे जो पुट्ठे के एक डिब्बे में रखे थे। टॉड़ पर रख वह पूरा डिब्बा ही दीमक चाट गई। वे सचमुच एक किताब के लायक पत्र रहे होंगे, जैसे यशपाल और अश्क के पत्रों से किताबें बनीं।

कमला प्रसाद से न कैसी भी घनिष्ठता का दावा किया जा सकता है, न ही किसी अन्तरंगता का। कम मिलने-बैठने के अपने स्वभाव के कारण, सेमिनारों एवं गोष्ठियों में भी जाना न होने से, वैसे अवसर भी न के बराबर रहे। लेकिन एक-दूसरे के काम के बारे में हम लोग बखूबी जानते थे। कमला प्रसाद कोई स्टार आलोचक नहीं थे। लेकिन अपने आसपास निगाह दौड़ाने पर उनके जोड़ का एक ही आदमी दिखाई देता है- कुंवर पाल सिंह। कुंवर पाल सिंह की तरह कमला प्रसाद भी मुख्यत: संगठन के आदमी थे। संगठन को बनाने और चलाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। संगठन की तुलना में उनका अपना लिखना-पढ़ना गौण रहा। इन दोनों ने ही खुद जो और जैसा भी लिखा हो, उनका सबसे बड़ा काम दूसरों को लिखने की स्थितियाँ और सुविधाएं मुहैया कराना था। इन दोनों का ही एक लंबा और बड़ा छात्र-मित्र परिवार था। अपनी विचारधारा के कर्मठ और सक्षम लोगों को जोड़-बांध कर रखना और संगठन तथा विभाग में लाना, उनका ख़ास काम था। कमला प्रसाद उन लोगों में थे जिन्हें कुछ करने से अधिक सुख ख़ुद दूसरों से करवाने या उन्हें करते देखने पर मिलता है।

ऐसे अनेक अवसर थे, चाहने पर जब कमला प्रसाद किन्ना कर सकते थे और बोलचाल बंद करके मुँह फुलाकर बैठ सकते थे। लेकिन उन्होंने हमेशा संबंधों को बनाए रखा और संवाद कभी बंद नहीं हुआ। यशपाल के निधन के बाद जब लोकभारती प्रकाशन, हलाहाबाद से उन पर एक आलोचनात्मक चयन की योजना मेरे संपादन में बनी, सहयोगी लेखकों की सूची में स्वाभाविक रूप से वे भी शामिल थे। वैसे भी इस योजना में नामवर सिंह की विशिष्ट भूमिका थी। यशपाल के यात्रा-साहित्य पर लिखने के लिए वे मेरी दूसरी पसंद थे। मूल सूची में मैंने निर्मल वर्मा का नाम लिखा था। नामवर जी से बात होने पर उन्होंने सुझाव दिया कि निर्मल लिखेंगे-विखेंगे नहीं और किताब बेकार ही अटकी रहेगी। फिर कमला प्रसाद के नाम पर वे भी तत्काल सहमत हो गए। कमला प्रसाद को पत्र द्वारा इसकी सूचना दी गई। यह सन् 78 की बात है। कमला प्रसाद तब सतना में थे। इलाहाबाद उनका आना-जाना बना रहता था, मांगने पर आनंद ने मुझे यशपाल की किताबों की कुछ सीमित प्रतियाँ ही भिजवाई थीं। उनमें 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' नहीं थी। कमला प्रसाद के पास भी वह किताब नहीं थी। यशपाल के यात्रा साहित्य पर क़ायदे से कुछ ठीक-ठाक लिखने की बात उसे छोड़कर सोची भी नहीं जा सकती। मैंने उन्हें लिखा कि या तो वे इलाहाबाद में किसी पुराने लेखक साथी से उसे ले लें या फिर लोक भारती से ले लें, जो तब तक यशपाल साहित्य का एक मात्र प्रकाशक और वितरक बन चुका था। इसमें कोई दिक्कत भी नहीं थी। जो भी हो, उस किताब की व्यवस्था वे कर नहीं सके। इसके बाद उनका एक कार्ड मुझे मिला जो 26 फरवरी सन् 78 का लिखा है। तब वे सतना शासकीय महाविद्यालय में छात्रावास अधीक्षक भी थे। उनका पत्र इस प्रकार है:

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रिय भाई,

पत्र मिला। 15 फरवरी को दिल्ली गया था। सोचा कि 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' पुस्तक खोज लाऊँगा। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी नहीं मिली। पुस्तक मेले में भी नहीं थी। यशपाल का पूरा सेट मेरे पास है, पर यह नहीं। क्या करें। आप चाहें तो जिसके पास हो उससे उसी पुस्तक पर लिखा लें। यह लेख बिना उसके जाने दें या मुझे वह पुस्तक भेज दें। पढ़कर भेज दूँगा। या दोनों न जमें और लेख काम का न हो तो वापस कर दें। क्या फर्क पड़ता है ? पुस्तक कब तक दे रहे हैं प्रेस में ? किस प्रकाशन को भेजी जा रही है ?

'पहल' के अगले अंक की तैयारी चल रही है।

अपना ही, कमला प्रसाद

सारी सूचनाएं भिजवाने और किए गए प्रयत्नों के बावजूद उनका जो लेख मुझे मिला, वह 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' के बिना ही लिखा गया लेख था। चूंकि कोई और वैकल्पिक व्यवस्था तब संभव नहीं थी, संकलन में उनका वही लेख दिया गया। 'क्रांतिकारी यशपाल: एक समर्पित व्यक्तित्व' सन् 79 के अंत में आई। आज भी यशपाल के मूल्यांकन के लिए वह एक ज़रूरी और प्रामाणिक पुस्तक के रूप में स्वीकृत है। लेकिन उनके यात्रा-साहित्य पर वही आधा-अधूरा-सा लेख उसमें है।

इसके बाद उन्होंने स्वयं साहित्य अकादेमी के लिए यशपाल पर मोनोग्राफ (1984) लिखा। मैं तब साहित्य अकादेमी के लिए देवकी नंदन खत्री पर लिखने का अनुबंध कर चुका था। नामवर सिंह तब हिंदी सलाहाकार समिति के अध्यक्ष थे। स्वाभाविक है, इस काम के लिए कमला प्रसाद के नाम पर उनकी सहमति रही होगी। मुझे वह मोनोग्राफ छप जाने के बाद ही मिला। मैंने स्वयं ही उसे मंगवाया था। अपने मोनोग्राफ में लोक भारती वाली मेरी किताब का भरपूर उपयोग कमला प्रसाद ने किया है। जहाँ-तहाँ इसका उल्लेख भी उन्होंने किया है। लेकिन अपने मोनोग्राफ में वे भ्रमवश भगवती चरण बोहरा और भगवती चरण वर्मा को एक ही व्यक्ति समझ बैठते हैं। यह एक बड़ी गलती थी। चाहने पर मैं सीधे अकादेमी को भी लिख सकता था, ताकि उसमें सुधार करके पाठकों को सही और प्रामाणिक सूचना मिले, जो उनका अधिकार है। चूंकि इन पुस्तिकाओं का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में भी कराया जाता है, सूचना की प्रामाणिकता पर मेरा बल कुछ अधिक ही था। वैसे भी यह सूचना तो मेरी उस पुस्तक में ही थी जिसे उन्होंने आधार-सामग्री के तौर पर इस्तेमाल किया था। जो भी हो, मुझे स्वयं उनका पत्र पाकर हैरत हुई। मेरी बात का ज़रा भी बुरा न मानकर इस पर उन्होंने खेद जताया था। इस ध्यानाकर्षण के लिए मेरा आभार जताते हुए यह भी लिखा - लेकिन अब क्या हो सकता है ? अब तो जो होगा, अगले संस्करण में ही होगा।

एक और प्रसंग भी है जिससे पता चलता है कि संबंधों को वे कैसे निबाहते थे और किसी संगठन या पत्रिका को चलाने में क्या और कैसी दुश्वारियाँ आती हैं। कोई पंद्रह वर्ष पहले की बात होगी। 'साम्य' के संपादक विजय गुप्त के आग्रह पर मैंने एक लंबा लेख लिखा था। 'रामविलास शर्मा और उनका समालोचक'। वे रामविलास शर्मा पर एक विशेषांक निकालना चाहते थे और उस लेख को विशिष्ट लेख की तरह छापने की उनकी योजना थी। 'समालोचक' के प्रवेशांक के कवर और पहले पन्ने की फ़ोटो प्रतिलिपि भी उन्होंने मंगवाई थी। छोटी वैचारिक पत्रिकाओं के साथ जैसा आमतौर पर होता है, 'साम्य' के साथ भी वैसा ही हुआ। दो वर्ष वह लेख उनके यहाँ पड़ा रहा। विज्ञापन आदि न जुट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाने से अंक का निकलना टलता रहा। कोई दस साल बाद वह अंक कहीं अब जाकर निकला है। मैंने कमला प्रसाद से पूछकर और सारी अंतर्कथा उन्हें बताकर जैसे-तैसे वह लेख विजय गुप्त से वापस लेकर 'वसुधा' में भिजवा दिया। 'साम्य' की दो वर्ष की कैद के बाद वैसी ही अघोषित क़ैद का दौर 'वसुधा' में भी शुरू हुआ। कोई एक वर्ष प्रतीक्षा के बाद मैंने एक तल्ख़ चिट्ठी उन्हें लिखी। उसमें यह भी लिखा कि मैं बहुत दूर-दराज क्षेत्र में, अलग-थलग रहकर अपना काम करता हूँ। न किसी को लाभ पहुंचा पाने की स्थिति में हूँ, न ही हानि। इसीलिए शायद उपेक्षा और अनदेखी भी होती है। लेकिन इसे बर्दाश्त करने की आदत मुझे नहीं है। उस पत्र की अंतिम बात मुझे आज भी याद है। मैंने उन्हें लिखा था कि आप वापसी डाक से उसे लौटा दें ताकि उसके उपयोग की एक और कोशिश की जा सके। चार-पाँच दिन बाद ही उनकी एक लंबी चिट्ठी मुझे मिली। उसमें एक संपादक के रूप में उनकी परेशानियों का ज़िक्र था। 'वसुधा' उनके अकेले की पत्रिका न होकर एक बड़े परिवार की पत्रिका है। उसमें बहुत-सी चीज़ों का ध्यान रखना होता है। इधर उसके विशेषांकों के कारण भी सामान्य अंकों की सामग्री को आगे-पीछे करना पड़ा है। फिर उस लेख के प्रकाशन में विलम्ब के लिए क्षमा-याचना के भाव से, एक तरह से मेरे घाव पर मरहम लगाते हुए उन्होंने लिखा था- आपका लेख बहुत परिश्रमपूर्वक लिखा गया है, चाहता हूँ कि वह उसी के अनुरूप महत्ता के साथ छपे। उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि अब वह अगले ही अंक में आयेगा। फिर वह आया भी।

अभी डेढ़-दो वर्ष पहले एक दिन अचानक मूलचंद गौतम का फ़ोन आया-बरेली से ही। उन्होंने कहा, 'भाई साहब, कमला प्रसाद जी आए हैं... मेरे एक छात्र का पी-एच.डी. का वायवा है। वे आपसे बात करेंगे...' फिर कमला जी से फ़ोन पर लंबी बात हुई। उनका कहना था, 'बरेली आने पर आपसे मिले बिना चले जाने का कोई मतलब ही नहीं है। वायवा से निबट कर मैं आऊँगा...' मैंने उन्हें बताया भी कि यूनिवर्सिटी से मेरा घर बहुत दूर है। गलियों में पुरानी बस्ती के बीच मकान होने से गाड़ी-वाड़ी आने में दिक्कत होती है। लेकिन चूंकि गौतम उनके साथ थे, वे आसानी से आ जायेंगे। लेकिन सब कुछ तय हो जाने पर भी मुझे यक़ीन नहीं था कि वे सचमुच आयेंगे। उसी दिन अख़बार में यह सूचना भी मैंने पढ़ी थी कि शाम पांच बजे प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से आयोजित लेखकों की एक सभा में भी उन्हें बोलना था। जब फोन आया था, दोपहर के ग्यारह बज चुके थे। वायवा, लंच और फिर विश्वविद्यालय से मेरे घर की दूरी और उस पर गलियों का घना-पुरा जाल... मैं मान बैठा था कि उनकी सारी सदिच्छा के बावजूद उनका आना मुश्किल है। लेकिन मुझे चकित करते हुए वे आए।

कोई बारह-साढ़े बारह बजे उनका फ़ोन आया कि बस वे पहुंच रहे हैं और रास्ते में हैं। थोड़ी देर बाद ही मेरे कमरे में थे- मूलचंद गौतम और प्रेम शशांक के साथ। जब दरवाजे पर आकर उनका हाथ अपने हाथ में लिए मैं उन्हें कमरे में लेकर आया, उनके चेहरे पर एक ज़रूरी काम पूरा होने का संतोष हलहला रहा था। वे अगस्त के दिन थे जब बारिश न होने धूप की तेजी और चिपचिपाहट और बढ़ जाती है। वे मेरे लिए दो किताबें लेकर आए थे। एक हरीचरन प्रकाश का उपन्यास था 'एक गन्धर्व का दुःस्वप्न' और दूसरा तब हाल में ही आया राजू शर्मा का 'विसर्जन'। उन्हें देते हुए वे बोले- 'मेरा पुराना आग्रह है कि आप 'वसुधा' में लिखें... अब इनसे ही शुरू करें...' तब भी उनकी बीमारी ज़ोर पकड़ चुकी थी। लेकिन बीमारी को गठनाने वाले आदमी वे नहीं थे। जब मैंने उनसे चाय को पूछा, वे बोले- 'चाय नहीं, मैं एक गिलास नीबू पानी पीयूँगा...' तब इत्तिफाक से फ्रिज में कोई नीबू न निकलने

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से मैंने उन्हें लिमका पीने को दिया। तब मेरी दो किताबें कुछ दिन पहले ही आई थीं 'अश्क के पत्र' और 'फणीश्वरनाथ रेणु और मार्क्सवादी आलोचना'। उनकी एक-एक प्रति मैंने उन्हें लिखकर भेंट की। बोले, 'वसुधा में इनकी समीक्षा करवाऊँगा... एक-एक प्रति आप गौतम को दे दें, यही लिख देंगे। और फिर भोपाल न आने की शिकायत भी उन्होंने की।' पत्नी पास ही बैठी थीं। उनकी ओर संकेत करते हुए मैंने कहा, 'अब इनके कारण कहीं आना-जाना बंद-सा ही हो गया है... फिर भी भोपाल कभी आऊँगा...' उनका कार्यक्रम बहुत व्यस्त था। उसके बाद उन्हें खाना खाना था। रात में ही उनकी वापसी थी। मैंने अपनी यह आशंका भी उनसे छिपाई नहीं कि उनके कहने के बावजूद उनके आ पाने का विश्वास मुझे नहीं था। मेरी बात काटते हुए वे बोले, 'ऐसा कैसे संभव है... बरेली आऊँ और आपके यहां होने पर बिना मिले लौट जाऊँ...'।

गाड़ी उन्हें थोड़ी दूर नृसिंह मंदिर के सामने सड़क पर छोड़नी पड़ी थी। मैं उन्हें गाड़ी तक छोड़ने को निकला। लेकिन उन्होंने चलने नहीं दिया, 'धूप तेज है... आप बैठें। हम कई लोग हैं, कोई परेशानी नहीं है।' फिर ज़िद मेरी नहीं, उनकी चली। भोपाल पहुंचकर उन्होंने मुझे फोन किया था और 'वसुधा' में लिखने की याद दिलाई थी। उनकी बीमारी के बावजूद लगता नहीं था कि उनसे मेरी यही आख़िरी भेंट है। उनके निधन का समाचार फ़ोन पर दिल्ली के किसी मित्र ने दिया था। उनकी उत्तर क्रियाओं की सूचना वाला कार्ड भोपाल से उनके परिजनों ने भिजवाया था। उनके बेटे को मैंने लिखा था- अपने इस दुख में वे मुझे शामिल मानकर चलें। यह सच भी था। कुछ दिन पहले ही उनके बरेली आने पर उनसे हुई इस अन्तिम भेंट का ज़िक्र भी उस पत्र में मैंने किया था।

शायद मेरी ही तरह, कमला प्रसाद के प्रसंग में उनके और मित्रों एवं आत्मीयों के मन में भी यह ख्याल उठे कि अन्ततः आज कमला प्रसाद की मुख्य पहचान क्या है ? उन्हें एक संगठन-कर्ता, 'पहल' और 'वसुधा' के संपादक अपने रचनात्मक संबंधों के लिए पहचाने जाने वाले अध्यापक या फिर एक आलोचक के रूप में कैसे और कहाँ रखकर याद किया जाए ? जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इस तरह का दूसरा उदाहरण मुझे कुंवरपाल सिंह का ही दिखाई देता है। कमला प्रसाद को प्रायः ही उनकी संगठन-क्षमता के कारण 'कमांडर' कहा जाता था। साहित्य और संगठन में नई पौध तैयार करने में उनकी एक विशिष्ट भूमिका रही है। लेकिन इससे इस सच्चाई की अनदेखी कर पाना कठिन है इस सबने उनके अपने लिखने-पढ़ने को बुरी तरह प्रभावित किया। आप कितने भी सक्रिय और कर्मठ हों, अंततः आपके समय और क्षमताओं की अपनी सीमा है। आप सब मोर्चों पर एक-सी ऊर्जा के साथ सक्रिय नहीं हो सकते। संगठन का काम कम महत्वपूर्ण नहीं है। सौभाग्य से ऐसे उदाहरणों का भी अभाव नहीं है, जिन्होंने संगठन की ख़ातिर अपना सब कुछ होम कर दिया। आज भूमंडलीकरण और राजनीतिक अवसरवाद के दौर में भले ही ऐसे उदाहरणों में कमी आई है, लेकिन वह सांचा अभी भी टूटा और मिटा नहीं है।

लेनिन से लेकर रामविलास शर्मा तक सब इसे मानते और स्वीकार करते हैं कि यदि आप लेखक हैं, लिख सकते हैं तो संगठन का काम और दूसरों को छोड़कर आपको सिर्फ़ लिखना ही चाहिए क्योंकि उसका कोई और विकल्प नहीं है। लेनिन ने स्वयं गोर्की को संगठन की जिम्मेदारियों से मुक्त करके साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में अपनी क्षमताओं के उपयोग की न सिर्फ सिफ़ारिश की, भरसक इसके लिए उचित और अनुकूल परिस्थितियाँ भी जुटाईं। रामविलास शर्मा ने अपने आरंभिक दौर में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
संगठन के लिए बहुत कुछ किया। वहाँ उनकी भूमिका और कार्य पद्धति पर सवाल उठाये जा सकते हैं, लेकिन उनकी क्षमताओं एवं सक्रियता पर शंका नहीं की जा सकती। फिर भी अंततः उन्होंने चुनाव किया और सब ओर से अपने को काटकर साहित्य एवं संस्कृति को ही अपना मुख्य सरोकार बनाया। इसके परिणाम भी हमारे सामने हैं।

संगठन और राजनीतिक-वैचारिक प्रशिक्षण के प्रसंग में एक और नाम ध्यान में आता है- सव्यसाची। अपनी पत्रिकाओं 'उत्तरार्द्ध' और 'उत्तरगाथा' के द्वारा लंबे समय तक उन्होंने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। 'उत्तरार्द्ध' से उन्होंने करीब-करीब वही काम किया जो कभी 'विप्लव' से यशपाल और 'नयापथ' से शिव वर्मा ने किया था। उनके पास कार्यकर्ताओं की एक बड़ी टीम थी जो वर्षों साहित्य और राजनीति में सक्रिय रही। लेकिन कुल मिलाकर सव्यसाची की भूमिका बहुत स्पष्ट और सुपरिभाषित थी। अपने काम और अपनी जीवन-शैली से उन्होंने एक प्रतिमान का काम किया। लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनकी कोई और महत्वाकांक्षा नहीं थी। ऐसा नहीं है कि साहित्य की बुनियादी समझ या जानकारी उन्हें नहीं थी, लेकिन वह उनके काम की वास्तविक दिशा नहीं थी। इसलिए उस काम की कुंठाओं से भी वे मुक्त थे।

कमला प्रसाद एक बंटी हुई क्षमता और प्रतिभा के उदाहरण हैं। आदमी अमर होने के लिए ही नहीं लिखता है। लेकिन अमरता जैसी अगर कोई चीज़ होती है, उसके बीज बेशक उसके लिखने में ही छिपे होते हैं। ऐसे लोग न लिखने के कारणों पर माथा-पच्ची नहीं करते। संगठन और अध्यापन की दिशा में सक्रिय बने रहकर भी पीढ़ियों को बनाने-संवारने वाले लोगों के उदाहरण विरल होने पर भी हमारे सामने हैं। लेकिन यदि आप लेखक हैं तो आपकी पहचान का आधार अंततः आपका लेखन ही होगा। अच्छे संगठन भी इसकी चिंता करते हैं। उन्हें करनी भी चाहिए कि अपने ऊर्जावान और क्षमता-समृद्ध लेखकों को वे इसके लिए प्रेरित करें। किसी भी अच्छे और वैचारिक संगठन में कार्यकर्ताओं का अभाव नहीं होता, लेकिन लेखक वहाँ भी खित्तियों के हिसाब से नहीं होते। कमला प्रसाद आज जो भी हैं, मुख्य रूप से एक आलोचक ही हैं। और दूसरे क्षेत्रों में उनकी सक्रियता के बावजूद उनकी मुख्य पहचान एक आलोचक के रूप में ही होगी। यही वस्तुतः वह क्षेत्र है जहाँ पहचाना जायेगा कि अपने समकालीनों के बीच खड़े होकर उन्होंने क्या-कुछ किया और कर सकने की क्षमताओं के बावजूद अगर नहीं कर सके तो उसके कारण क्या थे?

अपने दूसरे समकालीनों की तुलना में कमला प्रसाद ने काफी कम लिखा है। उन्होंने जो भी लिखा है उसमें न तो किसी विशेष काल-खण्ड का अध्ययन है, न ही यशपाल वाले विनिबंध को छोड़कर किसी विशिष्ट लेखक का मूल्यांकन। किताबें उनकी अस्सी के दशक में आनी शुरू हुई जिनमें क्रमशः प्रौढ़ता और परिपक्वता की एक बढ़ती हुई चमक को लक्षित किया जा सकता है। उनके निबंधों का पहला संग्रह 'दरअसल' 1980 में आया। एक प्रगतिवादी आलोचक के रूप में वे, प्रतिबद्धता, साहित्य और राजनीति साहित्यकार का दायित्व आदि सवालों पर विचार करते हैं। काव्य तक आते हैं। समाज में कवि की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, 'वर्ग समाज में कवि खोई हुई आवाज को तलाशता और उसे अभिव्यक्ति देता है। वह एक प्रति संसार की रचना करता है। वह समाज के पिछड़े वर्ग के लिए नेतृत्व की भूमिका भी अदा करता है' (दरअसल, संस्करण 1981, पृ.159)

रचना और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता की पड़ताल कमला प्रसाद का प्रिय विषय है। एक ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
समय में विकसित रचना और आलोचना अपनी गहरी सम्पृक्ति के कारण ही पारस्परिकता में खुलते और लिखते हैं। रचना और आलोचना को वे एक दूसरे का पूरक मानते हैं। समस्याओं की पहचान में ही वे लेखक की प्रगतिशील संभावनाओं की तलाश करते हैं। उनकी दृष्टि में आलोचक का मुख्य प्रकार्य यही है कि वह लेखक में परिवर्तन की इस आकांक्षा की पड़ताल करे, 'व्यवस्था के सपने के बिना परिवर्तन की इच्छा लगभग अराजक होती है, जो प्रगतिशील या विकास मूलक नहीं। यह भी संभव है कि प्रगतिशील सपने व्यवस्था के निश्चित आदर्शों के बावजूद रचना के भीतर वे प्रक्रिया में न ढल सके हों' (रचना और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता, संस्करण 1982, पृ. 235)

कमला प्रसाद का सबसे प्रौढ़ और परिपक्व लेखन उनके बाद के दो संग्रहों में देखा जा सकता है। इनमें 'आलोचक और आलोचना' (2002), जैसा कि संग्रह के शीर्षक से ही स्पष्ट है, पूरी तरह से हिंदी आलोचना और आलोचकों पर केन्द्रित है। इसके पहले खण्ड 'दृष्टिकोण' में आलोचना की समस्याओं पर विचार किया गया है जबकि दूसरे खण्ड 'आलोचक' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर मैनेजर पाण्डेय तक कुछ उल्लेखनीय आलोचकों के आलोचना कार्य का मूल्यांकन है। इनमें रामविलास शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, शिवदान सिंह चौहान, नामवर सिंह आदि पर विस्तार से चर्चा की गई है। एक स्वतंत्र निबंध में रामविलास शर्मा और शिवदानसिंह चौहान के बीच हुए विवाद का लेखा-जोखा भी है। संग्रह के तीसरे और अंतिम खण्ड 'आलोचना' में विभिन्न लेखकों पर लिखित आलेख हैं जिनकी रेंज का अनुमान इसी से होता है कि इनमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र से मध्यप्रदेश के कवि रामविलास शर्मा तक शामिल हैं।

कमला प्रसाद के निबंधों का अंतिम संग्रह 'आलोचना का लोकतंत्र' (2011) है जो प्रकाशक की संवेदनशीलता के कारण ही उनके जीवित रहते प्रकाशित हुआ। इसी को आधार बनाकर उनके आलोचना-कर्म पर कुछ विस्तार से बात की जा सकती है।

अपने इन निबंधों में कमला प्रसाद साहित्य, संस्कृति, समाज और भाषा के सवालों के साथ विभिन्न विधाओं में सक्रिय लेखकों और उनकी रचनाओं पर भी विचार करते हैं। कुल मिलाकर यह एक ऐसी किताब है जिससे कमला प्रसाद की आलोचनात्मक चिंताओं को समझा जा सकता है। अपनी आलोचना के निर्माण में वे अपने आंदोलन धर्मी अनुभवों की छाया से भी इनकार नहीं करते। एक आलोचक के रूप में उनका जोर निष्कर्षों पर उतना नहीं है, जितना सवालों पर है। अपनी आलोचना में उठाए गए सवालों के प्रसंग में प्राय: ही बेन्जामिन का उल्लेख करते हैं। बेन्जामिन, आलोचकों से किसी रचना की साहित्यिक स्थिति के प्रसंग में, अपने समय की उत्पादक शक्तियों के बीच उसकी स्थिति पर विचार का आग्रह करते हैं। किन्हीं सार्थक सवालों के अभाव में किसी लोकतंत्र की कल्पना ही शायद असंभव है।

मोटे तौर पर 'आलोचना का लोकतंत्र' पाँच खण्डों में विभाजित है। इनमें से पहला खण्ड पिछले प्राय: सौ वर्षों के साहित्य की स्थिति सवालों और कुछ विचारणीय मुद्दों से संबंधित है। दूसरे खण्ड में कुछ ऐसे आलोचकों की चर्चा है जो उनके पूर्ववर्ती संग्रह 'आलोचक और आलोचना' में नहीं आ सके थे। इन आलोचकों में वे मुख्यत: विजय देव नारायण साही, प्रमोद वर्मा और धनंजय वर्मा पर विचार करते हैं। तीसरा खण्ड पिछले कुछ वर्षों में आए उपन्यासों पर केन्द्रित है जिसमें किसी स्पष्ट और व्यवस्थित योजना के बिना भी अपने समय के कुछ उल्लेखनीय उपन्यासों की चर्चा करते हैं। एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
आलोचक के रूप में कमला प्रसाद यहाँ इस बात का ध्यान रखते हैं कि वे उपन्यास अपने समय के सवालों को कैसे और किस सीमा तक छूते हैं। गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' तेजिन्दर का 'वह मेरा चेहरा', भगवान दास मोरवाल का 'काला पहाड़', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' और नए सामाजिक यथार्थ के प्रसंग में तीन उपन्यासों को एक साथ रखकर वे 'तर्पण', 'बाबल तेरा देस में' और 'कही ईसुरी फाग' को आधार बनाकर अपनी बात कहते हैं। इसी खण्ड में जहाँ वे मुक्तिबोध के 'विपात्र' का पुनर्पाठ करते हैं वहीं विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों पर भी पर्याप्त संतुलित एवं तार्किक दृष्टि वे विचार करते हैं। उपन्यास के प्रसंग में ही वे दलित-प्रश्न पर विचार करते हुए दलित आत्मकथाओं पर भी बात करते हैं। ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' की विस्तृत चर्चा के बहाने वे 'सहानुभूति' और 'स्वानुभूति' पर भी टिप्पणी करते हैं जो दलित साहित्य के मूल्यांकन में एक गंभीर और चुनौती पूर्ण सवाल रहा है।

कविता में कमला प्रसाद मुख्यत: प्रगतिशील धारा के कवियों पर ही अपने को केन्द्रित करते हैं-मख्दूम मोहिउद्दीन से शुरू करके वे शिवमंगल सिंह 'सुमन' विजेन्द्र, भगवत रावत, अरुण कमल, राजेश जोशी आदि तक आते हैं। संकलन के अंतिम तीन निबंध हिन्दी के तीन बड़े लेखकों के मूल्यांकन से संबंधित हैं- हजारी प्रसाद द्विवेदी, हरिशंकर परसाई और श्रीलाल शुक्ल। इस तरह अपनी अंतर्वस्तु की दृष्टि से 'आलोचना का लोकतंत्र' पर्याप्त वैविध और सघन रचाव का प्रभाव छोड़ता है जिसमें एक सजग आलोचक की हैसियत से कमला प्रसाद ज़रूरी हस्तक्षेप करते दिखाई देते हैं।

कमला प्रसाद कैसे विचारणीय मुद्दों को चुनते हुए आलोचनात्मक हस्तक्षेप करते हैं इसे 'साहित्य के सौ वर्ष: लोकतंत्र की अंतर्यात्रा' जैसे निबंध में देखा जा सकता है। एक सर्वेक्षण लेख जैसा होने पर भी वह मात्र सूचनाओं तक सीमित नहीं रहता। छायावादी कवियों के मूल्यांकन के प्रसंग में शांतिप्रिय द्विवेदी और नंददुलारे वाजपेयी की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, 'शांति प्रिय द्विवेदी अंशत: और नंददुलारे वाजपेयी मात्र एक आलोचक थे, जिनकी समीक्षा-दृष्टि में, आलोच्य, कवियों ने अपनी रचना-प्रक्रिया की संगति देखी...' (आलोचना का लोकतंत्र, पृ. 22) इसी तरह अपने समय के बौद्धिक विमर्श के प्रसंग में वे महादेवी वर्मा के गद्य का उल्लेख ख़ासतौर से करते हैं। इस युग के रचनाकारों की सामूहिक भूमिका पर उनकी टिप्पणी ध्यान देने लायक है, 'इस युग के रचनाकार प्रगतिशील आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।' (वही, पृ. 23)

विजयदेव नारायण साही मुख्यत: अपने मार्क्सवाद विरोध के लिए जाने जाते हैं। भारती-मंडल के संपादन में 'आलोचना' के आलोचना-विशेषांक में उन्होंने अपना विवादास्पद लेख 'प्रगतिवादी आलोचना की कम्युनिस्ट परिणति' लेख लिखा था। लेकिन 'परिमल' में वे शायद सबसे प्रखर आलोचक थे। उन पर कमला प्रसाद की सधी हुई टिप्पणी उनके आलोचना-विवेक के रूप में देखी जा सकती है, 'दरअसल इतिहास, संस्कृति और सामाजिक विकास के बारे में उनकी दृष्टि अधूरी थी। वे जानकारी और सूचनाओं का आकलन पूर्वाग्रही दृष्टि से करते रहे। कुछ आग्रह उनके स्थायीभाव बन गए थे। उनका चिंतन लगभग आत्मपरक उधेड़बुनों में सीमित हो गया था और साहित्य के क्षेत्र में वरीयता रूपवाद की ही थी, इसीलिए आगे की साहित्य-यात्रा में वे कोई राह नहीं छोड़ सके।..' (वही, पृ. 122)

कमला प्रसाद के साथ या आसपास आए आलोचकों में कम ही लोगों ने भाषा के रूप में हिन्दी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
और फिर उर्दू के साथ उसके संबंधों पर विचार किया हो, जितना कमला प्रसाद ने। नवजागरण के दौर में भारतीय भाषाओं के लिए किया जाने वाला संघर्ष उन्हें इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण लगता है। किसी देश की भाषा को छीनकर ही उसे स्थायी रूप से गुलाम बनाया जा सकता है। इस प्रसंग में वे गणेश शंकर विद्यार्थी को उद्धृत करके अपनी बात कहते हैं, 'मुझे देश की आजादी और भाषा की आजादी किसी एक को चुनना पड़े तो मैं निःसंकोच भाषा की आजादी चुनूंगा, क्योंकि मैं फायदे में रहूँगा। देश की आजादी के बावजूद भाषा की गुलामी रह सकती है, लेकिन अगर भाषा आजाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता...' (वही, पृ. 55)। आज देश में राजनीतिक आजादी के पैंसठ साल बाद भी हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति उपेक्षा के भाव अंग्रेजी की इस गुलामी से ही जुड़ा है। अंग्रेजी के इस वर्चस्व पर उनकी टिप्पणी है, 'सत्ता, उत्पादन और प्रबंधन, अंग्रेजी भाषा के हाथ है। शिक्षा में व्यवसायीकरण में माध्यम के रूप में अंग्रेजी का क्षेत्राधिकार बढ़ा है। उसका अर्थ हुआ कि भारतीय भाषाओं की प्रगतिशील-अग्रगामी भूमिका का क्षरण हो रहा है। इस दृष्टि में स्वयं उनकी अस्मिता पर संकट है। भाषाओं की क्षरणशीलता और मूल्यहीनता सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों से जुड़ी है। इस पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए...' (वही, पृ. 56)

कमला प्रसाद भाषा के प्रति कैसे भी शुद्धतावादी दृष्टिकोण के विरोधी हैं। उर्दू को वे हिन्दी का हिस्सा और रूप मानते हैं। वे इस दृष्टिकोण का विरोध करते हैं कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है। कभी इम्तियाज अली ताज ने उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानने वाले मुसलमानों को चुनौती देते हुए कहा था उनमें से कोई अगर प्रेमचंद जैसी उर्दू लिख सकता हो तो बताये। प्रगतिशील आंदोलन में उर्दू लेखकों की भूमिका शुरू में हिन्दी लेखकों से अधिक महत्वपूर्ण थी। प्रेमचंद के साथ। सरशार, चकबस्त, फिराक आदि हिन्दू लेखक ही उर्दू के बड़े लेखक थे। इसीलिए कमला प्रसाद हिंदी पाठ्यक्रम में मीर, ग़ालिब, फ़ैज़ आदि को जगह देने के लिए संघर्ष करते हैं। हिंदी-उर्दू का साझा विकास जितना उर्दू के लिए उपयोगी है, उससे कहीं अधिक हिन्दी के लिए।

कमला प्रसाद इसी दृष्टि से विश्व हिंदी सम्मेलनों में हिन्दी के शुद्धतावादी और साम्प्रदायिक स्वरूप की आलोचना करते हैं। उन्होंने नागपुर, मारीशॅस और सूरीनाम में भागीदारी के बाद अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। सूरीनाम में आयोजित सम्मेलन राजग की सरकार के दौर में हुआ। उसमें भेजे गए प्रतिनिधि मंडल में मुख्यतः शुद्धतावाद को विश्वमंच पर स्थापित करने की चिंता स्पष्ट थी। कमलेश्वर, राजेश जोशी, भगवत रावत, मुधकर उपाध्याय, कमला प्रसाद आदि जो कुछ भिन्न सोच वाले लोग थे, उन्होंने भरसक इस प्रपंच को तोड़ने की कोशिश की। यह भाषायी शुद्धतावाद वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि के अभाव में कैसे धार्मिक कर्मकांड को बढ़ावा देता है, इसका दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण मारीशॅस है। इस स्थिति पर कमला प्रसाद की टिप्पणी है 'मारीशॅस की पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रायः हिन्दुस्तान में छपती हैं। हिन्दुस्तान के हिंदी वाले भाई इस सहयोग में अच्छी नीयत का परिचय नहीं देते। इसके अलावा उधर बहुत रूढ़िवादी कट्टरपंथियों ने विदेशों में प्रवासी हिन्दी समाज में घुसपैठ बनानी शुरू की है। मैं कुछ दिन पहले मारीशॅस गया था तो देखा कि लगभग सैकड़ों कर्मकांड सिखाने वाले पंडित अलग-अलग समूहों के बीच कार्यशालाएं कर रहे थे। वे कर्मकांड के अलावा हिंदुस्तान की धर्मनिरपेक्ष छवि को विकृत ढंग से हिन्दूवादी बनाकर पेश करते हैं।' (वही, पृ. 83)

किसी बहुत व्यवस्थित और सतर्क चुनाव के बिना भी कमला प्रसाद जिन लेखकों और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रचनाओं को अपनी चर्चा में शामिल करते हैं वे एक भरे-पूर साहित्यिक परिदृश्य का बोध जगाते हैं। इनमें वे अपने समय के प्रचलित विमर्शों-स्त्री और दलित-को भी समेटते चलते हैं। दलित लेखकों के प्रसंग में स्पष्ट रूप से 'स्वानुभूति' की बात भले ही न करते हों, लेकिन गैर दलित लेखकों द्वारा लिखित साहित्य में 'सहानुभूति', की सीमाएँ स्वत: स्पष्ट हो जाती हैं। इन लेखकों में प्रेमचंद अमृतलाल नागर, नागार्जुन जैसे बड़े कद बुत के लेखक भी शामिल हैं। वे स्पष्ट लिखते हैं, 'सहानुभूति के रास्ते अधिकतम आत्म समृद्धि के बल पर 'कफ़न' जैसी कहानी लिखी जा सकती है, 'हरिजन गाथा' जैसी कविता लिखी जा सकती है, 'नाच्यो बहुत गोपाल' उपन्यास लिखा जा सकता है, पर 'जूठन', 'अपने-अपने पिंजरे', 'अछूत', 'अक्करमाशी', 'तिरस्कृत' जैसी आत्मकथायें नहीं लिखी जा सकतीं।' (वही, पृ. 227)

हिन्दी दलित लेखकों में वे ओम प्रकाश वाल्मीकि और कंवल भारती जैसे लेखकों की सराहना करते हैं जो धर्मवीर की तरह निषेध और घृणा को ही अपनी पूंजी मानकर नहीं चलते। इसी क्रम में वे 'झलकारी बाई' और 'मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगा' को आधार बनाकर 1857 का एक नया पाठ तैयार करने की कोशिश भी करते हैं।

उत्तेजना और आक्रोश से बचकर किसी विवादास्पद लेखक के मूल्यांकन में कैसे संतुलन साधा जा सकता है, इसके उदाहरण के लिए विनोद कुमार शुक्ल का नाम लिया जा सकता है। विनोद कुमार शुक्ल संबंधी अपने मूल्यांकन की पृष्ठभूमि पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, 'विनोद जी का गद्य हो या कविताएँ, पाठकों-आलोचकों के लिए चुनौती थीं। यह (वह) दौर था-जब कुछ लोग रचना में विचारधारा को स्थूल रूप से खोजते थे। इसी आदत के चलते विनोद जी को कलावादी कहा जाता। अशोक वाजपेयी का उनके प्रति विशेष झुकाव इसे पुष्ट करता।' (वही, पृ. 214/215) वे विनोद कुमार शुक्ल का महत्व, साधारण को असाधारण में बदलने की दृष्टि से देखते हैं। फिर उनकी रचना-प्रकृति पर कमला प्रसाद की टिप्पणी है, 'विनोद जी का स्वभाव दुनिया को रूपात्मक दृश्यों में देखने का है। वे पेड़, चिड़िया, नदी, आकाश, तारे-चाँद, आदमी को एक दृश्य में देखते हैं। दुनिया एक रचना लगती है...' (वही, पृ. 222) कमला प्रसाद उनका महत्व यथार्थवाद के निषेध और नकार में न देखकर, यथार्थ अंकन की बदली हुई प्रकृति में देखते हैं। इसी आधार पर वे उन्हें देशज संसार का लेखक मानते हैं-पूरे देशी और भारतीय जीवन व्यापार का लेखक। संगठन का काम कैसे कमला प्रसाद के लेखन को प्रभावित करता है, उसमें सहायक होते हुए इसे भी इस मूल्यांकन में देखा जा सकता है। मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ की गोष्ठियों में विनोद कुमार शुक्ल प्राय: आते थे। प्रकृति से वाचाल या मुखर न होने से मंच से भले ही उन्हें कभी नहीं सुना गया हो, लेकिन उनकी उपस्थिति से उनकी अभिरुचि और लगावों का संकेत तो मिलता ही था। संगठन का उनका अपना अनुभव ही और बहुतों की तरह उन्हें विनोद कुमार शुक्ल को कलावादी खेमे में धकियाने से बरजता है और उनके प्रति वे एक स्वतंत्र, संतुलित और सकारात्मक दृष्टि अपनाने में सफल होते हैं।...

372, छोटी बमनपुरी
बरेली-243003
मो. 09319838309

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलोचना का लोकतंत्र/ कमला प्रसाद/सामयिक बुक्स, नई दिल्ली/2011

समय के सत्य की पहचान

नवलकिशोर

ऐसा कम ही होता है कि किसी साहित्यिक संगठन का कोई कर्ता-धर्ता निरन्तर प्रचार-प्रसार में लगा रहे फिर भी अपने लिए इतना वक्त निकाल सकें कि लेखक रूप में पहले से तय किए अपने मुकाम में इज़ाफा करता रहे ; डॉ. कमलाप्रसाद ऐसा कर सके, यह कम हैरत की बात नहीं है। पहले मध्यप्रदेश और अन्तरराष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक संघ' के कार्य-कलापों में अपनी जुझारू व्यस्तता के बावजूद न उन्होंने अपने आलोचना कर्म की ज़्यादा उपेक्षा की और न संपादन कार्य को कभी विराम दिया। यह अवश्य है कि आरम्भ में जिस तरह का वैदुष्यपूर्ण व्यवस्थित काम उन्होंने किया, वैसा आगे संभव नहीं हुआ ; लेकिन प्रसंग-भिन्नता के अनुरूप विषय-भिन्नता के साथ लेखादि देने का क्रम लगातार चलता रहा। ऐसे चौंतीस लेख इस किताब में दिए गए हैं, जिसका प्रकाशन तो वे देख सके थे, पर साहित्य-जगत् में उसका जो स्वागत हुआ है उसे देखने के लिए वे मौजूद नहीं हैं।

इस लेख-संग्रह का नाम उन्होंने निश्चय ही बहुत सोच-समझ कर ही 'आलोचना का लोकतंत्र' रखा है। वे मार्क्सवादी आलोचना के विरोधियों की इस बद्ध धारणा का प्रतिवाद करना चाहते हैं कि उसमें लोकतंत्र की गुंजाइश नहीं है- ''अब मार्क्सवाद से सौन्दर्यदृष्टि प्राप्त करने वाले लेखकों की कृतियाँ स्वयं साक्ष्य हैं।'' कमलाजी की इस पुस्तक में कहीं छिछली अति-मतवादिता का दर्शन नहीं होता- इतर कला-दृष्टि का अस्वीकार है तो शत्रु-भाव से खंडन करते हुए नहीं, उसके साथ बहस करते हुए है। 'साहित्य में प्रगतिशीलता के भावार्थ' लेख में सन् 1936 से 2011 तक के पिचहत्तर वर्ष के प्रगतिशील आन्दोलन पर निगाह डालते हुए वे कहते हैं: छठा-सातवाँ दशक 'प्रगतिशील लेखक-संघ' और 'परिमल' की जंग और टहराहटों से भरा हैं ....''लेकिन यह दौर विवादों के उन्नत स्तर का भी है, ये विवाद बड़े क्षितिज को आच्छादित करते थे .... बड़े और उन्नत विवादों के कारण दोनों धाराओं ने साहित्यिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का निर्माण किया।'' किसी कट्टर प्रगतिवादी द्वारा 'परिमलवाद' को तनिक भी महत्त्व देना अकल्पनीय था, लेकिन वर्तमान प्रगतिशीलता के प्रवक्ता के रूप में वे इसे सहज भाव से स्वीकारते हैं। इस बारे में वे रामविलास जी को नहीं, मुक्तिबोध को प्रमाण मानते हैं, जिनके अनुसार विचारों के युद्ध में पक्ष-विपक्ष का तटस्थ विश्लेषण करते हुए अपने मत का प्रतिपादन ही आलोचना को सार्थकता दे सकता है-''मुक्तिबोध के सृजन और आलोचनाकर्म में इस तरह का दृष्टिकोण ही द्वन्द्वात्मक पद्धति का कालजयी प्रमाण है, मुझे लगता है कि सन् 36 से आरम्भ इस वैचारिक द्वन्द्व की साहित्य में परिणति सन् '40 से' 65 के बीच दिखाई पड़ती है। इसमें साहित्य की दिशा इस तरह बदली कि आज भी लेखक 'परिमल' जैसी संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित साहित्य-दृष्टि की ओर लौटने से कतराता है .... मुक्तिबोध या अन्य लेखकों के रास्ते जिस तरह व्यक्तित्वों का निर्माण हुआ, वह अभी तो नहीं होता, छोटी-छोटी उपलब्धियाँ और खुशियाँ भले हैं, पर रास्ता प्रतिगामी नहीं हैं।'' उनके अनुसार मनुष्य की मुक्ति चाहने वाली सांस्कृतिक शक्तियाँ आन्दोलन की शुरुआत में जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अविभाजित थीं, वैसा आज नहीं है, इसीलिए प्रगतिशील लेखक-संघ के बैनर तले उन्हें फिर से एकजुट करने के प्रयास में वे अन्त तक लगे रहे। उनका आलोचनात्मक लेखन सदा उनके इसी संकल्प से प्रेरित रहा।

संकलित लेखों को किसी स्पष्ट विभाजन-क्रम में नहीं रखा गया है, लेकिन जैसा कि भूमिका में कहा गया है उन्हें साहित्येतिहास,साहित्य-चिन्तन व आलोचना, काव्य एवं कथा की कृतियों तथा कृतिकारों से सम्बन्धित पाँच उपखण्डों में रखा जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि कमलाजी एक पूरे आलोचक थे- उनकी रुचि पुराने व नए साहित्य के लगभग सभी रूपों, समय-समय पर उठते सवालों और बदलते नज़रियों के प्रति समान भाव से थी। उन्होंने साहित्य के इतिहास और भाषा के सवाल पर लिखा, आलोचना के मुद्दों पर लिखा। श्रीलाल शुक्ल-विनोदकुमार शुक्ल- गिरिराज किशोर जैसे पूर्व-प्रतिष्ठित कथाकारों पर लिखा तो ओमप्रकाश वाल्मीकि, मैत्रेयी पुष्पा, तेजिन्दर और भगवानदास मोरवाल जैसे नवप्रतिष्ठितों को भी मान दिया। मख़दूम जैसे मशहूर शायर और सुमन (शिवमंगल) जैसे प्रतिष्ठित कवि पर यानी पुरानी पीढ़ी पर लिखा तो भगवत रावत, अरुण कमल और राजेश जोशी जैसों की नवख्यात अगली पीढ़ी की भी चर्चा की और वह भी बहुत याराना लहजे में। साही जैसे प्रख्यात सर्जक-आलोचक पर लिखा तो अपेक्षाकृत कम ख्यात धनंजय वर्मा और प्रमोद वर्मा जैसे रचनाधर्मी आलोचकों को भी महत्त्व दिया। अपनी आलोचना में उन्होंने उस निकष का पूरा-पूरा ध्यान रखा है, जो उनके अनुसार साहित्य के प्रति जन-पक्षधरता की भावना से तय होता है। 'आलोचना का भविष्य' लेख में वे कहते हैं- ''द्रुतगामी समय के बीच आलोचना का भविष्य स्वयं आलोचकों के भविष्य से जुड़ा है। मूलतः यह प्रश्न समकालीन साहित्य के भविष्य का ही अंग हैं। सारी चीजें एक-दूसरे से जुड़ी हैं। आलोचना का रिश्ता रचना से, रचना का रिश्ता जीवन से और जीवन का रिश्ता समय से है। समय और जीवन का रिश्ता साहित्य के लिए संजीवनी है। साहित्य की गरज है कि वह जीवन और समय से अपनी संपृक्ति बनाए रखे............ आलोचक के ऊपर जिम्मेदारी मनुष्य और उसके संसार की व्यापक सत्य-कथा कहने की है और यह कथा तमाम चकाचौंध के बीच व्यथा से भरी है।''

अपने समय के सत्य की पहचान के क्रम में ही दलित साहित्य को महत्त्व देते हुए कमलाजी ने लिखा है कि समाज के हाशिये पर रहे दलित वर्ग की व्यथा-कथा जिस अनुभूत सचाई के साथ दलित-आत्मकथाओं में आई है, वैसा इसके पहले नहीं; इसलिए ''यह कहना समीचीन लगता है कि साहित्य के समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य के उभार को क्रान्तिकारी आवाज़ की तरह देखा जाना चाहिए ... इस नए सच के आलोक में साहित्यिक आलोचना के निकष में परिवर्तन किया जाना समय की माँग है।''कमलाजी मानते हैं कि विषमतावादी वर्ग-समाज का अंत एक मार्क्सवादी यूटोपिया में ही संभव होगा; लेकिन साहित्य के माध्यम से जन-चेतना को संवर्धित करने के लिए वे अब वर्ग-शत्रु नहीं, वर्ग-मित्र तलाशने पर जोर देते हैं। कमलाजी की यह पुस्तक जहाँ प्रगतिशील चिन्तन में आए उदारतावाद से रू-ब-रू कराती है, वहीं राजनीतिक-आर्थिक नव-उदारतावाद के खतरों के प्रति सावधान भी करती है।

च-6, सेक्टर-5, उदयपार्क, हिरण मगरी,
उदयपुर - 313002 (राज.)
(0294) 2465422 मो. 09351587096

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'कैसी आगी लगायी' के नैरेटर साजिद के नाम एक ख़त

सुल्तान अहमद

जनाब साजिद भाई !

असग़र वजाहत के नॉवेल 'कैसी आगी लगायी' के तौर पर छपी आपकी आपबीती पढ़ गया। समझ में नहीं आ रहा है कि उसे अच्छी कहूँ या ख़राब। अच्छी या ख़राब कहना तो मेरा मक़सद भी नहीं है। मुझे तो सिर्फ़ इतना देखना है कि इसमें आपकी ज़िन्दगी और आपके माहौल की कितनी और किस तरह की अक्कासी हुई है। चूँकि ये आपबीती नॉवेल की शक्ल में लिखी गयी है, इसलिए कुछ बातें ज़बान और फ़ार्म के बारे में भी आ जायें तो बुरा मत लगाइएगा।

तो सबसे पहले मैं इस बात की तारीफ़ करना चाहूँगा कि आपकी ज़बान बहुत साफ़ और सादा है। इसमें राही मासूम रज़ा की ज़बान वाले लटके-झटके यानी वो विट या ज़राफ़त नहीं है, जिससे 'राही' अपनी ज़बान को दिलचस्प बनाते थे। मिसाल के तौर पर 'आधा गांव' का एक जुमाला है, 'उसके बाल इतने बड़े थे कि अगर वह चाहती तो जाड़े में उन्हें ओढ़ सकती थी।' (पेज 59) या 'टोपी शुक्ला' का जुमला, 'एक साहब थे उस्ताद छुवारा जो किसी निकाह में लुटाये नहीं गये शायद।' (पेज 11) 'राहीं को याद करने की एक वजह तो यही है कि उनके नॉवेल टोपी शुक्ला ' में कई किरदार वही हैं, जो आपकी आपबीती में भी हैं। मिसाल के तौर पर के.पी. सिंह, जावेद कमाल, जज़्बी। एक जुमला तो बिल्कुल एक जैसा है, सिर्फ़ 'टेन्स' का फर्क है। राही ने लिखा था, 'एक थे इक़बाल एट्टी' (टोपी शुक्ला, पेज 11) और आपने लिखा है,'एक हैं इक़बाल एट्टी।' (कैसी आगी लगायी, पेज 39)

राही के ज़िक्र की दूसरी वजह तो चुपके- से कान में बतानी पड़ेगी। आपने राही मासूम रज़ा को मोहसिन रज़ा 'राही' के नाम से अपनी आपबीती में शामिल किया है। अरे भाई ! आपने उन्हें ऐसा कौन- सा क्रिटिसाइज़ कर दिया था कि नाम बदलने की ज़रूरत पड़ गयी। के.पी. सिंह, जावेद कमाल, शहरयार, जज़्बी वग़ैरह तो आपकी आपबीती में सही- सही नाम के साथमौजूद हैं ही। आप कहेंगे कि राही मासूम रज़ा अलग हैं और मोहसिन रज़ा 'राही' अलग, तो भाई मेरे, आपकी यह बात टिकेगी नहीं। कम से कम एक वाक़िया तो आपको ग़लत साबित कर ही देगा। आपने बक्सों में भरकर पी.एच.डी. का मैटर अपने गाइड के पास ले जाने के जिस वाक़िये (कैसी आगी लगायी, पेज 172) का ज़िक्र मोहसिन रज़ा 'राही' के सिलसिले में किया है, उसी का ज़िक्र असगर वजाहत ने 'अभिनव क़दम' के राही मासूम रज़ा पर निकले नंबर के पेज 43-44 पर राही मासूम रज़ा के सिलसिले में किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
है। अब ये दोनों अलग-अलग आदमी एक ही जैसा करिश्माई काम करें तो इसे करिश्मा ही समझा जायेगा। भाई जान! आपबीती को नॉवेल की तरह पेश करना थोड़ा मुश्किल तो है। ये काम सिर्फ़ नामों की अदला-बदली से नहीं हो जाता। हां, इस अदला-बदली के चक्कर में आप एक ब्लंडर भी कर गये हैं। पेज नं. 323 पर आपने जिन सफ़ियाजी के शौहर का नाम डा. मेर अली बताया था, पेज नं.362 से डा. ताहिर बताना शुरू कर दिया। क्या ऐसा भी कहीं किया जाता है?

एक बात पूछूं? आपने जज़्बी,शहरयार, के.पी. सिंह, जावेद कमाल जैसे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में बहुत ज़्यादा पाप्यूलर लोगों का ज़िक्र सिर्फ़ इतने भर के लिए तो नहीं किया कि पढ़ने वालों की आपकी आपबीती में दिलचस्पी बनी रहे, और जिन लेखकों के नाम बदलकर पेश किये, उनमें और ज़्यादा दिलचस्पी पैदा हो जाये और पढ़ने वाला उन्हें और जानने की जुस्तजू में ही आपकी भारी-भरकम आपबीती के आख़िर तक पहुंच जाये।

आपकी साफ़ और सादा ज़बान की तारीफ़ करने के बावजूद यह जरूर कहना चाहूंगा कि आप अवधी के चक्कर में नाहक़ ही पड़ गये। ऐसा नहीं कि आपको अवधी नहीं आती होगी, लेकिन आपकी खड़ी बोली उसे पटककर बिगाड़ ज़रूर देती है। मुझे तो लगा कि आपकी ही खड़ी ने महाराज बहरामपुर के दादा की अवधी को बिगाड़ा होगा। उनकी अवधी को आपने खड़ी में ही याद किया होगा न । वो बोले थे, 'हमार प्रजा हिन्दू भी है, मुसलमान भी' (कैसी आगी लगायी, पेज 23) अगर ये अवधी है, तो बहुत ही रद्दी है। कहीं अवधी में 'भी' और 'है' बोला जाता है ? अगर आप अवधी की लुभावनी 'आंचलिकता' के बुरे चक्कर में न पड़े होते तो आपबीती के उन्वान में 'आगी' की जगह 'आग' का ही इस्तेमाल करते। 'आगी' से बात बहुत बिगड़ गयी हो, ऐसा मैं नहीं कहता, लेकिन सादी की जगह वो सजावटी ज़रूर हो गयी।

आप साइंस छोड़कर हिन्दी में एम.ए. करने अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी में आये थे। ऐसे माहौल में ज़ुबान को लेकर अपने दर्द का जो इज़हार आपने किया है, वो वाक़ई दिल को छू लेने वाला है। एक दर्द तो वही जो ए.एम.यू. के 'मुसलमानों' की ओर से आपको मिलता रहा होगा, हिन्दी को हिन्दुओं की ज़बान माना जाता है। एक ऐसी ज़बान जो पिछड़ी हुई है। जाहिलों अनपढ़ों और देहातियों की ज़बान है। (पेज 166) ऊपर से हिन्दी पढ़ने और समझने की तक़लीफें घेलुए में, 'कभी ब्रज की कविता पढ़ायी जाती, तो कभी अवधी की। कभी राजस्थानी की और कभी कुछ और। अब राजस्थानी या ब्रज तो मुझे आती न थी। इसलिए कविता समझने में काफ़ी समय लग जाता। पढ़ाने वाले ये मानते कि हम लोग अवधी, ब्रज, राजस्थानी सब जानते हैं और वे धड़धड़ पढ़ाये जाते।' (पेज 170)

भाई, मुझे तो लगता है, ये आपका ज़ाती मसला नहीं है और सिर्फ़ मुसलमानों का तो क़तई नहीं। ये मसला हिन्दी के बुनियादी वजूद और उसके बारे में अपनाये गये नज़रिये का है। हिन्दी पढ़ानेवाले पता नहीं कब इस मसले से दो-चार होंगे। चार-छह जनम तक तो शायद ही हो पायें। सातवें जनम में हो जायें तो कह नहीं सकता। हिन्दी पढ़ाने वालों के लिए अगर ये शर्त लगा दी जाय कि उन्हें ब्रज, अवधी, राजस्थानी और मैथिली सब बोलना आना ही चाहिए तो एक को भी नौकरी नहीं मिलेगी। हिन्दी के सिवा शायद ही किसी ज़बान को ये दुर्गत झेलनी होती होगी कि जिस बोली की चीज़ पढ़ाये, उसे पढ़ाने वाला बोल न पाये।

अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी हो और मुसलमानों की ज़िन्दगी और उनके तौर-तरीक़े न हों, ये

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो मुमकिन ही नहीं हैं। आपने बहुत सारे दिलस्प वाक़ियों का ज़िक्र किया है। एक तो वही था, 'क्लास में करीम नाम का भी एक लड़का था, जो मौलवी या जमाते इस्लामी क़िस्म का आदमी था।' (पेज 171) उसे हिन्दी से नफरत के बावजूद हिन्दी क्यों पढ़नी पड़ी ?'--- उसके चाचा यू.पी. के किसी छोटे शहर के इस्लामियां इंटर कॉलेज के मैनेजर है। कौलेज में हिन्दी टीचर की जगह है। कोई मुस्लिम क़ंडीडेट नहीं मिल रहा है' (पेज 171) इसे फ़िरकापरस्ती कहें या इक़ोनोमिक़ ज़रूरत उसमें लगायी गयी सेंध कहें। जो भी कहें, लेकिन चीज़ आपने आंख खोल देने वाली दिखायी।

साज़िद भाई। आप ए.एम.यू. के अक्सर हिन्दी पढ़ानेवालों को बहुत पसंद नहीं करते थे। फिर भी कहना पड़ेगा कि आपने उनके माइनॉरिटी में पड़ जाने के दर्द को खूब समझा था,'आम तौर पर हिन्दी विभाग में पढ़ाने वाले, युनिवर्सिटी के दूसरे प्रोफ़ेसरों या युनिवर्सिटी के मुआमलात में दिलचस्पी न लेते थे। इसकी ये भी वजह हो सकती है कि चूंकि लगभग सभी हिन्दी पढ़ाने वाले हिन्दू थे, इसलिए वे यहां के माहौल में खप न पाते थे। या उन्हें ये एहसास था कि यह युनिवर्सिटी तो दरअसल मुसलमानों की है, हम तो यहां सिर्फ़ अजनबी की तरह नौकरी कर रहे हैं।' (पेज 166)

आपने अपनी आपबीती में मुसलमानों की ज़िन्दगी की काफी चीज़ें दिखाने की कोशिश की है। ईद,बक़रीद,शबबरात और हां, मोहर्रम का भी जिक्र किया है। मोर्हरम का नाम आते ही फिर राही मासूम रज़ा और उनके 'आधा गांव' की याद आ गयी। उसमें मोहर्रम के ब्यौरे बहुत ज़्यादा हैं। मुझे शुब्हा है कि 'राही' के दिमाग़ में ये फॉर्मूला ज़रूर रहा होगा कि इन ब्यौरों से उन ग़ैर- मुस्लिमों को ज़्यादा मुतअस्सिर किया जा सकता है,जो उनसे वाक़िफ़ नहीं है। इसकी उन्होंने ज़रा भी परवाह नहीं की कि जो उनसे वाक़िफ़ हैं, वे चबे-चबाये को चबाने में कितने बोर होंगे। आपने अच्छा किया कि इस ब्यौरेबाज़ी से बच गये और सिर्फ़ तेहवारों की लिस्ट देकर मुतमइन हो गये। आप फ़ालतू ब्यौरेबाजी से बिल्कुल बच ही गये, ऐसा भी नहीं है। 'राही' ने अपने नॉवेल 'आधा गाँव' को फुलाने के लिए जो काम मोहर्रम के ब्यौरों से लिया था, वही काम आपने अपनी आपबीती में तरह-तरह के लतीफ़ों को जमा करके किया है। इनको अपनी आपबीती में डालने की जगह नरेशकुमार 'शाद' की तरह 'सुर्ख़ हाशिये' या प्रकाश पंडित की तरह 'गुस्ताख़ियाँ' जैसे मज्मुए तैयार कर देते तो क्या बुरा था? जावेद कमाल और ज़ज्बी के लतीफ़ों ने आपके या आपके दोस्तों, अहमद या शकील की ज़िन्दगी में कोई उतार-चढ़ाव ही जब नहीं पैदा किये तो उन्हें अपनी आपबीती में बनाये रखने की ज़रूरत ही क्या थी? अगर उतार-चढ़ाव आये तो आपने दिखाये क्यों नहीं?

तेहवारों के अलावा आपने तब्लीग़ी जमात, जमात-ए-इस्लामी, मुस्लिम लीग, शिया सुन्नी, नमाज़, उर्स, पर्दा, वग़ैरह का भी ज़िक्र किया है। कमाल है शिया-सुन्नी के तल्ख़ मसले को भी आपने लतीफ़े में लपेटकर पेश किया है-

'यहाँ आम तौर पर शियों को 'खटमल' और सुन्नियों को 'मच्छर' कहा जाता है।

'मच्छरों से तो अच्छे हैं हम लोग।'

'क्यों?' उसी लड़के ने पूछा।

'तुम लोग नालियों में रहते हो। हम आरामदेह बिस्तरों में।' मैंने कहा तो वह लड़का कुछ चिढ़ गया था।' (पेज 17)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस तरह के मसले की तल्ख़ियों को जब आपने पेश ही नहीं किया और आपकी आपबीती इतनी फूल गयी, अगर आपने उन तल्ख़ियों को पेश किया होता तो क्या हाल हुआ होता?

अब आते हैं हिन्दू-मुस्लिम रिश्ते या हिन्दू-मुस्लिम दंगे पर। एक तरफ़ असग़र वजाहत हैं, जो इस पर कितनी तल्ख़ बातें लिखते हैं और दूसरी तरफ़ आप हैं जो इसे लतीफ़े नहीं तो खुशगवार अंजाम वाली 'कॉमेडी' तक पहुंचा देते हैं। कुछ लोग तो 'कॉमेडी' को लतीफ़ा ही समझते हैं। उन्हें छोड़ें और अब देखें कि आप ही की आपबीती के दीबाचे 'एक अनपढ़ का विलाप' में असग़र वजाहत क्या लिखते हैं, 'विश्व को बिरादरी मानने वाला राजनीतिक दल अपने ही देशवासियों का नरसंहार करा देता है। फिर भी विश्व को कुटुम्ब मानता रहता है। एक भी ऐसा राजनीतिक दल मेरी समझ में नहीं आता, जो पड़ोसी देश से मित्रता करना चाहता है और देशवासियों के एक बड़े समूह को देशद्रोही मानता है, उनके ख़िलाफ़ घृणा का प्रचार करता है, उनको बरबाद कर रहा है।' (पेज, VI) यहाँ असग़र वजाहत ने 'भारतीय जनता पार्टी' और मुसलमान 'शब्दों से ज़रूर परहेज़ किया है, लेकिन उनका इशारा साफ़ है। आपने असग़र वजाहत से अपनी आपबीती का दीबाचा तो लिखवा लिया, लेकिन उनके तल्ख़ी से भरे ख़यालों का आपकी आपबीती से क्या कोई सीधा रिश्ता बन पाया? वैसे आलोचना तो आपने भा.ज.पा. ही नहीं, कांग्रेस और क़म्युनिस्ट पार्टियों की भी की है। हालांकि सी.पी.एम. की ओर आपका झुकाव ज़ाहिर है।

आइए, अब हम एक हिन्दू-मुस्लिम दंगे के सिलसिले में आपने जो कुछ कहा और किया ज़रा उस पर ग़ौर करें---

'ये क्या है यार?' मैंने उससे पूछा।

'पता नहीं, लोग कह रहे हैं कि युनिवर्सिटी पर हमला होने वाला है।' 'हमला? कैसा हमला?' 'शहर से हिन्दू गुंडों का बड़ा गिरोह आ रहा है।' (पेज13)

साजिद भाई! ये सुनकर न आपका मुँह सूखा, न आपको दस्त लगे। जूलोजी के लेक्चरर ने आपको मच्छरदानी का बाँस पकड़ा दिया, जिसे तोड़कर दो टुकड़े किये गये। एक आपने लिया, एक अहमद ने। फिर ये हुआ, 'कि चलो हिन्दुओं की दुकानें लूटी जायें।' (पेज 14) फिर आप लोगों ने सिगरेट के पैक़ेट लूटे और चुन-चुनकर इत्मीनान से किताबें लूटीं। आगे चलकर आप लेफ़्टिस्ट ज़रूर हो गये, लेकिन अपनी इस हरकत पर कभी पछताये नहीं। कहीं-न-कहीं आपको इस पर पछताना ज़रूर चाहिए था या कम-से-कम पछताने की वजह ज़रूर बतानी चाहिए थी। लगता है कहीं कुछ ज़रूरी चीजें छूट गयीं। आपबीती भारी भरकम भले हो गयी। सिर्फ़ इस तरह के सेक़्यूलर उसूलों को जानना और बार-बार उनका ज़िक्र करते रहना काफ़ी नहीं है, '--- बात ये नहीं है कि हिन्दू-मुसलमान साथ नहीं रह सकते। बात है राजनीति की; आर्थिक हालात की। जानते हो पाकिस्तान क्यों बना? पहला फ़ैक्टर था अंग्रेजों की पॉलिसी- 'फूट डालो और राज करो।' दूसरा सबसे अहम फ़ैक्टर ये था कि उभरता हुआ मुस्लिम पूंजीपति वर्ग और पुराना बड़ा मुस्लिम जमींदार वर्ग ये नहीं चाहता था कि आज़ादी के बाद उसे हिन्दू पूंजीपतियों से सीधा मुक़ाबला करना पड़े। तुम्हें पता है पाकिस्तान में अब तक ज़मींदारियां खत्म नहीं हुई हैं। अगर मुल्क एक रहता तो क्या वो ज़मींदारियां बचती? दूसरी तरफ पाकिस्तान के सेठ आदम ज़ी या हबीब बैंक वाले 'अनडिवाइडेड' हिन्दोस्तान में क्या उतनी ही तरक्की कर पाते, जितनी उन्होंने पाकिस्तान में कर ली? हिन्दोस्तान में बिड़ला और टाटा से उनका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मुक़ाबला होता। तब ज़ाहिर है उनका वो दरजा न हो पाता, जो आज पाकिस्तान में है। (पेज 145-146)

आपके दोस्त अहमद अपनी इश्क़बाज़ियों की लम्बी सिरीज़ के चलते चाहे बिल्कुल खोखले हों, लेकिन उनके वालिद राजा साहब अपने सनकी 'मॉडर्निज़्म' के चलते काफ़ी दिलचस्प और कुछ हद तक ठोस नज़र आते हैं। एक जगह वो कहते हैं,'नॉनसेन्स -- गोखों के मुल्क में 'डेमोक्रेसी' का क्या मतलब ? मैंने तो आज़ादी मिलते ही नेहरू से साफ़ कह दिया था कि दस साल के अन्दर अगर पूरे मुल्क को पढ़वा- लिखवा नहीं दिया गया तो हमें खुद अपनी 'डेमोक्रेसी' पर रोना पड़ेगा। आज वही हो रहा है।---ये 'ईडियट्स' वो भी नहीं कर सके, जो सैकड़ों पुश्तों से हमारे यहां होता आया था---महाराज बहरामपुर के दादा हिज़ हाईनेस नौबत सिंह हर मज़हब के त्यौहार मानते थे। होली, दीवाली, दशहरा ही नहीं ईद, बक़रीद, शबबरात,रमजान, मोहर्रम-- सब मनाते थे। उनसे एक बार किसी मुंहलगे आदमी ने पूछा, 'महाराज, आप तो हिन्दू हैं, फिर मुसलमानों के त्यौहार क्यों मनाते हैं ?' हिज़ हाईनेस विलायत में पढ़े- लिखे थे, लेकिन हमेशा अवधी बोलते थे। कहने लगे, 'तू होवे उल्लू-- जानत हो राजा का धरम का होता है ? राजा का धरम वही होत है, जो प्रजा का धरम होत है। हमार प्रजा हिन्दू भी है,मुसलमान भी। राजा साहब हंसने लगे।' (पेज 22-23)

साजिद भाई ! एक राजा को इस नज़रिये से नहीं देखना चाहिये कि वो एक धरम को मानता है या एक से अधिक धरम मानता है या एक भी धरम नहीं मानता। उसे सिर्फ़ इस नज़रिये से देखना चाहिए कि वो रिआया पर जुल्म करता है या उनकी भलाई करता है या नहीं ? आपकी आपबीती में रिआया तो ठीक ढंग से आयी ही नहीं। आयी भी तो बस हाशिये पर। कॉमरेड लालसिंह ज़रूर रिआया के हिस्से लगते हैं और उन पर आपने रौशनी भी काफी डाली हैं, लेकिन वो भी 'प्रोडक्शन सेक्टर' से कटे हुए हैं, दूसरे 'मार्क्सिज़्म' से ज़्यादा 'निहिलिज्म' के असर में हैं। आप हों, आपके दोस्त अहमद या शकील हों या क़म्यूनिस्ट इंटेलेक्चुअल्स या फिर राइटर्स हों, सभी अपर या मिडिल क्लास और उन्हीं के तौर-तरीक़ों के लोग हैं। चूंकि आप उन्हीं को ज़्यादा जानते थे तो आपने उन्हीं में ज़्यादा दिलचस्पी दिखायी। इस सिलसिले में आपकी तारीफ़ की जानी चाहिए कि आपने जो कुछ महसूस किया,वही लिखा। लेकिन उड़ान ज़रा भी न भरना खटकता ज़रूर है।

इसमें कोई शुब्हा नहीं कि क्लास स्ट्रगल में दिलचस्पी लेने वाले क़म्यूनिस्ट का ज़िक्र आपने काफ़ी उछाह के साथ किया है। आपने कहा भी है, 'क़म्यूनिस्ट ख़यालात के जो एक- दो लड़के थे, वे तबलीगी जमातवालों को बुरी तरह उखाड़ देते थे। क़म्यूनिस्टों का कहना था कि साम्प्रदायिक दंगों की राजनीति है, उसे समझना चाहिए। और जब 'क्लास स्ट्रगल' तेज़ होगा तो दंगे अपने आप ख़त्म हो जायेंगे। रज़ी हमारे होस्टल में पक्का क़म्यूनिस्ट था।' (पेज 17) लेकिन रज़ी का हुआ क्या ? क़ैरियर के लिए वो फिसलन का शिकार हुआ। अपनी बीवी को तलाक़ देकर जमाअते इस्लामी के प्रोफ़ेसर फ़ारूक़ की भतीजी से उसने शादी कर ली। 'हार्ड लाइनर' कॉमरेड लालसिंह ने उसकी पोल खोलने में अपनी सारी ताक़त लगा दी। इस सिलसिले में आपसे भी मदद ली। हुआ क्या ? कुल मिलाकर वो अपने नज़दीक के सारे क़म्यूनिस्टों का दुश्मन बन गया।

आपने काफ़ी क़म्यूनिस्टों और उनके हमदर्दों का ज़िक्र किया है-- रज़ी,लालसिंह, शंकर, इरफ़ान मुजीब,मोहिसन रज़ा 'राही' सिब्तेरज़ी, नसरीन रिज़वी, के.पी.सिंह, जावेद कमाल वग़ैरह।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन आपने इन सभी के 'कैन्टीन के समोसे में मक्खी निकाल दी।' (पेज 286) क़ैन्टीनवाला लतीफ़ा याद आया या नहीं? जावेद कमाल ने कहा था--

'क्यों यार के.पी. तुम चुप क्यों बैठे हो? लालसिंह तो तुम्हारी पार्टी का आदमी है। रज़ी भी तुम्हीं लोगों में है। फिर ये क्या मसला है, जिसे तुम लोग सुलझा नहीं सके?'

'अब आपने के.पी. की क़ैन्टीन के समोसे में मक्खी निकाल दी।' शहरयार ने कहा। (पेज 286)

अख़बारनवीसी के सिलसिले में जब आप दिल्ली चले गये तो वहां आपसे टाइपिस्ट बाबा मिले। उन्होंने तो समोसे में मक्खी नहीं निकाली,बल्कि सारे समोसे को ही पैरों से कुचल दिया। यही था न वो वाकिया---

'क्या तुम जानते हो कि हमारे देश में जाति और धर्म का बड़ा महत्व है।' हां, है। मैंने कहा। 'तो हर जगह है'।'मतलब अख़बारों में भी।'' सब जगह, क्रांतिकारी दलों से लेकर सरकार तक में।' (पेज 380)

अपने टाइपिस्ट बाबा के उकसाने पर आपने जिस दिल्ली पर थूक दिया था, उसी में आपको वो 'जाट क़ंडेक्टर' भी मिला था, जो आपके साथ रहमदिली से पेश आया था। याद है वो वाक़िया--

'क्यों रे, क्या है? पैसे क्यों नहीं, निकालता? जल्दी कर। दूसरों को आने दे।' जाट क़ंडक्टर ने मुझे झिड़का। मैंने कम शब्दों में अपनी समस्या का खुलासा करते हुए कम पैसे उसकी तरफ़ बढ़ा दिये।

'जा बैठ जा।' उसने मुझसे पैसे नहीं लिये। और बस में बैठ जाने दिया। (पेज 383)

यही 'जाट कंडक्टर' आपके मार्क्सिज़्म का प्रोलेटेरियेट हीरो हो सकता था। आपने उस पर ठहरकर ग़ौर ही नहीं किया। एक और भी किरदार थे, जिनमें 'हीरो' बनने के इमकान थे और वो थे चाय की होटल वाले मामू जिन्होंने कहा था,'अरे भइया लड़ना-झगड़ना,मारपीट, दंगे-फसाद किंसे पसंद हैं? न हिन्दू को, न मुसलमान को।'--- ये तो नेताओं के खेल हैं।-- जब चाहे फ़साद करा दें। 'सुना, मामू ने सवा लाख टके की बात की है।' मैंने मुख़्तार से कहा। (पेज 144) आपने उनकी तारीफ़ कर दी और हाथ झाड़ लिये। उन पर भी गहराई से गौर नहीं किया। कॉमरेड शंकर की बरबादी को कुछ ज़्यादा ही हमदर्दी से दिखाकर आपने उन्हें भी 'जीरो' बना दिया। काश। आपने दिखाया होता कि मेहनतकश अवाम के ऐसे लोग कैसे 'हीरो' बनते हैं। थोड़ी मेहनत ज़रूर पड़ती, मगर ये काम हो सकता था। आपको याद तो होगा ही कि मैक्सिम गोर्की के नॉवेल 'मां' का एक मामूली नौजवान मजदूर पावेल व्लासोव कैसे 'हीरो' बनता है? तब आप पढ़े-लिखे अधकचरे और कैरियरिस्ट क़म्यूनिस्टों और जगमगाते ग़ैरक़म्यूनिस्ट सेक्यूलर या क़म्यूनल इन्टेलेक्चुअल्स के समोसों में बहुत ज़्यादा मक्खियां निकालने से तो बच ही जाते, तरह-तरह के सेक्स के चटख़ारेदार ब्यौरों से भी बच जाते, जिनके 'नेच्युरलिस्ट' यथार्थ में 'यथावत्ता' चाहे जितनी होती हो,'अर्थवत्ता' ज़रा भी नहीं होती।

मज़े में होंगे। शुक्रिया।

ए-9, सिलिक्रोन एवेन्यू
सैयदवाड़ी, वटवा, अहमदाबाद-382440
मोबाइल : 09979451243

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

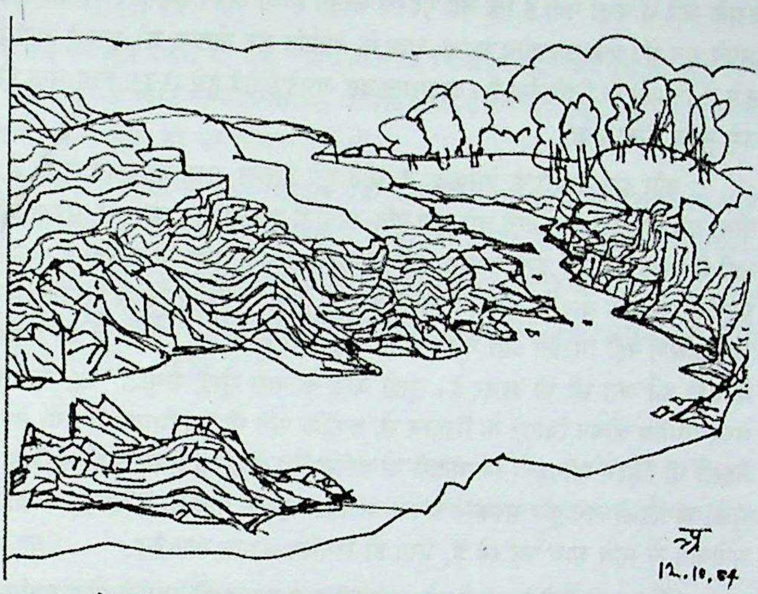

असबाबे वीरानी/उपन्यास/रमेशचंद्र शाह

गमखाने में रूहानियत की रौशनी

मुकेश वर्मा

प्रेम की विरल अनुभूतियों के रेशे रेशे को उधेड़ती रमेशचंद्र शाह की यह कृति प्रेम की अमरता और पवित्रता का विधान रचती है। प्रेम किसी उम्र का मोहताज नहीं होता और ना ही उसके लिए कोई खास समय निश्चित किया जा सकता है। पचास पार की वय वाले वानिकी विशेषज्ञ के 'जीवन की इस अंतिम बेला में युवावस्था की ऊर्जा-स्फूर्ति, किशोरावस्था का औत्सुक्य और बचपन का अबोधविस्मय....इन सबका इकट्ठा विस्फोट मेरे भीतर....।' यह प्रेम का लीला-भाव है।

'यह क्या है ? क्यों है ? कैसा तूफान है यह, जिसने मुझ सरीखे अपनी उम्र के लगभग आखिरी पड़ाव पर पहुंच चुके पुरुष की सारी समझदारी और सयानेपन को पलक मारते निगल लिया ?'

वह एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव है,

'किसे पता था वह अनाम भय मिश्रित आनंद की अनुभूति.... जो कभी कभी क्षण भर को मुझ पर छा जाती थी.... जंगल की परिक्रमा करते हुये वह इस तरह साकार हो जायेगी। और अकस्मात्.... इस तरह मुझे दबोच लेगी ?'

क्या प्रेम की झंकृति प्राणों को नया बनाती है, सचमुच!

कथा का पहला पात्र सेवानिवृत्ति के करीब पहुंच रहा एक वानिकी विशेषज्ञ है जिसने पर्यावरण विज्ञान में महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य कर देश-विदेश में अपनी धाक जमा रखी है। इसके साथ ही वह सरकार के वन विभाग में एक बड़े पद पर उच्चाधिकारी हैं। स्वभाव से अध्यनशील, एकांत प्रिय, संकोची तबियत और निरन्तर अपने आपसे प्रश्न पूछता, उत्तर के लिये जूझता एक अनूठा व्यक्तित्त्व।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-GRANT

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके बारे में कहा गया है कि वह गृहस्थ बैरागी है जो अपने बैराग में भी उतना ही अकेला है जितने अपने राग में। एक नाटकीय घटना-चक्र के अंतर्गत वह लेखक को अपनी आपबीती एक डायरी के रूप में लिखने के लिये देता है। दरअसल वह अपने लिखे हुये से इस तरह मुक्त होना चाहता है ताकि उसे मुक्ति मिल सके।

और इस तरह एक प्रेमकथा के बीते हुये पिछले अध्याय खुलने लगते हैं। सहज दाम्पत्य के तीन-चार सालों में से गुजरते हुये युवा पति-पत्नी में परस्पर प्रेम, उल्लास, समझ और समर्पण की कमी नहीं है। एक नजर में उन्हें आदर्श नहीं तो अच्छे दम्पति कहा जा सकता है। कथा के आगे-पीछे के पन्नों में शादी के बाद के जीवन में कोई गांठ या कुंठा या किसी किस्म की अन्यमनस्कता या अलगाव का विवरण नहीं मिलता और न ही कहीं कोई ऐसा हल्का सा इशारा भी जो उनके बीच किसी फांक के होने की जरा सी भी ख़बर दे। सुखी जोड़े के पास सुख, समृद्धि, पद, पैसा भरपूर है, एक उच्च मध्यमवर्गीय जीवन बिताने के लिहाज से, क्योंकि पति भी वन विभाग में उच्च श्रेणी का अधिकारी है, किसी भी किस्म की अन्य जिम्मेदारी या पारिवारिक बोझ या सामाजिक-आर्थिक बोझ और तनाव से मुक्त, जंगल से लगे हुये सरकारी बंगले के शांत-एकांत में वे दोनों विवाह के बाद की पहली पुस्तक मनोयोग से साथ साथ पढ़ रहे हैं, ऐसा ही लगभग बताया गया है।

फिर, इन दोनों के बीच प्रवेश होता है पचास पार की आयु के एक पर्यावरण वैज्ञानिक का जो इस उपन्यास का नायक है। वह इसके अलावा पति का गुरू, मार्गदर्शक भी है और वरिष्ठ उच्चाधिकारी भी है। पति से उसके संबंध मित्रवत् हैं तथा पति की सम्पूर्ण श्रद्धा और आदर का वह केन्द्र भी है। इस कथा में पति तीसरे पात्र की भूमिका में है और उसकी पत्नी को नायिका का दर्जा दिया जा सकता है क्योंकि केवल इन तीन व्यक्तियों के अलावा उपन्यास में और कोई पात्र नहीं है। हालांकि गुरू और नायिका, एक दूसरे को, उसकी शादी के बाद के समय से औपचारिक रूप से जानते रहे हैं लेकिन गुरू की जंगल के उस विशिष्ट डाक बंगले से विशेष प्रीति होने की वजह से उनका वहां जाना बार बार हुआ और अपने शिष्य और उसकी पत्नी से मिलना भी।

धीरे-धीरे मैत्री का एक प्रगाढ़ भाव गुरू और नायिका के बीच में बढ़ने लगा जिसे ज़्यादा बढ़ाने में साहित्य, बौद्धिक चर्चा और जंगल की परिक्रमाओं का खास योगदान रहा और जो जल्द ही उनके वयस्क प्रेम में परिणित हो गया। संबंध का धीरे-धीरे प्रेम में ढलते जाने का वर्णन रमेशचंद्र शाह ने बहुत गूढ़ मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है जो इस बात का प्रमाण है कि शब्दों में केवल अपने अर्थ नहीं होते, उनमें अर्थ भरे भी जाते हैं, कुछ इस तरह कि सामान्य शब्द भी अपनी आभा और आशय में दमकने लगते हैं।

'नहीं। यह पहली बार नहीं था-उसका तुम्हें इस तरह एकटक निहारना। तुम बराबर महसूस करते थे उसकी आँखों को अपने चेहरे पर।... हाँ, अपनी ओर से खुद चाहते हुये भी तुम उसे उसी तरह भर-आँख निहारने से बचते-कतराते रहे थे। क्यों? भला क्यों? इसलिये ना, कि तुम्हें भीतर ही भीतर कहीं बहुत डर लगता था। उस खिंचाव से, जो इकतरफा नहीं था-दोतरफा था-तुम्हारे उसे निरन्तर झुठलाते रहने के बावजूद। नहीं?'

जहां शब्दों का खेल नहीं हुआ, केवल 'देखना' चेतना में इस तरह धँस जाता है कि देखना भी सिर्फ दृष्टि का कार्य-कलाप नहीं रह जाता बल्कि अपने विस्तार में सम्पूर्ण और सार्थक हो जाता है। यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गहन स्वानुभूति प्रेम का मूल है।

'आप जब भी मुझे देखते थे, मुझे यही लगता था कि आप देख क्या रहे हैं, मुझे छू रहे हैं, सहला रहे हैं। सच में मुझे करेंट जैसा लगता था आपके महज देखने से। और, हाँ आपके बोलने से। आपकी आवाज मुझे सचमुच ही पागल बना देती थी।'

रमेशचंद्र शाह ने लोगों के जाने-पहचाने प्रेमानुभव को इस तरह अपनी भाषा के कौशल में व्यक्त किया है कि वह एक अनजाने रहस्य-रोमांच में परिणित होकर पाठक को नया कर देता है।

'अब तो उल्टे मुझी को उसके साथ की लत सी लग गई.... सच में, कभी कभी तो एक अजब रहस्य-रोमांच का अनुभव किया है मैंने- एक अजीब आनंद.... और एक अजीब अज्ञात भय भी जिसमें आपस में घुलमिल गये हों....' (पृष्ठ 47)

और यह भी कि,

'वह एकांत, जो मुझे अपनी एक इससे भी गहरी जरूरत की तरह लगने लगा था पिछले कुछ वर्षों से.... क्या अब वह भी मुझसे छिन जायेगा? उस पर भी कब्जा हो गया इस चलती-फिरती प्रकृत्ति की मोह-माया का?.....' (पृष्ठ 47)

प्रेम आस्मानी बिजली की तरह यकायक कड़क कर सिर पर नहीं गिरता, वह एक धीमी प्रक्रिया है जिसके भीतर की चेतना का प्रवाह पहले से मौजूद रहता है। अपने उद्‌गम में और निरन्तर वेगवान होता जाता है,भले ही हम उसे पहले पहल पहचानने में असमर्थ या संशयी या संकोची रहे हों।

प्रेम ही तो है जो खुद से खुद की पहिचान करा देता है, हमें हमारा पता बताता है और हम अपने भीतर एक बारगी पहाड़ी झरने की तरह बह चलते हैं।

'आपसे मुझे क्या नहीं मिला सर,... सभी कुछ तो मिला। आपने मुझे मेरा ही पता दिया। मेरा रोम रोम गवाही देता है कि आपने ही मुझे जताया कि मैं कौन हूं,क्या हूं। आपने ही मेरे भीतर कब से पथराई पड़ी 'स्त्री' को जगाया, उसे सोते की तरह खोला, उन्मुक्त झरने की तरह समूचे वन-प्रांतर में गुंजाया। (पृष्ठ 102)

मनुष्य के हृदय के बाद केवल कला और साहित्य ही प्रेम के उत्ताप को अपने भीतर, गंगा की तरह झेलकर और धाराओं की तरह सहेजकर अभिव्यक्त कर सकता है। मनुष्य का हृदय ही तो वह गंगोत्री है जहां से परम संभवा अभिव्यक्ति अपने हज़ारों रूपाकारों में निकल कर जीवन को जीने योग्य बनाती है। रमेशंचद्र शाह ने वर्डस्वर्थ की प्रख्यात कविता 'रिकलेक्शंस ऑव चाइल्डहुड: इंटीमेशंस ऑव इम्मोर्टलिटी' का हवाला देते हुये बहुत सुन्दर लिखा है,

'जीवन में मानो पहली बार मुझे पता चला था कि कविता क्या है- कितनी ऊंची चीज है।अद्भुत अनुभूति थी वह। अचानक मुझे लगा मानो अनुवादिका के रूप में स्वयं साक्षात प्रकृति ही मुझ पर अपना रहस्य प्रगट करने को इस अरण्य में अवतरित हो गयी हो।'

हम कितने आवरणों में ढँके रहते हैं, खुद को ढाँके रहते हैं। समय, समाज और सभ्यता की कितनी धारणाओं,परम्पराओं और संस्कारों में खुद को छुपाये रखते हैं और ढेर सारी सांसारिक नियामतों से चिपके रहते हैं लेकिन जीवन के किसी क्षण उठी कोई जबर्दस्त हलचल एक आमूल चूल परिवर्तन लाकर हमें बदल डालती है, कब और कैसे, पता भी नहीं चल पाता। कथा का नायक इस उथल-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुथल से गुजरता है और जीने का एक नया भाष्य सामने खुलता है।

लेकिन आगे नायक शंका भी करता है कि 'कहीं यह भी एक महत्वाकांक्षा ही तो नहीं है: पुरानी एम्बीशन को विस्थापित करती हुई एक नयी एम्बीशन। एक नयी महत्वाकांक्षा' (पृष्ठ वही)

प्रकारांतर से रमेशचंद्र शाह प्रश्न उठाते हैं कि क्या प्रेम भी महत्वाकांक्षा का नया रूप तो नहीं है और बात बीच में छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। लेकिन बात वहीं पर देर तक रुकी रहती है क्योंकि वह पाठकों के पाले में है। रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में प्राय: इस तरह की छूटी हुई बातें मिलती है जिनके आगे बढ़ाने की मंशा से उसे वे वहीं बीच में छोड़ देते हैं ताकि पाठक अपनी तरह से विचार करे और चाहे तो किसी निष्कर्ष पर पहुंचे या फिर उससे उत्पन्न किसी नये प्रश्न से जूझे। अगर गहराई से देखा जाये, और जैसा कि लेखक अपने प्रबुद्ध पाठकों से सीधे उम्मीद भी करता है तो, यह प्रश्न मामूली नहीं हैं। प्रेम भी तो इच्छा है जिस तरह महत्वाकांक्षा के भीतर चाह और इच्छा है। अपने को विस्तारित करते हुये,ऊपर उठाते हुये,अपनी किसी गुप्त-अगुप्त चाहत का प्रगटीकरण और उसे पाने की उत्कट लालसा और प्रयास। प्रेम भी तो हृदय की आकांक्षा है, बड़ी हुई या फिर छोटी, क्या फर्क पड़ता है।

रमेशचंद्र शाह जहां, जिस जगह प्रश्न छोड़कर और पाठक को उत्तर पाने की उसकी आकुलता में आबद्ध कर आगे बढ़ जाते हैं, वे खुद उस छटपटाहट से मुक्त नहीं हो पाते। हर प्रश्न, यक्ष प्रश्न की तरह उनका पीछा करता है, और उन्हें कहीं न कहीं रुककर उसका उत्तर देना पड़ता है लेकिन यह उनकी रचनात्मकता का कमाल है कि वे मौके की जगह पहुंचकर ही अपना विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। ठीक, उस जगह जहां उत्तर दिये बिना और कोई गति नहीं बनती। इस उपन्यास में नायक जिस मानसिक उथल- पुथल और गहमा गहमी से गुजरता है, प्रेम की व्याकुलता और विरह की छटपटाहट में क्षण प्रति क्षण जलता है और फिर अंत में जिस स्थिति को पहुंचता है, वहां हर प्रकार की इच्छा,आकांक्षा या आशंका नहीं रह जाती।

'यह कैसा सुख है-कैसा अतुलनीय और अनिर्वचनीय सुख-यह जानना और जानते रहना, कि कोई है, जिसके भीतर हम पूरे हैं, सही हैं- गलत समझे जाने या गलत हो जाने की हर सम्भावना, हर आशंका से मुक्त और परे.....'

इस तरह कथा का अंत होता है,दूसरी आम प्रेम कहानियों की तरह जिनमें अधिकतर पात्र अंततः अपने अपने खेमे में वापस चले जाते हैं। यहां भी नायिका प्रेमातिरेक में थरथराती कुछ चिट्ठियां लिखकर अपने अतीत से सीधे भविष्य में चली जाती है, फिर उसके बारे में कुछ पता नहीं चलता। अनुमान ही लगाया जा सकता है कि अपनी गृहस्थी और दाम्पत्य जीवन को सुखी और सफल करने में भारी मन से, लेकिन चेहरे पर मुस्कराहट लिये जुट गयी होगी। निस्संदेह उसका पति सहायक रहा होगा। उपन्यास में उसे एक ऐसे विलक्षण पात्र के रूप में पेश किया गया है जो साधारण मनुष्य होते हुए भी असाधारण हैं। पत्नी का अन्य पुरुष से प्रेम की स्थिति उसे आसानी से परम्परागत खलनायक बना सकती थी। लेकिन यहां, पत्नी के अपने गुरू से प्रेम करने की बात पता चलने पर वह उसे अपने गुरू के पास स्वयं ले जाता है । और कहता है ' मैं तुम लोगों को प्यार करते देखना चाहता हूं। देखूं तो सही, तुम लोग कैसे प्यार करते हो, ।' इतना उदार भाव पति के मन में देवत्व की तरह आया। एक तात्कालिक जोश में उफान की तरह। लेकिन धीरे धीरे मन के भीतर का दूसरा छुपा हुआ हिस्सा सामने आने लगा, और वह उस 'गुम्म चोट को' बर्दाश्त करने में असमर्थ होने लगा। दरअसल, उसे अंदाज नहीं था शायद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि असलियत उसकी कल्पना से कहीं ज्यादा... कई गुना संगीन निकल जायेगी। फिर भी वह आम प्रचलन के पतियों जैसा क्रूर और कठोर नहीं निकला। वह अपने जीवन की इस आकस्मिक स्थिति और दुविधा से हतप्रभ रह गया। एक ओर अतिशय श्रद्धा और आदर के केन्द्र में गुरू थे और दूसरी ओर सहज, ईमानदार और प्रिय पत्नी। एक प्रकार से यहां भी गुरू और गोविंद दोनों खड़े थे और वह किसी को भी नहीं छोड़ पा रहा था। यह पात्र कथाओं के इतिहास में बहुत वर्षों तक याद रख जाने वाला चरित्र है जिसे दुर्भाग्य से उपन्यास में समुचित जगह नहीं मिल सकी।

यह उपन्यास इस मामले में विशिष्ट है कि हर पात्र अपनी भावनाओं के प्रति ईमानदार और निष्कपट है। विषम स्थितियों में भी वे मनुष्यता और उसके मूल्यों को नहीं भूलते, भले ही अपने भीतर पीड़ा का एक ओर अध्याय खोल लेते हैं।

मनुष्यता का यह उत्कर्ष सीधे तौर पर आध्यात्म से जुड़ता है। प्रेम और आध्यात्म का गहरा रिश्ता है,इतना गहरा और सघन कि एक ऊंचाई पर पहुंचकर प्रेम की पीड़ा आत्मा के परम 'आनन्द' में विलीन हो जाती है। इस उपन्यास में भी प्रेम की उसी ऊंचाई को परखा और पाया गया है । उस रोशनी तक, रमेशचंद्र शाह एक अंतिम निदान के तौर पर पहुंचे हैं। प्रेम की कथा के संसार में इस घटना के घट जाने के बाद फिर कोई घटना नहीं होती। यहां भी, फिर कुछ और घटना नहीं था, सिर्फ प्रेम को पार्श्व-संगीत की तरह निरन्तर बजना था, जो अब भी बज रहा है।

प्रेम जैसे जाने-पहचाने विषय और उसके अनुभव तथा अनुभूतियों को जिस भाषा में लिखा गया है, उसमें शब्दों की आकर्षक बुनावट के बावजूद एक ऐसी मंथरता है जो प्राय: एकरसता में तब्दील होती हुई महसूस की जा सकती है। संभवत: रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों की भाषा का एक सा पैटर्न होने के कारण उनके पाठकों को नवीनता और ताजगी का अहसास कम हो पाता है। निस्संदेह गद्य-लेखन में उन्होंने एक विशिष्ट शैली विकसित की है और उसके अनुरूप सुडौल भाषा भी निर्धारित हुई है, लेकिन हर बार एक लीक पर चलते हुये रस भंग अवश्य होता है। यह बात इसलिये, और भी, इस एकरसता को गाढ़ा करती है क्योंकि उनके अभी हाल के वर्षों में प्रकाशित उपन्यासों में पात्र बहुत कम पाये जाते हैं, फलत: सामाजिक क्रियाओं और समाज के अंतर्संबंधों की प्रतिक्रियाओं का विभिन्न प्रकार के असर डालने वाले रूप और प्रभाव निश्चय ही कम दिखाई देते हैं।

दरअसल रमेशचंद्र शाह के उपन्यास मूलरूप से आत्मनिष्ठ होते हैं। एक ही पात्र को केन्द्र में रखकर सिर्फ उसकी व्यक्तिगत वृतियों, प्रवृत्तियों, भावनाओं और विचारों को भाषा की आंच में धीरे-धीरे पकाकर अंतत: दर्शन और अध्यात्म के रस में सराबोर कर दिया जाता है। यह एक प्रकार से तीर्थ यात्रा के अंत में कुंड-स्नान जैसा है। उपन्यास में अन्य सभी पात्र महज सहायक और केवल उतने जरूरी होते हैं जिससे नायक के विचार-प्रवाह को गाहे-बगाहे रास्ता मिलता जाये। यही वजह है कि इस कथा में प्रेमिका के पति की भूमिका में जिस पात्र को पेश किया गया है, सामान्य सामाजिक सोच और परम्पराओं के चलते भारतीय समाज में उसका व्यवहार असामान्य ही कहा जावेगा लेकिन अपनी चरित्रगत विशिष्टताओं के चलते एक नायाब चरित्र के रूप में सामने आता है। ऐसा पात्र अभी तक ही साहित्यिक कृतियों में इतना सहजता से कम या ज्यादा बेहतर कहा जाये तो बहुत ही कम नजर आया है। दैवीय उदारता और मानवीय कमजोरियों के बीच झूलते, फिर भी एक स्तर पर स्थिर रहते, उस पात्र का कद और काठी नायक से अधिक आकर्षण और सहानुभूति ले सकने की क्षमता रखता है लेकिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केवल नायक की मूर्ति में रंग भरने की लीनता में एक अनुपम चरित्र को उसकी विशिष्टताओं के अनुरूप विकसित न किये जाने तथा सिर्फ हाशिये में जगह दिये जाने की स्थिति खलती है।

साथ ही, पात्रों की कमी से सामाजिक वातावरण और उसकी प्रासंगिक गतिविधियों तथा प्रतिक्रियाओं की जीवंतता भी कम होती है और वह समाज भी नहीं मिलता जिसकी उपस्थिति के कारण ही मनुष्य अपने प्रेम को अभिशप्त रूप में झेलने के बाध्य और बेचैन होता है। ऐसा नहीं कि एक ही पात्र को केन्द्र में रखकर महत्त्वपूर्ण उपन्यास नहीं लिखे गये हैं लेकिन उनमें समाज अपने सभी गुण-अवगुण के साथ असरदार रूप से उपस्थित और शामिल रहा है। निस्संदेह प्रेम मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति, उसकी स्वतंत्रता और एकांत लीला है लेकिन हर स्टेज पर, उसकी सामाजिक स्वीकृति-अस्वीकृति, सहमति-असहमति विभिन्न प्रकार के प्रभाव डालती है और प्रेम की निर्बाध गति तथा उड़ानों को निर्धारित करती है। यह बुरा है या भला, अलग बहस का मामला है लेकिन वर्तमान हालात में समाज की जैसी भी उपस्थिति हो या भूमिका हो, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। समाज एक सशक्त संस्था है भले ही कितनी जर्जर हो और उसकी चूलें हिल रही हों लेकिन उसकी नकारात्मक भूमिका और सामूहिक दबाव तथा प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में परम्परा से हटकर चल रहे लोगों के पास दो ही विकल्प होते हैं, विद्रोह या समर्पण। विद्रोह या प्रतिरोध के लिये समाज में जाना पड़ता है, लोगों के बीच अपनी आवाज बुलंद करना होती है और वातावरण बदलने के प्रयास करना पड़ते हैं। समाज से कटकर और बचकर निकल जाने का रास्ता पलायन है। यह तब और भी खतरनाक होता है जब इसे आध्यात्म का नाम दे दिया जाता है। आध्यात्म में ओजस्विता होती है और समाज को बदलने की आकांक्षा भी। यह कर्म की सगुणता और धर्म की निर्गुणता का समावेशी स्वरूप है। हालांकि 65 वर्ष की उम्र से किसी संघर्ष की अपेक्षा नहीं की जा सकती लेकिन विचार की उम्मीद तो होती ही है। यह ताप इस उपन्यास की हरारत में भी महसूस होना चाहिये था। बहरहाल, प्रेम की एक अद्भुत कथा अपने अनूठे अंदाज में कहने के लिये श्री रमेश चंद्र शाह को याद किया जाना जरूरी हो गया है।

एफ 1, सुरेंद्र गार्डन
अहमदपुर, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462043
मो. 09425014166

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रेहन पर रग्घू/उपन्यास/काशीनाथ सिंह/राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

'भेद खोलेगी बात ही' का मिज़ाज

अभिजीत सिंह

प्रसिद्ध रूसी चिन्तक विक्तोर श्कलोव्स्की अपने एक लेख 'कथानक और शैली' में लिखते हैं- 'भाषा मनुष्य पर अधिकार नहीं करती, बल्कि मनुष्य भाषा पर अधिकार करता है और उसके विभिन्न पहलुओं को इस्तेमाल में लाता है। वह सड़क पर एक ढंग से बोलता है और घर पर दूसरे ढंग से, वह गाता एक ढंग से है और सपने दूसरे ढंग से देखता है।'[1] विक्तोर के इस कथन पर कबीर की भाषा पर आचार्य द्विवेदी की 'डिक्टेटर' वाली बात याद आ जाती है। अगर आचार्य द्विवेदी और विक्तोर की बातों को मिलाकर विचार किया जाए तो काशीनाथ सिंह की भाषा के मामले में 'डिक्टेटर' ही कहे जायेंगे क्योंकि उनकी भाषा में एक गजब की मनचाही परिवर्तनशीलता है। उनके दूसरे उपन्यास 'काशी का अस्सी' पर साहित्य जगत में तमाम चर्चाएँ हो चुकी हैं- उसके कथानक पर भी और ख़ासतौर से उसकी भाषा पर भी। यदि उनके दो उपन्यासों 'काशी का अस्सी' और 'रेहन पर रग्घू' को एक साथ सामने रखा जाए तो यह निर्णय करना बड़ा कठिन हो जाएगा कि दोनों उपन्यास एक ही लेखक ने लिखे हैं। जिस परिवेश, जिस समस्या, जिस समय को उठाती हुई उनकी रचना सामने आती है उनकी भाषा उसी रंग में खुद को ढाल लेती है। यह कहने-सुनने में जितना आसान लगता है, क्रियान्वयन में यह उतना ही दुरूह कार्य है। यह लेखक जिस तरह की समस्या और जिस तरह के विषय पर लिख रहा है उसमें वह उसी प्रकार की भाषा इस्तेमाल कर ले। दरअसल हर लेखक की भाषा का अपना अलग मिजाज होता है, उसके कुछ सिद्ध व्याकरण, शब्द, मुहावरे होते हैं। उनसे बाहर निकलना और विषय के अनुसार अपने को बदलते रहना यह बहुत ही कठिन होता है। लेकिन काशीनाथ सिंह भाषा के कुशल खिलाड़ी हैं और ऐसी कला में पारंगत भी। वास्तव में किसी भी लेखक की भाषा में ऐसी कुशलता तभी आ सकती है जब वह लेखक स्वयं को अपने विषय में डुबो दे, उसके रंग में रंग जाए और उसके साथ एकाकार हो जाए। काशीनाथ सिंह की रचनाओं में परिवेश, विषय और वातावरण के साथ भाषा के सुन्दर समीकरणों का एक मात्र कारण है- अपनी रचना के प्रति उनकी 'निध्यावसना' की स्थिति।

हम देख सकते हैं कि एक तरफ जहाँ 'काशी का अस्सी' में बिंदास और ज़िंदादिल जीवन को चित्रित किया गया है तो उसकी भाषा का रंग भी वैसा ही ज़िंदादिल बन पड़ा है और वहीं दूसरी तरफ 'रेहन पर रग्घू' एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है तो उसकी भाषा एक मध्यवर्गीय परिवार की ही भाषा है। दरअसल इस उपन्यास के कथ्य को विस्तार और गहराई देने में भाषा और शैली की भी अभिन्न भूमिका रही है। अपनी लेखकीय वर्णनात्मकता में तथा पात्रों के संवाद में काशीनाथ सिंह ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सहज आम भाषा का प्रयोग किया है। लेकिन इस सहज आम भाषा के साथ काशीनाथ सिंह ने अपने लेखन में जोखिम भी खूब उठाया है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास के संदर्भ में काशीनाथ सिंह की भाषा पर 'नेचुरलिज़्म' के प्रभाव की संभावनाओं की आज तक बहुत लोगों ने बहुत बातें की हैं। दरअसल जोखिम उठाने का साहस कई बार व्यक्ति पर 'नेचुरलिस्ट' होने का आरोप भी लगा देता है। यही हुआ काशीनाथ सिंह के साथ। 'काशी का अस्सी' में इन्होंने भाषा का जोखिम उठाया और 'रेहन पर रग्घू' में कथ्य का जोखिम उठाते दिखते हैं। हम जानते हैं कि काशीनाथ सिंह अपनी लेखनी के प्रति एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। दरअसल रचनात्मक ईमानदारी के बर-अक्स ही कथाकार ऐसे जोखिम लेता हं। जिस तरह से काशीनाथ सिंह इस उपन्यास में यौन-प्रसंगों को उठाते हैं और सरला, मीनू जैसे युवा पात्रों के प्रसंगों से शुरू करके रघुनाथ-शीला के ढलती उम्र के प्रसंग से होते हुए अशोक विहार के बूढ़ों के यौन प्रसंगों तक जाते हैं-वह यौन जरूरतों और व्यवहार को लेकर लेखक की दुर्लभ सजगता की ओर इशारा करती है। क्योंकि वह चित्रण बूढ़ों के संदर्भ में है जो परिवार और समाज दोनों में ही सम्माननीय स्थान पर होते हैं और जिनके यौन-व्यवहार के बारे में चित्रण तो दूर, बात करना और सोचना भी अनैतिक माना जाता है-ऐसी स्थिति में काशीनाथ सिंह ऐसे प्रसंगों के चित्रण के माध्यम से एक बड़ा जोखिम उठाते हैं।

'रेहन पर रग्घू' की सबसे बड़ी खासियत यही है कि इस उपन्यास ने किसी भी चरित्र, देश व काल, वातावरण के वर्तमान की भावुकता में न बह कर उसकी तमाम स्थितियों, परिस्थितियों, आने वाला समय, समाज, परिवर्तन को देखकर परखकर, उसका ठोस आकलन किया है, एकदम बेबाक होकर। काशीनाथ सिंह की भाषा इस उपन्यास में भले ही सपाट दिखाई दे रही हो लेकिन उनके कहन का मूड वही है। गम्भीर से गम्भीर घटना और कारुणिक प्रसंग को वे अपनी चिर परिचित वक्र और चुहल वाली शैली में कह डालते- 'इन दिनों रघुनाथ को एक इलहाम हुआ। कि 'शरीफ' इंसान की मतलब है 'निरर्थक आदमी', 'भले आदमी' का मतलब है 'कायर' आदमी। जब कोई आपको 'विद्वान' कहे तो उसका अर्थ 'मूर्ख' समझिए, और जब कोई 'सम्मानित' कहे तो 'दयनीय' समझिए।'[2] निश्चित ही ऐसे वाक्यों को पढ़कर पाठक की मन:स्थिति हँसने और रोने के बीच की होती होगी। यह उपन्यास अपनी गजब की पठनीयता के साथ काशीनाथ सिंह की भाषा के पूरे संयमित रूप के साथ सामने आता है। उपन्यास को कहीं भी कठिन शब्दों और विभिन्न अनुच्छेदों के इस्तेमाल के साथ कठिन और क्लिष्ट बनाने का प्रयास नहीं किया गया है बल्कि ठीक उसके विपरीत इसमें व्यक्ति के अंतस की जटिलतम संवेदनाओं को आसान भाषा में और अधिक सम्प्रेषणीय बनाने का सफल प्रयास किया गया है।

काशीनाथ सिंह के उपन्यास में जिस पठनीयता की बात हम पीछे कर आए हैं उसका एक बड़ा कारण है कि काशीनाथ सिंह में बहुत कुछ ताबड़तोड़ लिख डालने की न तो हड़बड़ी है और ना ही विलक्षण कथा-प्रयोग करने की औपनिवेशिक कथा मानसिकता। वे हमारे आसपास के जीवन और उस जीवन में आने वाले बदलावों को तथा उन बदलावों के फलस्वरूप पड़ने वाले सकारात्मक-नकारात्मक प्रभावों को बतकही की शैली में व्यक्त करने वाले सशक्त कथाकार हैं। काशीनाथ सिंह का पूरा कथा-मिज़ाज देशज आधुनिकता और कथा शैली से निर्मित है। उन पर न तो विदेशी कथा-प्रयोगों का आतंक है और न ही देशज कथा-प्रयोग के कारण किसी आत्मविश्वास की कमी। 21वीं सदी के पहले दशक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में अपने क्रम में आए उनके ये दोनों उपन्यास (काशी का अस्सी और रेहन पर रग्घू) इस बात का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ख़लील जिब्रान ने एक स्थान पर लिखा है-'मैं एक यात्री हूँ और मांझी भी। हर दिन में अपनी आत्मा में नया प्रदेश खोज लेता हूँ।'[3] काशीनाथ सिंह भी भाषा के संदर्भ में ऐसे ही मांझी हैं जो अपनी रचनात्मक यात्रा के दौरान भाषा के नित्य नए प्रदेश खोजता है।

शिल्प के दृष्टिकोण से भी 'रेहन पर रग्घू' अपना अलग महत्व रखता है। इस उपन्यास की संरचना बहुत कुछ अज्ञेय के 'शेखर: एक जीवनी' के समकक्ष ठहरती है। 'शेखर: एक जीवनी' की संरचना एक वृत्त के समान थी- फ़लैशबैक से शुरू होकर वह उपन्यास अपने अन्त में वर्तमान की ओर बढ़ता हुआ दिखता है। ठीक उसी तरह 'रेहन पर रग्घू' भी फ्लैशबैक शैली में शुरू होता है। रघुनाथ अपनी बहू सोनल के घर में बैठे अपने पुराने दिनों की स्मृति में खोए हैं और इस संसार से संवेदनशीलता के अंत का मर्सिया पढ़ते हुए अपनी जिन्दगी के खत्म होने की संभावनाओं पर विचार कर रहे हैं। उसके बाद कहानी में अपने पूते अतीत को स्मरण करते हुए पुन: उपन्यास के अन्त में वहीं आ जाते हैं जहां से शुरू हुए थे। ऐसे उपन्यासों की संरचना पर विचार करते हुए अज्ञेय लिखते हैं -'आधुनिक 'यथार्थवादी' उपन्यास के लिए यह विपर्यय ही काफी बड़ी समस्या है। यह और भी विकट तब हो जाती है जब उपन्यासकार उसमें अपनी जीवन-दृष्टि का भी समावेश करना चाहता है-जीवन-दृष्टि भी 'सम्पूर्ण' है, बंधे छोरों वाली है, यहां तक कह सकते हैं कि वृत्ताकार हो जाती है (बँधे छोर होना और क्या है?)- अर्थात यथार्थ का ऐतिहासिकतावादी दावा पलट कर वृत्ताकार काल में ले जाता है।'[4] निश्चित ही काशीनाथ सिंह ने 'रेहन पर रग्घू' में अपनी जीवन-दृष्टि का भी समावेश किया है जिसके कारण इस उपन्यास का फलक और ज़्यादा व्यापक हुआ है और उपन्यास की यह वृत्ताकार संरचना ही इसे एक ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान करती है। इस दृष्टि से 'रेहन पर रग्घू' के शिल्प में एक प्रकार की नवीनता है। यह नवीनता उपन्यास के सिर्फ कलात्मक संरचना में ही नहीं वरन वैचारिक संरचना में भी है। नए शिल्प के विषय में प्रख्यात कथाकार मनोहर श्याम जोशी कहते हैं- 'उत्तर आधुनिक साहित्य का अन्यतम लक्षण है किस्सागोई की वापसी। गल्प या गल्प वाला तत्व आधुनिक उपन्यास में नहीं था।.... लेखकों को पता भी नहीं था कि उत्तर-आधुनिक क्या है? अर्जेन्टीना के बोर्खेज़ ऐसे ही लेखक थे जिनके उपन्यास में अनजाने ही उत्तर-आधुनिकता प्रविष्ट कर गई थी। बाद में उन्हें पता चला। जर्मनी के गुण्टर ग्रास एक दूसरे उत्तर-आधुनिक उपन्यासकार हैं जो पैरोडी को उत्तर आधुनिक किस्म के साहित्य का पहला लक्षण मानते हैं।'[5] इसका प्रभाव हिन्दी लेखकों पर भी पड़ा है। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में भी पहाड़पुर, बनारस और कैलिफोर्निया की कथा कहते हुए इसमें उत्तर-आधुनिकता के तत्वों से इन्कार नहीं किया जा सकता। एक फर्क ज़रूर किया जा सकता है कि एक तरफ उत्तर-आधुनिकता की प्रवृत्ति जहां विखण्डनवादी है, वहीं दूसरी तरफ काशीनाथ सिंह की दृष्टि मानवीय संवेदनाओं को जोड़ने की है। यही कारण है कि उपन्यास पहाड़पुर जैसे छोटे गांव से लेकर कैलिफोर्निया तक फैले होने के बावजूद कहीं भी असंवेदनशील होता हुआ या मानवता के लक्ष्य से भटकता हुआ नहीं लगता। निर्मल वर्मा लिखते हैं- 'भाषा के बारे में कुछ भी कहना अपनी छाया को पकड़ना है। यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि हम उसकी छाया हैं, अपना यथार्थ उसमें गढ़ते हैं, अपने को उसमें और उसके द्वारा परिभाषित करते हैं।'[6] निश्चित ही काशीनाथ सिंह अपनी भाषा के माध्यम से खुद को तो परिभाषित करते ही हैं साथ ही लोकचेतना में अपनी आत्मचेतना का विलय करके वे समाज को भी परिभाषित करने में सफल होते हैं, इसमें कोई दो राय नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अगर काशीनाथ सिंह की भाषा के व्यापक परिप्रेक्ष्यों पर प्रकाश डाला जाए तो और भी कई बातें सामने आती हैं, जैसे काशीनाथ सिंह की भाषा अस्मिता (भाषाई और जातीय) के बढ़ते संकट का प्रतिरोध करती है और तीसरी दुनिया के देशों में भाषाई साम्राज्यवाद के आक्रमण से लोहा भी लेती है। दरअसल आज के समय में भाषाई और जातीय अस्मिता पर संकट और साथ ही साथ भाषाई साम्राज्यवाद का आक्रमण-इन दोनों ही समस्याओं को एक दूसरे के आलोक में ही समझा जाना चाहिए। जातीय और भाषाई अस्मिता पर मंडराते संकट का मुख्य कारण है भाषाई साम्राज्यवाद का आक्रमण और इन साम्राज्यवादी शक्तियों को ऐसे आक्रमण का अवसर प्रदान में सबसे बड़ा हाथ है हमारे देश की सांस्कृतिक वर्चस्वशील पांडित्य परम्परा का। यह परम्परा हमारी भाषा, संस्कृति, आचार-विचार आदि में शुद्धता का प्रचार करती है जो व्यावहारिक रूप से एक छद्म धारणा है। भाषा में भी इस परम्परा के उत्तराधिकारियों ने शुद्ध की कट्टर परम्परा पर जोर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि समय के साथ समाज और समाज के साथ भाषा के बदलते प्रारूप को इन कट्टरपंथी शुद्धतावादियों ने स्वीकार नहीं किया। जिसके कारण भाषा का पुराना ढांचा चरमरा गया। क्योंकि भाषा के जिस शुद्ध रूप की हिमायत ये परम्परावादी करते थे वह आम जनता की पहुंच से दूर थी। ऐसे में इधर के कुछ वर्षों में साम्राज्यवादी शक्तियों को तीसरी दुनिया के देशों में भाषाई भ्रम फैलाने में काफी मदद मिली। देशज भाषा के नकार का सबसे बड़ा तरीका था कि इसे निष्क्रिय साबित कर दिया जाए और भाषाई-साम्राज्यवाद ने यही किया।

काशीनाथ सिंह के लेखन में व्याप्त भदेसपना और देशज ठाठ इस बात का प्रमाण है कि काशीनाथ सिंह ने परम्परावादी या साम्राज्यवादी-किसी भी प्रकार की ध्वंसात्मक शक्तियों से हार नहीं मानी और सारी प्रतिकूलताओं के बीच अपनी जातीय और भाषाई अस्मिता की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील बने रहे।

DE, 2/A देशबंधु नगर
साहापारा, प्रांतिक अपार्टमेंट
फ्लैट नं. 5/5
कोलकाता-700059
09831778147

संदर्भ-

1. श्क्लोव्स्की, विक्तोर, कथानक और शैली (लेख), अनुवादक-योगेन्द्र नागपाल, बीसवीं शताब्दी का साहित्य-1, वही., पृ.-320-321
2. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ.-86
3. जिब्रान, ख़लील, रेत और झाग, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण-2008, पृ.-68
4. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन, शाश्वती, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण-1983, पृ.-68
5. जोशी, मनोहर श्याम, पहल, अगस्त-सितम्बर, 2002, पृ.-260
6. वर्मा, निर्मल, दूसरी दुनिया-एक आत्मीय संचयन, पृ.-294

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

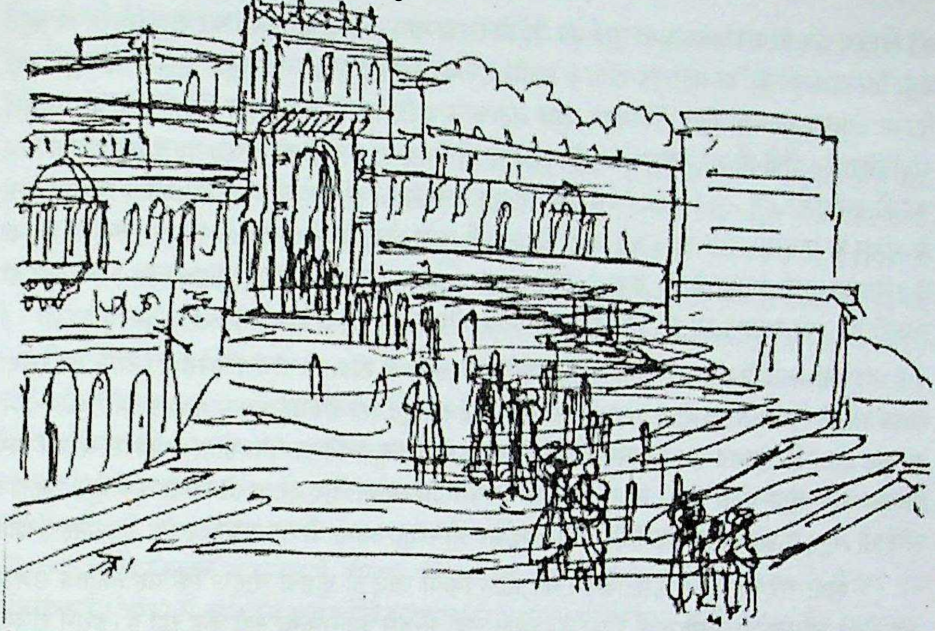

क़िस्सा कोताह/राजेश जोशी/राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

क़िस्सा कोताह

डॉ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

ऐसा बहुत ही कम होता है कि आप किसी क़िताब को पढ़ना शुरू करें, पढ़ते-पढ़ते यह भी सोचें और जानना चाहें कि आखिर यह है क्या चीज़, कोई स्पष्ट उत्तर न पाएं और फिर भी किताब आपके हाथ से तब तक ना छूटे जब तक कि आप उसके आखिरी पन्ने पर न पहुंच जाएं! सुपरिचित कवि राजेश जोशी की नई किताब क़िस्सा कोताह पढ़ते वक़्त मेरे साथ ऐसा ही हुआ। वैसे तो किताब के भीतरी आवरण पर शीर्षक के नीचे एक गप्पी का रोजनामचा लिखा हुआ है, लेकिन विधा का नाम जाने बग़ैर आगे बढ़ने से इंकार करने वाले मेरे अध्यापक मन को इस बात से कोई संतोष नहीं हुआ। सोचा, क्या यह कहानी है? क्या यह उपन्यास है? क्या यह जीवनी है? क्या यह आत्मकथा है? क्या यह डायरी है? लेखक ने तो यह लिखकर अपनी बला टाल दी कि यह उपन्यास नहीं है। आत्मकथा नहीं है। शहरगाथा नहीं है और कोरी गप्प भी नहीं है। लेकिन यह इन्हीं तमाम चीज़ों की गपड़तान से बनी एक किताब है। लेकिन उसकी इस इबारत ने मुझ अध्यापक-समीक्षक को तो मुश्क़िल में डाल दिया ना! अब भला जिस किताब की कोई सुनिश्चित विधा न हो उसका कोई क्या करे। किन मानदण्डों पर उसकी परख करे? लेकिन विधा नहीं है तो नहीं है। किताब पढ़ना शुरू किया तो फिर बीच में कोई व्यवधान नहीं आया। हां, लेखक महोदय ज़रूर थोड़ी-थोड़ी देर बाद मेरी मुश्क़िलें बढ़ाते रहे। गुस्सा भी बहुत आया। यार, तुम्हें क्या पड़ी थी ऐसी किताब लिखने की। और लिखना ही था तो सीधे-सीधे आत्मकथा लिख देते, संस्मरण लिख देते, और अगर घोषित रूप से अपने बारे में लिखने से बचना चाहते थे तो कहानी लिख मारते! लेकिन इस राजेश जोशी को तो मुझे परेशान करना था ना! एक-एक करके सारी विधाओं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को खारिज कर दिया। आत्मकथा याद आ गई तो लिख मारा। 'हर आत्मकथा का कुछ हिस्सा या बहुत बड़ा हिस्सा मनगढ़ंत या कल्पित होता है। और हर कथा या उपन्यास का कुछ हिस्सा या बहुत बड़ा हिस्सा आत्मकथात्मक होता है। बहुत कुछ बताने के अभिनय में बहुत कुछ छिपा जाने की चतुराई अंतर्निहित है। दोनों ही माल मिलावटी हैं। सोने में भी मिलावट न करो तो अच्छा गहना नहीं बनता फिर यह तो रचना है' (पृ. 32) और जैसे यह लिखकर भी मन नहीं भरा तो यह और लिख दिया, 'गल्प के भीतर से एक सच को ढूंढने की कला से कहानी जन्म लेती है और सच के भीतर गल्प की तलाश से संस्मरण। मुझे लगता है कि कहानी और संस्मरण के घालमेल से एक ऐसी हयवदन विधा पैदा हो सकती है... जो कहानी भी हो और संस्मरण भी। और न कहानी हो न संस्मरण।' (पृ. 33)

मैंने सोचा कि अगर राजेश जोशी यह लिख रहे हैं तो ठीक ही तो लिख रहे हैं। आज का रचना समय भी तो विधाओं के बीच आवाजाही का है। दीवारें टूट रही हैं। कविता में कहानी और कहानी में कविता आम है। शायद इस किताब में भी ने भी ऐसा ही कुछ किया गया होगा। यही सोच कर इस किताब को पढ़ता चला गया। पढ़ते-पढ़ते कभी मेरा दाग़िस्तान याद आया तो कभी कुरु कुरु स्वाहा। और भी बहुत कुछ, लेकिन इस किताब को पढ़कर जो स्वाद आया वो उन सबके स्वाद से अलहदा था।

अगर मेरे इस अति सरलीकरण को माफ़ किया जाए तो कहना चाहूंगा कि यह किताब राजेश जोशी की आत्मकथा जैसी कोई चीज़ है। ध्यान रखें, मैं इसे आत्मकथा नहीं कह रहा हूं। इसमें राजेश जोशी का बचपन है, उनकी जवानी है, उनका परिवार है, उनका परिवेश है और है उनका समय। यानि खुद उनके सिवा भी काफी कुछ है। और इसीलिए यह आत्मकथा न होकर आत्मकथा जैसी कोई चीज़ है। लेखक ने सायास यह कोशिश की है कि यह उनकी आत्मकथा न लगे। यहां मैं भी है और गप्पी भी है और यह जानना बहुत कठिन है कि ये दोनों एक हैं या एक नहीं हैं। किताब में कभी गप्पी की कहानी चलती है तो कभी यकायक गप्पी को छोड़कर शहरे भोपाल के किसी हिस्से की कहानी शुरू कर दी जाती है। कभी शिवमंगल सिंह सुमन के जादू का वर्णन आप पढ़ते हैं तो कभी कवि वेणुगोपाल से रूबरू होते हैं। कभी नरेन्द्र जैन आ जाते हैं तो कभी अशोक आत्रेय। और ऐसा नहीं है कि ये जाने-पहचाने चेहरे ही इस किताब में आते हैं। कभी ऊंघने वाली भुआजी आती हैं तो कभी पानदान वाली खाला। ख़ास बात यह कि जब भी कोई चरित्र किताब में आता है, इस तसल्ली और इतमीनान के साथ आता है कि आपको लगने लगता है जैसे यह किताब उसी चरित्र को सामने लाने के लिए लिखी गई है। कोई हड़बड़ाहट नहीं, कोई जल्दबाजी नहीं। बस एक से दूसरी बात निकलती है और आपको अपने साथ बहा ले जाती है। अपनी इस आदत के बारे में लेखक ने लिखा है- 'मेरी यही दिक़्क़त है कि क़िस्से सुनाते-सुनाते मैं अकसर कहीं का कहीं निकल जाता हूं। मैंने अपने उस्ताद को एक बार अपनी इस दिक़्क़त के बारे में बताया तो वे केने लगे कि यार तुम भी एक ही चुगद हो किस्से का असल मज़ा मुख्य किस्से में नहीं, विषयांतर में ही होता है। बस वो दिन का दिन है कि मैं आज तलक कभी पटरी पर नहीं आया।' (पृ. 67) कहना ग़ैर ज़रूरी है कि यह लेखक की सुविचारित हरक़त है, जिसे उसने अपनी दिक़्क़त का नाम दिया है। लेकिन इसी हरक़त ने इस किताब को अपना अलग स्वाद बख़्शा है। किताब में जो भी किरदार आए हैं, वे अपनी तमाम विशेषताओं के साथ आए हैं। लेखक ने उनमें भरपूर रंग भरे हैं। हरेक का अपना निराला अन्दाज़ है। लेकिन एक ख़ास बात जो मैंने लक्ष्य की वो यह कि लेखक किसी के भी प्रति कटु नहीं हुआ है। अगर मैं बहुत याद करूं कि लेखक ने किसके प्रति कौन-सी कड़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

टिप्पणी की है तो मुझे जो बहुत कड़ी टिप्पणी याद आती है वो वेणु गोपाल के प्रति यह टिप्पणी है कि वेणु उत्साहित कम करता और हतोत्साहित ज़्यादा। आज जहां हमारी भाषा में लोगों के कपड़े उतारने की प्रतिस्पर्धा चल रही है, राजेश जोशी का यह अन्दाज़ मुझे बहुत प्रशंसनीय लगा।

किताब में मध्यप्रदेश के बहुत सारे गांव, कस्बे, शहर और भोपाल उसी तरह मौजूद हैं जैसे खुद गप्पी मौजूद है। एक तरह से ये सब भी इस किताब के चरित्र ही हैं। असल में इन सबने मिलकर गप्पी के व्यक्तित्व का निर्माण किया है इसलिए इनका इतने विस्तार से यहां होने का हक़ भी बनता है। किताब की एक और बहुत बड़ी ख़ासियत है इसकी भाषा। राजेश जोशी एक कवि के रूप में हमारे सुपरिचित हैं। ज़ाहिर है कि उनकी भाषा इस बनाव से अछूती नहीं है। उनका गद्य उस रचनाकार के गद्य से बहुत भिन्न है जो सिर्फ गद्य ही लिखता रहा हो। अब यह एक छोटा-सा अंश देखिए और सोचिए कि क्या इसे कोई और लिख सकता था? स्मृति के बनिस्बत विस्मृति का डीलडौल बहुत बड़ा था। स्मृति कभी दिमाग़ के दरवाज़े की सांकल बजाने को आती तो विस्मृति उसके सामने आकर खड़ी हो जाती। स्मृति को वापस लौट जाना पड़ता। विस्मृति जंब खा-पीकर खर्राटे भर रही होगी तभी स्मृति चुपचाप से आकर बतियाने की कोशिश करती। वह बहुत धीरे-धीरे बतियाती कि कहीं विस्मृति न जाग जाये।' (पृ. 146) इस किताब में राजेश ने भोपाल की, मालवा की भाषा का जो रंग पेश किया है वह तो बेमिसाल है। 1932 में बासाहब द्वारा लिखे गए पत्र को उद्धृत करने के बाद उन्होंने तत्कालीन भाषा का जो भाषा वैज्ञानिक किस्म का विश्लेषण किया है वह तो बस अद्भुत है। मूल पत्र और उसके बाद यह विश्लेषण, बस! जैसे सोने पर सुहागा। यह किताब लगभग अपने हर दूसरे पन्ने पर ऐसा कोई करिश्मा करके पाठक को आह्लादित करती चलती है।

किताब के लगभग आखिर में, लेखक अपना वृत्तांत ख़त्म कर चुकने के बाद पुनश्च जैसा कुछ लिखता है और कहता है कि यह सब लिख चुकने के बाद उसे कुछ और भी याद आया है। अब उसकी दिक़्क़त यह है कि इस कुछ और का वह क्या करे। क्या उसे यथास्थान पिरोने की कोशिश करे। लेकिन यह काफी श्रमसाध्य होगा। और हो सकता है कि बात फिर भी न बने! और तब वह एक बात और कह कर जैसे खुद अपनी मेहनत को बचा ले जाता है। 'मैं गप्पी की जीवनी या अपनी आत्मकथा नहीं लिख रहा हूं। मैं तो शायद याद रह गई बातों और बेतरतीब क़िस्सों को बिना किसी क्रम के दर्ज़ करने की कोशिश कर रहा हूं। शहर के बारे में भी कई बातें जो मुझे याद आयीं मैंने यहां-वहां बिना किसी सिलसिले के इसमें शामिल कर ली हैं' (पृ. 147)

अपनी बात को समेटते हुए मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि यह उन विरल किताबों में से है जिसको विश्लेषण-विवेचन करने की बजाय सिर्फ और सिर्फ पढ़ा जाना चाहिए।

ई- 2/211, चित्रकूट, जयपुर-302021
मो. 09829532504

Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

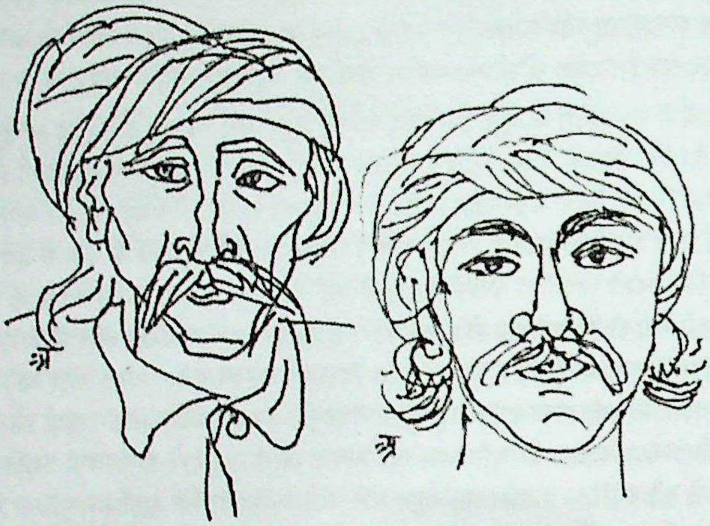

एक कस्बे के नोट्स/उपन्यास/नीलेश रघुवंशी/ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

बाई हिम्मत मत हारिओ उर्फ़ एक कस्बे के नोट्स

पल्लव

चीज़ों को थोड़ा ठहरकर धैर्य के साथ सुनना-समझना चाहिए. सांस भर आती है, कलेजा मुंह को आ जाता है, किसी के टूटे सपनों का बखान करते। वह भी ऐसे आदमी के सपने, जिसने खुद के लिए कोई सपना नहीं देखा।

नीलेश रघुवंशी के पहले और सद्य प्रकाशित उपन्यास 'एक कस्बे के नोट्स' को पढ़कर पहला भाव पाठक के मन पर यही पड़ता है कि यह बिलकुल उसके आसपास के देखे-जाने संसार का दृश्य है। किसी कृति के लिए इतना होना पर्याप्त नहीं होता क्योंकि कला की शर्तें बडीं और कठिन हुआ करती हैं। अपने इस उपन्यास के लिए उन्होंने जो कथानक उठाया है वह भारतीय कस्बाई जीवन का अत्यंत देखा-जाना यथार्थ है। सात बेटियाँ, एक बेटा, हाड़तोड़ मेहनत करता पिता, नितांत गृहस्थन माँ, कस्बे के मामूली लोग और उनके राग-विराग। आपको इसे पढ़ते हुए 'मुझे चाँद चाहिए', 'कसप', 'बीच में विनय' और 'बारामासी' जैसे उपन्यास याद आ सकते हैं लेकिन इन सबसे अलग इस उपन्यास का महत्त्व इस तथ्य में है कि भरपूर भावुकता के फिसलन भरे रास्ते पर यह मजबूती से चलता है और उपन्यास की नायिका बबली अपने को 'वर्षा वशिष्ठ' हो जाने की तमाम आशंकाओं को परास्त करती जहां पहुँचती है वह ठीक ठीक कहा जाए तो होरी का रास्ता है। मेहनत का, स्वावलंबन का और नखरों से मुक्त होकर बड़े जीवट का। यह अनायास नहीं है कि यहाँ भी एक अध्यापिका हैं जो ठीक उसी तरह बबली को रास्ता दिखाती हैं जिस तरह कभी वर्षा वशिष्ठ को दिखाया गया था लेकिन उपन्यासकार बहुत सावधान हैं और वे किन्ही भी कमजोर क्षणों को कृति पर हावी नहीं होने देतीं। बबली एक पराजित मनोदशा में इस मैडम को याद करती है –

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'काश, मैंने उस सांवली मैडम को न देखा होता! न उन्होंने हँसते हुए मुझसे बिंदी के बारे में पूछा होता; उनके हाथों में किताबें न होतीं और वो कालेज में न पढ़ाती होतीं!'

'जीवन और कविता को एकमेक करती,पिता के सपनों को जमीन देती विनीता मलिक मैडम ने मुझे माँ न पढ़ाया होता, और माँ के संग आषाढ़ का एक दिन न दिया होता, और यह न पूछा होता कि बी.ए. के बाद क्या सोचा है तुमने? और मैंने यह सब न सोचा होता तो कितना अच्छा होता....!'

यह पराजित मनोदशा क्षणिक ही है क्योंकि यहाँ भी पिता हैं जो कभी भी आकर थाम लेंगे- 'डरो मत, दुनिया में अच्छे लोग ज्यादा हैं।'

असल में यह उपन्यास हम अच्छे-बुरे लोगों के बीच से बहता हुआ मनुष्य होने के बहुत सामान्य संकल्पों को पूरा करने की जिद ही है। यही जिद उपन्यास में ढाबा बन कर आई है। उपन्यास के बीचों बीच एक ढाबा है। यह ढाबा पिता चलाते हैं। पिता के दादाजी का किस्सा है कि उन्होंने अकड़ में आकर किसी अंग्रेज तहसीलदार को झापड़ रसीद कर दिया था और फिर ज्ञायदाद छोड़ यहाँ बासौदा में आना पड़ा। अब गुजारे के लिए पिता को भट्ठी चलानी है,रोटी बनानी है,झूठी थालियाँ मांजनी है. इसी ढाबे के आसपास खेलता और बढ़ता इन सात बेटियों का परिवार है। ढाबा है तो उपन्यास में रोटियों के सिकने,जलने की गंध और भट्ठी से उठ रहे धुंए की चुभन भी है। यदि मीरा के सन्दर्भ में विद्वान कहते हैं कि उनकी अभिव्यक्ति अत्यंत सहज स्त्री अभिव्यक्ति है तब इस उपन्यास के ढाबे और ढाबे में आटा गूंधती लड़कियों को हम किस कोटि में रखेंगे?

'अब पिता एक उदास गीत की तरह हो गए। शालू और शिवा को देख बुझी भट्ठी में बदल जाते। भट्ठी बुझे या सुलगे, इससे बेपरवाह आसपास के लोग बड़ी चैन की सांस ले रहे थे।'

'मैं घंटों चाँद को देखती रहती। ढाबे से चाँद दिखता भी बहुत अच्छा। उसे देखने के लिए अलग से समय नहीं निकालना होता था और न ही चाट पर जाना होता। वह तो बड़ी आसानी से काम करते करते दिखता। भट्ठी से दिखता और किसी काम से पीछे राख के ढेर पर जाते तो वहां भी दिख जाता। कई बार तो ऐसा लगता, जैसे चाँद भी हमारे साथ ढाबे पर काम करता है,हमारा हाथ बंटाता है। मैं जी भरकर चाँद को देखती और अगर कभी वो बादलों में छिप जाता तो 'आज फिर चाँद काली राहों में खो गया' जैसा कुछ सोचती।'

पिता की भरपूर आकांक्षा है कि बेटियाँ खूब पढ़े लिखे और पांवों पर खड़ी हों। अजब नहीं कि पिता की आदर्श इंदिरा गांधी थीं। पिता इंदिरा गांधी के पक्के समर्थक और कट्टर कांग्रेसी थे। उनके मन में इंदिरा गांधी के लिए बड़ा गज़ब का सम्मान भाव था। बरहमेश इंदिराजी कहकर ही संबोधित करते। यदि कोई इंदिरा गांधी के आगे जी न लगता तो उसे डपट भी देते। मतलब यह कि बेटी है तो किसी बात से कम नहीं। इस पिता की त्रासदी यह कि बेटे को कान्वेंट में भेजने के बावजूद वह निकम्मा निकलता है और बेटियाँ ससुराल जाती हैं,विवाह के असफल हो जाने को बोझ ले आती हैं, प्रेम करती हैं, बदनामी लाती हैं। लेकिन पिता हैं कि अब भी कह सकते हैं-'बाई हिम्मत मत हारिओ। जो होगा सो देखेंगे बेटा।' ऐसा नहीं है कि उपन्यास में माँ की कोई हैसियत नहीं बन पाई है। वे हैं और अपनी सटीक और सार्थक उपस्थिति भी दर्ज करवाती हैं। 'वही हैं जो हमारे चलने से ही समझ जाती थी कि हम किस रास्ते से चलकर आ रहे हैं।' यही नहीं वे पिता और दुर्विनीत हो गए भाई के बीच ब्रेक लगाना भी जानती हैं- 'अरे उने घर पे बुरो लगते भईया। जिन्दगी हो गई उनकी काम करत-करत। घर में बैठे-बैठे हाथ-पाँव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अकाद जायेंगे रे उनके।' माँ की समझ बिलकुल साफ़ है कि लड़कियाँ ठीक ठाक घरों में शादी कर चली जाएँ और हम भी जिम्मेदारी से निवृत्त हों। तभी वे बबली को बहुत पढ़ाने (या विवाह न करने के उसके अपने फैसले) के पिता के निर्णय पर बहस करती हैं और पिता को लालची तक कह देती हैं।

भारतीय समाज के होने और उसकी विशेषताओं में कस्बे की जिन ख़ास योगदानों को रेखांकित किया जा सकता है वे यहाँ भी प्रसंगवश आ जाते हैं। प्रेम करने की कोशिश करते किशोर-किशोरी,पागल कुबड़ी चीलगाड़ी, छोटे-मोटे झगड़े करते लोग और कचहरी में पीपल का पेड़। नीलेश ने इन्हें बुन्देलखंडी से विलगाने की कोशिश नहीं की और यह ठीक ही हुआ अन्यथा यह बेस्वाद हो जाता।'हम किसान एकई चीज़ से पिटतें रे। अगर हमरी फसल न पिटे तो हम पूरी दुनियाए पीट दें. हमारे आगे फिर कोई नहीं लगने पावे।'

हमारे उपन्यास की नायिका बबली इस पिता को अंत में विजयी बनाती है हज़ार रुपल्ली से शुरुआत कर वही अंत में पिता से कह सकती है-'कक्का, अब तुम सबसे कहो। देखो,मेरी लड़की पाँव पर खड़ी हो गई।' तो क्या यही उद्देश्य इस उपन्यास को उल्लेखनीय बनाता है? स्त्री विमर्श के बड़े बड़े सिद्धान्तकारी उपन्यासों में तो ऐसा नहीं होता। यहाँ तो पिता आदर्श हैं -'परात भरकर आता गूंधते हुए पसीने-पसीने हो जाते, मांसपेशियां चमकने लगतीं। उनका ताम्बई चेहरा परात में झिलमिलाने लगता। हंसती और बोलती हुई बड़ी बड़ी आँखों में भट्ठी को भरते हुए चाय के साथ अखबार पढने बैठ जाते।' श्रम का ऐसा भरा भरा सुन्दर चेहरा केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं के अलावा भला किस उपन्यास में हमने देखा है? पिता पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बावजूद साथ चलने वाले हैं और बबली के संघर्ष को वही थामे हैं। इस सफ़र में उनका ढाबा ख़त्म हो जाता है, वे अपमानित और असहाय नज़र आते हैं लेकिन वे फिर भी हैं और उनका होना ही उपन्यास का बड़ा भरोसा है। भले यह कहानी बबली ने अपनी आपबीती की तरह सुनाई है लेकिन यह है पिता की कहानी। टूटे सपनों वाले पिता की कहानी। याद कीजिये मरजाद वाले होरी को और शहर चले गए गोबर के साथ उसके संबंधों को। नीलेश का बासौदा और बासौदा में ही रह रहे बाउजी का होना उस आदमी के सपनों की जयगाथा है जिसने अपने लिए कोई सपना नहीं देखा।

फ्लेट न. 393 डी.डी.ए., ब्लाक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेन्ट, शालीमार बाग़
नई दिल्ली-110088
मो. 8130072004

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न लौटे फिर कोई इस तरह/कविता संग्रह/मोहन कुमार डेहरिया/शिल्पायन, दिल्ली

लहर, संगीत और भावों की कविता

शैलेन्द्र चौहान

बकौल फ़ैज़, 'मकाम राह में जंचा ही नहीं फैज/कू-ए यार से निकले तो सू-ए-दार चले' दरअसल प्रेमी यार का सानिध्य मैंने स्वयं कभी उस तरह महसूस नहीं किया जैसा कि असल प्रेमी महसूस करते होंगे। कबीर बहुत पहले कह गए थे कि 'प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय' या फिर 'कबिरा घर है प्रेम का खाला का घर नाह। शीश झुकाए भुइ छरे तब पैठे घर मांह' प्रेम में इतना डूबना तो मैंने किस्से कहानियों में सुना है या फिर फिल्मों वगैरह में देखा है। प्रेम का यथार्थ तो जरूर ही भिन्न होता होगा। ऐसा मुझे लगता है। मोहन कुमार डहेरिया बहुत अच्छे कवि हैं। उनकी प्रेम कविताएं पढ़कर प्रेम की भिन्न-भिन्न दशाओं और स्थितियों को बखूबी समझा जा सकता है। अपनी एक कविता 'करते हैं जो प्रेम में अपना मुकाम' की आरंभिक पंक्तियां हैं *'क्या आपने देखे हैं प्रेम में अपना मुकाम हासिल करने वाले लड़के-लड़कियां/कैसे लोग होते हैं ये लोग/मैं इनकी आवाज को छूना चाहता हूँ/ क्या उनके जिस्म पर हर वक्त उफनता रहता है सुंदर मांस का दरिया/उनके शब्दों से निकलती है आम के बौर की गंध/क्या छुपा होता है उनके चेहरे की चमक के पीछे/किसी फरिश्ते का नूर'* इन पंक्तियों को पढ़ते वक्त मांसलता, मादकता और कुछ ऐसी उपलब्धि का आभास जो बहुत बड़ी हो ऐसी चमक प्रेमियों के चेहरे पर दिखाई देती है। असल में स्त्री-पुरुष के आकर्षण में यही भाव पनपते हैं। डहेरिया जी की पहली ही कविता 'तुमसे मिलने के बाद' इस भावना का सुंदर उदाहरण है।

'तुमने से मिलने के बाद अभी-अभी लौटा हूँ मैं/और बदली-बदली लग रही है यह दुनिया/ एक नई लिपि के संगीत में झनझना रही है मेरी कलम/मेरी चाल में शामिल हो गया है एक धीमा-धीमा नृत्य/मेरी आवाज के नेपथ्य में सुनाई देती है परिंदों की चहचहाहट/जुड़ जाता है आकार अक्सर मेरे दृश्यों से एक इंद्रधनुष'

मोहन कुमार डेहरिया बिम्ब और उपमाएँ अनोखी तरह प्रयुक्त करते हैं लेकिन उनमें स्वाभाविकता होती है। यही उनकी भाषा की और शैली की विशेषता है। इससे उनकी कविता का प्रभाव सीधी सपाट कविताओं की अपेक्षा कुछ वलयाकार हो उठता है जिसमें लहरें भी हैं, संगीत भी और भाव भी। इस अनुभव और इस और इस प्रतीति के बाद प्रेम का अगला पड़ाव है विरह का अहसास। *'आखिर मैं लौट आया/मिल सकता था जहाँ मेरी तपती हुई आत्मा को सबसे गहरा सुकून/वहाँ पहुंचने के पहले ही आखिर मैं लौट आया'* तय है कि यह लौटना यूं ही लौटना नहीं होता स्वेच्छा से। समाज की वक्र दृष्टि के चलते लौट आते हैं प्रेमी जन अपने-अपने घोसलों में। वे कोई कठिन निर्णय जब नहीं ले पाते तब प्रेम की परिणति यही होती है। लौटने के बाद सिलसिला शुरू होता है प्रतीक्षा का। एक ऐसी प्रतीक्षा जिसमें कुछ करिश्मा हो जाने की उम्मीद होती है और बहुत दिनों तक यह उम्मीद बरकरार भी बनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहती है। *'तुम नहीं जानती कहाँ-कहाँ किया मैंने तुम्हारा इंतजार/मस्तिष्क में संशयों तथा द्वंद्वों के मकड़जाल के अंदर/धैर्य के बेहद संकरे दर्रे में/दहशत की तोप के मुहाने पर/कीचड़ और काई से भरी प्रायश्चित की रपटी ढलान पर'*

कविता और प्रेम दोनों का संबंध बहुत गहरा है। द्वंद्वात्मक है। डहेरिया की कविता में यह संबंध बहुत कलात्मक हो उठता है लेकिन मेरे मन में सदैव ही यह संशय रहा है कि क्या प्रेम इतना कलात्मक भी हो सकता है ? क्या प्रेम एक कला है ? मुझे लगता है कि प्रेम एक सहज आकर्षण है, अदम्य लालसा है, प्राप्ति की इच्छा है, वासना है। पूरक बनने की इच्छा हो यह आवश्यक नहीं है। प्रेम के इस यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति, प्रेम की विरल और संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है। सहज भावानुभूति पर जब कला हावी हो जाए तो भाव और अनुभूति नेपथ्य में चले जाते हैं और पाठक लेखक से तादात्म्य नहीं बिठा पाता। यहां प्रेम गौण हो जाता है। मोहन कुमार डेहरिया की एक और प्रमुख कविता है 'हो सकता है'-

'हो सकता है जब हम मिले/गहरी-गहरी सांसे ले रहा हो/हम दोनों के बीच, भय, सन्नाटे और आशंकाओं का अजगर/दो अलग-अलग मोहल्ले के कुत्तों की तरह सूंघते रहे एक दूसरे का चरित्र/और बीत जाए इसी मिलने का समय'

प्रेम में संशय, ईर्ष्या और अधीरता, खेत में उगे खरपतवार की तरह होते हैं जो फसल को नुकसान पहुंचाते हैं इसलिए किसान गुड़ाई करके इन खरपतवारों को बाहर निकाल देते हैं पर मनुष्यों के मन में उपजे खरपतवार कैसे बाहर निकाले। काम, क्रोध, मद, लोभ, मनुष्य की मूल वृत्तियां होती हैं। इन पर नियंत्रण करना बहुत कठिन होता है'।

'जो न कर सका वर्षों/करना चाहता हूँ वह सब आज की रात/आज की रात निकल रही हों मेरी सांसों से उत्तेजना की चिनगारियाँ/स्वीकार के इत्र से महक रहा हो तुम्हारा हर इनकार।'

यही होती हैं प्रणय की अंतिम परिणति जहां दो शरीर एक दूसरे के हो जाना चाहते हैं। यही दैहिक प्रेम तमाम आदर्शों, नीतियों और उपदेशों से परे एक भौतिक यथार्थ होता है। इसमें पाने की लालसा प्रबल होती है और खोने का भय चरम।

अब प्रेम की इति-

'मैं जानता हूँ नहीं पहुंच पाएगा/अब तुम तक कभी भी/तुम्हारे लिए देखा गया मेरा कोई भी सपना/चाहे जितने रूप धारण करूँ/चाहे जिस भाषा में पुकारूँ नहीं होगा यह संभव' यूं तो इस संग्रह में चालीस से अधिक कविताएं हैं। उन सभी का जिक्र करना यहां बहुत उचित नहीं है। क्योंकि एक ही विषय पर बहुत अधिक कहना अक्सर दुहराव होता है। इसके साथ यह कहना भी आवश्यक है कि एक कस्बे के युवक की सहज अनुभूति, प्रेम के विलक्षण और सहज अनुभव, विभिन्न मनोदशाएँ आकांक्षा, उद्वेग, व्यग्रता, आनंद सभी कुछ इन कविताओं में है। सामाजिक रूढ़ियाँ, आनर किलिंग जैसी अवस्थाएं भी हैं पर सभी कुछ कलात्मक आवरण में है। 'तुम्हारी अनभिज्ञता में', 'न लौटे फिर कोई इस तरह', 'चुन लेगा प्रेम, तुम्हारा चित्र' जैसी कविताएं मन को स्पर्श करती हैं तथा प्रेम की निरंतरता और सांसारिकता को पूरी तरह अपेक्षित अर्थ देती हैं।

संपर्क: 34/242, प्रताप नगर जयपुर-302033

मो. 07838897877

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो कविता पुस्तकें: दो वयस्क कवि

कमल जैन

एक दुनिया यह भी/रेवती रमण शर्मा

मौजूदा समय में लगभग सारी दुनिया में आम आदमी को जिन नई मलामतों का सामना करना पड़ रहा है, सब पर ग्लोबलाइजेशन की काली छाया विद्यमान है। रेवती रमण शर्मा का सद्य प्रकाशित कविता संग्रह 'एक दुनिया यह भी' की रचनायें यही व्याख्यायित करती हैं।

'भाषाई सवाल' कविता मे कवि वैश्वीकृत विश्व में बढ़ती विषमता को चीन्हते हैं। यह समय,/ अपनी भाषा को आत्मसात करने का नहीं है,.....यह समय भद्र भाषा का है श्रीमान/ श्रीमन्तों की भाषा का है/.....उसके नीचे विरल होती भाषाई दूर्वा का है,/ यह सवाल उसके सूख जाने तक जाता है।'

-'ये दिन' कविता में वे उसी विषमता से जन को सचेत करते हैं-ये दिन अलसाने अथवा प्रिया संग बैठ बतियाने के नहीं हैं.../ये दिन घिघियाने या दयार्द्र हो पिघलाने के नहीं हैं,/ लोहे की तरह फौलाद होने के हैं।'

अकाल में मरी गाय से व्यथित वे बखूबी वक्त और उसकी क्रूरता को पूरे में व्यक्त करते हैं-वह भूखों मरी है या प्यासी, /हो सकता हो उसे खाल, मांस के लिये मारा गया हो-'एक सुबह गाय।'

आम ग्रामीण परिवेश को चित्रित करती कविता भैंसों वाली गली में भैंसों और उनके रातब और उसकी दुर्गन्ध और मच्छरों के बीच भैंसों की परेशानी के साथ चुहल करती और सच्चाईपर लाठी की तरह अड़ जाने वाली औरतों के कठिन जीवन को कवि ने बखूबी बिम्बित किया है।

सामान्य जन की स्थिति एक नन्हीं सफेद चींटी बताते 'दीमक'-कविता में वे लिखते हैं-मच्छर जब भी काटता, /मसल दिया जाता है, /सीवान में मसल दिये गये लोगों की तरह.......बहुत पढ़ती है दीमक,/ पढ़ जाती है चारों वेद सभ्यता के,/ निगल जाती है कंदील आलोक की।' धर्म के पाखण्ड को भी ये पंक्तियां उजागर करती है।

'खदेड़े गये लोग' में भी कवि मानवीय पीड़ा के एक और आयाम पर प्रकाश डालते है। नगरों महानगरों में गरीबों का अगले सीमान्त पर धकेला जाना बार-बार चिड़िया की तरह फिर अपना घोंसला बनाने मे जुट जाना। मानवीय श्रमशीलता में कवि का विश्वास है। जन की पीड़ा का मार्मिक विवरण। कारण के तौर पर 'शहर के बीच आ गया है उफान आबादी का,/ सरकाई जाती है....शरमिन्दगी करती हैं महसूस पास खड़ी अट्टालिकाएं।'

शादी में आये हुए सम्भ्रांत वर्ग के खाये, अघाये बच्चों को गुब्बारे बेंच रहे भूखे गुब्बारे वाले के दर्द का चित्रण करती कविता है-'शादी, बच्चे और गुब्बारे वाले'-'वह नीचे सरकती पेन्ट को ऊपर खीचता है/, लेकिन जब तक बिक नहीं जायेंगे उसके तमाम गुब्बारे,/ उसकी रोटी टंगी रहेगी आसमान में गोल पृथ्वी की तरह।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'सरपंचनी' में नयी विद्रोही नारी का चित्रण है। कविता में भ्रष्ट प्रधान को डॉटती फटकारती सरपंचनी कहती है-'सुण परधान/ हम मांगती हक अपना,/ मांगती सड़क गांव की, /मछली भर पोखर....पानी की टंकी,/ पसून को अस्पताल।

संघर्षशील नारी को चित्रित करती अन्य भी रचनाएं संग्रह में है। अदालतों में बलात्कारित औरत की दुर्दशा का भयावह वर्णन-'अदालत जाती औरत' शीर्षक से दो कविताओं में किया गया है।

जब वह जन्मी बेटी पैदा होने पर परिवार की प्रतिक्रियाओं का विवरण देती कविता है-'स्केट्स पर लड़की' में वे नई नारी की सरपट उड़ान में उत्साह देखते हैं-सड़क नहीं जाती /आसमान तक, /वरना वह कब की छू आई होती/ छत दुनिया की।'

'रात के उत्तरार्ध में', 'मूसाखेड़ा काण्ड के बाद', 'इस बुरे वक्त में', 'स्मृति में गोधरा' कविताएं साम्प्रदायिकता के दुर्दम्य दंश पर लिखी गई है। पीड़ाओं का भरपूर और निषद विवरण मार्मिक -क्या पहनें हम गले में,/ सातिया कि सितारा/ कि बच निकलें, /निरापद रह सकें, /इस बुरे वक्त में/निरापद रहे की कामना अच्छी बात है, लेकिन दोषियों की पहचान और उनके प्रति स्वाभाविक आक्रोश कहीं नजर नहीं आता। बल्कि 'स्मृति में गोधरा' वे लिखते हैं-बात सिर्फ इतनी नहीं है, /एक-एक कर जला दी गई झोपड़ियां, /जला दिया गया पूरा गांव, /न गाय, न भैंस, न बकरी,/ हर तरफ सिर्फ तम्बू /सिर्फ तने हुए तम्बू.../यहां तक घटना की भयावहता का वर्णन करके अगली ही पंक्ति में कविता कहती है-जिंदगी फिर निकलेगी,/ तम्बू के बाहर /और फिर बस जायेगा गांव.....राम ने खुदा को मारा,/ खुदा ने राम को,/ कब से कबीर समझा रहा, /दोनों एक के नाम।' यह ठण्डा पानी जरूर मौजूद है।

रेल के डिब्बे जलने का भी एकाधिक बार उल्लेख उभयपक्ष को प्रसन्न रखने का प्रयास प्रतीत होता है। आदमी झोंक दिये गये थे। बेकरी की भट्टी में एक तरह के लोग थे, जिन्हें रेल का डिब्बा निगल गया वे एक तरह के लोग थे/पर थे सब इंसान।'

लेकिन एक विध्वंसक आंदोलन कर लौट रहे, विजयमद में चूर, सत्ता से संरक्षण प्राप्त, हर स्टेशन पर लूटपाट करते चले आ रहे और गोधरा स्टेशन पर भी वही और उससे भी ज्यादा कर गुजरने वाले कथित सेवकों में और राज्य द्वारा प्रायोजित और संरक्षित उन्मादी नृशंस भीड़ द्वारा क्रूरतम हिंसा के सामूहिक शिकार लोगों को एक तराजू में तोला जाना उचित नहीं लगता।

आदिवासियों से कवि का मानसिक नैकट्य संग्रह की अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है। 'रायपुर जंक्शन' कविता में पहले चालीस मिनट और फिर दो घंटे चालीस मिनट विलम्ब से होने के कारण उस समय में न किये जा सके मनचाहे कामों में बेलाडीला पमालू और गिरीडीह के लोगों पर कोई कविता रचना भी शामिल हैं। 'खण्डित दर्प' और 'नहीं है सपना एक दलितकर्मी का' कविताएं विशेष रूप से लेखक की दलित केप्रति सहानुभूति दर्शाती हैं।

संग्रह की कविताओं में कवि की करूणा मानव से पशु-पक्षी और फूल पौधों अर्थात सम्पूर्ण प्राणिजगत को आच्छादित करती है। उनकी संवेदना गरीबों, पिछड़ों, आदिवासियों स्त्रियों आदि कमजोर वर्ग के दर्द को पहचानती है। तमाम प्राणिजगत की पीड़ाओं से उनकी संवेदना का जुड़ाव है। लगभग सबमें नये वैश्वीकृत विश्व से उपजी, बढ़ी बहुआयामी विषमता और विभिन्न वर्गों पर उसके दुष्प्रभाव मौजूद है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नदी थकने नहीं देती/रवि श्रीवास्तव

एक काव्य संग्रह 'पहाड़ पर चढ़ते पांव' के बाद रवि श्रीवास्तव का यह दूसरा संग्रह है जिसमें नदी के निर्मल और निरन्तर प्रवाह को जीवन की गति और धारा बनाने की सफल कोशिश है। कवि, प्रकृति को, जो आधुनिक वैश्वीकृत विश्व में आम आदमी के लिए लुप्तप्राय हो गई है, जीवन की गहराइयों से जोड़कर दिखाता है।

प्रकृति से जीवन को जोड़ती अनेक कविताएं इस संग्रह में हैं। 'जिस दिन पेड़ गिरा होगा' में कवि पेड़ से घर की पहचान जोड़कर कहता है- 'पेड़ अब तक नहीं दिखा/घर कैसे आयेगा/पहले आयेगा पेड़/फिर घर आ जायेगा।'

आदिवासी जीवन में बारिश, अन्धेरा और सांझ को शामिल करती कविता- 'बेलाडीला की पहाड़ियों से उतरते हुये' बहुत खूबसूरत ढंग से कहती है- 'वह एक पहाड़ी सांझ थी बादलों में घिरी/हाट बाजार से लौटते/आदिवासियों के संग/निर्भय होकर चल रही थी/घर लौटने की बैचेनी/दिखने लगी थी सांझ के चेहरे पर'

संग्रह को शीर्षक देती कविता- 'नदी थकने नहीं देती' - में अपने में नदी को समेटे कवि देश के अतीत और वर्तमान में यात्रा करता है- 'कगारी कस्बों के बीच सरपट दौड़ लगाती/महानदी/.......तेरह सौ वर्षों की/यात्रा का साक्षी/ प्राकृत-पाली का शिलालेख छाती से लगाये/सातवीं शताब्दी के दरपन से झांकता/राजिम/अभी थका नहीं है।'

स्त्री और प्रेम के विष में वे एक अनूठी भावप्रवण लेकिन सात्विक दृष्टि का परिचय देते हैं। 'भाषा की दीवार पर प्रेम' में वे कहते हैं- 'सिन्दूरी संध्या सा तुम्हारा स्पर्श/और सूरज का/छपाक से झील में समा जाना/एक बिम्ब उभरता है/भाषा की दीवार पर प्रेम और विश्वास का।'

स्त्री की महत्ता और ममता को व्यक्त करती 'दुख' कविता में- 'वह औरत है/उसे छोड़कर कहां मिलेगा/दूसरा ठौर ठिकाना दुख को.......... सारे दुख समाये रहते हैं/उसके अर्थवान आंचल में/एक कोने में बंधी रहती है/ चांदनी.......आसमान के विस्तार से/कभी कम नहीं रही/ आंचल की विशालता' इसी तरह 'प्रेम कविताएं' भी अपने आप में अनोखी हैं। प्रेम में निकटता की अनूठी अभिव्यक्ति है- 'भीड़ भरे चौराहे के निकट/कोलाहल के बीच में/सुन पा रहा हूं आवाज/तुम भी सुन रही होगी/अपने एकान्त में/मैं ही तो बजा रहा हूं/तुम्हारी/पायल में लटकते घुंघरूओं को'। वे पहले श्वेत केश को झिलमिलाता एक सितारा कहते हैं जो - 'दस्तक देने आया है/उम्र की दोपहरी पार कर'

'सम्वाद' में कवि प्रकृति से आत्मालाप करते हुए वैश्विक पूंजी के प्रभाव ओर उनसे प्रतिरोध को सुन्दर प्रतीकात्मक तीरके से व्यक्त करता है-'मैं वहां भी अकेला था/नितान्त अकेला/सुन रहा था आकाश ओढ़कर/वैश्वीकरण के भय से कुम्हलाते/पुरइन के पानों से बतियाते/कमल दल को....... मैं तो सुनने आया था/सिला बीनती/लड़कियों की पदचाप/उनकी निर्मल हंसी, बेलाग ठिठोली और आत्मीय उलाहने........ जिन्हें/कोई पूंजी बाजार की/स्पर्श नहीं कर पाती।

व्यवस्था के छद्म तोड़ती और बाजार को चुनौती देती अनेक कविताएं इस संग्रह में हैं। 'मुट्ठी में बाजार' में आखिरी बस का समय और पांच रूपये में बची हुई सब्जी बेचकर जल्दी घर लौटने की विवशता से बाजार का चरित्र अभिव्यक्त करती कविता, जीवन की बहुमूल्य खुशियों की बाधाओं और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जरूरतों को शिद्दत से बताती है- 'दिन भर की भागदौड़ के बाद/पत्नी को हंसाने-चौंकाने/तोड़ने टी.वी.का भ्रमजाल/पांच रूपये का/होना बेहद जरूरी है जेब में'।

व्यवस्था और सत्ता के मायाजाल में उलझे आदमी द्वारा भोगे जा रहे कड़वे सच को कवि बहुत तल्ख अंदाज में 'जूतों का समय' में व्यक्त करता है- 'जूतों की नोक पर है/हमारी समझ/रौंदी जा रही है जूते तले/मानसिकता हमारी......कई जगह लोग/पहने जा रहे हैं जूते की तरह'।

आखिरी आदमी की लड़ाई में वे एक व्यापक व सूक्ष्म समझ और दुर्दम्य जुझारूपन की प्रेरणा देते हैं। 'अभी कोई थका नहीं' कविता में वे कहते हैं- ''वैसे थका नहीं हूं मैं/अभी तो होड़ लेना है सपने देखने वाली/आंखों से/काजल चुराते सौदागरों से और/चांद पर कालोनियां बसाने वालों से/....

..........और यथास्थिति पोषक धर्म-संस्कृति पर- 'जात-पात नियम धरम में/खाँटी देशज/खण्डहर की मर्यादा के मानक/अपना उल्लू सीधा करते-करते/जाग रहे हैं बनकर उल्लू/....एक अरसा हुआ/लापता है रीढ़ जाने कैसे/खड़े हुए हैं भरी सभा में तनकर। धर्म-संस्कृति के बारे में कवि की सोच वैज्ञानिक और मानवीय है। 'कबीर के कान' कविता में वे कहते हैं- 'किसके मेहमान/धर्म और ईमान/सार्थक है/सिक्के की पहचान.......नाहक परेशान कबीर के कान'।

धर्म का प्रभाव बनाम आतंक व्यक्त करती कविता है- 'शहर में महायज्ञ'- 'शहर शामिल था महायज्ञ में/उस दिन/राजधानी भी वहीं रही मौजूद/सागर गर्जना लेकर आये थे/दूर-दूर से/आहुतियां के लिये तिलकधारी यज्ञाचार्य/......भय घर के भीतर कैद रहा/मैं निकल आया सड़क पर/बचे हुए शहर के साथ'।

'फिर भी बचा रह जाता है देश' कविता में'- चुनाव में- 'बढ़-चढ़कर/बताते हैं स्वाद गूंगे भी गुड़ का/चुनाव के दिनों में/ ....घर के उपर मंडराते हैं पालूत कबूतर/आसमान में कवायद करती हैं चील/चारा डालकर बैठती है मछली/ ......अंधेरे में उभरती हैं डरावनी आकृतियां/चुनाव मके दिनों में'।

पूंजी और बाजार को चुनौती वे अनेक जगह अनेक तरीकों से देते हैं- 'बाजार' कविता में- 'बाजार से घर वापस आये/बहुराष्ट्र से/अपने आपको बचाकर लाये/सब मिलकर घर में/एक साथ/जोर से खिलखिलाए/हमारी हंसी में बाजार शामिल नहीं था'।- 'परम्परा'- कविता कहती है- कठिन दिनों में भी/बची है/हमारे पास/और बची रहेगी/दुनिया से लगभग/विलुप्त होती/पुरखों की दी हुई दुर्लभ हंसी...... मेंहदी की परम्परा है/इसके साथ/यह बढ़ती है बांटने से/मौसम बनकर/रंग नहीं बदलती'।

'इन दिनों- कविता कहती है-' मेरे गांव में इन दिनों/माचिस बिकती/ .....भट्टी की तरह सुलगता है/यहां का हर आदमी/' ये संग्रह की आखिरी कविता की आखिरी पंक्तियां हैं। हर कविता अर्थ को एक नया विस्तार देती है। सोचने समझने को एक बड़ी जमीन छोड़ती है।

बी-36, जनता कालोनी
मन्दसौर - 458 001
मो. 08989495802

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं सड़क हूँ/कविता संग्रह/अर्पण कुमार/बोधि प्रकाशन, जयपुर

रंगों और कूचियों से बना चित्र संसार

ओम भारती

हिन्दी कविता के वर्तमान का पर्दा अनेक रंगों और कूचियों से बना चित्र-संसार लिखे हुए है, जिसमें युवा पीढ़ी के अनेक कवियों ने अपना हस्तक्षेप किया है और अच्छे प्रभावी ढंग से किया है। कविता के पाठकों ने भी इस तरह उभरते युवा रचनाकारों को आत्मीयता के साथ अपनाया है। इन युवतर कवियों में से एक-अर्पण कुमार का पहला कविता-संकलन 'मैं सड़क हूँ' पिछले वर्ष ही प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में उनकी तैंतीस कविताएँ हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ मध्यम आकार की हैं, और दो-तीन पृष्ठों में तो जाती ही हैं। कुछ छोटी कविताएँ भी हैं, जो एक श्रंखला की कड़ियों जैसी हैं, और उनके योग से भी एक मझोली कविता बन जाती है। उनकी इस प्रकार की कविताओं की बानगी 'स्त्री-नदी, "हाशिया, "कुआं, ''खूंटी', 'धूप', 'शहर में कवि, ''मैं सड़क हूं' आदि रचनाओं में उपलब्ध है। 'मैं सड़क हूं' कविता के शीर्षक को ही उन्होंने अपने कविता- संग्रह का भी शीर्षक बनाया है। यह कविता इन पंक्तियों से शुरू होती हैं-

'तुम मुझे बनाते हो
और फिर रौंदते हो
अपने पैरों के जूतों
अपनी गाड़ी के पहियों
और अपनी तेज़ अंतहीन रफ्तार से'

कविता के दूसरे खंड में कच्ची पगडंडी को वे इस पक्की चमचमाती सड़क के बरखिलाफ खड़ा कर देते हैं, और वह सड़क के मुंह से यह भी कहलवाते हैं-

'धूल से सनी पगी
मैं कोई कच्ची पगडंडी नहीं हूं
जो तुम्हारे नंगे पांवों के नीचे बिछकर
उनकी बिवाइयों का हाल जान सकूं'

कविता को अंत पर लाते हुए वे सड़क को 'सफलता के साधन' वाला आशय देते हैं और सफलता का सत्य इस तरह व्यक्त करते हैं-

'तुम जिसे अपनी सफलता कहते हो-
और जिसका बखान करते हुए थकते नहीं हो
दरअसल वह तुम्हारा बेरंग और निष्ठुर होना है'

इसी बिन्दु पर ले जाकर वे कविता को समाप्त करते हैं। साफ है कि इस युवा ने सड़क जैसी चीज को एक अलग दृष्टिकोण से देखा और कविता में रखा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1977 में जनमे अर्पणकुमार के भाव-जगत का द्वितीय पक्ष 'महानगर में एक कस्बाई लड़की', 'स्त्री नदी', उपन्यास बनती आंखे, 'सभी तुम हो', 'स्त्री द्वैत ,'अंगीठी बना चेहरा' जैसी कविताओं में सामने आता है, जहां वे स्त्री के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। स्त्री की शक्ति को पहचानने की कोशिश करते हैं। इसके साथ ही वे आज के समय, बाजार के हमले और सामाजिक द्वंद्वों के पहलुओं का भी स्पर्श करते हैं।

अर्पणकुमार ने अपना संग्रह अपनी मां और उसकी ममता को समर्पित किया है। इन कविताओं को पढ़कर कहा जा सकता है कि वे अपने घर-संसार के एक घरेलू कवि की तरह प्रस्तुत हुए हैं। 'आश्वस्त पिता', 'बुजुर्ग दिल्ली आये हैं', 'वृद्ध की डायरी में', 'आजकल मैं पटना जंक्शन पर नहीं उतर रहा हूँ', 'तीन पीढ़ियों के बीच चौथी पीढ़ी', 'कुआँ', 'शहर में कवि', 'अंगीठी बना चेहरा', 'रोटी खाने का हक', आदि कविताएँ उनके इस रूप को धीरे-धीरे मगर मजबूती से तय करती हैं। वे संबंधों की दुनिया में ही रहते हैं। भाषा के इस्तेमाल के मामले में भी वे 'अपनी ठेठ घरेलू/मगर सहज तर्क कौशल से चालित' मालुम पड़ते हैं। उनके भीतर जो मनुष्य है, उन्हीं के शब्द लेकर बताया जाये तो 'वह घर में और बाहर अकेला पड़ता आदमी' है।

अर्पण कुमार की इस किताब में 'एक पेंशनयाफ्ता की जिंदगी जी रहे पिता', 'असमय बूढ़े हो चुके पिता', 'पित्ताशय के कैंसर से ग्रस्त एवं जीवन के साठवें वसंत में काल-कवलित हो जाने वाले पिता' बहुत ज्यादा आये हैं। कुछ-कुछ पितृ-ऋण चुका देने जैसा है उनका यह काव्य-प्रयास। इसी तरह माँ भी बार-बार आती है, बूढ़ी और अकेली माँ जिसका पति संसार छोड़ गया है और बच्चे यह घर छोड़कर चले गए हैं, रोजी रोटी के लिए। 'कुआं खाली है जैसे माँ की माँग' जैसी मार्मिक अभिव्यक्तियां भी इस संग्रह में आ सकी है। 'मजिस्टर राम का शरणार्थी', 'रोटी खाने का हक', 'सुनना', 'अंधेरा', 'मेरा देवता' आदि कविताएँ कवि की संभावनाओं को उजागर करती हैं। इन कविताओं से भरोसा बंधता है कि युवा अर्पण कुमार आगे और सशक्त रचनाओं के साथ आयेंगे। 'मजिस्टर राम का शरणार्थी' 'धूमिल के मोचीराम की याद दिलाने वाली रचना है, जिसमें एक गरीब जूतों की मरम्मत करने वाला मोची है, जिसकी विपन्नता में भी आत्म विश्वास और दृढ़ता है जो कवि के लिये प्रेरक विशिष्टता है। मानवीयता के पक्ष को इस युवा कवि ने मजबूती से पकड़ रखा है। अपने अंदर का सब कुछ एकबारगी उगल देने की उसकी कोई विकलता या कहें विवशता नहीं है। कवि कहता है कविता में *- मैं किसी के सामने धीरे-धीरे खुलना चाहता हूँ.... मैं एकदम से नहीं खुलता, नहीं खुलना चाहता/ इसे मेरी परदादारी समझें/या मेरा डर/यह आपके ऊपर है/* (परदे से झांकता डर, पृष्ठ 79-80)। अर्पण कुमार अपनी रचनाओं से पाठक को यह बताना नहीं भूलते कि मैं भी तुम्ही में से एक हूँ।'

बोधि प्रकाशन की इस किताब का 'प्रोडक्शन' बहुत सुंदर है। 120 पृष्ठों की किताब मात्र 75 रुपयों में उन्होंने दी है, अन्य प्रकाशक बंधु दो सौ रुपयों से कम दाम नहीं रखता। एक और विशेषता है आवरण। आवरण के चित्रकार हैं देश के सुप्रतिष्ठित कविः विजेन्द्र।

द्वाराः इलाहाबाद बैंक
मंडलीय कार्यालय, गौतम नगर
भोपाल (म.प्र.)- 462023
मो. 09425678579

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा सांस लेती है/कविता संग्रह/कुमार सुरेश/अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद (उ.प्र.)

पाठकों की सांसों में हस्तक्षेप करती हुई कविताएं

मोहन कुमार डहेरिया

'भाषा सांस लेती है' कुमार सुरेश का नवीनतम काव्य संग्रह है। पिछले कुछ वर्षों में जिन युवा कवियों ने समकालीन कविता के परिदृश्य को विस्तृत आयाम, एक नई ऊंचाई और सहज मानवीय गरिमा दी है उनमें कुमार सुरेश का नाम उल्लेखनीय है। इस कविता संग्रह को पढ़ते हुए यह स्पष्ट एहसास होता है कि जीवन की नब्ज और अपने समय तथा समाज के सभी महत्वपूर्ण घटनाक्रमों पर कवि की चौकन्नी तथा गहरी मानवीय नजर हमेशा बनी रहती है। इस संग्रह को पढ़ते हुए मुझे एक अत्यंत प्रसिद्ध विदेशी कवि की ये काव्य पंक्तियां सहज ही ध्यान में आ रही हैं। *'नए कवियो हमारा पीछा मत करो/किया करते थे जैसे हम/कभी हमारे समय के/महान कवियों का'* स्पष्ट है इन पंक्तियों से निकली ध्वनि यह कहती है कि हर कवि को अपना रास्ता खुद बनाना चाहिए बजाए तत्कालीन समय के महान कवियों का अंधाधुंध पीछा करने के। कुमार सुरेश कविता के इस कठोर तीक्ष्ण तथा पथरीले प्रतिमान पर एकदम खरे उतरते हैं उन्होंने इस संग्रह से अपनी एक अलग पगडंडी तो बनाई ही है। उनके पास कविता कहने का अपना एक अलग काव्य मुहावरा है जिसकी अपनी एक अलग ताकत है। यही उनके काव्य व्यक्तित्व की एक अलग पहचान भी है।

कुमार सुरेश कई जगह शब्दों का अपनी कविताओं में इस तरह उपयोग करते हैं कि उन शब्दों के परंपरागत अर्थ एकदम छिटककर अलग हो जाते हैं और एक नया ही मार्मिक दृश्य प्रस्तुत हो जाता है कवि की 'हुनरमंद' कविता की ये पंक्तियां देखें *'जानती है वो लड़की/कैसे दूध में पानी मिलाकर/चार गुना किया जा सकता है/जिससे बच्चों को लगता रहे/वे रोज दूध पीते हैं।'* इस कविता के सारे दृश्य ऐसी ही मार्मिक तस्वीरों से भरे हैं। जीवन और मनुष्य की क्षमताओं की लाचारी से 'हुनर' शब्द को जोड़कर एक रचनात्मक जादूगरी से कवि ने दुखों तथा यातनाओं के एक बेहद गाढ़े रंग वाली कविता की रचना की है। संवेदनाओं की इसी तनी हुई रस्सी पर चलकर आगे की कविताओं में 'झाँई' कविता में विलुप्त होते जा रहे कुछ परंपरागत काम-धंधों की पीड़ा को कवि यों रेखांकित करते हैं *'बदरंगों को चमकाने वाले आदमी को/अब बच्चे नहीं पहचानते/कलई वाले की आंखें में अब/चमक नहीं/बदरंग बर्तनों की/झाँई तैरती है।'*

कुमार सुरेश के काव्य कर्म की एक और खूबी ने मुझे प्रभावित किया है। वह है कम से कम शब्दों में वर्तमान समय तथा समाज के द्वंद्वों तथा विस्फोटक सच्चाईयों को रखना। इससे उनकी कविताओं में संवेदनाओं तथा अनुभवों का केन्द्रीय भाव बना रहता है तथा कविताओं की काया पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनावश्यक बोझ भी नहीं पड़ता है। जाहिर है भाषा के स्तर पर उनकी कविताएं संवेदनात्मक शैथिल्य तथा अनुभव के बिखराव का शिकार नहीं बनती और पाठक कविता के कथ्य के एक सूत्रबद्ध धागे में स्वयं को पिरोया हुआ महसूस करता है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा था कि कुमार सुरेश जीवन और समय रूपी नदी की सभी परतों, लहरों तथा अंदरूनी धाराओं पर नजर रखने वाले चौकन्ने कवि हैं। शिक्षा का व्यवसायीकरण, अमानवीयकरण तथा नैसर्गिक बचपन का वध आज के शिक्षामाफिया गिरोहों की एक लालची प्रवृत्ति बनकर उभरी है। 'प्यारी बेटी स्कूल जा रही है' कविता की इन पंक्तियों का यहां उल्लेख करना प्रासंगिक होगा *'अभी अभी हमने लगभग जबरदस्ती/बिस्तर से खींचकर निकाला है उसे/हाथ में थमा दिया है ब्रश/उनींदी वह ब्रश कर रही है।'*

यह अच्छी बात है कि कवि अपने जीवन के दुखों, संघर्षों जटिलताओं तथा सपनों को लेकर किसी तरह के आसमानी रोमांटिज्म में नहीं पड़ते हैं। यथार्थ की खुरदुरी जमीन पर खड़े होकर 'इसी वर्तमान में कविता' में तभी तो कह पाते हैं *'इसी पृथ्वी की कोर पर/मनुष्य पसीने से तरबतर/इसी के छोर पर/ठिठुरता ठंड से/ सभी मध्यांतर यहीं'* 'संग्रह में एक और महत्वपूर्ण कविता है 'खाँसी'। इस कविता में कवि खाँसी को सबसे बड़ा धार्मिक प्रवचन कहता है। इसी बहाने मनुष्यों की देह की नश्वरता को भी रेखांकित कर देता है। यहां 'धार्मिक प्रवचन' शब्द में असंख्य व्यंग्य धर्मी तीक्ष्ण और गर्म किरणें हैं। साथ ही तथाकथित धर्मगुरुओं के धर्म प्रवचन पर कलम की छैनी की एक बारीक चोट भी। कुमार सुरेश के इस संग्रह में कहीं कहीं समकालीन कविता की कुछ जानी पहचानी काव्य रूढ़ियां भी हैं तथा कुछ कविताओं में कहीं कहीं थोड़ी उपदेशात्मक का पुट भी आ गया है लेकिन इस संग्रह की ढेरों कविताओं के तेज बहाव में इस तरह की चीजों का स्वर काफी हद तक क्षीण भी हो गया है। आशा है इस कविता संग्रह को पढ़ने के बाद पाठकों को अपनी साँसों के साथ ही कवि की कविताओं की तेज तेज साँसें भी सुनाई देगी और वे कुमार सुरेश के अगले कविता संग्रह का एक तेज बेचैनी के साथ इंतजार करेंगे।

केन्द्रीय विद्यालय, रूद्री, धमतरी
जिला-धमतरी-493776 (छ.ग.)
मो. 7354393868

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी का लोकतंत्र/आलोचना/पल्लव/आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)

आम लोक की कहानियों का लोकतन्त्र

डॉ. अनंत भटनागर

''कहानी का समकालीन परिदृश्य विपुल और विविधवर्णी है। इस परिदृश्य में पुरानी पीढ़ी के कथाकार सक्रिय बने हुए हैं तो नवोदित-युवतम कथाकारों का आगमन आश्वस्ति भरा है। नयी-पुरानी पीढ़ी के कथाकारों को जो बात एक सूत्र में बांधती है, वह है सामान्य के प्रति समर्पण। इस समर्पण ने इन कहानियों को समृद्ध किया है और उन्हें व्यापक पाठक वर्ग की पसन्द का अधिकारी बनाया है।'' हिन्दी कहानी के वैविध्य और आम आदमी के प्रति समर्पण को खुली आंखों से देखने वाले युवा आलोचक पल्लव की यह उक्ति उनकी प्रथम आलोचना पुस्तक ''कहानी का लोकतन्त्र'' की संकल्पना की तरह कहानी को प्राध्यपकीय आलोचना द्वारा निर्मित खांचों में देखे जाने के स्थान पर व्यापकता एवं सम्पूर्णता में देखे जाने का आग्रह करती है। हिन्दी कहानी के सौ-डेढ़ वर्षों के इतिहास में विभिन्न नारों व आन्दोलनों के आधार पर इसे विभाजित व वर्गीकृत किये जाने की परम्परा से अलग हटकर पल्लव ने सम्पूर्ण कथा फलक को विहंगम रूप से देखते हुए मुख्यत: समकालीन कथाकारों की कहानियों के आधार पर इसके लोकतांत्रिक स्वरूप दूसरे शब्दों में आम आदमी के प्रति समर्पण को केन्द्र में रखकर आलोचना का नया औजार निर्मित किया है। उनकी यह नवीन आलोचना दृष्टि स्वागत योग्य है।

साहित्य में सौन्दर्य बनाम सोद्देश्यता की बहस को ही आगे ले लाते हुए पुस्तक के पहले अध्याय में कहानी में विचारधारा की उपस्थिति पर प्रमुख कहानीकारों के विचारों के आधार पर विमर्श प्रस्तुत किया गया है। कहानी की बनावट में विचारधारा की संश्लिष्ट उपस्थिति की पक्षधरता इस बहस का निष्कर्ष भी है तो पल्लव की आलोचकीय मानदंड भी। पुस्तक में विश्लेषित अथवा उल्लेखित अधिकांश कहानियों में सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक सरोकार है। बाजरीकरण व उदरीकरण के दौर में निरन्तर परिवर्तित होते परिवेश को उजागर करने वाली कहानियों को केन्द्र में रखना पल्लव की विचार के प्रति प्रतिबद्धता का घोतक है तो केवल विचारधारा का नारा बन जाने वाली कहानियों की कमतरी को आंकना उनके मूल्यांकन की स्पष्टता का परिचय है।

'कहानी का लोकतन्त्र' में ग्रामीण जीवन के परिवेश से आई अनेक कहानियों का समकालीन सन्दर्भ में विश्लेषण किया गया है। हिन्दी कहानी में गांव प्रेमचन्द युग से विद्यमान है। शहरीकरण से बदलते गांव प्रेमचन्द के युग का सत्य था तो बाजारीकरण से बदलते गांव समकालीन यथार्थ है। 'कहानी के इस ओर' अध्याय में पल्लव ने ग्रामीण परिवेश के महत्वपूर्ण कथाकरों की कहानियों का विश्लेषण किया है। इस अध्याय के एक भाग में वे कथाकार है जो ग्रामीण परिवेश में रहते हुए अपनी बारीक पकड़ से आज के गांव का चेहरा उजागर करते है तो वही दूसरे भाग में ग्रामीण परिवेश की कहानियां लिखने वाले वे रचनाकार है जो अब शहरों में आकर बस गये है। रचनाकारों का यह विभाजन नवीन होने के साथ महत्वपूर्ण भी है। नए परिवेश से परिचय रचनाकार की दृष्टि को व्यापक बनाता है और निस्संदेह इससे उसकी सृजनात्मकता पर प्रभाव पड़ता है। सत्यनारायण पटेल, चरणसिंह पथिक, एस.आर. हरनोट, अभिषेक कश्यप, भगवानदास मोरवाल, कैलाश वनवासी, महेश कटारे और पंकज मित्र के कथा संसार को प्रस्तुत करते हुए इस अध्याय में पल्लव की चरणसिंह पथिक के लिए कही गई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह पंक्ति- ''चरणसिंह की कहानियां गांव के ठीक बीच से आई है। ये धूप का चश्मा लगाकर जूतों की पॉलिश की फिक्र करते हुए नहीं आई है बल्कि इन में धूल, गुबार और पसीने की चिपचिपाहट की चुभन है'' वस्तुत इन सभी कहानीकारों के लिए सटीक लगती है।

गांव की ही बात करते हुए पुस्तक में 'बैल, किसान और कहानी' महत्वपूर्ण अध्याय है। सत्तर के दशक में लिखी गई विजेन्द्र अनिल की कहानी 'बैल', अस्सी के दशक में स्वयं प्रकाश की 'नैनसी का धूड़ा' और समकालीन दौर में कैलाश बनवासी की कहानी 'बाजार में रामधन' को एक साथ विश्लेषित करते हुए किसानी और खेती के हर दौर में संकट को स्पष्ट किया गया है। किसानी से मजदूरी और मजदूरी से आत्महत्या के पड़ावों को प्रस्तुत करते हुए पल्लव की ये पंक्तियां द्रष्टव्य है- ''तीनों कहानियां इसी शोषण और हाहाकार का गीत सुनाती है। 1936 में गोदान लिखे जाने को सत्तर बरस बीत गए है, न गोदान अप्रांसगिक हुआ और न गाय-बैल खरीदने-पालने की आस ही पूरी हो पाई। प्रेमचन्द से कैलाश बनवासी तक किसान की यह दुर्दशा जारी है।''

पुस्तक में दलित साहित्य पर चर्चा ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों पर केन्द्रित अध्याय- 'कहानी में रचनात्मक मुठभेड' में की गई है। वाल्मीकि को उद्धत करते हुए- ''सच तो यह कि मैने जैसा जीवन देखा- भोगा, महसूस किया, वैसा ही लिखने की, दिखाने की कोशिश की। मेरे इर्द-गिर्द की दुनिया अश्लील है तो इस अश्लीलता को मैं शब्दों के किस आवरण में छिपाने की कोशिश करता'', पल्लव उनकी कहानियों के आवेग और बैचेनी को रेखांकित करते हुए लिखते हैं:- ''दलित चेतना का वस्तुगत आशय पूरे विवेक और तेज के साथ है, वहीं अपनी संरचना में इनका भाषा-शिल्प भी वर्चस्ववाद को चुनौती देता प्रतीत होता है। ये कहानियां प्रवाहपूर्ण है। जिन्हें पढ़कर पाठक अपने भीतर दलित जीवन की क्रूर सच्चाईयों को बेचैनी के रूप में अनुभव करता है। दलित साहित्य की प्रांसगिकता को मैनेजर पांडेय के तर्कों के आधार पर पुष्ट करते हुए पल्लव इन कहानियों को भारतीय समाज के विकसित होने का रास्ता मानते हुए इस रचनात्मक मुठभेड की आवष्यकता के पक्ष में खड़े दिखलाई देते है।

समकालीन साहित्यिक आलोचना में स्त्री विमर्ष एक अपरिहार्य हिस्सा है। पुस्तक के 'स्त्री का संसार और कहानी' अध्याय में मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, सुधा अरोडा और वोल्गा के कतिपय कहानी संग्रहों अथवा कहानियों के आधार पर स्त्री संसार के खुले-अधखुले पहलुओं को विश्लेषित किया गया है। किन्तु स्त्री विमर्श पर इससे भी महत्वपूर्ण अध्याय 'इस्मत चुगताई की घरवाली' है। स्त्री विमर्श के दस-बीस वर्ष पुराने मुहावरे की तुलना में इस्मत चुगताई की सात-आठ दशक पुरानी कहानी 'घरवाली' मूल्यांकन करते हुए पल्लव अधिक विश्वसनीय आलोचक प्रतीत होते है। यह अकेली कहानी स्त्री जीवन की विडम्बनाओं का संसार ही न होकर उन सभी पक्षों को उजागर करती है जिन परिस्थितियों में स्त्री को 'स्त्री' बनना पड़ता है। वर्तमान दौर में जब स्त्री विमर्श के नाम पर कहानियों को बोल्ड बनाने का फैशन चल पडा है, संभवत: उसी को इंगित करते हुए पल्लव इस्मत चुगताई की इस कहानी को 'बोल्ड' और 'समझदार' बतलाते हुए फिर से पढ़े जाने का आग्रह करते है। 'बोल्ड' के साथ 'समझदार' का विशेषण उन कहानीकारों व विमर्शवादियों के लिए संकेत है जो बोल्ड होने को ही स्त्री विमर्श समझ चुके है।

'कहानी का लोकतन्त्र' पुस्तक में यद्यपि भाषा व शिल्प सम्बन्धी परम्परागत आलोचनात्मक उपकरणों को प्रयुक्त नहीं किया गया है किन्तु 'पाठकीय भागीदारी का आह्वान करती 'कहानी' अध्याय कहानी के शिल्प पक्ष पर पल्लव की दृष्टि को स्पष्ट करने वाला उल्लेखनीय अध्याय है। वर्तमान दौर में जब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोरंजन के अनेक साधन उपस्थित हैं तथा उपभोक्तावाद-जन्य व्यस्तताओं के बीच समय का अभाव हो तो कोई पाठक किसी कहानी को क्यों पढे ? कहानीकार क्या करें कि उसकी कहानी आस्वाद योग्य हो जाए। इन पहलुओं पर विचार करते हुए पल्लव कहानियों में रोचकता व प्रश्नानुकूलता उत्पन्न किये जाने पर जोर देते है। स्वयंप्रकाश, रमेश उपाध्याय, उदयप्रकाश व रघुनन्दन त्रिवेदी की कहानियों को उद्धृत करते हुए वे लगभग किस्सागोई शैली में प्रारंभ हुई कहानियों के धीरे धीरे रोचक प्रवाह में बंधते जाने का आग्रह रखते है। कहानी की बनावट को महत्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने लिखा है कि - ''कथ्य की विदूपता को कहानी की बनावट में यदि रोचक तरीके से ना कहा गया तो कहानी निबन्ध या कोरी गप्प होकर भी रह सकती है।''

बाजारीकरण, उदारीकरण व उपभोक्तावाद के दौर में आम व्यक्ति, गरीब, किसान, दलित व स्त्रियों को केन्द्र में रखकर रची गई कहानियों को जानने समझने की दृष्टि से यह पुस्तक महत्वपूर्ण है। किन्तु पुस्तक की सीमा यह है कि इसमें कुछ अवान्तर लेख भी सम्मिलित हैं, जिन्हें पढकर यह स्पष्टत: प्रतीत होता है कि ये कहानी संग्रह की समीक्षा अथवा कहानीकार विशेष पर केन्द्रित लेख हैं। अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्ति में ये लेख सार्थक हैं किन्तु इनका इस पुस्तक में संचयन पुस्तक की क्रमबद्धता, तारतम्य एवं प्रवाह को बाधित करता है। कतिपय अध्याय पृथक अवसरों पर रचित प्रयोजन परक समीक्षा प्रतीत होते है। अपने आप में स्वतन्त्र समीक्षाएं होने के कारण इन अध्यायों में दुहराव भी है तो साथ ही कई कहानियों का आनुपातिक उल्लेख भी बढ गया है। कतिपय कहानियों व कहानीकारों के प्रति पल्लव का अतिरिक्त अनुराग भी झलकता है।

हिन्दी कहानी के सम्पूर्ण परिदृश्य को अपनी दृष्टि में रखते हुए समकालीन हिन्दी कहानियों को जांचते परखते हुए पल्लव ने वर्तमान समय में कहानी की सार्थकता के प्रष्न को बखूबी उठाते हुए लिखा है- '' क्या कहानी कमजोर का हथियार होती है ? क्या किसी कहानी से किसी कमजोर को ऐसी ताकत मिल सकी है कि वह उठकर सीधे भिड़ गया हो ? आखिर कहानी नाम की यह विधा कैसे साहित्य में अपना वजूद बनाए है जबकि इसमें दर्शाए गए कथा तत्व को इससे कहीं ज्यादा प्रभावी ढंग से दृष्य माध्यम चित्रित कर रहा है। लेकिन ऐसा है ही कि कहानी अपने तरीके से दुनिया को देख रही है, न केवल देख ही है बल्कि पहचान भी रही है और आगाह भी कर रही है।'' दृष्य माध्यम के ग्लैमर के छलावों के बीच गंभीर कहानियां लिखीं-पढ़ीं जा रही हैं और इसी वातावरण में पल्लव जैसे युवा आलोचक भी निर्मित-स्थापित हो रहे हैं। यह अपने आप में अत्यन्त आश्वस्तिपरक है। जिस तरह ग्लैमर की चमक से अप्रभावित पल्लव की युवा दृष्टि उन्हें साहित्य से जोडे रखने में समर्थ है ठीक उसी तरह उन्हें उनका आलोचकीय विवेक उन्हें किसी कहानी अथवा रचनाकार की प्रसिद्धि-प्रतिष्ठा से भी अप्रभावित रखता है। अल्प ज्ञात कहानीकार की अज्ञात कहानी के सशक्त पक्ष को वो जिस सजगता के साथ अभिव्यक्त करते हैं तो वही तीक्ष्णता प्रतिष्ठित कहानीकारों की कमजोरियों को उजागर करने में भी दिखलाई देती है। रचना-रचनाकारों की चमक-दमक से अप्रभावित पल्लव की यह दृष्टि उनका निजी लोकतन्त्र है और वह 'कहानी का लोकतन्त्र' के रूप में बखूबी उद्घाटित हुआ है। पल्लव का आलोचकीय विवेक, अभिव्यक्ति कौशल व वृहद तटस्थ दृष्टि हिन्दी कथा आलोचना को समृद्ध करेगी उनकी पहली पुस्तक इस विश्वास कों जगाने व सींचने में सफल है।

प्राचार्य

विजय सिंह पथिक श्रमजीवी कालेज, अजमेर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बोधिसत्व भी नहीं आये/कहानी संग्रह/लोक बाबू/ सुलभ प्रकाशन, मेरठ कैण्ट

'बोधिसत्व कभी नहीं आयेंगे!'

माताचरण मिश्र

'बोधिसत्व भी नहीं आए!', 'टीले पर चाँद' के बाद लोकबाबू का दूसरा नव प्रकाशित कथा संग्रह है जो एक लम्बे अंतराल के बाद पाठकों के सामने आया है। लोकबाबू मानवीय मूल्यों को गहरी पहचान रखने वाले अपनी ढब के अलग कथाकार हैं। उनकी कहानियों का यथार्थवादी फ़लक समाज में बहुत गहरे तक व्याप्त शोषण की उन अन्धगुहाओं तक जाता है और अपने बहुत सामान्य निरीह पात्रों के माध्यम से दर्शाता है कि इससे बच पाने का रास्ता कहीं और से नहीं हमारे अपने भीतर से जाता है। जिसे हम देखना भूल गए हैं और सारी विपदाओं के लिए प्रारब्ध को ही दोषी ठहरा रहे हैं।

इस कथा संग्रह में उनकी बारह कहानियां संग्रहित हैं उन्हें पढ़कर आसानी से टरकाया नहीं जा सकता। क्योंकि उनमें वर्णित मानवीय त्रासदियों से गुजरते हुए वंचितों का यह अनुभव संसार उन जटिल परिस्थितियों को भी चिन्हित करता है जो हमारे हो रहे शोषण के वास्तविक कारण हैं। इनमें हमारे समय के उजड़ते हुए गांवों और छोटे-छोटे कस्बों के जीवन का कारुणिक यथार्थ ही सामने नहीं आता बल्कि इनके माध्यम से उन तमाम विसंगतियों की गहरी पहचान भी की जा सकती है।

'बोधिसत्व भी नहीं आए' का रामलाल एक सामान्य सा रिक्शाचालक है जो बुद्ध को नहीं जानता पर बुद्ध की करुणा उसमें भी हिलोरें लेती रहती हैं। जो कदम कदम पर अपनी सहजता के कारण उन सभी से ठगाता रहता है जो उसकी रोजी के वाजिब हक को मारते रहते हैं। कोई छुट्टा नोट न होने के कारण, कोई जानबूझकर। अजनबी तो अजनबी-जाने बूझे पुराने परिचित भी-जो बरसों अपने बचपन में उस पर सवारी गांठते रहे हैं, जानवरों की तरह फिर भी- उसका तय किया गया भाड़ा भी नहीं देते। और तो और फूटी हुई शराब की बोतल से चन्द बूंदें खैरात में दे और मछभात खिलाने का झूठा वायदा कर उसे फिर दयनीयता के हवाले कर जाते हैं। अपने बोधिवृक्ष के नीचे खड़े होकर भी जो अपने प्रश्नों के हल नहीं ढूंढ़ पाएगा! इसकी भी तलाश उसे खुद से ही करनी होगी। यहां जो आदमी कहे जाते हैं उनमें परले सिरे की पाशविकता और वह जो जानवर की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा है उसमें भी रिक्शे के नीचे सोए हुए कुत्ते को आहत होने से बचा लेने की अपार करुणा है। यहां किसी फरिश्ते का अवतार नहीं होगा, बोधिसत्व कभी नहीं आयेंगे! जिम्मा तो उसे ही उठाना होगा।

समाज में गहरे तक व्याप्त छल कपट, सामने आए के वाजिब हकों को मार लेने वाली मानसिकता, मुढ़ीपार रेलवे स्टेशन के पास बसे हुए महुआ के फूलों से महमहाते और मताते भोले भाले 'फूलझर' गांव के आदिवासी परिवार के मुखिया ललित और उसके पारिवारिक सदस्यों की विडंबनाओं की खुद्दारी से जूझते उन सामान्य से पात्रों की कारुणिक कथा है। जहां समूचा परिवार महुए के मद में आखिरी दिन के सारे सुख भोग और व्यंजनों का आनंद लेता हुआ अचानक अपनी सारी भुखमरी और समस्याओं का आसान सा हल ढूंढ़ लेता है। कहानी का मुजरिम और उसका परिवार मृत्यु की सारी अनिवार्यता और कारुणिकता को ठेंगा बताते हुए महुए के फूलों सा झर जाता है। जहां चाहकर भी उस वंचित परिवार के लिए कुछ भी करना संभव नहीं रह जाता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'जश्न' एक अनूठी कहानी है और प्रेरित करती है कि जो दूसरों के लिए जिन्दा रहते हैं वही 'लाल सलाम' के सही हकदार हैं। समस्याओं का हल उसी मानसिकता से कभी नहीं निकाला जा सकता। जिस मानसिकता के चलते वे हमारे आसपास पैदा हुई हैं। बिना वाजिब प्रतिरोध किए उनके हल कभी नहीं ढूंढ़े जा सकते। हमें उनसे दो चार होना ही पड़ता है और कॉमरेड मुश्ताक का रास्ता ही सही रास्ता है जो अपने से शुरू होकर ही सब तक जाता है।

कहानी 'स्कूटर' हो या 'दुश्मन' वे मानव मन के आड़े अतरों तक जाती हैं जहां उसे भय ऊपर चढ़ने में नहीं, नीचे उतरने में लगता है। 'स्कूटर' जो कहने को आवागमन का एक बहुत सामान्य सा साधन है पर कैसे वही पुराना हो जाने के बाद भी परिवार का एक अहम सदस्य बन जाता है या 'दुश्मन' जहां एक पिता प्यारा सिंग अपने बेटे को ठीक करने के लिए गुंडे लगा देता है। वे इतने निरीह बना दिए गए हैं कि अपने उस दुश्मन को भी नहीं पहचान पा रहे हैं जो उनके वास्तविक दुश्मन हैं। दरअसल ये हमारे आपके अनचाहे भय ही हैं जो भूत बनकर हम पर सवारी गांठ रहे हैं परन्तु हम उन्हें पहचान तक नहीं पा रहे हैं। इस तरह लोकबाबू मानवीय मन के गहरे अध्येता की तरह सोचते हैं और एक शिल्पकार की तरह उन्होंने अपनी इन कहानियों को रचा है और मानवीय नियति के अतिरिक्त अक्षर पढ़े हैं। इनकी कहानियां यदि हमारे दुख और पीड़ा की सजीव करती है तो उनसे बाहर आने का रास्ता भी सुझाती हैं।

'खुशी' भी एक मानसिक स्थिति की कहानी ही है जो ग्राम सुधार के नाम पर गांव के कल्याण, अखबार में फोटो, चारों ओर की जगर-मगर के बहाने ग्राम सुधार कार्यक्रमों की असलियत को सामने लाती है। जहां दीनदयाल और रामधीन जैसे पात्रों की संवेदनाओं को गाय की तरह दुह लिया गया है या भेड़ की तरह उसका ऊन निकाल लिया गया है और उन्हें दयनीयता के हवाले कर दिया गया है। उन्हें तकलीफ तो तब होती है जब वही पात्र अपने अन्तर्विरोधों की जड़ को पहचान प्रतिरोध के लिए खड़े हो जाते हैं, क्योंकि वे उधार की खुशी नहीं चाहते। वे अपने प्रश्नों के सार्थक हल चाहते हैं जो उन्हें अभी भी मिल रहे हैं।, 'शिव:माम मर्षयतु' के शास्त्री जी, जो जीवन की निस्सारता और निस्संगता का बोध होने पर सारे शास्त्र चिता को समर्पित कर पांडित्य के अपने उस बोझ से मुक्त हो जाते हैं, दरअसल अब कहीं कोई भविष्य नहीं है, फालतू के कर्मकाण्ड और अपने भविष्य को पढ़ लेने की उद्दाम कामनाएं हैं। जहां 'बुखार' कहानी के सिंगारसिंग और पीटर जैसे सामान्य पात्र खुशी मनाने के नाम पर शराब और जुआ के शिकार बन कर रह गए हैं, जिन्हें कोई बचाने नहीं आएगा, जब तक वे स्वयं को शोषण का शिकार होने से न बचाएं।

'जंगल गाथा', 'मछली' और 'चोर अंकल पुलिस अंकल' जैसी कहानियां जंगल गाथायें नहीं तो और क्या हैं। 'मछली' कहानी के सिंह साहब एक बन्द पड़ी कम्पनी के मुलाजिम हैं, जिनकी जिन्दगी के सारे रंगरोगन को तालाबन्दी ने सोख लिया है फिर भी वे मछली के मूड़ (सिर) को खपच्ची में टांग खुश होने का और सबको दिखाने के उपक्रम करते हैं। कितनी खोखली है यह खुशी जो उधार की है, जहां खुश होने के अभिनय में भी दुख की गहन उपस्थिति हो। फिर भी उससे बाहर आने की मानवीय छटपटाहट न हो जैसे कहीं अपनी मानवीय नियति को स्वीकार उसी के अभ्यस्त हो चुके हों। 'चोर अंकल पुलिस अंकल' भी एक अच्छी कहानी है, जिसमें चड्ढी बनियान गिरोह के उम्रदराज सदस्य और एक बच्ची मीनाक्षी के बीच पनपे मानवीय संबंधों की गहन पड़ताल की गई है, जहां चोर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी अंकल है और पुलिस भी अंकल है और थाने में वही बच्ची अच्छी तरह पहचान लेने के बाद भी झूठ बोल कर उस बुजुर्ग को बचा लेती है। लोकबाबू की कहानियों की छुअन मानवीय मन की गूढ़ गुत्थियों को आसानी से सुलझा जीवन के तमाम रंगरेशों को हम तक लाती हैं। उनके दीर्घकालिक कथानुभव मानवीय जीवन को गहराई तक देखते हैं और सही अर्थों में वे आज के मनुष्य और उसकी सारी संभावनाओं को पहचानने वाले कथाकार हैं, इसलिए भी कि वे सारी परिस्थितियों का मूक गवाह बनकर रह जाने वाले कथाकार तो हरगिज ही नहीं हैं। उनकी किस्सागोई और उनका गहन मानवीय जीवन बोध उन्हें एक सार्थक, समर्थ और प्रतिबद्ध कथाकार सिद्ध करता है, वे आसानी से भुलाए जाने वाले कथाकार नहीं हैं, न ही उन्हीं आसानी से अब दरकिनार किया जा सकता है, उम्मीद है। आगे उनकी और भी कहानियां सामने आयेंगी।

ए 19, मिनाल रेसीडेंसी
गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)462023
मो. 09893467069

सड़क पर/कहानी संग्रह/लाल बहादुर/नमन प्रकाशन, नई दिल्ली

भूमण्डलीकरण का परिदृश्य और कहानी का सच

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी

लालबहादुर का वैसे तो पहला संग्रह ही है-'सड़क पर', किन्तु इसमें संकलित 'बैग' कहानी को छोड़कर शेष कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, विशेषत: वर्तमान साहित्य, बया में छप चुकी हैं, किन्तु वर्तमान साहित्य में छपी कहानी 'एक परिचित शहर में' से उनकी पहचान कहानीकार के रूप में बननी शुरू हुई। 'सड़क पर' संग्रह का इस अर्थ में खास महत्व है कि वह बिल्कुल हमारे समय से मुठभेड़ करती हुई कहानी की नयी दुनिया है। सन् 1990 के बाद बदली आर्थिक व्यवस्था ने न केवल अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को भी प्रभावित किया है, संस्थाओं एवं सत्ताओं की क्रूरता को भी बहुआयामी बना दिया है, मनुष्य को अकेला एवं नि:सहाय स्थिति में खड़ा कर दिया है, किन्तु हिन्दी कथाकारों ने इस मन: स्थिति को संवेदना की व्यापकता एवं शिल्प के नयेपन के साथ उद्घाटित किया है। लालबहादुर ऐसे ही कथाकारों की प्रगतिशील पीढ़ी के सिपाही की तरह हैं।

पहली ही कहानी है-'बैग' जिसमें किसान चेतना का मार्मिक स्वर है। सूखती हुई फसल की चिन्ता से शुरू हुई कहानी पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे प्रदेशों की बदहाली के साथ ही विस्थापन की पीड़ा को व्यंजित करती है। इसमें राजेन्द्र नामक युवक के संघर्षों की कहानी है। राजेन्द्र एक साधारण इच्छाओं वाले मनुष्य के रूप में इस कहानी में आता है। उसकी कोई बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं है, गोदान के किसानों की तरह ही, वह भी किसानी को ही अपनी मरजाद समझता है, किन्तु आजादी के बाद भी विकास के सारे माडलों में किसान अनुपस्थित है, तभी तो किसान या तो आत्महत्या कर रहा है अथवा लाठी एवं बन्दूक उठा रहा है, क्योंकि आज भी वह नियति के कुचक्र में फंसा है। यह कहानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन स्थितियों को बेपर्दा तो करती ही है विस्थापन का दर्द लिए रोजगार की तलाश में झुण्ड के झुण्ड निकलते युवा बेराजगारों के संघर्ष को भी पूरी मार्मिकता के साथ उद्घाटित करता है। विस्थापन एवं बेरोजगारी का दंश झेलते युवा वर्ग का संघर्ष दो तरफा है- एक तरफ अपनी जीविका की दुनिया का क्रूर संघर्ष है, तो दूसरी तरफ भीतरी दुनियां का भी संघर्ष है, किन्तु अन्तर्द्वन्द्वों के कारण यह कहानी महत्वपूर्ण है- विशेषकर उस स्थल पर जहां विस्थापित का द्वन्द्व है।

दूसरी कहानी 'इलाज' है, जो रोजमर्रा की जीवन स्थितियों से शुरू तो होती है, किन्तु भूमण्डलीकरण की आहट नातों-रिश्तों में तनाव घोल देती है। पति-पत्नी का जो रिश्ता सहज एवं उल्लास से भरा हुआ था, उसे भूमण्डलीकरण के गर्द-गुबार ने श्रीहीन कर दिया है। भूमण्डलीकरण के प्रति प्रतिरोध का स्वर है, किन्तु संगठनों की दिशाहीनता को भी कथाकार रेखांकित करता है साथ ही में पूंजी की सत्ता के सर्वग्रासी चरित्र को भी कहानीकार ने अत्यन्त सरल भाषा में उद्घाटित किया है, 'अब तो सारे कर्मचारी खूब काम कर रहे हैं। अपने-अपने पदों का औचित्य तैयार कर रहे हैं। उसे मजबूत बना रहे हैं। ताकि अगर निजीकरण हो तो कम उनका पद बचा रहे।' बिखरी हुई शक्तियां निजीकरण की संस्कृति के आगे परास्त होती दिखाई दे रहीं हैं, जो हमारे समय का निर्मत यथार्थ है। यह कहानी भूमण्डलीकरण के साथ ही प्रविष्ट होती उस सांस्कृतिक-सामाजिक सच्चाई को भी सीधे अन्दाज में उद्घाटित करती है जो घर से लेकर कार्यस्थल तक हर जगह उपस्थित है। 'सुखद क्षण' कहानी में उदारीकरण के दौर में एन.जी.ओ. की भूमिका को उद्घाटित करने वाली कहानी है, जो 'पर्यावरण समस्या' जैसे प्रसंग से शुरू होती है किन्तु वह भूमण्डलीकरण की परिघटना से जुड़ जाती है। हरदेव इस कहानी में मुख्यपात्र है, किन्तु उनके भीतर और बाहर सन्नाटा है, क्योंकि सभी भूमण्डलीकरण के गर्भ में पैदा होने वाले स्थितियों से पराजित हो रहे हैं। भूमण्डलीकरण के साथ आई मनुष्य विरोधी तकनीकी क्रांति ने मनुष्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है। बेरोजगारी जैसी समस्या से जूझते परिवार यहां बेदम दिखाई दे रहे हैं। हरदेव जी के दोनों ही लड़के-अतुल, विवेक-उच्चशिक्षा प्राप्त हैं, किन्तु बेरोजगारी के दंश ने जीवन के उत्साह को खत्म कर दिया है-परम्परागत विषयों की शिक्षा बेमानी हो गयी है, शिक्षा की संस्कृति प्रदूषित हो रही है, उसके उद्देश्य बदल रहे हैं। कहानीकार लिखता है कि, 'वैश्वीकरण का नया-नया दौर शुरू हुआ था। बहुत जोर-जोर से प्रचारित किया गया था कि खूब पूंजी-निवेश होगा। नये-नये रोजगार मिलेंगे।' किन्तु ये वादे यहाँ भरभराकर गिरते हुए दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि भूमण्डलीकरण दरअसल एक तरह का अमेरिकीकरण है, जहाँ मूल्य, आस्थाओं के लिए कोई जगह नहीं है, तीसरी दुनिया उनके लिए सिर्फ बाज़ार है और कुछ नहीं।

'सन्नाटा' कहानी भी घरेलू परिवेश में व्याप्त सन्नाटे से शुरू होती है, किन्तु यह सन्नाटा भी भूमण्डलीकरण की देन है। अमित के जीवन में सन्नाटे तो पहले से ही व्याप्त हैं किन्तु पिता के आने की खबर से यह सघन हो रहा है। वैसे तो उसके भीतर स्वप्न जिन्दा हैं, किन्तु पिता के फोन की घंटी उसे गहरे तनाव में डाल देती है और मनमाफिक ख्वाब न रच पाने के कारण वह गहरे सन्नाटे में है, क्योंकि बदली हुई स्थितियाँ इतनी भयानक हैं कि 'पिता का हंसता हुआ चेहरा' उसके सामने उसकी अस्तित्वहीनता को बेपर्दा कर देता है। उसे यथार्थ बेचैन कर रहा है, 'वह आयेंगे तो कारखाना देखने जायेंगे ही। उन्हें क्या पता कि कारखाने को बीमार घोषित किये जाने की तैयारी हो गयी है। जल्दी ही किसी देशी, विदेशी धन्नासेठ को बेच दिया जायेगा।' इस बेचैनी के कारणों की तलाश में कहानीकार की दृष्टि साफ है। वह जानता है कि पहले जो सरकारी उपक्रम स्वस्थ थे, समाज निर्माण में उनकी हिस्सेदारी थी, वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अचानक बीमार घोषित हो रहे हैं तो उसके पीछे बाज़ारवादी शक्तियों के साथ ही भूमण्डलीकरण के पैरों से चलकर आते अमेरिकीकरण की भूमिका के साथ ही पंजीवाद का नया कुचक्र है। कहानीकार की उपस्थिति अमित जैसे चरित्र के साथ है, जहां वह अमेरिका की लूट अपसंस्कृति के साथ देशी-विदेशी धनपशुओं के खिलाफ प्रतिरोधी है, तभी तो वह धरने पर बैठता है, प्राइवेटाइजेशन के खिलाफ नारा लगाता है, किन्तु छँटनीकरण की क्रूरता से संशकित है। ये स्थितियाँ ही समाज के सन्नाटे का कारण है और बेहतर समय के पराजित होने के कारण जिम्मेदार भी।

आगे दो कहानियाँ हैं- एक 'सड़क पर', दूसरे 'सुबह'। दोनों ही कहानियां पीछे की कहानियों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि विषय के स्तर पर इनमें प्रेमचन्द की आवाज सुनी जा सकती है अर्थात ये दोनों कहानियां अभावग्रस्त जीवन जीने वाले उन लोगों की कहानी हैं, जिन्हें समाज ने हाशिए पर खड़ा कर दिया है। इन कहानियों की दूसरी मुख्य विशेषता स्त्री चरित्रों का विन्यास है। 'सड़क पर' कहानी में मुन्नी है जो अन्ततः आज के तमाम विमर्शों के बीच भी प्रतिरोध की शक्ति से हीन है। रज्जन दर्जी जैसे कुछ लोग अभी बचे हुए हैं। कथाकार इसे रेखांकित करता है। 'सुबह' कहानी भट्ठे पर काम करने वाले उन मजदूरों की कहानी है, जो हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद अपने बच्चे को जिन्दा भी नहीं रख सकते हैं। ऐसा लगता है कि इन दोनों कहानियों में प्रेमचन्द के वे किसान आ गए हैं जो सामंतवाद एवं जमीदारी व्यवस्था से लड़ते-लड़ते लहूलुहान हो गये थे। अंततः ये दोनों ही कहानियां अपने शिल्प में सोचने के लिए विवश करती हैं। ये एक गहरी कसक एवं तमाम अनुत्तरित प्रश्नों के साथ अचनाक ऐसे समाप्त हो जाती है, जैसे लगता है कि बहुत कुछ अभी कहना बाकी है। यह कथा संवेदना की नयी शैली है।

'हवा में नुस्खा' में भी अभाव से भरे ऐसे रिक्शा चालक भीखू की कहानी है, जिसमें उसकी बेटी राधा और पत्नी सुगनी है। कहानी अपनी मार्मिकता में उद्वेलित करती है और अपने समापन पर व्यवस्था के प्रभुओं के समक्ष अनेक प्रश्न छोड़ती है जो गहरी बेचैनी पैदा करने वाले हैं। दम तोड़ते बचपन के बीच भीखी का आन्तरिक-बाह्य संघर्ष कथा को संकेतों से भर देता है।

आगे चार छोटी-छोटी कहानियां हैं, किन्तु वे जो प्रश्न खड़ा करती हैं वे महत्वपूर्ण हैं। 'इस तरफ', 'फटी चादर', 'पोस्टर', 'उसके आँसू' कहानियों की सबसे महत्व ताकत यह है कि ये हाशिए पर खड़े, अभाव एवं जहालत की जिन्दगी जीने वाले ऐसे मनुष्यों की कहानियाँ हैं जो कहीं प्रतिरोध नहीं करते। यदि प्रतिरोध करते तो कहानी क्रान्तिकारी तो हो जाती, किन्तु यथार्थविरोधी होती। 'इस तरफ' में कथाकार पुनः विस्थापन एवं अकेलापन जूझते किशोर वर्ग की व्यथा बिरजू के दोहरे संघर्ष में दिखाई देती है। 'फटी चादर' कहानी कूड़े-करकट के ढेर में अपना वर्तमान और भविष्य खोजते बच्चे हैं, जो अपमान एवं जहालत से भरे व्यस्त जीवन के बीच प्रेम की लौ सुरक्षित रखे हैं। 'पोस्टर' कहानी में सामाजिक विसंगति के साथ ही शासन-सत्ता के जनविरोधी चरित्रों का उद्घाटन है, तो 'उसके आँसू' कहानी में मिट्ठू जैसे युवक के आँसूओं में भयानक सच्चाई है, जिसे कथाकार ने सहज अंदाज में प्रस्तुत किया है। कहानीपन इस संग्रह की विशेषता है।

रीडर, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर-273009, उ.प्र.
मो. 09415824589

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रलेस का पंद्रहवां राष्ट्रीय सम्मेलन संपन्न, तमिल लेखक पोन्नीलन अध्यक्ष

प्रगतिशील लेखक संघ का अखिल भारतीय 15वां राष्ट्रीय सम्मेलन 12, 13 एवं 14 अप्रैल 2012 को दिल्ली विश्वविद्यालय के सम्मेलन कक्ष में आयोजित हुआ। यह सम्मलेन प्रलेस के संस्थापक और पहले सचिव सज्जाद जहीर और हाल ही में दिवंगत हुए प्रलेस के राष्ट्रीय महासचिव डॉ कमला प्रसाद के स्मरण को समर्पित था।

सम्मेलन का उद्घाटन विख्यात लेखक और समाजकर्मी असगर अली इंजिनियर ने किया। तीन दिन के इस सम्मलेन में समस्त भारत के 20 राज्यों के लगभग चार सौ लेखकों ने शिरकत की। इन लेखकों, कवियों, पत्रकारों में लगभग सभी भारतीय भाषाओं के अदीब शामिल थे। इनके अतिरिक्त एफ्रो-एशियन रायटर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष हेल्मी हदीदी (मिस्र), आकियो हागा (जापान), बाबर अयाज (पाकिस्तान) और मुहिय्या अब्दुर्रहमान (उज्बेकिस्तान) ने भी सम्मेलन में शिरकत की।

सम्मेलन के पहले दिन पहले सत्र की शुरुआत जनगीतों से हुई। उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि डॉ हेल्मी हदीदी थे। प्रलेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो नामवर सिंह के स्वागत भाषण के साथ कार्यक्रम की विधिवत् शुरुआत हुई। इसके बाद असगर अली इंजिनियर का उदघाटन भाषण था, जिसमें उन्होंने सांप्रदायिकता, संकीर्णता और साम्राज्यवाद के असर से पैदा होने वाली समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए एक रौशन-खयाल, सहिष्णु और प्रगतिउन्मुख समाज के निर्माण में लेखकों के दायित्व पर बात की।

सत्र के अन्य वक्ताओं में प्रो विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ खगेन्द्र ठाकुर, प्रो तुलसीराम, इप्टा के महासचिव जितेन्द्र रघुवंशी, बाबर अयाज और अकियो हागा शामिल थे। इस अवसर पर जनवादी लेखक संघ की नुमाइंदगी जलेस के महासचिव डॉ मुरली मनोहर प्रसाद सिंह ने की। जन संस्कृति मंच के महासचिव प्रणय कृष्ण और कलाकार शबाना आजमी का पैगाम भी पढ़ कर सुनाया गया। भारतीय जन नाट्य संघ, इप्टा के महासचिव जितेंद्र रघुवंशी ने प्रलेसं के 15वें राष्ट्रीय सम्मेलन के मौके पर इप्टा और प्रलेसं के पुराने रिश्तों को याद किया।

अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रो तुलसीराम ने कहा कि पुरातन विचारधाराएं जब राजनीति पर हावी होती हैं, तो लेखन भी उससे प्रभावित होता है। जातिवाद के नए सिरे से सिर उठाने के साथ ही उसके नायक भी उभरे हैं। जातीय सत्ता के नारे के कारण स्पर्धात्मक राजनीति तेज हुई, जिसके खतरे आज सामने हैं। इस सत्र का संचालन अली जावेद ने किया।

सम्मेलन के दूसरे सत्र में 'शांति और सौहार्दपूर्ण विश्व में लेखक की भूमिका' विषय पर प्रगतिशील लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किए। सत्र की शुरुआत करते हुए विख्यात आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि कलाएं शांति और सौहार्द की संवाहक होती हैं, इसलिए लेखकों की खासतौर से विरासत ही शांति और सौहार्द की रही है। शांति और सौहार्द की विरोधी शक्तियां सबसे पहले भाषा और संस्कृति पर ही चोट करती हैं। इन्हें बचाने के लिए एकजुट होना जरूरी है। उन्होंने कहा कि विकल्प नहीं होगा, तो अतिवाद फैलेगा। अतिवाद सत्ता के हित में होता है। उन्होंने कहा कि हमें अतिवादियों के उद्देश्यों से कोई विरोध नहीं है, लेकिन उनके तौर तरीकों से विरोध है।

केरल से आए केपी रामन उन्नी ने कहा कि मलयालम साहित्य की धारा शुरूआत से ही साम्राज्यवाद विरोधी रही है। बीच में भटकाव आया लेकिन आज फिर बाजारवाद और नव साम्राज्यवाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के खिलाफ यह धारा अपना काम कर रही है।

महाराष्ट्र के श्रीपाद जोशी ने कहा कि सांस्कृतिक वर्चस्ववाद का चेहरा बदल रहा है। भूमंडलीकरण के बाद वर्चस्ववाद का चेहरा भी बदल गया है। इसके साथ ही वर्ग भी नए सिरे से बन रहे हैं, लेकिन यह सत्ता के पक्ष में हैं। ब्राहमणवाद के विरोध में जो लोग सामने आए थे, वे भी सांस्कृतिक वर्चस्ववाद की नीतियां बना रहे हैं।

कोलकाता से आए गीतेश शर्मा ने कहा कि साम्राज्यवाद के विरोध के एक पक्ष से बदलाव नहीं होगा, हमें अपने भीतर की खामियों को भी देखना होगा। पंजाब के रजनीश बहादुर ने कहा कि लेखकों के सामने चुनौतियां हैं, और वे उसका मुकाबला भी कर रहे हैं। उड़ीसा से आए एसबी कार, शाहिना रिजवी (बनारस), मोहनदास (जम्मू), बंगाल से कुसुम जैन, दिल्ली के जोगिंदर अमर, तमिलनाडु के पुन्नीलन ने भी सम्मेलन को संबोधित किया। दूसरे सत्र का संचालन इप्टा उत्तर प्रदेश के महासचिव श्री राकेश ने किया।

पहले दिन के तीसरे सत्र में विभिन्न राज्यों से आए करीब 90 कवियों, शायरों ने अपनी रचनाओं का विभिन्न भाषाओं में पाठ किया। काव्यपाठ एवं मुशायरे की अध्यक्षता चौथीराम यादव ने की, जबकि संचालन विनीत तिवारी ने किया।

सम्मेलन के दूसरे दिन 13 अप्रैल को कार्यक्रम की शुरुआत मध्यप्रदेश इप्टा के जनगीतों से हुई। पहले सत्र का विषय था 'भारत में साहित्यिक और सांस्कृतिक आन्दोलन: महिला, दलित, आदिवासी और अन्य हाशिये के समुदायों के बारे में लेखन की रौशनी में'। सत्र की शुरुआत करते हुए वाराणसी के प्रो चौथीराम यादव ने कहा कि वह चाहे कबीर और रैदास का समय हो या फिर हालिया दौर। हर समय में जातिवादी और धार्मिक संस्थाओं को समाजसुधारकों और लेखकों ने चुनौती दी है। आलोचक कई बार उनके महत्व को रेखांकित करने से चूक जाते हैं, लेकिन लेखन में जातिवादी और धार्मिक संस्थाओं का विरोध लगातार होता रहा है। वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पांडे ने अपने भाषण में कथित विकासशील भारत में महिलाओं की स्थिति पर सवाल उठाए। उन्होंने कहा कि संस्कृति का पूरा भार ढोने का काम महिलाओं के जिम्मे छोड़ दिया गया है। उन्होंने दिल्ली, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के उदाहरणों को सामने रखते हुए ऑनर किलिंग पर गंभीर साहित्यक कर्म की जरूरत पर बल दिया।

अमिताभ चक्रवर्ती (प. बंगाल) ने प्रगतिशील लेखक संघ के महत्व को याद करते हुए कहा कि प्रलेस और उसके सहोदर संगठन इप्टा की धार्मिक कट्टरता सामंतवाद से लड़ाई का लंबा और गहरा इतिहास है। उन्होंने भविष्य में इस कार्यभार को जिंदा रखने की बात कही। कहानीकार नूर जहीर ने दक्षिण एशिया की महिला लेखकों के संघर्ष और उनके लेखन पर गहराई से बात की। उन्होंने बताया कि अफगानी समाज में एक महिला का लेखन और वह भी सत्ता विरोधी लेखन अपने आप में महत्व की बात है। मेहबूबा खानम अपनी एक कविता में लिखती हैं- मैं नहीं चाहती तुम अनपढ़ रह जाओ, नहीं चाहती तुम किसी अनदेखे पुरुष से बियाही जाओ, और मैं हरगिज हरगिज नहीं चाहती की तुम कुंवारी न पाई जाने पर, कब्र के अंधेरों में धकेली जाओ।

मध्य प्रदेश के तरुण गुहा नियोगी ने कहा कि समाज के वंचित तबकों की जो चिंता प्रगतिशील लेखकों में उनके प्रति सरकार और दक्षिणपंथी संगठन भी देख रहे हैं। उन्होंने मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ का उदाहरण देते हुए बताया कि वंचितों के लिए कई तरह की लाभकारी योजनाएं चलाकर सरकारें उन्हें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लुभा रही हैं, लेकिन उनका असल उद्देश्य आदिवासी, दलित और अन्य वंचित समूहों को सामंतवाद, जातिवाद, धार्मिकता और कट्टरपंथ के शिंकजे में जकड़ना ही है।

समाज के वंचित तबके में भी विभिन्न वर्गों को रेखांकित करते हुए लखनऊ के शकील सिद्दीकी ने कहा कि लेखकों को ऐसे मुद्दों को भी उठाना चाहिए। वीरेंद्र यादव (लखनऊ), राजेंद्र राजन (बेगूसराय), जयप्रकाश धूमकेतु (मऊनाथभंजन), राकेश (लखनऊ), मोहन सिंह (जम्मू) और अली अहमद फातमी (इलाहाबाद) ने भी इस सत्र में अपने विचार प्रकट किए। इस सत्र की अध्यक्षता मराठी के वरिष्ठ कवि सतीश कालसेकर, चिंतक और एक्टिविस्ट डॉ असगर अली इंजिनियर, प्रसिद्ध अध्येता अफ्स: जफर ने की। संचालन विनीत तिवारी ने किया। सत्र के अंत में संगीता महाजन ने महान दलित कवि नारायण सुर्वे की कविता का पाठ किया।

इसी दिन का दूसरा सत्र 'समकालीन भारतीय लेखन- धार्मिक कट्टरवाद, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता के परिपेक्ष्य में' विषय पर था, जिसमें खगेन्द्र ठाकुर, प्रभाकर चौबे, रमाकांत श्रीवास्तव, जय नंदन, स्वप्नसेन गुप्ता, अबुसना खुम्मान आदि ने अपने विचार व्यक्त किये.

इस दिन तीसरे सत्र की शुरुआत जेएनयू इप्टा के जनगीतों से हुई। शाम साढ़े छ- बजे शंकरलाल हॉल में फैज के जीवन पर आधारित नाटक 'बोल कि लब आजाद हैं तेरे' का मंचन हुआ। इसका निर्देशन लोकेन्द्र त्रिवेदी ने किया था, और नाटक को लिखा है परवेज अहमद ने।

सम्मेलन के अंतिम दिन 14 अप्रैल को संगठनात्मक सत्र हुआ। इसमें विभिन्न राज्यों में प्रलेस की गतिविधियों की रिपोर्ट पेश की गईं। 2008 में बेगुसराए में आयोजित प्रलेस की 14वीं कांफ्रेंस के बाद दिवंगत होने वाले अनेक लेखकों के लिए शोक प्रस्ताव तथा अन्य प्रस्ताव इस सत्र में पारित हुए। अंत में नई कार्यकारिणी का गठन हुआ। मलयालम लेखक ओ. वी. एन. कुरूप व प्रो. नामवर सिंह को प्रलेस का संरक्षक बनाया गया। अध्यक्ष मंडल के चेयरमेन प्रसिद्ध तमिल लेखक पुन्निलन मनोनीत किए गए। अन्य चार सदस्यों में विश्वनाथ त्रिपाठी (दिल्ली), खगेन्द्र ठाकुर (झारखंड), गीतेश शर्मा (प. बंगाल) और सुखदेव सिंह (पंजाब) का चुनाव हुआ। अली जावेद को महासचिव चुना गया। सचिव मंडल के अन्य सदस्य राजेंद्र राजन (बिहार), सतीश कालसेकर (महाराष्ट्र), पी. लक्ष्मीनारायण (आन्ध्र प्रदेश) और अमिताभ चक्रवर्ती (प. बंगाल) हैं। इनके अतिरिक्त कार्यकारिणी में 31 सदस्य होंगे। हर राज्य के अध्यक्ष, सचिव या उनके प्रतिनिधि कार्यकारिणी के सदस्य मंडल में शामिल होंगे। केंद्र को यह अधिकार भी दिया गया कि विभिन्न भाषाओं के 11 अन्य महत्वपूर्ण लेखकों को कार्यकारणी में शामिल करे।सम्मलेन में विभिन्न भाषाओँ की 20 से अधिक पुस्तकों का विमोचन हुआ तथा अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए.

अंत में नव निर्वाचित महासचिव अली जावेद ने प्रलेस की जिम्मेदारियों के निर्वाहन का संकल्प करते हुए कहा कि जरूरत इस बात की है कि लेखक निर्भय होकर हर प्रकार की फिरकापरस्ती, संकीर्णता और हिंसा के विरुद्ध स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाएं। इन समस्याओं को न केवल बारीकी से समझें, बल्कि अपने लेखन में इस तरह पेश करें कि बेहतरीन मानव मूल्यों को, रौशन खयाली और अमन को बढ़ावा मिले।

संपर्क: अली जावेद (09868571543), अर्जुमंद आरा (09810598859)

सचिन श्रीवास्तव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर्नाटक प्रलेस की तदर्थ समिति का गठन

कर्नाटक राज्य में प्रगतिशील लेखक संघ की इकाई का बहुप्रतीक्षित गठन पिछली 28 जून को बेलगाम में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य श्रीपाद भालचंद्र जोशी मौजूद थे।

इस बैठक में बेलगाम में इकट्ठा हुए कर्नाटक के लेखकों-साहित्यकारों ने महाराष्ट्र की तर्ज पर समान विचार और कार्यक्रमों वाले साहित्यिक-सांस्कृतिक संगठनों के साथ मिलकर एक संयुक्त मोर्चे के निर्माण का भी संकल्प लिया। इस बैठक का संयोजन वरिष्ठ लेखक पत्रकार और प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्ता प्रो. आनंद मेन्से ने किया।

श्रीपाद जोशी ने बैठक को संबोधित करते हुए प्रलेस और इप्टा की राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा कि भारत जैसे बहुभाषी और सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में प्रगतिशील धर्मनिरपेक्ष विचारों वाले लेखन से ही सहिष्णुता और जनकल्याणकारी मानव मूल्यों का समर्थन और संरक्षण किया जा सकता है।

इस अवसर पर उत्तरी कर्नाटक में कार्य करने हेतु लेखकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक तदर्थ समिति का भी आम सहमति से चयन किया गया। समिति में प्रो. संध्या देशपांडे, आनंद मेन्से, चित्रकांत वाघमारे, डी.जे. पाटिल, आनंद कनविन्दे, अनिल अजगांवकर, परशुराम मोत्राचे और एडवोकेट नागेश सतेरी शामिल हैं।

बेलगाम के मजदूर संगठनों द्वारा निर्मित भगतसिंह हाल में हुए इस समारोह में अर्जुन सांगवीकर, अशोक यल्गी, मारुति धागे, शिवाजी कागनीकर, शंकर चफाड़कर, प्रकाश देसाई, अप्पाजी मोरे, श्रीमती कला सतेरी, कृष्णा शापुरकर, वासुदेव चौघुले, चेतन लुकाबीकर आदि के साथ बड़ी संख्या में उपस्थित स्थानीयजन मौजूद थे। इस अवसर पर श्रीपाद जोशी का नागरिक सम्मान भी किया गया।

बैठक में निर्णय लिया गया कि प्रलेस की कर्नाटक इकाई का राज्य सम्मेलन शीघ्र ही आहूत किया जायेगा।

प्रलेस की कर्नाटक राज्य इकाई (तदर्थ समिति) के संयोजक प्रो. आनंद मेन्से हैं। उनसे मोबाइल नं. 09448347452 तथा ई मेल-anandmense@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंदसौर

मंदसौर में विगत माह नवसाम्राज्यवाद के खतरों पर चिंतन के साथ समाधान खोजने के उद्देश्य से लगभग 50 बुद्धिजीवियों की एक कार्यशाला आयोजित की गयी। कार्यशाला का आयोजन प्रगतिशील लेखक संघ की मंदसौर इकाई द्वारा हुआ था। उक्त कार्यशाला में स्वतन्त्र चिन्तक, पत्रकार, पत्र लेखक, कवी, स्वयंसेवी संगठनों के पदाधिकारी और अन्ना आन्दोलन से जुड़े कार्यकर्ता शामिल हुए। कार्यशाला का विषय वर्तमान की चिंताएं और हमारा हस्तक्षेप था। कार्यशाला में प्रलेस के प्रादेशिक महासचिव श्री विनीत तिवारी और युवा कहानीकार श्री रवीन्द्र व्यास खुसूसी मेहमान के रूप में उपस्थित रहे।

कहानीकार रवीन्द्र व्यास ने विषय पर शुरू से आखरी तक अपनी पकड़ बनायें रखी। उन्होंने विषय को केंद्र में रखते हुवे कोला एवं पेप्सी संस्कृति के जरिये होने वालें हमलों से सदन को आंकड़ों के साथ अवगत कराया। श्री व्यास ने कहा की युवाओं में विदेशी और देशी कम्पनियां मिलकर खाओ-पीओ और मौज करों की संस्कृति बढ़ावा दे रही हे। इस षड़यंत्र में बालिवूड एवं क्रिकेट के सितारों से विज्ञापन करवाकर मदद ली जा रही हे। करोड़ों रुपया विज्ञापन करने का लेकर के ये सितारें देश बेंचने निकल पड़े हे। बाजारू संस्कृति के इस षड़यंत्र को समझना होगा। उन्होंने अंत में अपनी दो कहानियां भी सुनाई।

मुख्या वक्ता के रूप में बोलते हुए विनीत तिवारी ने कहा की अगर हम सभी समस्याओं के सिरों को पकड़ते हुए नीचे तक जायेगें तो हमें पूंजीवाद की जड़े साफ़-साफ़ नजर आती हैं। दुनियां में चाहे पानी, वनों, बेरोजगारी, गेर बराबरी, महिला उत्पीडन, साम्प्रदायिकता, घूसखोरी , सांस्कृतिक हमले आदि जो समस्याएं हैं। इनका पोषक पूंजीवाद है। वो चाहे देशी पूंजीपति हो या बहुराष्ट्रीय हो। इनका सिर्फ एक ही मकसद हे मुनाफाखोरी। इसलिए ये ताकते जनता को किसी न किसी बहाने उलझाये रखती है। उन्होंने आगे कहा की जिस तरह लीबिया या अरब देशो में क्रांति के नाम पर हिंसा हो रही है इसके पीछे पूंजीवादी ताकतें लगी हुई हैं। दरअसल अमेरिका अपने भविष्य की पेट्रोलियम की मांगों के मद्देनजर इन तेल उत्पादक देशो में गृहयुद्ध के हालत पैदा कर अपनी गुलाम सरकार चाहता है। जैसा की उसने कुवेत, ईराक या अफगानिस्तान में किया था।

कार्यशाला की शुरूआत वेद प्रकाश मिश्र द्वारा प्रस्तुत जनगीत 'इसलिए --- संदर्भ की हम चुनें' से हुई। कार्यशाला में पर्यावरणविद शिवकुमार मिश्र रज्जन, टीवी पत्रकार प्रदीप शर्मा, श्रीमती कल्पना व्यास, उमेश नेमा, कमल जैन, असद अंसारी आदि ने भी अपने विचार रखे। अन्य भागीदारों में हर्षित सांवलिया, कैलाश प्रजापति, अनिल सांखला, जयेश नागर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

कार्यशाला में स्वागत भाषण एवं प्रभावी संचालन पत्रकार हरनाम सिंह चंदवानी ने किया।

प्रदीप शर्मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन्दौर इप्टा का ग्रीष्मकालीन बाल नाट्य शिविर

भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) द्वारा बच्चों के लिए इन्दौर में आयोजित ग्रीष्मकालीन शिविर के समापन पर विभिन्न कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी गई। साठ से अधिक बच्चों ने इस कार्यशाला में भाग लिया था।

इस अवसर पर शिविर के दौरान तैयार सफदर हाशमी के नाटक 'मशीन', 'ये कैसा घोटाला', कुछ जनगीत एवं कव्वाली की प्रस्तुत किये गये। फैज अहमद फैज की कविता 'हम देखेंगे', लाजिम है कि हम भी देखेंगे पर जनगीत की प्रस्तुति को लोगों ने बहुत सराहा। सफदर हाशमी द्वारा लिखित कविता को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया। ये बात समझ में आयी नहीं और अम्मी ने समझायी नहीं कव्वाली में बच्चों की चुहलबाजियों पर लोगों ने बहुत मजे लिए। कार्यक्रम के अंत में 'मशीन' नाटक की प्रस्तुति हुई। कारखानों में काम करने वाले कामगारों, मजदूरों की समस्याओं पर आधारित यह नाटक लोगों ने बहुत पसंद किया। इसमें बताया कि मशीन के साथ काम करने वाला मजदूर भी मशीन का ही एक हिस्सा होता है, जिसका हर तरह से शोषण किया जाता है, और दूसरी तरफमालिक अपने मनोरंजन के लिए, उपहार देने पर लाखों, करोड़ों रुपये यूँ ही बरबाद कर देता है, पर मजदूरों पर नहीं। ये सभी कार्यक्रम बच्चों की डेढ़ माह चली कार्यशाला के दौरान तैयार किये गये थे और इन प्रस्तुतियों में जया मेहता, विनीत तिवारी और प्रमोद बागड़ी का विषेष सहयोग प्राप्त हुआ। शिविर का संयोजन सारिका श्रीवास्तव ने किया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए अध्यक्ष विजय दलाल ने इप्टा की इंदौर इकाई के अब तक के काभों और गतिविधियों की जानकारी दी।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि और इप्टा के पुराने साथी श्री आनंदमोहन माथुर ने अपने सम्बोधन में कहा कि आज टीवी और फिल्मों में मनोरंजन के नाम पर जो दिखाया जाता है वह साधारण लोगों की समस्याओं और आम जिंदगी से बहुत दूर है। जिस इप्टा में हमने काम किया उसी इप्टा को आज फिर से सक्रिय देखकर बहुत खुशी हो रही है।

इस समारोह के लिए विशेष रूप से अशोकनगर, उज्जैन और गुना के साथी कलाकार सत्यभामा, विष्णु झा, मुकेश बिजौले और योगेश भी आये थे। अशोकनगर से आयीं इप्टा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सदस्य सीमा राजोरिया ने अन्य जगहों पर हुए शिविरों की जानकारी दी। उन्होंने कहा कि म.प्र. के अनेक शहरों में इप्टा पुनः सक्रिय हुई है और नाटक के जरिये आज के माहौल में एक प्रगतिशील संस्कृति के निर्माण की कोशिश कर रही हैं। शिविर में विशेष सहयोग के लिए पुणे से आए लेखक अहमद करीम और ओ.पी. मोहनिया का बच्चों ने सम्मान किया।

कार्यक्रम में श्रीमती पेरीन दाजी, सर्वश्री आलोक खरे, ब्रजेश कानूनगो, सनत कुमार, एम. के. शुक्ला, बसंत शिंत्रे, शैला शिंत्रे आदि भी उपस्थित थे। कार्यक्रम के अंत में इप्टा इंदौर के सचिव अशोक दुबे ने आभार व्यक्त किया।

सारिका श्रीवास्तव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य भंडार द्वारा प्रकाशित

सिनेमा जगत की उत्कृष्ट पुस्तकें

हिन्दी सिनेमा

बीसवीं से

इक्कीसवीं सदी तक

सम्पादक: प्रहलाद अग्रवाल

मूल्य पेपर बैक : 300.00

मूल्य हार्ड बाउण्ड : 990.00

यहाँ से सिनेमा

अरुण कुमार

मूल्य हार्डबाउंड : 300.00

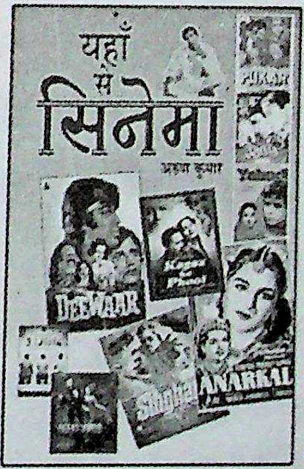

साहित्य भंडार

50, चाहचंद, इलाहाबाद 211003

फोन: 0532-2400787, 2402072, 9335155792, 9415214878

email: vibhoryash1@rediffmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

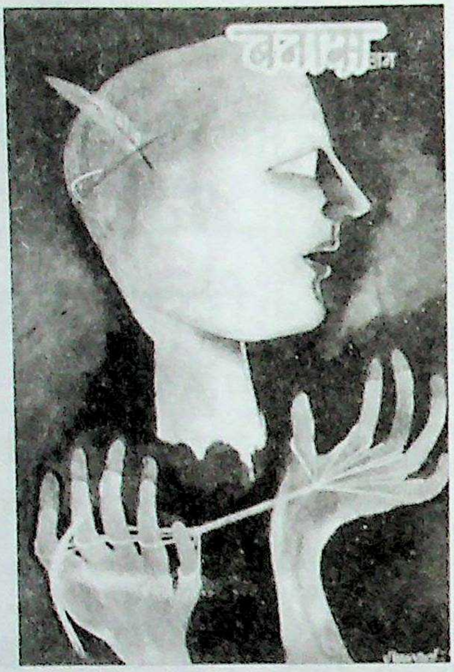

बनास जन

इस अंक में विशेष

प्रगतिशील आंदोलन के 75 वर्ष, जनशताब्दी प्रसंग
शहरनामा में तीन रचनाकार
सदाशिव श्रोत्रिय का आत्मकथ्य और कविताएँ
असग़र वजाहत, रामकुमार सिंह, सईद अय्यूब, विनोद विट्ठल की कहानियाँ

अविनाश और योजना रावत के यात्रा आख्यान
हमसफरनामा में अजित कुमार
सत्यनारायण व्यास की लम्बी कविता
कविताओं में रवि कुमार, विनोद विट्ठल, रूपेश कुमार शुक्ल, सोमप्रभ

इनके अलावा सामयिक, अनुवाद, भाषा, पुनर्पाठ, रंगमंच और समीक्षायन के स्तम्भ

प्रति हेतु संपर्क-

पल्लव

393, डी.डी.ए. ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेन्ट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088

दूरभाष : +91-11-27498876 मोबाइल-08130072004

ई-मेल : banaasmagine@gmail.com

यह अंक-75 रुपए

डाक द्वारा मंगवाने पर-100 रुपए

वार्षिक सहयोग-200 रुपए (व्यक्तिगत)

वार्षिक सहयोग-500 रुपए (संस्थागत)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

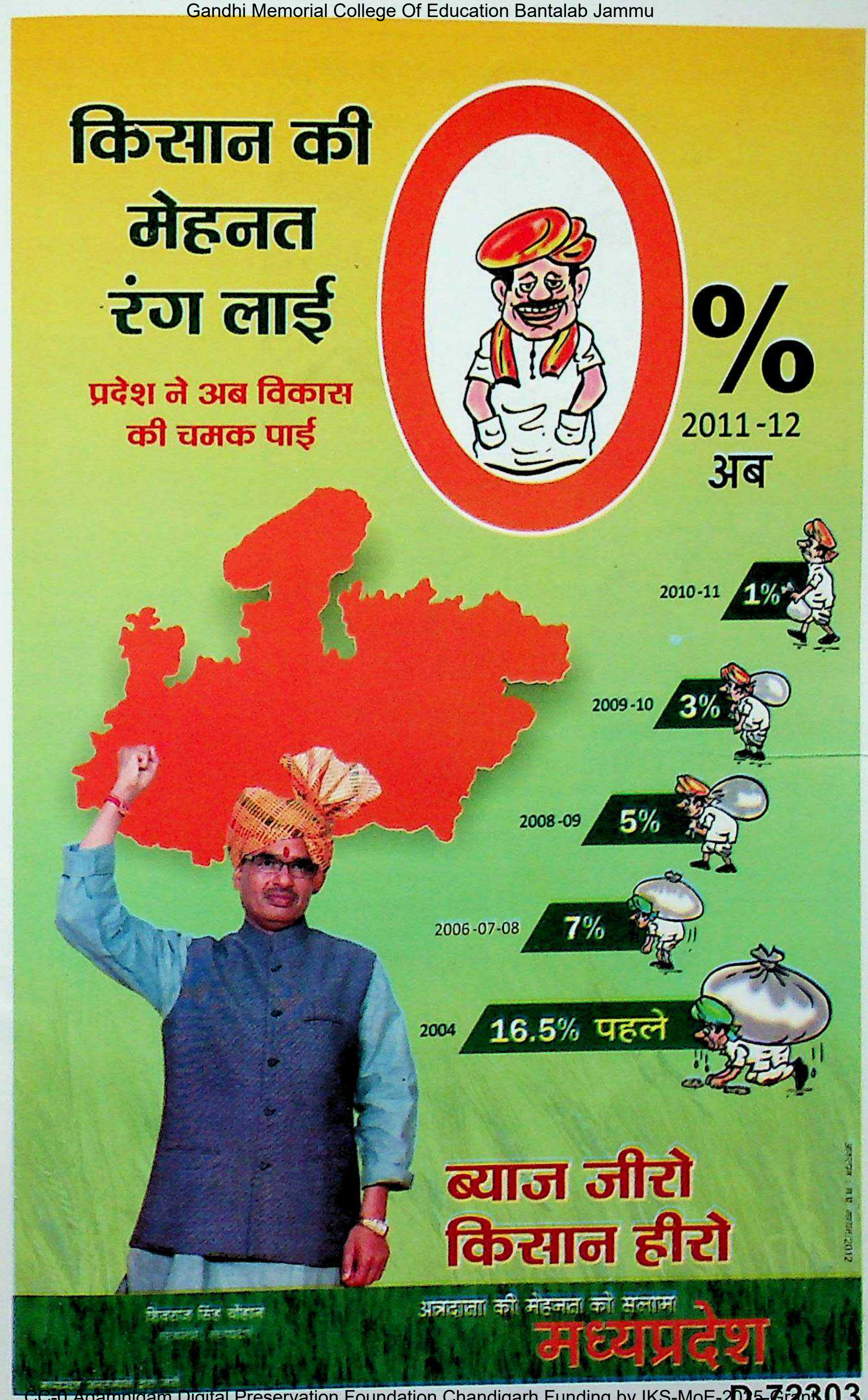

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant
D-72303

प्रगतिशील
वसुधा
RNI No. MPHIN/2005/14693
वर्ष 8, अंक 3, अप्रैल-जून 2012

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital P